



वेद और ब्रह्म का रहस्य वा तत्त्व ।

ईशाद्यष्टोपनिषद्

अर्षोऽ-रंता, केन, क्व, मम, इन्द्र, माण्डूक्य, तैत्तिरीय और वेतसेय स्वानश्व

अन्वय. पदार्थ और भाषार्थ सहित ।

छापा सुन्दर अर्धवर्ग टाइप, कागज चिकना और पुष्ट

पृष्ठ-४३६ जिल्द कपड़े की मजबूत, मूल्य

?) रुपया डाक महसूल ॐ) आना ।

यदि आप दुर्लभ मनुष्य शरीरको फूरर शूरर की समान न खोकर सार्थक करतेहुए संसारसागर के पार होना चाहते हों, यदि आप अपने स्वरूपको पहिचानकर जीवित समय पर्यन्त जीवन्मुक्ति और अन्तमें सायुज्यमुक्ति चाहते हों तो प्रतिदिन थोड़े समय उपनिषदोंका विचार किया कीजिये, जिस भगवद्गीताको देशी, विदेशी हिन्दू, अहिन्दू सब ही गोरव की दृष्टिसे देखते हैं, वह गीतारूपी अमृत भगवान्, श्रीकृष्ण ने उपनिषदोंमें से ही दुहकर अर्जुन को पिलाया था, इतने से ही उपनिषदों की महिमा समझ देखिये, उन ही ईशा आदि आठ उपनिषदों को अन्वय पदार्थ और सरल भाषार्थ सहित छापा है जो कि-सुबोध गुरुका काम देता है ।

पता-पण्डित रामस्वरूप शर्मा

सनातनधर्म प्रेस मुरादाबाद.

सनातनधर्मप्रेसकी छपी पुस्तकें

सनातनधर्मशिक्षा—वेदशास्त्रोंके प्रमाण और युक्तियें
सनातनधर्मका मण्डन जिल्द सहित मूल्य १ रुपया । व्याख्यान
माला—स्वामी ईशस्वरूपजी के मूर्तिपूजा, भवनार, अहिंसा
सन्ध्यादिपर जगत्प्रसिद्ध दश व्याख्यान की गन १० आना ।
व्याख्यानकुसुम—अहिंसा, वेदमहिमा और कुरीतिसंशोधन
पर महामहोपाध्याय स्वामी रामामेशशास्त्रीजीके व्याख्यान मूल्य
४ आना । तीन व्याख्यान—कर्म, ज्ञान, भक्तिपर मि० एनी-
वसेंटके व्याख्यान मूल्य ४ आना । विधवाविवाहमीमांसा-
प्रमाण युक्तिसहित विधवाविवाहका तण्डन कीमत १ रुपया
श्रीकृष्णतत्त्व—मि० एनिवसेंट का व्याख्यान मूल्य २ आना
आदिसिद्धि—५० रामप्रापशास्त्रिका १ आना । ईशाचष्टो-
पानपट्ट—अन्वय पदार्थ और भावार्थ सहित ईश, केन, कठ
प्रश्न, सुण्ड, माण्डूक्य, तैत्तिरीय और ऐंगरेय उपनिषद् सजिए
मूल्य १ रुपया । गायत्री व्याख्या—मूल्य १॥ आना । भार-
तीर्षि-राजभक्त, देशभक्त, स्वामिभक्त और धर्मभक्त, राजपू, मराठे
आरिसिखोंके ४ जीवनचरित्र कीमत १२ आना । शंकरविजय-
नाटक-जगद्गुरु श्रीशंकराचार्यजीका जीवनचरित्र की० १ रुप
पंचमहापञ्जविधि () सन्ध्याविधि) वैराग्यशतक—अन्वय
पदार्थ और भावार्थ सहित ४ आना । वेदान्तसूत्र भा. टी. स. ॥)
हरिकीर्तनगजलसंग्रह प्रथमभाग () द्वितीयभाग () चैतान्दी
गजलनौबहार () सुदामाचरित्र गजलभजन () बलिलीला () भजन
सोधपरीक्षा () गंगालहरी भा. टी. () ॥ महिम्नःस्तोत्र भाषाटीका ()
महिम्नःस्तोत्र और शिवगाण्डव भाषाछन्दमें टीका () गंगालहरी
भाषाछन्दमें टीका () रामगीता भा० टी० () वक्तृतामालिका
इनके सिवाय बंबई की छपी सबप्रकारकी पुस्तकें मिलेंगी । १३८

मिलने का पता—

भैनेजर—सनातनधर्म व्यापाखाना सुरादावा

ता करने के लिये उस पवित्र वाक्यराशिके चार भाग किये ऋक्, यजु, साम और अथर्व । पद्यमय वाक्यावलि ऋक्, गीतिमय वाक्यावलि साम, और शेषगद्यमय वाक्योंका नाम यजु हुआ, इस विभागेसे पहिले यह समस्त वाक्यावलि त्रयी नामसे प्रसिद्ध थी, त्रयीका ही एक अंश स्वतंत्र भावसे अथर्व नामसे प्रसिद्ध है, यही विभाग व्यासनी ने किया है, त्रयी के कर्मों की अपेक्षा अथर्व के कर्म स्वतन्त्र हैं, इसीकारण त्रयीविषयक कर्मोंमें अथर्वका नामोल्लेख और अथर्वविषयक कर्मोंमें त्रयीका नामोल्लेख नहीं है।

ऋक्, यजु और साममें कर्म, उपासना और ज्ञानका वर्णन कहीं स्वतन्त्ररूपसे और कहीं मिश्रितरूपसे है, अन्तःकरणशुद्धिके द्वारा प्रवृत्ति मार्गसे निवृत्तिमें लानेके निमित्त यजुर्वेद यज्ञोपयोगोंकीभित्ति है, ऋग्वेद के मंत्र उस भित्तिको सुशोभित करनेवाले चित्ररूप हैं और उन चित्रोंमें सामगीतिरूप मणिमुक्ता सजेहुए हैं, परन्तु वैदिक कर्मकी भूमिरूप यजुर्वेद ही है, इसकारण सबसे पाहेले यजुर्वेदसंहितासे ही धार्मिकोंका गृह सुशोभित होना चाहिये ।

वेद किसी का रचाहुआ नहीं है, प्रतिकलकी आदिमें परमात्मा उसका स्मरण करके प्रजापतिके हृदयमें उसकी प्रेरण करते हैं इसीकारण लिखा है कि—

न कश्चिद्वेदकर्तास्ति वेदस्मर्ता महेश्वरः ।

वेदका बनानेवाला कोई नहीं है महेश्वर उसका स्मरण किया करते हैं, तदनन्तर ऋषिपरम्परासे श्रवण हो होकर उसका प्रचार होता रहता है, इसी कारण वेदका दूसरा नाम श्रुति भी है । वेदकी आनुपूर्वी सदासे एकरूप और अनादि है इसीकारण वेदके अक्षरोंका यथाविधि उच्चारण होनेपर ही शास्त्रोक्त फल प्राप्त होताहै, इसीकारण मंत्रोंका यथावत् उच्चारण होनेके लिये स्वरोंका विन्यास और उच्चारण का क्रम स्वतन्त्ररूपसे विधिवद्ध कियागया है ।

कर्म में वेदके मंत्रोंका अर्थज्ञान केवल उच्चारणशुद्धिके निमित्त ही जानना आवश्यक है, मुख्य तो मंत्रोंका यथार्थरूपसे उच्चारण ही है, इसीकारण कर्मके समय वेदमंत्रोंके अर्थका विचार वा वर्णन न होकर

पर कुछ ध्यान नहीं दिया कि मन्माना अर्थ करने से पुरातन मर्यादाकुल-
स्वरविन्यास के प्रातिकूल मेरा हास्य और वैदिकधर्मकी मूल में कुठारा
घात होगा, जो केवल अर्धमात्र दिखाकर वेद को ऐहिकोन्नतिमात्र
साधन के प्रेमियोंका रुचिकर बनाना चाहते हैं, वह वेद के वेदत्व को
जानते ही नहीं। ऐसे कल्पित अर्थमात्रसारवाले वेद न समझे जायें इस का-
रण यह वेदका संचित अर्थ पुरातन महर्षिपर उज्वट आदि रचित भाष्यों
के अनुसार लिखा है।

वैदिक यज्ञादिमें पथालम्भनके विषयको लेकर आजकल प्रायः विवाद
होता है, इसका कारण यह है कि आजकल लोग धर्मका स्वरूप मन-
माना बनाते हैं, पाँचले लोगोंका विश्वास था कि—जिसको वेद कर्तव्य क-
हता है वह धर्म है और जिसका वेद निषेध करता है वह अधर्म है,
इस नियमका पालन करके निजकर्तव्यका पालन करनेवालोंको कुछ शक्ति
प्राप्त होती थी, उस शक्तिको धार्मिकजन योगादुष्टानसे सम्मार्जितकर
पञ्चभूतोंपर प्रभुता जमाते थे, सूक्ष्मदृष्टिमें पहुँचजानेके कारण उनको
देवताओं का प्रत्यक्ष दर्शन होता था, वह प्रकृति और पुरुषके स्वरूपको
करामजकबू देखते थे, इसप्रकार अपना उद्धार करके वह परमपदको
पाते थे, ऐसेही महात्मा वैदिक यज्ञों में यजमान होता ऋत्विग् आदिके
आसनको सुरोभित करते थे, उनके मंत्रों के प्रभाव से स्थूलसूक्ष्म दोनों
प्रकारके पञ्चभौतिक शरीर उनकी इच्छानुसार परिचालित होते थे, उनके
विश्वासानुसार जैसा कि—पूर्वमांसादिमें निर्णय किया है, वैदिक यज्ञोंमें
यथाविधि पथालम्भन धर्म था, उसमें उदरम्भरोंकी कोहुई हिंसा की
समान भाव नहीं होता था, आजकल के शिक्षादरपरायण स्वकल्पित
कृत्यका धर्म माननेवालों के सामने इस बातको रखकर मानो वैदिकधर्मसे
उनकी रुचि हटाना है इसीकारण शान्त्रने सिद्धान्त किया है कि हरएक बात
अधिकारोंसे कहना चाहिये, आजकलके त्यन्त्रचित्तोंका अनुमान
करकेही पुरातन महर्षि कलिमें प्रशवनेवादि यज्ञोंके करनेका निषेध करगये
इसके अतिरिक्त ऐसे यज्ञोंमें श्रद्धा न होनेके कारण आजकलके वेद २
प्रकारनेवाले उन यज्ञोंके अधिकारों भी तो नहीं हैं, फिर वह इनकी बर्षा

हैं क्या करें, अथवा वेदिक यज्ञादि कर्मकलाप काम्य है, जो प्रवृत्तिमार्ग के बगैरही स्वर्गादिकी चाहना समझे हैं, और उनको वह विश्वास हो कि—इन यज्ञोंके करनेसे स्वर्गादिकी प्राप्ति होता है, तो वह इन यज्ञाका पुरातन रीतिमें यथाविधि अगुआन करे, और उनको यदि इन उपायोंसे स्वर्गादि भित्तनेकी श्रद्धा नहावे तो वह इनका अनुष्ठान करेगा ही क्यों ? और शास्त्र उनको करनेका प्रेरणा ही कर रहा है, क्योंकि—वह श्रद्धाहीन होनेमें उस कर्मके अधिकारी नहीं है, बरमैं तो सबसे पहिले अधिकारी होनेकी आवश्यकता है, जैसे वैद्यशास्त्रमें अनेकों रोगोंपर बहुतसी औषधियों काण्डादिक लिखा है और बहुतसी मासमयी लिराी है, जिनकी मासमें घृणा हो वह मासमयी औषधि क्यों खाएँ, जिन प्रवृत्तिप्रेमियोंको मासका अभ्यास है उनके ही निमित्त वह उपयोगी होगी, ऐसे ही जिनकी माससे घृणा है और जो प्रवृत्तिको हेय समझकर निवृत्तिसे प्रेम करनेवाले है वह उन काम्य यज्ञोंको क्यों करे उनकी चित्तशुद्धिके लिये नित्यनेमित्तिक कर्तव्य कर्मानुष्ठान तथा योगसाधनाके अङ्गरूप शमदमादि निर्दिष्ट है । ऐसे ही निवृत्तिमार्गप्रेमा कितने ही धार्मिक मित्रोंकी प्रेरणासे मैंने इस साक्षिपार्थको लिखतेसमय अथात्तम्भनादि न्यत्तां पर पुरातन भाष्योंके अविरुद्ध हिंसाभासको भी बचादिया है, वास्तवमें मुझे इस साक्षिपार्थके लिखनेका अहन्त्व नहीं है, क्योंकि—इस अनुवादमें मेरी अपनी रचना कुछ नहीं है, मैंने अवतरकके छपेहुए सस्कृतभाष्य और भाषानुवादांको सामने रखकर इस अनुवादका स्वतन्त्र रीतिपर सम्पादनमात्र करदिया है, और अतिमुत्तम मूल्यपर पताकाके ग्राहकोंकी सेवामें भेजनेकी इच्छा से छपवाकर प्रकाशित किया है ।

निवेदक—

ऋ० कु० रामस्वरूप शर्मा



धन्यवाद ।

मुरादाबादके प्रतिष्ठित रईस साहू पुरुषोत्तमशरण जीको कोटिशः धन्यवाद हैं, इस सनातनधर्म प्रेस की स्थिति और सानुवाद यजुर्वेदसंहिता के प्रकाशित होनेका आश्रय आप ही हैं, क्योंकि—आपने ही स्वर्गीय परोपकारपरायण महाराज गोपालजी की प्रेरणा से उपयुक्त रुपये की ऋणरूप सहायता देकर प्रेसको स्थायी किया और आपने ही यजुर्वेद की तयारीके निमित्त भी ऋणस्वरूप रुपया देकर इस कार्यको भेरे हाथसे पूर्ण करादिया, कदाचित् आपकी यह सहायता न मिलनेसे मैं इस कार्यका निर्वाह न करसकता, साहूसाहबकी ऐसी ही सहायता समय २ पर मिलते रहनेसे आशाहै सनातनधर्मपताकाके ग्राहक बहुतसे धर्मग्रन्थोंको बहुत ही सुलभता से पासकेंगे, आपका पवित्र चित्र भी किसी दूसरे पुस्तकमें ग्राहकों की भेट कियाजायगा । मैं ईश्वर से प्रार्थना करता हूँ कि—वह साहू साहबके पुत्रपौत्र धनधान्यादिकी दिनप्रतिदिन वृद्धि करें । इसके सिवाय खुरजेके रायबहादुर ला० नत्थीमल साहबने भी पचास रुपया यजुर्वेदके छपनेकी सहायतार्थ धर्मार्थ दिया था, तिसका धन्यवाद है ।

रामस्वरूप शर्मा

सम्पादक सनातनधर्मपताका मुरादाबाद

* हरिः ॐ *

श्रीशुक्लयजुर्वेदः

अन्वयेन भावार्थेन च सहितः

प्रथमोऽध्यायः

प्रणम्य साम्पं गिरिशं गणेशं भाष्यं समालोक्य महीधरीपम् ।

यजुर्मन्त्रां लिखामि चार्पं परोपशाराय तिनेश्रणाय ॥ १ ॥

हरिः श्रीं ॥ परमात्मा का श्वास्वरूप वेद प्रथम ब्रह्माजी को प्राप्त हुआ, ब्रह्माजी से ऋषियों को प्राप्त हुआ, परन्तु कितने ही काल के अनन्तर मनुष्यों को मन्दमति देखकर कृपालु भगवान् वेदव्यास ने वेद को ऋक्-यजुः-साम और अथर्व इन चार भागों में विभक्त किया एवं क्रम से पैल वैशम्पायन-जैमिनि तथा सुमन्तु इन अपने चार शिष्यों के अर्थ उपदेश किया, उन्होंने भी अपने शिष्यों के अर्थ उपदेश किया, इस प्रकार वेद की सहस्रों शाखा होगई। उनमें से व्यासजी के शिष्य वैशम्पायन जी ने याज्ञवल्क्यादि अपने शिष्यों को यजुर्वेद पढ़ाया था, सो देवात् किसी कारण से क्रुद्ध होकर वैशम्पायन जी ने याज्ञवल्क्य जी से कहा कि-मेरे पढ़ाये हुए वेद को त्याग दे, उसी समय याज्ञवल्क्य जी ने योगसामर्थ्यसे वेदविद्या को मूर्तिमान् करके उगल दिया उन उगलेहुए यजुर्मन्त्रों को, "ग्रहण करलो" इसप्रकार गुरु के कहने पर वैशम्पायन जी के अन्य शिष्यों ने तित्तिरि (तीतर) बनकर चुगलिया, वह यजुः बुद्धि की मलिनता के कारण कृष्ण होगए। तब दुःखित हुए याज्ञवल्क्य जी ने सूर्य भगवान् की आराधना करके अन्य शुक्ल यजुर्मन्त्र पाए। उन यजुर्मन्त्रों को याज्ञवल्क्य जी ने जावाल यौधेय-कण्व एवं मध्यन्दिन आदि अपने १५ पन्द्रह शिष्यों के अर्थ उपदेश किया, इस विषय को सूचित करनेवाली श्रुति भी है-"आदित्यानीमानि

शुक्लानि यजूंश्चि वाजसनेयेन याज्ञवल्क्येनाख्यायन्त इति (वृहदारण्य० माध्य० ५।५।३३) अर्थात्—(आदित्यानि) आदित्य से पढ़ेहुए (शुक्लानि) शुद्ध (वाजसनेयेन) वाज कहिये अन्न का सनि कहिये दान है जिसके वह हुआ वाजसनि तिसके अपत्य-वाजसनेय (याज्ञवल्क्येन) याज्ञवल्क्य ने अपने शिष्यों के अर्थ (आख्यायन्ते) कहेजाने हैं ” । तिन याज्ञवल्क्य ऋषि से मध्यन्दिन महर्षि ने जो यजुर्वेद की शाखा प्राप्त करी वह माध्यन्दिन नाम वाली हुई । यद्यपि याज्ञवल्क्य ने यह मन्त्र बहुत से शिष्यों को उपदेश किये थे, परन्तु ईश्वर की कृपा से मध्यन्दिन महर्षि के नाम से ही लोक में मसिद्ध हुए उस माध्यन्दिन वेद को जो पढ़ते हैं वा जानते हैं शिष्यपरम्परा से वर्तमान वह भी माध्यन्दिन कहाते हैं ।

शतपथ ब्राह्मण ११।५।६।७ में लिखा है कि—“स्वाध्यायोऽध्येतव्यः” अर्थात् स्वाध्याय (अपने पितृपितामहादि परम्परा करके प्राप्त वेदशाखा) को पढ़ना चाहिये, परन्तु वह अध्ययन (पढ़ना) मत्पेक मन्त्र के ऋषि छन्द देवता विनियोग और अर्थ को जानकर करना चाहिये, नहीं तो “एतान्यविदित्वा योऽधीतेऽनुव्रूते जपति जुहोति यजते याजयते तस्य ब्रह्म निर्वीर्य यातयामं भवत्यथान्तराश्वगर्त्तं वापद्यते स्यागुं वच्छति ममीयते वा पापीयान् भवति” अर्थात् इन ऋषि छन्द आदि को बिना जाने जो वेद पढ़ता है, पढ़ाता है गायत्री आदि का जप करता है व्याहृत्यां दि से हवन करता है, यज्ञ करता है तथा औरों को यज्ञ कराता है उसका ब्रह्म (वेद) निर्वीर्य (कार्यको सिद्ध न करनेवाला) यातयाम (निष्फल) होता है, और ऋषि छन्द आदि को न जानकर वेदाध्ययन आदि करने के अनन्तर श्वगर्त्त (नरक विशेष) में पड़ता है, वायु आदि से दूरी है शाखा जिसकी ऐसे शुष्कवृक्ष की योनि को प्राप्त होता है (ममीयते) अध वा बधिर होता है और अत्यन्त पापाचारी होता है जिसका फल

यह होता है कि म्लेच्छ चाण्डाल आदि योनि में जन्म धारण करना पड़ता है । ऐसा कात्यायन ऋषि का कथन है । जो ऋषि छन्द आदि को जानकर वेदाध्ययन आदि करते हैं उनके विषय में कात्यायन ऋषिका ऐसा कथन है कि—“अथ विज्ञायैतानि योऽधी ते तस्य वीर्यवदय योर्यवित्तस्य वीर्यवत्तरं भवति ज्ञापित्वा हुत्वेद्वा तत्फलेन युज्यते” अर्थात्—जो ऋषि छन्दआदि को जानकर वेदाध्ययन आदि करता है उसका वेद वीर्यवान् (कार्य को सिद्ध करने वाला) होता है, जो अर्थ को भी जानता है, उसका वेद अत्यन्त वीर्यवान् होता है, ऋषि छन्द देवता विनियोग और अर्थ को जानकर जो जप होम तथा यज्ञ करता है वह उसका फल पाता है । इस कारण वेद मन्त्रों के ऋषि आदि का जानना तथा अर्थ को जानना अत्यन्त ही आवश्यक है, नहीं तो वेदाध्ययनादि का फल नहीं प्राप्त होसकता । अतएव हम पूर्वाचार्यों के भाष्यों के अनुसार वेदों के ऋषि छन्द देवता विनियोग और अर्थ के लिखने का संकल्प करके मथम यजुर्वेद का प्रारम्भ करते हैं, तहां यजुर्वेद के मन्त्रों में कोई यजु है और कोई ऋचा है, तिनमें नियत हैं अक्षर पादावसान जिनके ऐसी ऋचाओं का आवश्यक छन्द कात्यायन ऋषि ने कहा है, और एकाक्षरादि नियताक्षर यजुषों का छन्द पिङ्गल से जानना क्योंकि—साधारणतः तो बत्तीस अक्षर का अनुष्पु होता है, परन्तु “इपे त्वा” इस तीन अक्षर के मन्त्र का जो अनुष्पु छन्द कहा है सो कैसे ? इस विषय में पिङ्गल का यह सूत्र है कि—छन्दः । गायत्री । दैव्येकम् । आसुरी पञ्चदश । प्राजापत्याष्टौ । यजुषां षट् । साम्नां द्विः । ऋचां त्रिः । द्वौ द्वौ साम्नां वर्द्धत । त्रींस्त्रींश्चाम् । चतुरश्रतुरः प्राजापत्यायाः । एकैकं शेषे । जज्ञादासुरी । तान्युष्णिगनुष्पुञ्चहतीपंक्तित्रिण्डजगत्यः । तिस्रस्तिष्ठः सनाभ्य एकैका ब्राह्मणः माग्यजुषामार्ष्य इति अर्थात् दैवी गायत्री छन्द पंद्रह अक्षर का प्राजापत्या गायत्रीछन्द आठ अक्षर का, याजुषी गायत्री छन्द छः अक्षर का, साम्नीगायत्री छन्द बारह अक्षर का,

आर्चीगायत्रीछन्द अठारह अक्षर का, आर्पीगायत्री छन्द चौबीस अक्षर का, ब्राह्मी गायत्री छन्द छत्तीस अक्षर का है। देवीगायत्री पर एक २ बढ़ाने पर क्रमसे उष्णिक्, अनुष्टुप्, वृहती, पंक्ति, त्रिष्टुप् और जगती छन्द होते हैं। और आसुरी में एक २ घटाने से, माजा पत्या में चार २ बढ़ाने से, याजुपी में एक २ बढ़ाने से, साम्नी में दो २ बढ़ाने से, आर्ची में तीन २ बढ़ाने से ब्राह्मी में छः २ बढ़ाने से, तथा आर्पी में चार २ बढ़ाने से क्रमशः उष्णिक् आदि छन्द होते हैं, स्पष्ट होने के लिये नीचे ७२ कोष्ट का यन्त्र लिखते हैं।

छन्द	गायत्री	उष्णिक्	अनुष्टुप्	वृहती	पंक्ति	त्रिष्टुप्	जगती
आर्पी	२४	२८	३२	३६	४०	४४	४८
देवी	१	२	३	४	५	६	७
आसुरी	१६	१४	१३	१२	११	१०	९
माजाप०	८	१२	१६	२०	२४	२८	३२
याजुपी	६	७	८	९	१०	११	१२
साम्नी	१२	१४	१६	१८	२०	२२	२४
आर्ची	१८	२१	२४	२७	३०	३३	३६
ब्राह्मी	३६	४२	४८	५४	६०	६६	७२

जहाँ दो तानि छन्दों की संख्या समान हो, जैसे कि देवी त्रिष्टुप् और याजुपी गायत्री की तथा साम्नी गायत्री-याजुपी जगती एवं आसुरी वृहती की है, ऐसे स्थल पर यदि संन्देह हो कि

यहाँ कौनसा छन्द है तो " देवतादितश्च " पिङ्गल ७। २ के प्रमाणानुसार चतुर्थाध्याय के १०। ११। १२ खण्डों में वर्णन करेहुए गायत्री आदि छन्दों के देवताओं से निश्चय करे, और यदि तहाँ वर्णन करेहुए देवताओं से अन्य देवता होय तो जितने छन्द प्राप्तहों उन में से चाहे जौनसा छन्द मानलेय और जहाँ आचार्य ने स्वयं छन्द लिखे हैं तदां तो सन्देह करने की कोई आवश्यकता है ही नहीं । इसप्रकार एक अक्षर से लेकर एक सौ छः अक्षर तक के यजुः का छन्द पिङ्गल के अनुसार जानना, परंतु इस से अधिक अक्षरों के "होता यक्षद्वनस्पतिभित्यादि,, (यं० २१। ४६) मंत्रों में छन्द की कल्पना है ही नहीं ।

अब ऋषिका स्वरूप लिखते हैं कि—'ऋषिर्दर्शनात्,, इस निरुक्त के प्रमाणानुसार जिस ने जिसमन्त्र को देखा वह उस का ऋषि हुआ, क्योंकि—'अजान्ह वै पृश्नीस्तपमानान् ब्रह्मस्वयम्भवम्या नर्पतहपयोभवन्,, इस प्रमाण के अनुसार वेद की प्राप्ति के निमित्त तप करनेवाले जिन पुरुषों को स्वयम्भू वेद प्राप्त हुआ, वह परमेश्वर के अनुग्रह से अतीन्द्रिय वेद का मानस दर्शन करने से ऋषि कहलाए, इस ही आशयको लेकर स्मृति में भी लिखा है कि—'युगांतेऽन्तर्हितान् वेदान्सेतिहासान् महर्षयः। लेभिरेतपसा पूर्वमनुज्ञाताः स्वयम्भुवा ॥,,

अब देवता का स्वरूप कहते हैं, कि—'देवता मंत्रांतभूता अग्न्यादिका हविर्भाजः स्तुतिभाजो वा,, अर्थान्=मंत्रों के मध्य में पड़ेहुये हविर्भोक्ता वा सूक्तभोक्ता अग्नि—सोम—इन्द्र—विष्णु आदि देवता हैं । और "यत्काम ऋषिर्यस्यां देवतायामार्यपत्यमिच्छन्स्तुतिं प्रयुङ्क्ते तदैवतः स मंत्रो भुवति (नि० ७। १) अर्थात् जो कामना करनेवाला ऋषि जिस देवता में आर्यपत्य (उस कार्यसाधनके स्वामित्व) की इच्छा करता हुआ स्तुति करता है वह उस मंत्र का देवता होता है ।

प्रथम अध्याय से प्रारम्भ करके द्वितीय अध्याय की अठ्ठाईस-

कण्डिका पर्यंत दर्शपूर्णमास यज्ञ(१)के मंत्र हैं, उनका परमेष्ठी मजापति ऋषि है, अथवा मजापति के पुत्र देवता ऋषि हैं । उ-
 व्वट भाष्य में ऐसा लिखा है कि—‘ परमेष्ठिनः प्राजापत्यस्यार्थं
 देवानां वा प्राजापत्यानाम्., अर्थात्—इन दर्शपूर्णमास मंत्रों का
 प्राजापत्य (मजापति का अपत्य) परमेष्ठी ऋषि है अथवा मजा-
 पति के पुत्र देवता ऋषि हैं । ऐसा ही ब्राह्मण में भी लिखा है
 कि—“परमेष्ठी प्राजापत्यो यज्ञमपरयद्यदर्शपूर्णमासाविति,, तथा
 “ते देवा अकामयन्ते,, त्युपक्रम्य “ततएतंहविर्यज्ञं ददृशुर्यदर्श,,
 पूर्णमासाविति,,॥ इस कारण आगे हम दर्शपूर्णमास मंत्रों का
 महीधर के अनुसार ‘मजापति परमेष्ठी ऋषि न लिखकर श्रुति
 प्रमाणयुक्त होने के कारण उव्वट के अनुसार दर्शपूर्णमास मंत्रों
 का परमेष्ठी प्राजापत्य ऋषि लिखेंगे ॥

द्वितीय अध्याय के अन्त की छः कण्डिका पितृयज्ञ के मन्त्र हैं,
 उनका मजापति ऋषि है । मथम अध्याय में सब मन्त्र यजु हैं एक
 “ पुरा क्रूरस्प ” इत्यादि मन्त्र ऋक् है, यजुः मन्त्रों का पिङ्गल
 के अनुसार छन्द जानना, अधिक विस्तार होजाने के कारण यहाँ
 नहीं कहेंगे । ऋचों के छन्द कहेंगे ।

तहाँ (मथम अध्याय में) मथम कण्डिका में पाँच मन्त्र हैं, दो
 तीन २ अक्षर के, तीसरा चार अक्षर का, चौथा वासठ अक्षर
 का और पाँचवाँ नौ अक्षर का है ।

मकृतिरूप होने के कारण मथम दर्शपूर्णमास के मन्त्र कहते हैं ।
 विधि दो मकार की होती है, एक मकृतिसंज्ञक, दूसरी विकृति-
 संज्ञक जहाँ सकल अक्षरों का उपदेश होता है अर्थात् जिन के मन्त्रों
 में सकल विधान वर्णित होता है वह मकृति कहाती है और जहाँ
 किसी विशेष अङ्कमात्र का उपदेश होता है एवं शेष अङ्क(विधान)

(१) भमाजास्या में जब कि—चन्द्रमा सूर्य या परस्पर दशन हो, जो याग किया
 जाता है उसको दश कहते हैं, और पूर्णिमा के दिन जो इष्टि की जाती है उस
 को पूर्णमासयाग कहते हैं, इस विषय में यह श्रुति है कि—‘दर्शपूर्णमासाभ्यां यजेता,,

मकृत्ति मन्त्रों से जाने जाते हैं वह विकृति कहाती है। मकृत्ति तीन प्रकारकी है, अग्निहोत्र, इष्टि और सोम ।

यद्यपि दर्शपूर्णमास यज्ञ में कृताधान (अग्निहोत्र करनेवाले) को ही अधिकार है, इसकारण मयम अग्न्याधान (अग्निस्थापना) के मन्त्र कहने चाहिये थे परन्तु अग्न्याधान में पवमान नामक इष्टि करनी पड़ती है, अतः पवमान इष्टियों के बिना अग्न्याधान होही नहीं सक्ता और पवमान इष्टि दर्श पूर्णमासकी विकृति हैं अतः दर्शपूर्णमास के ज्ञान के बिना पवमानेष्टि नहीं होसक्ती। इसकारण से, तथा सोमयाग में भी दीक्षणीय मायणीय आदि के विषे दर्शपूर्णमास की अपेक्षा होती है इसकारण भी मयम दर्शपूर्णमास मन्त्रों का कथन ही उचित है वह दर्शपूर्णमास के मन्त्र आगे लिखे 'इपे त्वा ? इत्यादि हैं—

हरिः ओ३म् । इपे त्वा । ऊर्जे त्वा वायव स्थ । देवो वः सविता प्रापयतु श्रेष्ठतमायु कर्मण आप्यायध्वमध्व्या इन्द्राय भागन्प्रजावतीरनमीवा अयक्ष्मामा वंस्तेन ईशत माघशं ॐ सोध्रुवा अस्मिन् गोपतौ स्यात वच्छीः । यजमानस्य पशून् पाहि ॥ १ ॥

भावार्थः—मूल में जो "इपे त्वा " इत्यादि लिखा है, वह एक काण्डका है और उस कण्डिका में पाँच मन्त्र हैं, मयम मन्त्र के दोपद और तीन अक्षर हैं, उसका दैवी अनुष्टुप् छन्द, शाखा देवता और पलाश की शाखा का छेदन करने में विनियोग है, यहाँ शङ्का होती है कि—शाखा तो अचेतन (जड़) है वह देवता कैसे होसक्ती है? इसका उत्तर यह है कि—यद्यपि यह शाखा उखा आदि अचेतन हैं परन्तु इनके अभिमानी देवताओं का सान्निध्य होने से इनमें देवतात्व माना है, भगवान् वेदव्यासजी ने भी वेदान्तदर्शन में " अभिमानिव्यपदेशस्तु अ० २ पा० १ सूत्र ५ " इस सूत्र के द्वारा यही वर्णन किया है, तथा "मृदव्रवीदापोऽब्रुवन् " अर्थात् मृत्ति का बोली, जल बोले यह श्रुति अभिमानी

देवताओं के सन्निध्य से मृत्ति का आदि में देवतात्व मानने से ही सहित होती है, यही कारण है कि—शास्त्र के तत्त्वको जानने वाले विद्वान् अचेतन भी शालिग्राम की शिला में शास्त्रदृष्टि से विष्णु भगवान् की सन्निधि मानतेहुए विष्णु भगवान् को ही सम्बोधन करके षोडशोपचारके द्वारा पूजन करते हैं । ऊपर उत्पानिका में लिख आये हैं कि—“इपेत्वा ” इत्यादि दर्शवर्षमास के मन्त्र हैं उसका ही मसङ्ग उठाते हैं कि—प्रतिपदा में दर्शयाग को करने की इच्छा करनेवाला पुरुष, अमावस्या के दिन मातःकाल के समय अग्निहोत्र करके दर्शयाग के निमित्त, कात्यायन मुनि मणीत श्रौतसूत्र अ० २ का० १ सू० ३ में कहेहुए “अग्निर्बर्च इत्पादि ” मन्त्र के द्वारा अग्निपौ में समिदाधानरूप अग्नाधान करके वत्सापाकरण (गौओं के समीप से बछड़ों को हटाना) करे, दर्शयाग में तीन हवि होते हैं—आठ कपालों (इस मकर के पात्र) में पकाया हुआ अग्नि है देवता जिसका ऐसा दाधि, इंद्र है देवता जिसका ऐसा दाधि, तथा इंद्र है देवता जिसका ऐसा पय (दुग्ध) । इस दाधि दुग्धाधिरूप हवि की प्रतिपदा के दिन हवन करने की आवश्यकता होती है इस कारण दाधि बनाने के लिये अमावस्या की रात्रि में गौओं को दुधे, तिस दुहनेके निमित्त अमावस्या के दिन मातःकाल के समय प्रतिदिन के नियमानुसार गौओं के लौकिक दुहने के अनन्तर अपनी माताओं के साथ चरतेहुए बछड़ों को पलाशकी शाखा से अलग करे, इसकारण पलाशकी शाखाका छेदन किया जाता है । शतपथ ब्राह्मण १ । ७ । १ । ८ । २ । १० में लिखा है कि—जब गायत्री पक्षी का रूप धारण करके स्वर्ग से सो मवल्ली लार्ई थी, उससमय तिस सोमबल्लिका पत्र (पत्ता) भूमि पर गिरकर उग्याया तिस से पलाशहुआ इसकारण शास्त्रों में पलाशकी प्रशंसा करी है और उसको ब्रह्मत्व कहा है, अतएव बछड़ों को हटाने के लिये पलाशकी शाखा का तथा शमी (१) की शाखा

का भी छेदन करना कहा है, तिस छेदन करने के समय प्रथम का मन्त्र “इषेत्वा” पढ़ना चाहिये इसका अर्थ यह है कि—(शाखे) हे पलाशकी शाखे ! अथवा शमी की शाखे (त्वा) तुझको । (इषे) वृष्टि के निमित्त (छिनद्मि) छेदन करता हूँ (क्योंकि—शाखा से बछड़ों को पृथक् किया जायगा तब गौओं का दुग्ध दुहकर दधि होगा—तिस दधि का हवन करने से “अग्नेर्वै धूमो जायते धूमादभ्रमभ्राद्वृष्टिः” इस श्रुति के अनुसार वर्षा होती है । इस कण्डिका में दो पद और तीन अक्षर का दूसरा मन्त्र है “ऊर्जेत्वा” इसका भी परमेष्ठी प्राजापत्य ऋषि देवी अनुष्ण छन्द, शाखा देवता माध्यन्दिनी शाखा वालों के मत में इस मन्त्र का भी शाखा के छेदन में विनियोग है अर्थात् इन के यहां शाखाछेदन के मन्त्र में विकल्प है चाहे इस द्वितीय मन्त्र से शाखाछेदन करे और चाहे प्रथम मन्त्र से शाखा छेदन करे, परन्तु काण्व शाखावालों के मत में इस द्वितीय मन्त्रका शाखा के सन्नमन में विनियोग है अर्थात् काण्व शाखावाले शाखा छेदन प्रथममन्त्र सेही करते हैं और इस दूसरे मन्त्र से शाखाका सन्नमन (शाखा में लगी हुई धूलि आदि को दूर करके शुद्ध और सूधी) करते हैं(१) इस द्वितीय मन्त्र का अर्थ यह है कि—हे शाखे ! मैं (ऊर्जे) सकल मनुष्य पशु आदिकों को पान आदि के द्वारा दृढ़ शरीर करनेवाले अथवा चेष्टारूप जीवन देनेवाले वर्षा के जलरूप रसकी माप्तिके लिये (त्वा) तुझको । (छिनद्मि) (माध्यन्दिनी शाखावालों के मतमें) छेदन (काण्व शाखावालों के मतमें) शोधन करता हूँ । इस सब का तात्पर्य यह है कि—अध्वर्यु (यजुर्वेदियों को पझ करनेवाला आचार्य) इन दोनों

(१) ऐषेत्वेत्येते चेतं वा छिनद्मि इति बोधयोः साक्षात्सन्नमयाप्राप्तिं चोत्तर इति कात्यायनोक्तेः । अत्यर्थः—शाखाच्छेदने इषेत्वोर्जेत्वेति द्वौ मन्त्रौ विकल्पितौ तयोः क्रियापदाकारत्वादर्थावबोधाय छिनद्मि इति पदमध्याहर्तव्यमित्येकः पञ्च । इषेत्वेति छेदनार्थो मन्त्रः । ऊर्जेत्वेति सन्नमनार्थः । सन्नमनं ऋग्वक्त्रणं शाखाछन्दोपूज्यासन्नमनम् । इदं पञ्चान्तरमित्यर्थः ।

मन्त्रों को पढ़कर शाखाभिमानी देवता से प्रार्थना करता है कि—
इस वृक्षकी शाखा का छेदन और शोधन जो किया जाता है तिससे
यज्ञ के द्वारा वर्षा हो और वर्षा के द्वारा हमारे इस यजमान को
अन्न तथा बलकारक घृत दुग्धादि प्राप्त हो ।

दो पद और चार अक्षर का तीसरा मन्त्र है “ वायवःस्य ”
इसका भी परमेष्ठी माजापत्य ऋषि, देवी बृहती छन्द, वायुदेवता
और गौओं के समीप से बछड़ों को हटाने में इसका विनियोग
है । इस मन्त्र को पढ़कर गौओं को दुहने के निमित्त तिस पलाश
शाखा के द्वारा बछड़ों को गौओं से अलग करके हटादेय । इस
मन्त्रका अर्थ यह है कि—(वत्साः) हे बछड़ों ! तुम, (वायवः)
गमन करनेवाले होजाओ, क्योंकि बिना तुम्हारे अलग हुए सा-
यंकाल को यज्ञ के निमित्त दौहना नहीं होसकेगा । अथवा ऐसा
अर्थ समझना कि—हे बछड़ों तुम वायुरूप [वायु की समान]
हो, जिस प्रकार वायु पादमंशालन [चरण धोना] निष्ठीवन
[यूकनां] आदि से दोषयुक्त हुई पृथ्वी को सुखाकर पवित्र क-
रता है तिसी प्रकार तुम लीपने के निमित्त गोमय (गोबर)
देकर भूमि को पवित्र करते हो । अथवा इस मन्त्र का अभिप्राय
यह है कि—जिस प्रकार अपने निवास करने के निमित्त मनुष्यों
को गृह आदि बनाने की सामर्थ्य है तिस प्रकार पशुओं को नहीं
है अतः पशु निरावरण (बिना छाये) अन्तरिक्ष में विचरते है
तिस अन्तरिक्ष का अधिपति वायु अपने अवयवों (अङ्गों) की
समान पशुओं का पालन करता है अतः हे बछड़ो ! हम तुमको
गौओं से पूयक् करके चरते हुए तुम्हारी रक्षा करने के निमित्त
वायु देवता को समर्पण करते हैं । अथवा यह अर्थ जानना कि—
हे बछड़ो तुम वायुरूप होवो अर्थात् अब गौओं से पूयक् हुए तुम
दिन में तृण भक्षण के निमित्त जहाँ तहाँ वन में विचरकर सायं
काल के समय वायु की समान वेग से लौटकर यजमान (अपने
स्वामी) के घर को आओ ।

बासठ अक्षर का तीसरा मन्त्र है, इसका भी परमेष्ठी माजापत्य ऋषि, ब्राह्मी पङ्क्ति छन्द, इन्द्र देवता और पलाशशाखा से गौओं का उपस्पर्शन करने में विनियोग है। पूर्वोक्त मन्त्र से पृथक् करेहुए बद्धों की माता जो गौएं हैं, उनमें से एक गौ को पृथक् करके "देवोव इत्यादि,, इस मंत्र को पढ़ताहुआ पलाश से स्पर्श करे, ऐसा करने से उस गौ का दविरूप हवि इन्द्र देवता का होता है। इस मंत्र का अर्थ यह है कि—(गावः) हे गौओं! (सविता) सब का मेरक (देवः) ज्योतिःस्वरूप परमेश्वर (वः) तुमको, (श्रेष्ठ-तमाय) यज्ञरूप श्रेष्ठतम* (कर्मणे) कर्म के निमित्त, (मार्हपतु) बहुत से वृणोंवाले वन में पहुँचावै (जिस से तुम यथेष्ट वृणभक्षण करके बहुत से दुग्धदधिरूप हवि को उत्पन्न करतीहुई यज्ञ में सहायक होवो)। (अध्याः) हे अवध्य गौओं! [यज्ञ में] (इन्द्राय) इन्द्र के निमित्त (भागम्) हवि बनाने के अर्थ तिस हवि रूप दधि के हेतुभूत दुग्ध को (आप्यायध्वम्) बढ़ाओ, (मजा-वतीः) जीवित सन्तति वाली (अन्नमीवाः) कृमिपीड़ा आदि क्षुद्र रोग रहित (अयक्ष्माः) राजयक्ष्मा आदि मवल रोगरहित (वः) तुमको, (स्तनः) चोर पुरुष, (अपहर्तुम्) चुराने को, (मा) मत, (अयशंसः) चाण्डाल वा ब्याघ्रादि हिंसक जीव(निहन्तुम्) वध करने को (मा) मत, (ईशत) समर्थ हो, (अस्मिन्) इस (गोपतौ) गौओं के स्वामी यजमान के समीप, (ध्रुवाः) निरन्तर रहनेवाली, (वन्धीः) बहुतसी, (स्यात्) होवो।

नौ अक्षर का पाँचवां मंत्र है "यजमानस्य पशून्पाहि, इसका भी परमेष्ठी माजापत्य ऋषि, याजुषी वृहती छन्द, शाखा देवता और शाखा के उपगूहन (ग्रहण) करने में विनियोग है। यजमान के अग्न्यागार (आहवनीय वा मार्हपत्य अग्नि के स्थान) के

* कर्म चार प्रकार के होते हैं, अप्रशस्त, प्रशस्त, श्रेष्ठ और श्रेष्ठतम—लोक विच्छिन्ना चोरी आदि अप्रशस्त कर्म हैं, लोक में श्लाघनीय कुटुम्बपालन आदि प्रशस्त कर्म हैं, स्मृतियों में कहे हुए वाणी कूप तदागादि श्रेष्ठ कर्म हैं और वेदोक्त यज्ञ श्रेष्ठतम कर्म कहते हैं, ऐसाही श्रुति में भी कहा है कि—"यज्ञो वै श्रेष्ठतमं कर्म,,

आगै शाखा को उपगूहन करता हुआ "यजमानस्य पशुन्पाहि" इस मंत्र को पढ़े । इस मंत्र का अर्थ यह है कि—(शाखे) हे शाखाभिमानी देवते! (यजमानस्य) यजमान के (पशुन्) पशुओं [गौओं के बछड़ों] को, (पाहि) व्याघ्र चोर आदि से रक्षाकर [जिससे कि सायंकाल को आनन्दपूर्वक यजमान के घरको लौट कर आवें और गौओं के दुहने में सहायक हों तथा यज्ञ के निमित्त हवि सम्पादित हो] ॥ १ ॥

वसोः पवित्रमसि द्यौरसि पृथिव्यसि मातरिद्वन्द्वो घर्मोऽसि विश्वधा असि । परमेण धाम्ना दृहस्व माच्छामा ते यज्ञपतिव्हीर्षीत् ॥ २ ॥

इस कण्डिका में तीन मंत्र हैं—प्रथम "वसोरित्यादि" मंत्र का मजापत्य का अपत्य परमेष्ठी ऋषि, याजुपी उष्णिक् छंद, वायु देवता और पलाशशाखा में पवित्र बांधने में विनियोग है। दो या तीन कुशा को पवित्र कहते हैं, पलाश की शाखा में वह कुशाओं का पवित्र बांधे, तिस पवित्र के बांधते में इस प्रथम मंत्र को पढ़े, "वसोः पवित्रमसि" इसका अर्थ यह है कि—(पवित्र) हे कुशाओं के पवित्र! (वसोः) इन्द्र देवता के भागरूप दुग्ध को (पवित्रम्) पवित्र करने वाले (असि) हो ।

"द्यौरसि पृथिव्यसि," यह दूसरा मंत्र है तिसका मजापत्य परमेष्ठी ऋषि, देवी जगती छंद, उखा देवता और दुग्ध धारणार्थ उखाग्रहण में इसका विनियोग है। पलाशशाखामें पवित्र बांधने के अनन्तर जिस स्थालीमें दुग्ध रखना हो उसको ग्रहण करते समय द्यौरसिदिपादि मंत्र को पढ़े; इसका अर्थ यह है कि—(स्थालि) हे स्थालि! अर्थात् हांडी (द्यौः) शुलोक के अवयवमूत जल से बनी हुई, (असि) है इस कारण शुलोक रूप है, (पृथिवी) पृथिवी में से ली हुई मृत्ति का के द्वारा बनी हुई (असि) है, अतः पृथिवी रूप है ।

"मातरिद्वेत्त्यादि" तीसरा मंत्र है, इसका परमेष्ठी मजापत्य

ऋषि प्राजापत्या जगती छन्द, उखा देवता और दुग्ध की हांडी को अग्निपर चढ़ाने में इसका विनियोग है, द्वितीय मंत्र से हांडी में दुग्ध करने के अनन्तर उस दूध की हांडी को गार्हपत्य अग्नि में से अङ्गारों को निकाल, उस गार्हपत्य के उत्तर में विधाय उनपर चढ़ा देय उस समय "मातारिभेत्यादि" यह तीसरा मंत्र पढ़ा जाता है। इस मंत्र का अर्थ यह है कि—(उखे) हे उखे ! अर्थात् हांडी तुम्हारे भीतर अन्तरिक्ष शून्य स्थान में वायु का सञ्चार होता है अतः तुम (मातारिभनः) वायु की (धर्मः) दीपक कहिण अभिव्यञ्जक वा प्रकाशक (असि) हो, इसकारण अन्तरिक्ष लोक रूप हो, दूसरे मंत्र में शुलोक रूप पृथिवी लोक रूप स्थाली को कहा और इस मंत्र में अन्तरिक्ष लोक रूप कहा, इस प्रकार तीनों लोकों के धारण करने से (विश्वधाः) विश्व को धारण करने में समर्थ (असि) हो, (परमेण) बहुत दुग्ध को धारण करने की सामर्थ्य रूप उत्तम (धाम्ना) तेज करके (दंहस्व) दृढ़ हो अर्थात् तेज का अधिष्ठातृ देवता तुमको दृढ़ करे, नहीं तो टूट जाने से दुग्ध निकल जायगा, (व्हाः) देवी (मा) मत होयों, जिस से कि (ते) तेरा (यज्ञपतिः) यजमान (माच्छापीत्) कुटिल [तुभ्र में स्थित दुग्ध के निकल जाने से यज्ञानुष्ठान में विघ्नवाला] नहो (यह मैं यज्ञ पुरुष परमेश्वर से प्रार्थना करता हूँ) ॥ २ ॥

वसोः पवित्रमसि शतधारं वसोः पवित्रमसि सहस्रधारम् । देवस्त्वा सविता पुनातु वसोः पवित्रेण शतधारेणे सुप्वा । कामधुक्षः ॥ ३ ॥

इस काण्डिका में तीन मंत्र हैं, प्रथम "वसोः पवित्रमसि शतधारं वसोः पवित्रमसि सहस्रधारम्" का परमेष्ठी प्राजापत्य ऋषि, यजुः छन्द, वायु देवता और उखा पर पवित्र को स्थापन करने में विनियोग है। उखा [हांडी] के मुखपर कुशों के पवित्रे को इस प्रकार रखै, कि जिस में पवित्रे के कुशाओं का अग्रभाग पूर्व वा उत्तर दिशा की ओर को रहै इस प्रकार पवित्रे को रखते समय

यह मंत्र पढाजाता है। इस मंत्र का अर्थ यह है कि (शाखापवित्र) हे शाखा मे वंधे दुग्ध पवित्र (वसोः) इंद्रदेवता के निवास के हेतु दुग्ध का (त्वम्) तू (शतधारम्) सैंकड़ों धारावाला (सहस्रधारम्) सहस्रों धारावाला । (पवित्रम्) शोधक । (आसि) है ।

दूसरे "देवस्त्वा सविता पुनातु वसोःपवित्रेण शतधारेण सुप्वा" मंत्र का परमेष्ठी माज्यापत्य ऋषि, साम्नी त्रिष्टुप्बन्द, पयो देवता और दुग्ध के पवित्र करने में विनियोग है। दुहने के अनन्तर हांडी में दुग्ध डालते समय यह मन्त्र पढाजाता है। इस मंत्र का अर्थ यह है कि—हे क्षीर ! (सविता) सबका भेक (देवः) धोत मान परमात्मा (शतधारेण) थड़ सम्बन्धी शतधार, (सुप्वा) अच्छे शोधक (पवित्रेण) पवित्रे से (त्वा) तुम्ह को (पुनातु) पवित्र [निर्दोष] करे ॥

तीसरे "कामधुक्षः" मंत्र का परमेष्ठी माजापत्य ऋषि, देवी बृहती छंद, मशन देवता और गोदोहन के मशन में विनियोग है। अध्वर्यु इस मंत्रको पढकर दुहनेवाले से मशन करे। इसका मंत्र का अर्थ यह है अध्वर्यु दुहनेवाले से वृभता है कि—हे दोग्धः ! तुम ने इन विद्यमान गौओं में से (काम्) कौनसी को (अधुक्षः) दुहा। ३ ॥

सा विश्वायुः सा विश्वकर्मा । विश्वधायाः । इन्द्रस्य त्वा भ्रागः सोमेनातनचिम् विष्णो ह्यव्यशरक्ष ॥ ४ ॥

इस कण्डिका में पांच मंत्र हैं, प्रथम "सा विश्वायुः" मंत्रका परमेष्ठी माजापत्य ऋषि, देवी बृहती छन्द, गौ देवता और मधम मश्र के उत्तर में विनियोग है। दोग्धा जब उत्तर देय कि—मैंने इस गौ को दुहा तब अध्वर्यु इस मंत्र को पढे। इसका अर्थ यह है अध्वर्यु कहता है कि हे दोग्धः ! जिस गौ को तुम ने दुहा और मैंने वृभता (सा) वह गौ (विश्वायुः) विश्वायु शब्द से कहने योग्य है अर्थात् परमेश्वर से मार्यना है कि—यह गौ यजमानको पूर्ण आयु देने वाली हो ।

दूसरे "सा विश्वकर्मा" मन्त्र का परमेष्ठी माज्यापत्य ऋषि,

देवी पंक्ति छन्द 'गौ' देवता और द्वितीय मन्त्र के उत्तर में विनियोग है । कात्यायन महर्षि ने लिखा है कि—जिस प्रकार प्रथम गौ के दुहने का भी मन्त्र करै, इस कारण, दूसरी गौ के दुहने पर दोग्धा से अध्वर्यु मन्त्र करै कि “ कामधुवः ” कौनसी गौ को दुहा तब अध्वर्यु इस मन्त्र को पढ़ै । इसका अर्थ यह है कि—अध्वर्यु कहता है हे दोग्धः ! जिस दूसरी गौ को तुमने दुहा और मैंने ब्रूभा (सा) वह, (विश्वकर्मा) विश्वकर्मा शब्द से कहने योग्य है अर्थात् वह गौ जगत् की स्थिति की कारण है क्योंकि यज्ञों में हवि की साधन होकर सबकी कामनाओं को सिद्ध करती है सो हमारे इस यजमान की कामना को सिद्ध करै ।

तीसरे सा विश्वधायाः, मन्त्र का परमेष्ठी माजापात्य ऋषि, देवी पंक्ति छन्द, गौ देवता और तृतीय मन्त्र के उत्तर में विनियोग है । तृतीय वार किस गौ को दुहा, अध्वर्यु के इस प्रकार मन्त्र करने पर जब दोग्धा कहै कि—मैंने इस गौ को दुहा तब अध्वर्यु इस मन्त्र को पढ़ै । इस का अर्थ यह है कि—अध्वर्यु कहता है हे दोग्धः ! जिस तीसरी गौ को तुमने दुहा और मैंने ब्रूभा, (सा) वह (विश्वधायाः) विश्वधाया शब्द से कहने योग्य है क्योंकि क्षीर दधि आदिरूप हवि देकर सकल देवताओं को पुष्ट करती है सो परमेश्वर से प्रार्थना है कि—इस यज्ञ में भी इन्द्रादि देवताओं को दधिदुग्धादिरूप हवि देकर हमारे यजमान की कामना को सिद्ध करावै ॥

चौथे “इन्द्रस्य त्वा भागः सोमेनातनन्चिम” मन्त्रका परमेष्ठी माजापत्यऋषि, याजुषी जगती छन्द, इन्द्र देवता और दधिको जमाने में विनियोग है । गरम करेहुए दुग्ध को अग्निपर से उतार कर कुछ एक गरम रहनेपर उसमें मातःकाल के होम से बचेहुए दधिको ढालकर दधि बनावै उस समय इस मन्त्र को पढ़ै । इसका अर्थ यह है कि—हे क्षीर ! (इन्द्रस्य) इन्द्र के (भागम्) भागरूप (त्वा) तुझको, (सोमेन) सोमबली के रसरूप मातेहुए

हवनसे बचे हुए दधि के द्वारा, (आतनचिम) कठिन करता हूँ कहिए जमाता हूँ, अर्थात् परमेश्वर की कृपा से यह दधि जमै और उससे देवता को भाग प्राप्त होकर यजमान की अभीष्टसिद्धि हो ॥

पाँचवें "विष्णो हव्यं रक्ष,, मंत्रका परमेष्ठी माजापत्य ऋषि, याजुपी गायत्री छंद, पयो देवता और विष्णु की मार्यना में विनि योग है। उस दुग्ध की हाँडी को जल भरे हुए किसी, मृत्तिका का न हो, ऐसे पात्रसे ढके और उससमय इस मंत्र को पढ़ै। इसका अर्थ यह है कि—(विष्णो) हे यज्ञपुरुष (हव्यम्) हवि को (रक्ष) रक्षा करो, [क्योंकि—जगत् में रक्षा करने का भार आप के ही ऊपर है अर्थात् आप रक्षा के अभिमानी देवता हैं] ॥ ४ ॥

अग्ने व्रतपते व्रतचरिष्यामि तच्छक्रेयं तन्मे राध्यताम् इदमहमनृतात्सत्यमुपैमि ॥ ५ ॥

इस क्रणिकका में दो मंत्र हैं, प्रथम " अग्ने व्रतचरिष्यामि तच्छक्रेयं तन्मे राध्यताम् " मंत्र का परमेष्ठी माजापत्य ऋषि; षोष्णक् छन्द, अग्नि देवता और यज्ञानुष्ठान की मतिज्ञा में इसका विनियोग है यजमान आहवनीय अग्नि के समीप पूर्व को मुखकर अग्नि को, देखता हुआ दाहिने हाथ में जल लेकर इस मंत्र को पढ़ै। इसका अर्थ यह है कि (व्रतपते) हे इस कियेजाते हुए कर्म के पालक [विष्णुभगवान् के अशयुक्त] अग्निदेव ! (व्रतम्) व्रत को, (चरिष्यामि) कहेगा, (तत्) उस को, (शक्रेयम्) करसकूं (मे) मेरे, (तत्) उसव्रत को, (राध्यताम्) सिद्ध करो। अर्थात् तुम्हारा भरोसा करके मैं इस कर्म को करता हूँ, आपके अनुग्रह से मैं इस कर्म के करने को समर्थ होऊँ, मेरा यह कर्म निर्विघ्नतापूर्वक फलकी प्राप्ति पर्यन्त सिद्ध हो।

"इदमहमनृतात्सत्यमुपैमि" मंत्रका परमेष्ठी माजापत्य ऋषि, साम्नी गायत्री छंद, अग्नि देवता और सत्यप्राप्ति की मार्यना में विनियोग है। आहवनीय अग्नि के समीप पूर्वोक्त प्रकार से इस मंत्र को भी पढ़ै। इसका अर्थ यह है कि—हे अग्निदेव ! (अहम्) मैं यजमान,

(अनृत त) अनृत कहिये स्वम में देखेहुए हस्ती आदि की समान शीघ्र ही नाशको प्राप्त होनेवाले मनुष्यशरीर से (इदम्) इस (सत्यम्) सत्य कहिये बहुत काल पर्यन्त स्थित रहनेवाले देवशरीर को (उपैमि) प्राप्त होता हूँ ऐसा अर्थ करने में इदमहमनृतात्सत्यमुपैमीति तन्मनुष्येभ्यो देवानुपावर्त्तत इति (१।१।१।४) यह शतपथ की श्रुति प्रमाण है । अथवा लोकमसिद्ध ही सत्य अनृत को मानकर ऐसा अर्थ करना चाहिये कि—हे अग्निदेव! (अहम्) मैं (अनृतात्) मिथ्याभाषण से पृथक् होकर (इदम्) इस (सत्यम्) सत्य भाषण को (उपैमि) प्राप्त होता हूँ । “नानृतं वदेत्” अर्थात् मिथ्याभाषण न करै, इस प्रमाण के अनुसार सत्य भाषण कर्म का अङ्ग है अतः कर्मानुष्ठान के समय सर्व प्रकारसे सत्यभाषण का पालन करना चाहिये ॥५॥

कस्त्वा युनक्ति स त्वा युनक्ति कस्मै त्वा युनक्ति
तस्मै त्वा युनक्ति । कर्मणे वां वेपाय चाम् ॥ ६ ॥

इस काण्डिका में दो मंत्र हैं—प्रथम “कस्त्वा—इत्यादि” मंत्र का परमेष्ठी माजापत्य ऋषि, साम्नी त्रिपुण्ड्रन्द, मजापति देवता और जलमणयन तथा आहवनीय अग्नि के उत्तर प्रदेश के विपै धारण में विनियोग है । पञ्चम काण्डिका में कही हुई रीति से सत्यभाषणादि रूप प्रतिज्ञा करके यज्ञ के आरम्भ में अपने कर्तृत्व (मैं कर्त्ता हूँ, इस अभिमान) को त्यागकर मजापति को यज्ञ का कर्त्ता मान अतएव तदनन्तर ब्रह्मा का वरण करके जलों का मणयन करै । यजमान ब्रह्मा से प्रश्न करै कि—ब्रह्मन्नपः मणेप्यामि—हे ब्रह्मन् ! जलों का मणयन करूँ । तब ब्रह्मा “(का० २।२।८ मणययज्ञं देवता वर्द्धय त्वं नाकस्य पृष्ठे यजमाने।ऽस्तु सप्त ऋषीणां सुकृतां यत्र लोकस्तत्रेभं यज्ञं यजमानञ्च धेहि) इस प्रकार धीरे २ पद कर “ॐ मणय” इस प्रकार ऊँचे स्वर से कहै कि—जिस में अध्वर्यु मृगलेय फिर अध्वर्यु चमस(काष्ठ के बने हुए यज्ञ के पात्र विशेष) को लेकर आहवनीय अग्नि की उत्तर दिशा में वेदी के बाहर कुशाँ पर स्थापन करै उस समय इस मंत्र को पढ़ै । इस मंत्र

का अर्थ यह है कि हे मणीता जल को धारण करने वाले पात्र ! (त्वा) तुम्हको (कः) कौन पुरुष, (युनक्ति) आहवनीय अग्नि के उत्तर भाग में स्थापन करता है, यह मन्त्र है, जो मकल बेदों में जगत् का निर्वाह करने वाला मासिद्ध है, वह मजापति परमेश्वर ही हे पात्र ! तुम्हको स्थापन करता है यह उत्तर हुआ । (कस्मै) किस मयोजन के लिये (त्वा) तुम्हको (युनक्ति) स्थापन करता है ? यह मन्त्र है, (तस्मै) तिस मजापति परमेश्वर की मसन्ता के अर्थ (त्वा) तुम्हको (युनक्ति) स्थापन करता है, (इसका ही निष्कर्ष श्रीकृष्णभगवान् ने गीता में अर्जुन से कहा है—”ब्रह्मार्पणं ब्रह्म हविर्ब्रह्माग्नौ ब्रह्मणाहुतम् । ब्रह्मैव तेन गन्तव्यं ब्रह्मकर्मसमाधिना ॥ यत्करोषि यदर्शनासि यज्जुहोषि ददासि यत् । यत्तपस्यसि कौन्तेय तत्कुरुष्व मदर्पणम् ॥

दूसरे “वर्धण इत्यादि” मन्त्र का परमेष्ठी मजापत्य ऋषि मजापत्या गायत्री छन्द, स्रुक् और शूर्पाभिमानी देवता तथा शूर्प एवं अग्निहोत्रहवणी के ग्रहण में विनियोग है ! कुशों का परिस्तरण कर दो दो पात्रों को रखकर शूर्प और अग्निहोत्रहवणी को ग्रहण करै, उससमय इस मन्त्र को पढ़ै । इस मन्त्रका अर्थ यह है कि—हे शूर्प ! हे अग्निहोत्रकी हवणि ! मैं (कर्मणे) यज्ञ सम्बन्धी कर्म के निमित्त (वाम्) तुम को, ग्रहण करता हूँ तथा (बेपाय) सूचित कर्मोंमें व्याप्ति के अर्थ (वाम्) तुम दोनों को, ग्रहण करता हूँ शकट [गाड़ी] में स्थित धान्यों को हवि के निमित्त अलग करना तथा मोक्षण करने के निमित्त जलको धारण करना इत्यादि अग्निहोत्रहवणी [काष्ठ के पात्रविशेष] के व्यापार हैं । धान्यों का फटकना धारण करना और उलूखलमें डालना फिर निकालना इत्यादि शूर्प के व्यापार हैं) ॥ ६ ॥

प्रत्युष्टं रक्षः प्रत्युष्टा अरांतयः । निष्टप्त्वा रक्षो
निष्टप्त्वा अरांतयः । उर्वन्तरिक्षमन्वेमि ॥ ७ ॥

इस काण्डका में तीन मन्त्र हैं मयम “प्रत्युष्टं रक्षः प्रत्युष्टा

अरातयः “मन्त्र और द्वितीय “निष्टप्त रक्षो निष्टप्ता अरातयः” मन्त्र का परमेष्ठी प्राजापत्य ऋषि आसुरी वृहती छन्द, रक्षोघ्न देवता और अग्निहोत्रहवणी तथा शूर्प को तपाकर राक्षसों के जलाने में विनियोग है । इन दोनो मन्त्रों में से किसी एक को पढ़ताहुआ अग्निहोत्रहवणी और शूर्प को गार्हपत्य अग्नि में तपावै इन दोनो मन्त्रों का अर्थ यह है कि—अग्निहोत्रहवणी और शूर्प के तपाने से इन में अपनी माया के बल से स्थित (रक्षः) राक्षस जाति (मत्युष्टम्) एक एक करके दग्धहुई, (अरातयः) देवताओं को हविदेने में प्रतिबन्धक होकर यज्ञ में विघ्न करने वाले (मत्युष्टाः) दग्ध हुए । अपनी माया के मभाव से शूर्प आदि के विषै गुप्त रूप से स्थित (रक्षः) राक्षस जाति (निष्टप्तम्) निःशेषरूप से सन्तप्त हुई, (अरातयः) यज्ञसिद्धि में विघ्नकरने वाले (निष्टप्ताः) निःशेषरूप से सन्तप्त हुए ।

तीसरे “उर्वन्तरिक्षमन्वेमि” मन्त्रका परमेष्ठी प्राजापत्या गायत्री छन्द, रक्षोघ्न देवता अवकाश में चलने में विनियोग है । धान्यों की गाड़ी के समीप जाताहुआ इस मन्त्र को पढ़े । इस मन्त्र का अर्थ यह है कि—(उरु) विस्तारयुक्त (अन्तरिक्षम्) अवकाश को अन्वेमि पाकर चलता हूँ अर्थात् जाने में मुझको विघ्नकर्ता प्रतिबन्धक न हों इसलिये यज्ञपुरूप परमेश्वर चलते समय मेरे दोनो ओर के राक्षसों को दूर करें ॥ ७ ॥

धूरसि धूर्व धूर्वन्तं धूर्व तं योऽस्मात् धूर्वति
तं धूर्व यंचयं धूर्वीमः देवानामसि वन्हितम्
सस्नितम् पप्रितमं जुष्टमं देवदूतमम् ॥ ८ ॥

इस कण्डिका में दो मन्त्र हैं, प्रथम “धूरसीत्यादि” मन्त्र का परमेष्ठी प्राजापत्य ऋषि, यजुः, अग्नि देवता और अग्नि की प्रार्थना में विनियोग है । गार्हपत्य अग्नि के पश्चात् भाग में स्थित सुन्दर अङ्गोंवाला शकट [वृकडा] होता है उसके धुर [वृषभ] जोतने के (स्थान) को स्पर्श करता हुआ “धूरसीत्यादि” मन्त्र

को पढ़ै, वृषभको जोतने के स्थान में शास्त्र में वर्णित एक हिंसक अग्नि है, उसकी प्रार्थना करने का यह मन्त्र है। इस मन्त्र का अर्थ यह है कि—हे अग्ने ! तुम (धूः) हिंसक [दग्ध करनेवाले] (असि) हो, अतः (धूर्वतम्) हिंसा करने वाले पाप को (धूर्व) विनष्ट करो, (यः) जो राक्षसादि, यज्ञ में विघ्न करके (अस्मान्) हम को (धूर्वति) हिंसा करने को उद्यत होता है, (तम्) उसको एवं जिस आलस्यादि रूप वैरी का (वयम्) हम (धूर्वामः) हनन करना चाहते हैं (तम्) उसको (धूर्व) विनष्ट करो ॥

दूसरे “ देवानामसीत्यादि ” मन्त्र का परमेश्वरी प्राजापत्य ऋषि, यजुः, शकटाभिमानी देवता और शकट के उपस्तम्भ नामक काष्ठ के पश्चाद्भाग में ईषा का स्पर्श करने में विनियोग है। गाड़ी के दीर्घ काष्ठ ईषा का अग्रभाग जिस में कि युग (जुआ) बाँधा जाता है भूमि में स्पर्श न हो इन कारण इस के रोकने के निमित्त एक काष्ठ लगाया जाता है उसको उपस्तम्भ कहते हैं, तिस उपस्तम्भ के पश्चाद्भाग में तिस ईषा का स्पर्श करता हुआ इस मन्त्र को पढ़ै। इस मन्त्र का अर्थ यह है कि—हे शकटाभिमानी देव ! (स्वम्) तुम (देवानाम्) देवताओं के (वन्हितमम्) अतिशय करके व्रीहीरूप द्रवि के पहुँचाने वाले (सस्मितमम्) अत्यन्त शुद्ध (पमितमम्) व्रीहियों करके अत्यन्त पूर्ण (जुष्टमम्) देवताओं के अत्यन्त मिय (देवहतमम्) देवताओं का अतिशय करके आवाहन करने वाले (असि) हो (तुम मेरे ऊपर भी अनुग्रह करके अपनी सकल शक्तियों के द्वारा मेरे यज्ञ को पूर्ण करो) ॥ ८ ॥

अहुतमासि हविर्धानं दधुर्हस्व माव्हार्पात्
यज्ञपतिर्हार्पात्। विष्णुस्त्वा घमताम् । उरु
वाताय अपहृतश्चरक्षो यच्छन्तां पक्ष ॥ ९ ॥

इस कण्डिका में “ अहुत यहाँ से लेकर माव्हार्पात् पर्यन्त जो मन्त्र है वह पूर्व की अष्टम कण्डिका के अन्तिम मन्त्र का शेष है। शेष नवम कण्डिका में चार मन्त्र हैं—प्रथम “ विष्णुस्त्वा-

क्रमताम् ” मन्त्र का परमेष्ठी माजापत्य ऋषि, याजुषी गायत्री छन्द, शकटाभिमानी देवता और शकटपर आरोहण करने में विनियोग है । दूसरे “उरु वाताय ” मन्त्र का परमेष्ठी माजापत्य ऋषि, देवी पद्भक्ति छन्द, शकटाभिमानी देवता और व्रीहियों के अवलोकन में विनियोग है । तीसरे “अपहत रक्षः ” मन्त्र का परमेष्ठी माजापत्य ऋषि, याजुषी, गायत्री छन्द, रक्षो देवता और तृणादि के अपाकरण में विनियोग है । चौथे “यच्छन्तां पञ्च ” मन्त्र का परमेष्ठी माजापत्य ऋषि, देवी पद्भक्ति छन्द, हवि देवता और हवि ग्रहण करने में विनियोग है ।

भाषार्थः—अहुतमित्यादि मथम मन्त्र के शेष का अर्थ यह है कि—हे शकट के अभिमानी देव ! तुम (अहुतम्) अकुटिल हो [अतः चढ़ते समय टूटने का भय नहीं है] (हविर्धानम्) व्रीहिरूप हवि के धारण करनेवाले (असि) हो, (दंहस्व) दृढ होवो (मा) मत, (व्हाः) कुटिल होवो, जिससे कि—(ते) तुम्हारा (यज्ञपतिः) यजमान, (माह्वर्षीत्) यज्ञक्रिया में विघ्न रूप कुटिलतायुक्त नहो ॥

विष्णुरित्पादि मथम मन्त्र को पढ़कर शकटपर आरोहण किया जाता है तिस मन्त्र का अर्थ यह है कि—हे शकट (विष्णुः) सर्वव्यापी यज्ञ पुरुष विष्णु भगवान् (त्वा) तुम्हारे ऊपर (क्रमताम्) चढ़, [इस प्रकार कर्म करने में अपनी निरभिमनिता दिखाई] ॥

उरु इत्यादि द्वितीय मन्त्र को पढ़कर शकट में के व्रीहियों को देखा जाता है, इस मन्त्र का अर्थ यह है कि—हे शकट ! अपने में स्थित व्रीहियों के विषै (वाताय) वायु का सञ्चार होने के निमित्त, (उरु) विस्तीर्ण हो [इस मन्त्र से व्रीहिरूप हवि को वायुरूप प्राण का प्रवेश करके समाण किया जाता है] ।

अपहतामित्यादि तीसरे मन्त्र को पढ़कर व्रीहियों के ऊपर से तृण आदि अलग किये जाते हैं, इस मन्त्र का अर्थ यह है कि—(रक्षः) राक्षस [यज्ञ विघातक तृणादि] (अपहतम्) दूर हुआ ॥

यच्छेत्यादि चौथे मन्त्र को पढ़कर शकट में से मुट्ठी भरकर

व्रीहि लियेजाते हैं, इस मन्त्र का अर्थ यह है कि—(पञ्च) पांच अहुतियों की बँधीहुई मुट्ठी (यच्चन्ताम्) व्रीहिरूप हवि को ग्रहण करें ॥ ९ ॥

देवस्य त्वा सवितुः प्रसवेऽश्विनोर्बाहुभ्यां पूष्णो हस्ताभ्याम् ।
अग्नये जुष्टं गृह्णामि अग्नीषोमाभ्यां जुष्टं गृह्णामि ॥ १० ॥

इस दशवीं कण्डिका में तीन मन्त्र हैं—उनमें से प्रथम “देवस्य त्वा सवितुः प्रसवेऽश्विनोर्बाहुभ्यां पूष्णो हस्ताभ्याम्” मन्त्र का परमेष्ठी प्राजापत्य ऋषि, प्राजापत्या बृहती छन्द, सविता देवता और हवि के ग्रहण करने में विनियोग है। दूसरे “अग्नये जुष्टं गृह्णामि” मन्त्र का परमेष्ठी प्राजापत्य ऋषि प्राजापत्या गायत्री छन्द, लिङ्गोक्तदेवता और हवि के ग्रहण में विनियोग है। तीसरे “अग्नीषोमाभ्यां जुष्टं गृह्णामि” मन्त्र का परमेष्ठी प्राजापत्य ऋषि, याजुषी पंक्ति छन्द, लिङ्गोक्त देवता और हवि के ग्रहण में विनियोग है ॥

भाषार्थ;—इस कण्डिकाके तीनों मन्त्रों को पढ़कर हवि ग्रहण कियाजाता है और वह अग्निहोत्रहवणी में अग्नि के निमित्त चार मुट्ठी तदनन्तर अग्नि सोम के अर्थ चार मुट्ठी, तिस में सेतीन मुट्ठी मन्त्र पढ़कर और चौथी मुट्ठी मँन होकर डाली जाती है इन तीनों मन्त्रों का अर्थ यह है कि—हे हवि ! (सवितुः) सब के प्रेरक (देवस्य) ज्योतिःस्वरूप परमेश्वर के (प्रसवे) प्रेरणा करनेपर (अश्विभ्याम्) देवताओं के अध्वर्यु अश्विनीकुमार की बाहुओं की करी है भावना जिन में ऐसे अपने बाहुओं से (पूष्णः) देवताओं के समीप उनके भागको देनेवाले पूषा देवता के (हस्ताभ्याम्) हस्तों की करी है भावना जिनमें ऐसे अपने हस्तों से, (अग्नये) अग्नि देवता के अर्थ (प्रियम्) प्रिय तुमको (गृह्णामि) ग्रहण करता हूँ (अग्नीषोमाभ्याम्) अग्नि सोम देवताओं के अर्थ (जुष्टम्) प्रिय तुमको (गृह्णामि) ग्रहण करता हूँ ॥

“सत्यं देवा अनृतं मनुष्याः” इस श्रुति के अनुसार देवता

सत्यरूप हैं सो उनके नामके स्मरण के साथ हवि ग्रहण करने से यज्ञ सत्यफल और निर्विघ्न होगा । देवताओं का स्मरण न करके मनुष्यों का किया हुआ अनुष्ठान मनुष्यों के अनृतरूप (अमृत-शीघ्रविनाशी) होने से अमृत (निष्फल) होता है ॥ सर्वात्मक अग्नि के मंत्रों से अभिमंत्रित करेहुए हवि को ग्रहण करने में मनुष्य समर्थ नहीं होसक्ता, अतः प्रार्थना करने पर परमेश्वर की आज्ञा से बाहुओं में अश्विनी कुमार की बाहुओं की और हस्तों में पूषा देवता के हस्तों की भावना करनी होती है, क्योंकि—अश्विनीकुमार देवताओं के अर्ध्वर्यु और पूषादेव देवताओं का भागधुक है ॥ १० ॥

भूतायाः त्वा नारातये । स्वरभिविख्येपम् । दृष्टहन्तां
दुर्याः पृथिव्याम् । उर्वन्तरिक्षमन्वोमि । पृथिव्यास्त्वा
नाभौ सादयाम्यदित्या उपस्थेऽग्ने हव्यः ॥ ११ ॥

इस कण्डिका में पाँच मंत्र हैं—प्रथम 'भूताय त्वा नारातये' मंत्र का प्राजापत्य परमेष्ठी ऋषि, प्राजापत्या गायत्री छन्द हविर्देवता, और व्रीहिशेष के विचार में विनियोग है । दूसरे 'स्वरभिविख्येपम्' मंत्र का परमेष्ठी प्राजापत्य ऋषि याजुषी गायत्री छन्द, सूर्य देवता और पूर्वाभिमुख होकर यज्ञभूमि के अवलोकन में विनियोग है । तीसरे 'दृष्टहन्तां दुर्याः पृथिव्याम्' इस मंत्र का परमेष्ठी प्राजापत्य ऋषि प्राजापत्या गायत्री छन्द, गृह देवता और शकट से उतरने में विनियोग है । चौथे 'उर्वन्तरिक्षमन्वोमि' मंत्र का परमेष्ठी प्राजापत्य ऋषि, प्राजापत्या गायत्री छन्द, शकट देवता और अन्तरिक्ष में चलने में विनियोग है, पाँचवें 'पृथिव्यास्त्वा नाभौ सादयाम्यदित्या उपस्थेऽग्नेहव्यः ॥ ११ ॥' मंत्र का परमेष्ठी प्राजापत्य ऋषि साम्नी पंक्ति छन्द, हविर्देवता और हवि के स्थापन करने में विनियोग है ॥

इस कण्डिका के प्रथम मंत्र को पढ़कर शकट में शेष रहे हुए व्रीहियों का अभिमर्शन कियाजाता है । इस मंत्र का अर्थ यह है

कि—हे शकट में शेष रहे हुए ब्रीहि! हम (त्वा) तुझे [सद्भाव के अर्थ अर्थात् शेष रहे हुए तुम्हारे द्वारा अन्य याग ब्राह्मण भोजन तथा वीज बनाकर अन्यवहुत से ब्रीहियों की उत्पत्ति हो इसनिमित्त शेष छोड़ता हूँ] (अरातये) कृपणता के कारण अदान के अर्थ (न) नहीं ।

दूसरे मंत्र को पढ़कर पूर्वमुख होकर यज्ञभूमि को देखा जाता है, इस मंत्र का अर्थ यह है कि—मैं (स्वः) यज्ञको (अभिविख्येपम्) देखूँ (अर्थात् ईश्वर मुझको अन्न धनादि से सम्पन्न करूँ जिस से कि—मैं फिरभी अपने को ऐसाही यज्ञ करता देखूँ)

तीसरे मंत्र को पढ़कर शकट पर से उतरै, इस मंत्र का अर्थ यह है कि—(पृथिव्याम्) भूमि पर (दुर्याः) गृह (दृहन्ताम्) दृढ हों (हव्य लेकर ब्रह्मभाव को प्राप्तहुए उतरतेहुए अध्वर्यु के भार से गृहक्षीभ होने की सम्भावना है वह इस मन्त्र के द्वारा निवारण करीजाती है) ।

चौथे मंत्र को पढ़कर उत्तर दिशा की ओर को चलै, तिस मंत्र का अर्थ यह है कि—(उरु) विस्तीर्ण (अन्तारिक्षम्) अवकाशको (अन्वोमि) अनुसरण करके गमन करता हूँ ।

पाँचवें मंत्र को पढ़कर गार्हपत्य वा आहवनीय अग्नि के पश्चात् भाग में शूर्प में स्थित हवि को स्थापन करै, मंत्र का अर्थ यह है कि हे हविमें (पृथिव्याः) पृथिवी के (नाभौ) मध्य में, (आदित्याः) देवमाता की (उपस्थे) गोद में (सादयामि) स्थापित करता हूँ, (अग्ने) हे अग्ने ! (हव्यम्) तुम्हारे समीप में स्थापन करेहुए इस हविकी (रक्ष) रक्षा करो ॥ ११ ॥

पवित्रे स्थो वैष्णव्यौ । सवितुर्वः प्रसूच उत्पुंताम्य-
न्दिद्रेण पवित्रेण सूर्यस्य रुश्मिभिः । देवीरापो
अग्रेगुपो अग्रेपुवोऽग्रा इममद्य यज्ञं नयताम्रौ
यज्ञपति ५ सुधातुं यज्ञपतिं देवयुवम् ॥ १२ ॥
इस कण्डिका में तीन मन्त्र हैं—प्रथम “पवित्रे स्थो वैष्णव्यौ”

मन्त्र का प्राजापत्य परमेष्ठी ऋषि, देवी वृहती छन्द, लिङ्गोक्त देवता, और पवित्री के छेदन में विनियोग है। दूसरे "सावितुर्व इत्यादि" मन्त्र का परमेष्ठी प्राजापत्य ऋषि, प्राजापत्या पङ्क्ति छन्द, आपो देवता और जलके अतिशय करके पवित्र करने में विनियोग है। तीसरे "देवीरापो इत्यादि" मन्त्र का परमेष्ठी प्राजापत्य ऋषि, यजुः आपो देवता और अतिशय पवित्र जल से पूर्ण अग्निहोत्रहवणी को ऊपर चलाने में विनियोग है ॥

इस बारहवीं कण्डिका के प्रथम मन्त्र को पढ़कर पूर्ण, अन्तर्गर्भ (जिसकी तै के भीतर तै हों) एक समान दोकुशों को, क्षुरीरूप बनाए हुए अन्य कुशों से छेदन करे; मन्त्र का अर्थ यह है कि— (पवित्रे) हे कुंशरूप शोधक दोनों पवित्रों! (वैष्णव्याँ) यज्ञसंबंधी (स्यः) हो (अतः तुम यज्ञमें सहायता देकर यजमान की अभीष्ट सिद्धिकरो)।

दूसरे मन्त्र को पढ़कर, अग्निहोत्रहवणी में जल डालकर पूर्ण क दोनों कुशों से पवित्र करे—मन्त्र का अर्थ यह है कि हे जलों! (सवितुः) मेरे परमात्मा के (मसवे) मेरणाकरनेपर (वः) तुमको (अच्छिद्रेण) अच्छिद्र (पवित्रेण) वायुकी समान शोधक पवित्र के द्वारा (सूर्यस्य) सूर्यकी (रश्मिभिः) किरणों के द्वारा (उत्पुनामि) पवित्र करता हूँ।

तीसरे मन्त्र को पढ़कर, पूर्वमन्त्र से पवित्र करे हुए जलों से भरी हुई अग्निहोत्रहवणी को वाम हाथ पर स्थापन करके दाहिने हाथ से ऊपर को चलावे मन्त्र का अर्थ यह है कि— (देवीः) हे प्रकाशमान, (अग्नेवुवः) प्रथम समुद्र को प्राप्त होनेवाले (अग्नेषुवः) जहाँ जाओ उस स्थान को प्रथम पवित्र करनेवाले अथवा सोम रसका पान करनेवाले (आपः) जलों (अथ) आज सुन्दरदिन में प्रवर्त्तमान (इमम्) इस (यज्ञम्) दर्शपूर्णमास नामक यज्ञको (नयत) निर्विघ्न समाप्त करो, (सुधातुम्) दक्षिणादि के द्वारा यज्ञको पुष्ट करनेवाले, (यज्ञपातिम्) यज्ञका पालन करने (देवयुषम्)

देवताओं को यज्ञ में एकत्र करनेवाले अथवा यज्ञपुरुष परमेस्वर की कामना करने वाले (यज्ञपतिम्) यजमान को (नयत) यज्ञका फल प्राप्त कराओ ॥ १२ ॥

युष्मा इन्द्रोऽवृणीत वृत्रतूर्यं यूयमिन्द्रमवृणीध्वं वृत्रतूर्यं प्रोक्षिता स्य । अग्नये त्वा जुष्टं प्रोक्षामि । अग्नीपोमाभ्यां त्वा जुष्टं प्रोक्षामि । दैव्याय कर्मणे शुन्धध्वं देवयज्यायै यद्वोऽशुद्धाः पराजघ्नुरिदं वस्तच्छुन्वामि ॥ १३ ॥

इस तरहवाँ काण्डिका में मथम का "युष्मा इन्द्रोऽवृणीत वृत्रतूर्यं यूयमिन्द्रमवृणीध्वं वृत्रतूर्यं" इतना भाग मथम काण्डिका के आतेम मंत्र का शेष है । आगे चार मंत्र हैं—उन में से मथम प्रोक्षिता स्य' मंत्रका परमेष्ठी प्राजापत्य ऋषि देवी बृहती छन्द, आपो देवता और जलों के मोक्षण करने में विनियोग है । दूसरे "अग्नये त्वा जुष्टं प्रोक्षामि" मंत्र का परमेष्ठी प्राजापत्य ऋषि- याजुषी बृहती छन्द लिङ्गोक्त देवता और देवतानामोच्चारण पूर्वक हवि के मोक्षण करने में विनियोग है तीसरे "अग्नीपोमाभ्यां त्वा जुष्टं प्रोक्षामि" मंत्र का परमेष्ठी प्राजापत्य ऋषि, याजुषी त्रिष्टुप्छन्द लिङ्गोक्त देवता और देवतानामोच्चारणपूर्वक हवि के मोक्षण करने में विनियोग है । चौथे "दैव्याय कर्मणे शुन्धध्वं देवयज्यायै यद्वोऽशुद्धाः परा जघ्नुरिदं वस्तच्छुन्वामि" मंत्र का परमेष्ठी प्राजापत्य ऋषि, यजुः, आपो देवता और यज्ञपात्रों के मोक्षण करने में विनियोग है ॥

भावार्थ—पूर्वमन्त्रशेष " युष्मा इत्यादि वृत्रतूर्यं पर्यन्तं " का अर्थ यह है कि—हे जलों ! (इन्द्रः) इन्द्र (वृत्रतूर्यं) वृत्रासुर के बधके निमित्त (युष्मा) तुमको (अवृणीत) सहायता के निमित्त चाँहा- ताहुआ और (यूयम्) तुमने (इन्द्रम्) इन्द्र को (वृत्रतूर्यं) वृत्रासुर के नामसे, (अवृणीध्वम्) महायता देवैरुप (इसी प्रकार यह यजमान अपने पापकी निवृत्ति के अर्थ तुमसे मर्थना करता है तुमभी पापको दूरकरने के निमित्त इस यजमानको चाँहो) ॥

इसकाण्डिका के मथम मन्त्र को पढ़कर जलोंका मोक्षण किया

जाता है, अर्थ यह है—हे जलों ! तुम (मोक्षिताः) मोक्षित (स्थ) हो [क्योंकि विना संस्कार हुए औरों को संस्कृत (शुद्ध) करने को समर्थ नहीं होसके] ।

दूसरे मन्त्र को पढ़कर अग्नि देवता के निमित्त हविका मोक्षण किया जाता है, मन्त्र का अर्थ यह है कि—हे हवि ! (अग्नये) अग्नि देवता के निमित्त (जुष्टम्) मिय (त्वा) तुमको (मोक्षामि) मोक्षण करता हूँ ॥

तीसरे मन्त्र को पढ़कर अग्निसोम के अर्थ हवि का मोक्षण किया जाता है, मन्त्र का अर्थ यह है कि—हे हवि ! (अग्नीपोमाभ्याम्) अग्नीपोम देवता के निमित्त (जुष्टम्) मिय (त्वा) तुमको (मोक्षामि) मोक्षण करता हूँ ।

[इसी प्रकार अन्यदेवताओं के हवियों का भी मोक्षण करै]

चौथे मंत्र को पढ़कर कृष्णाजिन उलूखलादि अन्य यज्ञ के पात्रों को मोक्षण किया जाता है, मंत्र का अर्थ यह है कि हे यज्ञ के पात्रों (दैव्याय) ईश्वर सम्बन्धी (देवयज्यायै) देवता सम्बन्धी (कर्मणे) दर्शादि यागकर्म के निमित्त (शुःधध्वम्) तुम शुद्ध होवो, (अशुद्धाः) नीचजाति बर्द्ध आदि (यत्) जो (वः) तुमको (पराजघ्नुः) अंग को छीलने आदि के समय अपने हस्तस्पर्श से अपवित्र करते हुए (तत्) सो (इदम्) इस (वः) तुम्हारे अंग को (शुन्धामि) मोक्षणादि से पवित्र करता हूँ ॥ १३ ॥

शर्मासि । अवधूत रक्षोऽवधूता अरातयः । अदित्या-
स्त्वर्गसि प्रति त्वादितिर्वेत्तु । अद्विरसि वानस्पत्यः ।
ग्रावांसि पृथुबुध्नः प्रति त्वादित्यास्त्वर्गवेत्तु ॥ १४ ॥

इस चौदहवीं कण्डिका में पाँचमन्त्र हैं—प्रथम "शर्मासि", मंत्र का परमेष्ठी माजापत्य ऋषि, देवी अनुष्टुप् छन्द, कृष्णाजिन देवता और कृष्णाजिन को ग्रहण करने में विनियोग है । द्वितीय "अवधूत रक्षोऽवधूता अरातयः", मंत्र का परमेष्ठी माजापत्य ऋषि, आसुरी अनुष्टुप् छन्द, रक्षो देवता और राक्षसदूरीकरण में विनियोग है । तीसरे "अदित्यास्त्वर्गसि प्रति त्वादितिर्वेत्तु" मन्त्र का

परमेष्ठी माजापत्य ऋषि, आसुरी अनुष्टुप्छन्द, कृष्णाजिन देवता और कृष्णाजिन के विद्वाने में विनियोग है। चौथे "अद्विरसि वानस्पत्यः" मन्त्र का परमेष्ठी माजापत्य ऋषि, याजुपी अनुष्टुप् छन्द, उलूखल देवता और कृष्णाजिन पर उलूखल रखने में विनियोग है। पाँचवें "पावासि पृथुवुध्नः पतित्यादित्यास्त्यग्नेतु, मन्त्र का परमेष्ठी माजापत्य ऋषि, आसुरी गायत्री छन्द, उलूखल देवता और कृष्णाजिन पर उलूखल रखने में विनियोग है ॥

मध्यम मंत्र को पढ़कर कृष्णाजिन (कृष्ण मृगका चर्म) ग्रहण किया जाता है, मन्त्र का अर्थ यह है कि—हे कृष्णाजिन ! तू उलूखल के धारण के निमित्त (शर्म) सुख का हेतु (असि) है। अर्थात् तुझको हम शास्त्रकी विधि के अनुसार कृष्णाजिन पर रख कर यहको पूर्ण करै तिससे तेरा अभिमानी देवता हमको सुख देय।

दूसरे मंत्र को पढ़कर पात्रों से अलग करके मृगचर्म को भ्लाहा जाता है—मन्त्र का अर्थ यह है कि—कृष्णाजिन के भङ्गने से उसमें छुपाहुआ (रक्षः) राक्षस (अग्रधूतम्) अन्न गिरा दिया और (अरातयः) यज्ञ में बिघ्न करने वाले शत्रु भी (अग्रधूनाः) गिरा दिये।

तीसरे मंत्र को पढ़कर दोनों हाथों से कृष्णाजिन को इस प्रकार बिछावे कि—पश्चिम को ग्रीवा रहे, मंत्र का अर्थ यह है कि—हे कृष्णाजिन तू (अदित्याः) भूमिदेवता का (त्वक्) चर्मः रूप (असि) है इस कारण (अदितिः) भूमि देवता (त्वा) तुझको (प्रातिवेत्तु) ग्रहण करके अपना ही जानै।

चौथे मंत्र को पढ़कर कृष्णाजिन पर उलूखल रखै मंत्र का अर्थ यह है कि—हे उलूखल ! तू (भद्रिः) ग्रीहि आदिका विदीर्ण करने वाला है और ययवि (वानस्पत्यः) ऋषि का है परंतु (ग्रावा) उड़ होने के कारण पापाण की समान (असि) है।

पाँचवें मंत्र को पढ़कर भी * कृष्णाजिनपर उलूखल रखवा जाता है, मंत्र का अर्थ यह है कि—हे उलूखल ! (पृथुवुवनः) तेरी जड़ स्थूल है (मुसल लगने के आघात से हिले नहीं यह उलूखलाभि देवता से मार्यना की जाती है) अतः दृढता में पापाण की समान है, (अदित्याः) नीचे विद्धाईहुई कृष्णाजिनरूप भूमि की (त्वक् त्वचा (त्वा) तुम्हको (मतिवेषु) अपना करके जानै अर्थात् अपने अङ्गके अभिमान से चेतन करै ॥ १४ ॥

अग्नेस्तनूरसि वाचो विसर्जनं देववीतये त्वा
गृहामि । वृहद्ग्रावासि वानस्पत्यः । स इदं देवे-
भ्यो हविः शमीष्व सुशामि शमीष्व । हविष्-
ष्कृदेहि हविष्कृदेहि हविष्कृदेहि ॥ १५ ॥

इस कण्डिका में चार मंत्र हैं—प्रथम “अग्नेस्तनूरसि वाचो विसर्जनं देववीतये त्वा गृहामि” मंत्र का परमेष्ठी प्राजापत्य ऋषि आर्ची उष्णिक् छन्द, हवि देवता और हवि का आवपन करने में विनियोग है । दूसरे “वृहद्ग्रावासि वानस्पत्यः” मंत्र का परमेष्ठी प्राजापत्य ऋषि आसुरी जगती छन्द, मुसल देवता और मुसल के ग्रहण करने में विनियोग है । तीसरे “स इदं देवेभ्यो हविः शमीष्व सुशामि शमीष्व” मंत्र का परमेष्ठी प्राजापत्य ऋषि, यजुः मुसल देवता और मुसल को उलूखल में स्थापन करने में विनियोग है । चौथे “हविष्कृदेहि हविष्कृदेहि हविष्कृदेहि, मंत्र का परमेष्ठी प्राजापत्य ऋषि, याजुषी पंक्ति छन्द, वाग्देवता और हवि का संस्कार करनेवाले का आवाहन करने में विनियोग है ।

पहिले मंत्र को पढ़कर हवि छोड़ने के निमित्त श्रोत्रवली में डाला जाता है, मंत्र का अर्थ यह है कि हे हवि ! (जलों के मणयन काल में मौन हुई यजमान की वाणी हविके आवपन के

* कृष्णाजिन पर उलूखल रखने में च.थ और पांचवें दोनों मंत्रों का विकल्प है अर्थात् चाहे चौथे को पढ़कर रखे और चाहे पांचवें को पढ़कर रखे परन्तु “प्रति स्थादित्यास्त्ववेत्तु” यह दोनों ही मंत्रों में पढ़ना पड़ता है ।

समय में खुलती है अतः) (वाचः) वाणी का (विसर्जनम्)
खोलनेवाला, (अग्नेः) अग्नि का (तनूः) शरीर- (आसि) है
(क्योंकि—हवि अग्नि में डालते ही अग्निरूप होजाता है)
(देववीतये) देवताओं की वृत्ति के लिये (त्वा) तुम्हको (गृह्या-
मि) ग्रहण करता हूँ ॥

दूसरे मंत्र को पढ़कर मुसल को हाथ में लिया जाता है, मंत्र
का अर्थ यह है कि—हे मुसल ! तू (वानस्पत्यः) काष्ठ का
बना हुआ (ग्रावा) पापाण की समान दृढ़ (बृहत्) महान्
(आसि) है ।

तीसरे मंत्र को पढ़कर मूसल उलूखल (ओखली) में स्थापन
किया जाता है, इस मंत्र का अर्थ यह है कि—हे मूसल ? (सः)
बह (त्वम्) तू (देवेभ्यः) अग्नि आदि देवताओं के उपकार के
निमित्त (इदम्) इस हवि को (शमीष्व) भूसी आदि को दूर करके
शान्तरूप करो तथा (सुशमि) भूसी दूर होनेपर तण्डुलों
के ऊपर की मलिनता को भी दूर करके (शमीष्व) शान्तरूप करो ॥

चौथे मंत्र को पढ़कर अध्वर्यु हवि को कुम्भे के निमित्त यजमान
की पत्नी वा और जो कोई हो उसको तीन बार पुकार कर बुलावे
मंत्र का अर्थ यह है कि—(हविष्कृत्) हे हवि का संस्कार करने
वाले (एहि) आओ (हविष्कृत्) हे हवि का संस्कार करनेवाले
(एहि) आओ (हविष्कृत्) हे हवि का संस्कार करने वाले
(एहि) आओ [तीन बार कहे हुए अर्थ को देवता मानते हैं इस
कारण तीन बार आह्वान है] ॥ १५ ॥

कुक्कुटोसि मधुजिह्व इपमूर्जमावट त्वयावयसं-
घातसंघातं जेष्म । वर्षवृद्धमसि । प्रतित्वा वर्षवृद्धं
वेत्तु । परापूतः रक्षः परापूता अरांतयः । अपहतः रक्षः ।
बापुर्वो विविनक्तु । देवोवः सविता हिरण्य-
पाणिः प्रविगृभ्णात्वच्छिद्रेण पाणिना ॥ १६ ॥

इस कण्विका में सात मन्त्र हैं—मयंम “कुक्कुटोऽसि मधुजिह्व”

इषमूर्जमावद् त्वया वयं संघातं संघातं जेधम” मन्त्र का परमेष्ठी
 प्राजापत्य ऋषि, आर्ची त्रिष्टुप् छन्द, वाक् देवता और शम्या से
 दृषत् उपल को कूटने में विनियोग है। दूसरे “वर्षष्टद्धमसि” मन्त्र
 का परमेष्ठी प्राजापत्य ऋषि, याजुपी गायत्री छन्द, शूर्प देवता और
 शूर्प के ग्रहण में विनियोग है। तीसरे “गति त्वा वर्षष्टद्धं वेत्तु” मन्त्र
 का परमेष्ठी प्राजापत्य ऋषि, याजुपी वृहती छन्द, हवि देवता और
 हवि को उल्लूखल से बाहर निकाल कर शूर्प में डालने में विनियोग
 है। चौथे “परापूत रक्षः परापूता अरातयः” मन्त्र का परमेष्ठी प्रा-
 जापत्य ऋषि, आसुरी उष्णिक् छन्द, रक्षो देवता और निष्पवन
 करने में विनियोग है। पाँचवें “अपहत रक्षः” मन्त्र का परमेष्ठी
 प्राजापत्य ऋषि, याजुपी गायत्री छन्द, रक्षो देवता और भूसी
 को दूर करने में विनियोग है। छठे “वायुर्वो विविनक्तु” मन्त्र का
 परमेष्ठी प्राजापत्य ऋषि, याजुपी उष्णिक् छन्द, तण्डुलाभिमानी
 देवता और भूसीमिलेतण्डुलों को पृथक् करने में विनियोग है।
 सातवें “देवो वः सविता हिरण्यपाणिः प्रतिगृभ्णात्वच्छिद्रेण पा-
 णिना” मन्त्र का परमेष्ठी प्राजापत्य ऋषि, साम्नी त्रिष्टुप् छन्द,
 तण्डुलाभिमानी देवता और तण्डुलों को पात्र में रखकर अभि-
 मन्त्रण करने में विनियोग है ॥

भावार्थ—पहिले मन्त्र को पढ़कर शम्या से दृषद् और उपल
 को कूटा जाता है * मन्त्र का अर्थ यह है कि—हे शम्या नामक

* मनु राजा का एक दृषभ था, उस दृषभ में असुरों की नाश करनेवाली वाणी
 स्थित थी अतः उस दृषभ के शब्द करनेपर तिस शब्द को छनतेही असुर मरण को
 प्राप्त होजाते थे, इसकारण किल्लत और अकुली नामक असुरराजकों (असुरों को
 यज्ञ करानेवालों) ने मनुके पास जाकर तिस दृषभ के द्वारा ही यज्ञ कराया, तब
 वह दृषभ की असुरघ्नी वाक् मनुकी भी में प्रविष्ट होगई, तब तो उन असुर राजकों
 ने उस भी के द्वारा भी मनुको यज्ञ कराया, तब वह असुरघ्नीवाक् यज्ञके शोकाँ में
 प्रविष्ट होगई, अतः असुरों का तिरस्कार करने के निमित्त उस असुरघ्नी वाक् को
 प्रकट करने की इच्छा से शम्या से दृषद् और उपल को कूटा जाता है यह भुक्ति का
 कथन है (धात० १।१।४।१४)

यज्ञ के आयुध के अधिष्ठात्री देवता ! तुम (कुक्कुटः), कुक्कुट अर्थात् यज्ञ में विघ्न करनेवाले असुर कहाँ कहाँ हैं, यह जानने के लिये उनको मारने के अर्थ सर्वत्र विचरते हो, अथवा असुरों को भयभीत करने के निमित्त कुक्कुट की समान शब्द करनेवाले (मधु-जिह्वः) मधुरभाषिणी जिह्वावाले देवताओं के मृत्यु (आसि) हो, हम को (इपम्) अन्न को और (ऊर्जम्) बलदायक रसको (आवद) बोलो अर्थात् तुम अपना शब्द करके असुरों को यज्ञ-भूमि से दूर करो जिससे कि- (त्वया) तुम्हारे द्वारा (वयम्) हम (संघातम् संघातम्) मृत्येक समूह को (जेप्म) जीतें । हम निर्बिघ्नता के साथ यज्ञ करें और उस यज्ञ के द्वारा वर्षा होकर हमको अन्न और बलकारक रसकी प्राप्ति हो, जिससे कि-हम बलिष्ठ होकर मृत्येक संग्राम में असुरों को जीतें और कदापि हमारा पराजय न हो ।

दूसरे मन्त्रको पढ़कर शूर्प ग्रहण किया जाता है, मन्त्र का अर्थ यह है कि-हे शूर्प ! (वर्षष्टद्धम्) वर्षा के जल से बड़ी हुई वेणुशलाका (तुली)ओं के बने होने के कारण वर्षष्टद्ध (आसि) हो (अतः तुम्हारा अभिमानी देवता इस यज्ञ में सहायता देकर तुम्हारी वृद्धि की कारणरूप वर्षा को यज्ञ के द्वारा करावे) ।

तीसरे मन्त्रको पढ़कर हवि को ओखली में से बाहर निकालकर शूर्प में डाला जाता है, मन्त्र का अर्थ यह है कि-हे हवि ! (वर्षष्टद्धम्) शूर्पाभिमानी देवता (त्वा) तुम्हको (प्रतिवेत्तु) अपना करके जानै (क्योंकि-शूर्प और तुम दोनों वृष्टि से वृद्धि को प्राप्त हुए हो) ।

चौथे मन्त्र को पढ़कर हवि फटका जाता है अर्थात् भूसी उससे पृथक् करके नीचे गिराई जाती है, मन्त्र का अर्थ यह है कि- (रक्षः) राक्षसों को (परापूतम्) दूरकिया (अरातयः) आलस्यादिशत्रु (परापूताः) निरादर किण्वण । (अर्थात् शूर्प से भूसी को दूर करनेपर उसमें माया से छुड़ी हुई राक्षस जाति को भी दूरकिया) ॥

पाँचवें मन्त्र को पढ़कर पृथिवी पर गिरी हुई हवि की भूसी को उठाकर कूड़े के स्थान पर डाले, मन्त्र का अर्थ यह है कि- (रक्षः)

राक्षस को (अवहतम्) दूर ले जाकर मारा. (अर्थात् भूमी में माया से स्थित राक्षसों को भी भूमी के साथ हवि से मयक् किया) ।

छठे मन्त्रको पढ़कर भूमी के चावलों में से विना भूमीकों को पृथक् करै मन्त्र का अर्थ यह है कि—हे तण्डुलों ! (वायुः शूर्प के चलाने से उठाहुआ वायु (वः) तुमको (विविनक्तु) मूकमकणोंसे पृथक्करे ।

सातवें मन्त्र को पढ़कर शूर्प में के तण्डुलों को किसी पात्र में डाल कर अभिमन्त्रण करै, मन्त्र का अर्थ यह है कि—हे तण्डुलों ! (हिरण्यपाणिः) हिरण्यपाणि (सुवर्णोंकी अंगूठी आदि आभूषण युक्त हैं हाथ जिसके, अथवा दैत्यों ने मार्शत्र के महार से सविता के हाथ काटदिये थे उनको देवताओं ने हिरण्यमय किया यह वहूच कहिये ऋग्वेद के किसी सूक्त की कथा है इस कारण हिरण्यपाणि) (सविता) सविता (देवः) देव (वः) तुमको; (विविनक्तु) मिलित हैं अङ्गुलियों जिसमें ऐसे हाथसे (मतिगृभ्यात्) स्वीकार करै (जिस से कि पात्री में डालते समय तण्डुल भूमि में न गिरें) ॥ १६ ॥

धृष्टिरसि । अपाग्ने अग्निमामादं जहि निष्क्रव्यादं
ॐ सेध । आदेवयजं वह । ध्रुवमसि पृथिवीं दं ह्रद्वानि
वानि त्वा क्षत्रवनि सजातवन्युपदधामि भ्रातृव्यस्य
वधाय ॥ १७ ॥

इस कांडिका में चार मन्त्र हैं । मध्यम “धृष्टिरसि” मन्त्र का परमेष्ठी प्राजापत्य ऋषि, देवी वृहती छन्द-उपवेप देवता और पलाश शाखा का उपवेप ग्रहण करने में विनियोग है । दूसरे “अपाग्ने अग्निमामादं जहि निष्क्रव्यादं सेध” मन्त्र का प्राजापत्य परमेष्ठी ऋषि प्राजापत्या अनुष्टुप् छन्द, अग्निदेवता और अङ्गारों को पूर्वभाग में स्थित करने में विनियोग है । तीसरे “आदेवयजं वह” मन्त्र का प्राजापत्य परमेष्ठी ऋषि, देवी जगती छन्द, अग्नि देवता और अङ्गारों में से उपवेप से एक अङ्गार को अलग करने में विनियोग है । चौथे “ध्रुवमसि पृथिवीं दं ह्रद्वानि त्वा क्षत्रवनि सजातवन्युपदधामि भ्रातृव्यस्य वधाय,” मन्त्र का प्राजापत्य परमेष्ठी ऋषि, यजु, क-

पुत्र-देवता और अङ्गार को कपाल से ढकने में विनियोग है ॥

भावार्थ—प्रथम मन्त्र को पढ़कर उपवेप (पलाशकी शाखा को मूलसे काटकर लिए हुए काष्ठ के भाग) को ग्रहण किया जाता है, मन्त्रका अर्थ यह है कि—हे उपवेशू नू (धृष्टिः) धृष्ट [जाज्वल्यमान अङ्गारों को इधर उधर हटानेवाला] (असि) है [इस यज्ञमें भी तेरा अभिमानी देवता तुझ को अङ्गारों को इधर उधर हटाने की शक्ति देय] ।

दूसरे मन्त्र को पढ़कर उपवेप से गार्हपत्य अग्नि में से तीन अङ्गारों को पूर्वभाग में अलग करा जाता है, मन्त्र का अर्थ यह है कि—(अग्ने) हे गार्हपत्य अग्ने ! (अयमादम्) जिसमें याग की योग्यता नहीं है ऐसे अपक्व भक्षण करनेवाले (अग्निम्) लौकिक अग्नि [लौकिक अग्निनामक अपनेरूप] को [अपजहि] त्यागो तथा (आव्यादम्) शक्यता दाहकरनेके समय मांसभक्षणकरनेवाले चित्ताग्नि [चित्ताग्नि नामक अपने रूप] को भी (निःपेथ) त्यागो ॥

तीसरे मन्त्र को पढ़कर उपवेप से अलग करेहुए अङ्गारों में से एक अङ्गार लिया जाता है, मन्त्रका अर्थ यह है कि—हे अग्ने ! (देवयंजम्) देवताओं के अर्थ याग करने के योग्य तीसरे अग्नि [अपने रूप] को (आवह) हमारे सपीप में प्राप्त करो ॥

चौथे मन्त्र को पढ़कर उस अलग करेहुए अङ्गार को कपालसे ढका जाता है, मन्त्रका अर्थ यह है कि—हे कपाल ! तू (ध्रुवम्) स्थिर (असि) है [क्योंकि—अङ्गार के ऊपर स्थित होकर इधर उधर नहीं चलायमान नहीं होता है] (पृथ्वीम्) पृथ्वी को (दृष्ट्वा) दृष्ट कर [जिस से कि—पुरोडाश का पाक करने के समय तेरे व्यन्धान से भूमि को अग्नि के दाह से शिथिलता न हो अर्थात् जल कर घसक न जाय] और (ब्रह्मवनि) पुरोडाश वनाने के निमित्त ब्राह्मण से स्वीकार करे हुए, (क्षत्रवनि) क्षत्रिय करके स्वीकार करे हुए एवं (सजातवनि) यजमान के सजातियों करके स्वीकार करे हुए (त्वा) तुझ को मैं (भ्रातृव्यस्य) अश्वर और पापों

का (वधाय) नाश करने के निमित्त (उपस्थामि) अक्षरार रर
स्थापन करता हूँ ॥ १७ ॥

अग्ने ब्रह्म गृभ्णीष्व । धरुणमस्यन्तरेक्षं दृंह ब्रह्म
वनि त्वा क्षत्रवनि सजातवन्युपदधामि भ्रातृव्यस्य
वधाय । धर्मसि दिवं दृंह ब्रह्मवनि त्वा क्षत्रवनि
सजातवन्युपदधामि भ्रातृव्यस्य वधाय । विश्वाभ्य-
स्त्राशाभ्य उपदधामि । चितं स्योर्ध्वचितं । भृगुणाम
इरसां तपसा तप्यध्वम् ॥ १८ ॥

इस कण्डिका में छः मन्त्र हैं—प्रथम “अग्ने ब्रह्मगृभ्णीष्व”
मन्त्र का प्राजापत्य परमेष्ठी ऋषि, याजुपी उष्णिक् छन्द, अग्नि
देवता और स्थापन में विनियोग है । दूसरे “धरुणमस्यन्तरेक्षं दृंह
ब्रह्मवनि त्वा क्षत्रवनि सजातवन्यु पदधामि भ्रातृव्यस्य वधाय” मन्त्र
का प्राजापत्य परमेष्ठी ऋषि, अक्षर, कपालदेवता और पूर्वस्थापित
कपाल के पश्चिमभाग में द्वितीय कपाल के स्थापन करने में विनि-
योग है । तीसरे “धर्मसि दिवं दृंह ब्रह्मवनि त्वा क्षत्रवनि स-
जातवन्युपधामि भ्रातृव्यस्य वधाय” मन्त्र का प्राजापत्य पर-
मेष्ठी ऋषि, आर्चा त्रिष्टुप् छन्द, कपाल देवता और प्रथम क-
पाल के पूर्वभाग में तीसरे कपाल को स्थापन करने में विनियोग
है । चौथे “विश्वाभ्यस्त्राशाभ्य उपदधामि” मन्त्र का प्राजापत्य
परमेष्ठी ऋषि, याजुपी त्रिष्टुप् छन्द, कपाल देवता और प्रथम क-
पाल के दक्षिणभाग में चतुर्थ कपाल को स्थापन करने में विनियोग
है । पांचवें “चितस्योर्ध्वचितः” मन्त्र का प्राजापत्य परमेष्ठी ऋषि,
याजुपी गायत्री छन्द, कपाल देवता और दक्षिण एवं उत्तर में
दो २ कपाल स्थापन करने में विनियोग है । छठे “भृगुणामि-
रसां तपसा तप्यध्वम्” मन्त्र का प्राजापत्य परमेष्ठी ऋषि, आ-
सुरी अनुष्टुप् छन्द, कपाल देवता और अक्षरों से कपालों के
आदन करने में विनियोग है ॥

भावार्थः—प्रथम मन्त्र को पढ़कर सव्य हाथ की अङ्गुलि करके

शून्य में अक्षर को स्थापन किया जाता है, मन्त्र का अर्थ यह है कि— (अग्ने) हे स्थापन करेहुए अक्षर रूप अग्ने ! (ब्रह्म) हमारे करेहुए भौढ़ कर्म को वा ब्राह्मण को (गृभ्णीष्व) ग्रहण करो अर्थात् हमारे ऊपर अनुग्रह करके इस कर्म में विघ्न करने वाले राक्षसों को वध करके इस यज्ञ को पूर्ण करो अथवा हे अग्ने ! मुझ ब्राह्मण के ऊपर अनुग्रह करो अर्थात् अग्नि के विषेँ लगी हुई मेरी अंगुलि को दृढ़ करो जिससे दाहजनित पीड़ा न हो ॥

दूसरे मन्त्र को पढ़कर पूर्व स्थापित कपाल के पश्चिम में दूसरा कपाल स्थापन किया जाता है, मन्त्र का अर्थ यह है कि—हे दूसरे कपाल के अभिमानी देव ! तुम (धरुणम्) पुरोडाश धारण करनेवाले (असि) हो, इस कारण (अन्तरिक्षम्) अन्तरिक्ष को (दृंह) दृढ़ करो, [जिससे कि पुरोडाश के पाकसे उत्पन्न हुई ज्वाला करके अन्तरिक्ष में उपद्रव न हो यद्यपि यह कपाल, ज्वाला और अन्तरिक्ष के बीच में व्यवधान करनेवाला नहीं है तथापि अन्तरिक्ष की दृढ़ता के निमित्त कपालाभिमानी देवता की मार्यना की जाती है] हे कपाल ! पुरोडाश सिद्धि के लिये (ब्रह्मवनि) ब्राह्मणों करके स्वीकार करेहुए (क्षत्रवनि) क्षत्रियों करके स्वीकार करेहुए और (सजातवनि) यजमान के सजातियों करके स्वीकार करेहुए (त्वा) तुमको (भ्रातृव्यस्य) शत्रु वा पाप का (वधाय) वध होने के लिये (उपदधामि) स्थापन करता हूँ ।

तीसरे मन्त्र को पढ़कर पूर्व स्थापित कपाल के पूर्व में तृतीय कपाल स्थापन किया जाता है, मन्त्र का अर्थ यह है कि—हे तृतीय कपालाभिमानी देव ! तुम (धर्मम्) पुरोडास को धारण करने वाले (असि) हो, तुम (दिवम्) धुलोक को (दृंह) दृढ़ करो [अर्थात् यज्ञ समाप्ति में साधन होकर धुलोक को वर्षा करनेवाला करो] पुरोडाश सिद्धि के निमित्त (ब्रह्मवनि) ब्राह्मणों करके मार्यना करेहुए (क्षत्रवनि) क्षत्रियों करके मार्यना करेहुए तथा (सजातवनि) यजमान के सजातियों करके मार्यना करेहुए (त्वा)

तुभको (भ्रातृव्यस्य) शत्रु वा पापका (वधाय) वध होने के लिये (उपदधामि) स्थापन करता हूँ ।

चौथे मन्त्र को पढ़कर पूर्वस्थापित कंपाल के दक्षिण में चतुर्थ कंपाल को स्थापन किया जाता है, मन्त्र का अर्थ यह है कि—हे चतुर्थ कपाल ! (विश्वाभ्यः) सकल (आशाभ्यः) दिशाओं की दृढ़ता के लिये तुभको (उपदधामि) स्थापन करता हूँ । [इस प्रकार तीन कपालों को स्थापन करने से यजमान त्रिलोकी जीतता है और चौथे से दिशाओं को जीतता है, अर्थात् उन कपालों में का पुरोडाश त्रिलोकी रूप होकर देवताओं को गृह्य करता है] आग्नेय पुरोडाश अष्टकपाल [आठ कपालों में पकाया हुआ] टोता है, उनमें से चार कपाल तो उपरोक्त मन्त्रों से स्थापन किये गये, शेष चार कपालों में से दो २ पांचवें मन्त्र को पढ़कर दक्षिण और उत्तर में स्थापन किये जाते हैं, मन्त्र का अर्थ यह है कि—हे कपाल विशेषों ! तुम (चितः) प्रथम कपाल का तथा (ऊर्ध्वचितः) ऊर्ध्व स्थापित द्वितीयादि कपाल का उपकार करनेवाले (स्थ) हो ।

षष्ठ मन्त्र को पढ़कर अङ्गारों से कपालों का आच्छादन किया जाता है, मन्त्र का अर्थ यह है कि—हे कपालों ! तुम (भृगूणाम्) भृगु और (अङ्गिरसाम्) अङ्गिरा नामक देवर्षियों के (तपसां) तपो रूप अग्नि से (तप्यध्वम्) तप्त होवो [अर्थात् तुम्हारे अभिमानी देव तुम्हारे विषे भृगु और अङ्गिरा नामक देवर्षियों का तपोरूप तेज प्राप्त करें] ॥ १८ ॥

शमीसि । अयधूतश्चरक्षोवधूता अरांतयः । अदित्या स्त्वगंसि प्रति त्वादिनिर्वेत्तु । धिपणांसि पर्वती प्रति त्वादित्यास्त्वग्वेत्तु । द्विव स्कंमनीरांसि । धिपणांसि पर्वतेयी प्रति त्वा पर्वती वेत्तु ॥ १९ ॥

इसका शिष्टका मंत्र है—प्रथम "शमीसि" मंत्र का माजापत्य परमैष्टी ऋषि, देवी अनुष्टुप्छन्दः कृष्णाजित्त देवता और कृष्णाजित्त के ग्रहण में विनियोग है । "दूसरे अवधूतश्चरक्षो

ऽधुना अरातयः” मन्त्र का परमेष्ठी प्राजापत्य ऋषि, आमुरी त्रिष्टुप् छंद, रत्नो देवता और राक्षस तथा शत्रुओं के अपाकरण में विनियोग है। तीसरे “अदित्यास्त्वगसि मन्त्रित्वादिनिर्वेत्तु” मंत्रका प्राजापत्य परमेष्ठी ऋषि, आमुरी अनुष्टुप् छंद, कृष्णाजिन देवता और कृष्णा जिनकोविद्वान् में विनियोग है। चौथे “धिषणासि पर्वती प्रति त्वादित्यास्त्वग्भेत्तु” मंत्र का प्राजापत्य परमेष्ठी ऋषि, आमुरी गायत्री छंद, दृष्ट दधिपानी देवता और मृग चर्म पर शिला को स्थापन करने में विनियोग है। पांचवें “दिवस्कम्पनीरसि” मन्त्र का प्राजापत्य परमेष्ठी ऋषि, याजुपी उष्णिक् छंद, शम्भ्या देवता और शिला के पश्चाद्भाग में नीचे से शम्भ्या रखने में विनियोग है। छठे “धिषणासि पार्वतेयी मन्त्रित्वां पर्वती वेत्तु” मन्त्र का प्राजापत्य परमेष्ठी ऋषि, प्राजापत्या अनुष्टुप् छंद, उपल देवता और ऊपर की शिला को ग्रहण करने में विनियोग है ॥

भावार्थ—प्रथम मंत्र को पढ़कर मृगचर्म ग्रहण किया जाता है, मंत्र का अर्थ यह है कि—हे मृगचर्म के अधिष्ठातृ देव ! तुम (शर्म) सुख के हेतु (असि) हो ।

दूसरे मंत्र को पढ़कर राक्षसादि दूर किये जाते हैं, मंत्र का अर्थ यह है कि—(रक्षः) राक्षस जाति (अपहतम्) दूर हुई, (अरातयः) आलस्यादि शत्रु (अच्युताः) निरादर किये गए ।

तीसरे मंत्र को पढ़कर मृगचर्म विद्याया जाता है, मंत्र का अर्थ यह है कि—हे मृगचर्म तुम (अदित्याः) भूमि देवता के (त्वक्) त्वचा रूप (असि) हो, (अदितिः) भूमि देवता (त्वा) तुम को (प्रतिवेत्तु) अपना करके जानै ।

चौथे मंत्र को पढ़कर मृगचर्म के ऊपर शिला विद्याई जाती है मंत्र का अर्थ यह है कि—हे शिला ! तुम (पर्वती) पर्वत की पुत्री (अग्नि) हो [क्योंकि पर्वत से उत्पन्न हुई हो] (धिषणाः) कर्म को देने वाली [साधन होकर यज्ञ रूपकर्म का फल देने वाली] (असि) हो, (अदित्याः) भूमि की (त्वक्) त्वचा [मृगचर्म]

(त्वा) तुभ्म कां (प्रतिवेत्तु) स्थिति की आज्ञा देय ।

पाँचवें मंत्र को पढ़कर शिला के पश्चिम की ओर नीचे शम्भा को स्थापन कपा जाता है, मंत्र का अर्थ यह है कि—हे शम्भा के अधिष्ठातृ देव ! तुम (दिवः) स्वर्ग लोक की (स्तम्भनी) स्तम्भन करने वाली (आभि) हो ।

छठे मंत्र को पढ़कर शिला पर उपल [ऊपर का छोटा पत्थर] रखवा जाता है, मंत्र का अर्थ यह है कि—हे ऊपर की शिला ! तू (पार्व-तेर्या) पेपण के व्यापारको धारण करने वाली और नीचे की शिला की बालक रूप (असि) है, (पर्वती) माताकी समान नीचे की शिला (त्वा) तुभ्मको (प्रतिवेत्तु) पुत्रीभाव से जाने ॥ १६ ॥

धान्यमसि धिनुहि देवान् । पूणाय त्वा । उदानाय त्वा ।
व्यानाय त्वा । दीर्घामनु प्रसितिमायुपे धान्देवो वः
सविता हिरण्यपाणिः प्रतिगृभ्यणात्वाच्छिद्रेण पाणिनां
चक्षुपे त्वा । महीनां पयोऽसि ॥ २० ॥

इस कथिडका में सात मंत्र हैं—प्रथम,, धान्यमसि धिनुहि देवान्,, मंत्र का माजापत्य परमेष्ठी ऋषि, याजुपी बृहती छन्द, हविर्देवता और तण्डुलों को शिलापर स्थापन करने में विनियोग है । दूसरे 'प्राणायत्वा,, तीसरे 'उदानायत्वा,, एवं चौथे 'व्यानाय त्वा,, मंत्र का माजापत्य परमेष्ठी ऋषि, दूसरे चौथे मंत्र का देवी बृहती, छन्द तथा तीसरे का देवी पंक्ति छन्द, सब का हविर्देवता और तण्डुलों को पीसने में विनियोग है । पाँचवें,, दीर्घामनु प्रसितिमायुपे धां देवो वः सविता हिरण्यपाणिः प्रतिगृभ्यणात्वा-च्छिद्रेण पाणिना,, मंत्र का माजापत्य परमेष्ठी ऋषि, आर्या त्रिषुषु छन्द, हविर्देवता और मृगचर्म पर पीसे तण्डुलों को गिराने में विनियोग है । छठे 'चक्षुपे त्वा मंत्र का माजापत्य परमेष्ठी ऋषि देवी बृहती छन्द, हविर्देवता और पिष्टतण्डुलों का अवलोकन करने में विनियोग है । सातवें 'महीनां पयोऽसि' मंत्र का माजापत्य परमेष्ठी ऋषि, देवी त्रिषुषु छन्द, आय्य देवता और अन्धपात्र में से घृत

को हवि में डालने में विनियोग है ॥

भावार्थ—प्रथम मंत्र को पढ़कर शिलापर चावल रक्खेजाते हैं, मंत्र का अर्थ यह है कि—हे हवि! (धान्यम्) तुम करने वाला होने के कारण तू धान्य (असि-) है सो नूइस यज्ञ में (दिवान्) अग्न्यादि देवताओं को (धिनुहि) वृष्ण कर [जिससे यज्ञ सिद्ध होकर यजमान की अभीष्टभिद्धि हो] ।

दूसरे तीसरे और चौथे मंत्र को पढ़कर तण्डुलों को पीसा जाता है, मंत्रों का अर्थ यह है कि—हे तण्डुलों ! मैं (त्वा) तुमको (माणाय) सदा अधिकता के साथ मुख में चेषा करनेवाले प्राण [श्वास] वायु के देने के लिये, पीसता हूँ; (उदानाय) ऊपर को चेषा करने वाले उदानवायु के देने के लिये (त्वा) तुमको, पीसता हूँ, तथा (व्यानाय) सब शरीर में व्यापक होकर चेषा करनेवाले बलके हेतु व्यानवायु के देने के लिये (त्वा) तुमको, पीसता हूँ [देवताओं का हवि सजीव होता है इस कारण यह हवि सजीव किया गया] ।

पाँचवें मंत्रको पढ़कर शिलापर का पिसाहुआ तण्डुल रूप हवि नीचे बिछी हुई कृष्णाजिन पर गिराया जाता है, मंत्रका अर्थ यह है कि—हे हवि! (आयुषे) निरन्तर यज्ञादिकर्म परम्परा के होने के निमित्त यजमान की आयुको बढाने की इच्छा से (दीर्घाम्) अविच्छिन्न (मसितम्) कर्म सन्तति को (धाम्) धारण करता हूँ। (अथवा पूर्व के तीन मंत्रों से हवि को सजीव किया और इस मंत्र से हवि को आयु दिया जाता है, अर्थ ऐसा होगा कि—हे हवि ! तेरी आयु की वृद्धि करने के लिये तुम्हको दीर्घकृष्णाजिन पर स्थापन करता हूँ, इस वेदोक्त कर्म से कृष्णाजिन का अभिपानी देवता आयुदेय) । हे हवि! (हिरण्यपाणिः) हिरण्यपाणि (सविता) सविता (देवः) देवता (वः) तुमको (अच्छिद्रेण) अच्छिद्र (पाणिना) हस्तसे (मतिगृभ्णतु) ग्रहण करे।

छठे 'चक्षुषे त्वा' मंत्र को पढ़कर उस पिसे हुए हवि को देखा

जाता है, इस मंत्र का अर्थ यह है कि—हे हवि ! (चक्षुषे) यजमान के चक्षुः इन्द्रिय, का प्रकाश अधिक होने के लिये अथवा हवि को सजीव काने पर चक्षुगादि की अपेक्षा होती है अतः चक्षु शक्ति के देने के निमित्त (त्वा) तुम को (पश्यामि) देखता हूँ । -

सातवें मंत्र को पढ़कर पिसे हुए हवि में दूसरा पुरुष घृत डालता है, मंत्र का अर्थ यह है कि—हे आत्प्य ! तू दुग्ध से उत्पन्न होने के कारण (महीनाम्) गौआंका (पयः) दुग्धरूप (असि) है ॥२०॥

देवस्य त्वा सवितुः प्रसवेऽश्विनोर्वाहुभ्या पूष्णो

हस्ताभ्याम् । संवपामि । समाप ओषधीभिः

समोषधयो रसेन सश्चरेवतीजगतीभिः पृच्यन्ताम् ॥

समधुमतीर्मधुमतीभिः पृच्यन्ताम् ॥ २१ ॥

इस काण्डिका में तीनों मंत्र हैं, प्रथम "देवस्य त्वा सवितुः प्रसवेऽश्विनोर्वाहुभ्या पूष्णो हस्ताभ्याम्", मंत्र का प्राजापत्य परमेष्ठी ऋषि, प्राजापत्या बृहती छन्द, सविता देवता पिष्ट को पावित्रायुक्त पात्री के विषे डालने में विनियोग है। दूसरे "संवपामि" मंत्र का प्राजापत्य परमेष्ठी, ऋषि, देवी बृहती छन्द, हविर्देवता और पिष्टको पात्री में डालने में विनियोग है, तिसरे "समाप ओषधीभिः, समोषधयो रसेन सश्चरेवतीजगतीभिः पृच्यन्ताम्" समधुमतीर्मधुमतीभिः पृच्यन्ताम्" मंत्र का प्राजापत्य परमेष्ठी ऋषि, यजु, आपोदेवता और पिष्ट में जल मिलाने में विनियोग है।

प्रथम तथा दूसरे मंत्र को पढ़कर कुशा के पवित्र युक्त पात्र में पिसाहुभा घण्टुनों का हवि डाला जाता है, दोनों मंत्रों का अर्थ यह है कि—(सवितु) सवे के मेरक सविता (देवस्य) देवता के (प्रसवे) मेरणा करने पर (अश्विनो) अश्विनीकुमार की बाहुओं की करी है भावना जिन में ऐसे (वाहुभ्या) बाहुओं करके और (पूष्ण) पूषा देवता के हस्तों की करी है भावना जिनमें ऐसे (हस्ताभ्याम्) हस्तों करके हे हवि ! (त्वा) तुम्हको (संवपामि) विधिपूर्वक भलीप्रकार पात्र में डालता हूँ [सविता देव, तुम्हको

पूर्ण करने की शक्ति देय] ।

तीसरे मन्त्र को पढ़कर अग्नीध्र, पिष्ट हवि में डालने के उपसर्जनी नामक जलको लावै और अर्घ्य पवित्राओं करके उस जल की पात्री में लेय अर्थात् पवित्रों के ऊपर होकर जल की धारा पात्र में गिरावै, मन्त्रका अर्थ यह है कि (आपः) जल (ओषधीभिः) पिष्ट तण्डुल रूप ओषधियों से (सम्पृच्यन्ताम्) भली प्रकार मिले, (ओषधयः) पिष्ट तण्डुल (रसेन) जल करके (सम्पृच्यन्ताम्) मिले (रेवतीः) जल (जगतीभिः) पिष्ट तण्डुलों से (संपृच्यन्ताम्) मिले और (मधुमतीः) माधुर्ययुक्त जल (मधुमतीभिः) मधुर ओषधियों से (सम्पृच्यन्ताम्) भली प्रकार मिले ॥२॥

जनयत्यै त्वा संयौमि । इदमग्नेः । इदमग्नीषो-
मयोः । इवे त्वा । घर्मोऽसि विश्वायुः । उरुमया उरु
प्रस्थस्वोरु ते यज्ञपतिः प्रथताम् । अग्निष्टे त्वष्टं
माहिँसीत् । देवस्त्वा सविता श्रपयतु वरि-
ष्टेऽधि नाके ॥ २२ ॥

इस कण्डिका में आठ मन्त्र हैं, मथम "जनयत्यै त्वा संयौमि" मन्त्र का माजापत्य परमेष्ठी ऋषि माजापत्या गायत्री छन्द, हविर्देवता और जलपिष्ट के संमिश्रण में विनियोग है। दूसरे "इदमग्नेः" मन्त्र का माजापत्य परमेष्ठी ऋषि, देवी वृहती छन्द, हविर्देवता और हविके पिण्ड को स्पर्श करने में विनियोग है। तीसरे "इदमग्नीषोमयोः" मन्त्र का माजापत्य परमेष्ठी ऋषि देवी जगती छन्द, हविर्देवता और हवि के पिण्ड को स्पर्श करने में विनियोग है। चौथे "इवे त्वा" मन्त्रका माजापत्य परमेष्ठी ऋषि, देवी अनुष्टुप् छन्द, आव्य देवता और घृत को तपाने में विनियोग है। पाचवें "घर्मोऽसि विश्वायुः," मन्त्र का माजापत्य परमेष्ठी ऋषि, याजुषी गायत्री छन्द, पुरोडाश देवता और पुरोडाश को अग्नि पर चढ़ाने में विनियोग है। छठे "उरुमया उरु प्रस्थस्वोरु ते यज्ञपतिः प्रथताम्," मन्त्रका माजापत्य परमेष्ठी ऋषि

आर्षि गायत्री छन्द, पुरोडाश देवता और पुरोडाशके कपाल में फैलाने में विनियोग है । सातवें, “अग्निष्टे त्वचं माहिःसीत्,” मन्त्रका माजापत्य परमेष्ठी ऋषि, माजापत्या गायत्री छन्द, पुरोडाश देवता और पुरोडाश के ऊपर, जलस्पर्श करने में विनियोग है । आठवें “ देवस्त्वा सविता श्रपयतु वर्षिष्ठेऽधिनाके,” मन्त्र का माजापत्य परमेष्ठी ऋषि, माजापत्या अनुष्टुप् छन्द, पुरोडाश देवता और पुरोडाश को पकाने में विनियोग है ।

प्रथम मन्त्र को पढ़कर जल और तण्डुलों के पिष्ट को मिलाया जाता है, मन्त्र का अर्थ यह है कि—हे जल और पिष्ट ! (त्वा) तुमको । (जनयत्यै) पुरोडाश बनानेके निमित्त अथवा यजमान के सन्तति उत्पन्न होने के निमित्त (संयौमि) मिलाता हूँ क्योंकि—जैसे जल और पिष्टका मेलन होता है तिसीप्रकार शुक्र शोणित (वीर्यरज) के मेलन से यजमान के सन्तति की उत्पत्ति हो ।

दूसरे मन्त्र को पढ़कर मिलाएहुए पिष्ट के अबदान (छेदन) के चिन्हयुक्त दो पिण्ड करके अलग २ स्थापन कर एकको स्पर्श करै, मन्त्र का अर्थ यह है कि—(इदम्) यह पिण्ड (अग्नेः) अग्नि देवता का, है (अतः इसको अग्नि ग्रहण करके यजमान के ऊपर प्रसन्न हो)

तीसरे मन्त्र को पढ़कर पूर्व की समान दूसरे पिण्ड को स्पर्श करै, मन्त्र का अर्थ यह है कि—(इदम्) यह पिण्ड (अग्नीषोमयोः) अग्नीषोम देवता का, है (उक्त देवता, इसको ग्रहण करके यजमान के ऊपर प्रसन्न हों) ।

चौथे मन्त्र को पढ़कर पिघलाने के लिये घृत का पात्र अग्नि पर तपाया जाता है, मन्त्र का अर्थ यह है कि—हे घृत (इषे) इच्छित वृष्टि के अर्थ (त्वा) तुम्हको, तपाता हूँ, (क्योंकि तेरे द्वारा पुरोडाश तयार होने पर उस से यज्ञ होकर वृष्टि होगी) ।

पाचवें मन्त्र को पढ़कर पुरोडाश अग्नि पर चढ़ाया जाता है,

मन्त्रका अर्थ यह है कि हे पुरोडाश ! तू (धर्मः) दीप्यमान यज्ञ का अंश (विश्वायुः) यजमान को पूर्ण आयु देनेवाला (असि) है। छठे मन्त्र को पढ़कर पुरोडाश सब कपालों में रखने के लिये फैलाया जाता है, मन्त्रका अर्थ यह है कि—हे पुरोडाश ! तू स्वर्ग से ही (उरुमयाः) विस्तार के साथ फैलनेवाला है। (उरु) फैलकर (प्रथस्व) प्रख्यात हो। और (ते) तेरा (यज्ञपतिः) यज्ञपति यजमान (उरु) बहुत से पुत्रपश्वादि को प्राप्त होकर (प्रथताम्) प्रसिद्ध होना।

सातवें मन्त्र को पढ़कर पुरोडाश के ऊपर जन्तु छिड़का जाता है, मन्त्रका अर्थ यह है कि—हे पुरोडाश ! (अग्निः) पकता हुआ अग्नि (ते) तेरे (त्वचम्) त्वंचारूप ऊपर के भागको (भाहिंसति) जलाकर बाँकला करके नष्ट न करे।

आठवें मन्त्र को पढ़कर पुरोडाश पकाया जाता है, मन्त्र का अर्थ यह है कि—हे पुरोडाश (सविता) सविता (देवः) देवता (वर्षिष्ठे) वडेवेगके साथ चड़ी ज्वालाओं से मज्जलित होते हुए, राक्षसों के नाशक (माके) स्वर्ग के नाकनामरु अग्निमें (त्वा) तुझको (अश्रिपयतु) मरू करे ॥ २२ ॥

मा भेर्मा संविक्र्याः अतमेरुर्ज्योस्तमेरुर्जमानस्य मजा भूयात् त्रिताय त्वा । द्विताय त्वा एकताय त्वा ॥ २३ ॥

इसके छिड़का मंत्रों में हैं, प्रथम "मा भेर्मा संविक्र्याः" मन्त्र का प्राजापत्य परमेष्ठी ऋषि, योजुषी गायत्री छन्द, पुरोडाश देवता और पुरोडाशाको स्पर्श करने में विनियोग है। दूसरे "अतमेरुर्ज्योस्तमेरुर्जमानस्य मजा भूयात्" मन्त्र का प्राजापत्य परमेष्ठी ऋषि, आर्षी गायत्री छन्द, पुरोडाश देवता और अक्षरों के द्वारा दभांकर भनी मकार पकं करने में विनियोग है तीसरे "त्रिताय त्वा" मन्त्रका प्राजापत्य परमेष्ठी ऋषि, देवी वृहती छन्द, त्रित देवता ऋषि और अक्षरियों के मक्षालन के जल को औंधाने में विनियोग है। चौथे "द्विताय त्वा" मन्त्र का प्राजापत्य परमेष्ठी ऋषि देवी वृहती,

छन्द; द्वित देवता और तृतीय मन्त्रोक्त विनियोग है। पाँचवें "एकता यत्वा" मन्त्र का माजापत्य परमेष्ठी ऋषि; दैवी प्रकृति छन्द, एकता देवता और तृतीय मन्त्रोक्त विनियोग है। प्रथम मन्त्र को पढ़कर, पुरोडाश पका है या नहीं यह जाने के निमित्त स्पर्श करा जाता है, मन्त्र का अर्थ यह है कि—हे पुरोडाश (मभेः) भयभीत मत हो, (मा सन्निव्याः) चलायमान मत हो दूसरे मन्त्र को पढ़कर पके हुए पुरोडाश को अङ्गारों से ढककर पकाया जाता है, मन्त्र का अर्थ यह है कि—(यज्ञः) यज्ञसाधक पुरोडाश (अतमेरुः) ऊपरः भस्म जमजाने की मलिनसारूप श्लानि रहित हो (यजमानस्य) यजमान की (मृजाः) पुत्रपौत्रादि सन्निधि (अतमेरुः) श्लानिरहित (भ्रूयात्) हो; अर्थात् यजमान की सन्निधि को कदापि दुःख न हो। तीसरे चौथे और पाँचवें मन्त्र को पढ़कर पिष्टलितपात्र तथा अंगुलियों के धोवन का जल पात्र में तपाकर गार्हपत्य अग्नि के ऊपर (औंधावें) मन्त्र का अर्थ यह है कि—हे पात्र और अंगुलियों के प्रक्षालन के जल (त्रितायः) त्रित (१) नामक देवता के अर्थ (त्वा) तुभ को (द्विताय) द्वित नामक देवता के अर्थ (त्वा) तुभ को और (एकताय) एकत नामक देवता के अर्थ (त्वा) तुभ को त्यागता हूँ॥ ३३॥

देवस्य त्वा सवितुः प्रसवेऽश्विनोर्बाहुभ्यां पूष्णो हस्ताभ्याम्, आददेऽध्वरकृते देवेभ्यः। इन्द्रस्य बाहुरसि दक्षिणः सहस्रभृष्टिः शततेजा वायुरसि तिग्मतजा द्विपतो वधः॥

इस कंडिका में तीन मन्त्र हैं, प्रथम देवस्य त्वा सवितुः प्रसवेऽश्विनोर्बाहुभ्यां पूष्णो हस्ताभ्याम् मन्त्र का माजापत्य परमेष्ठी ऋषि, (१) पूर्वकाल में किसी कारण से भयभीत हुआ अग्नि देवता जल में प्रवेश कर गया तब देवताओं ने जानकर ग्रहण किया; उस समय अग्नि ने अपने वीर्य को जल में त्यागा, उस से त्रित, द्वित और एकत नामक व्यक्ति उत्पन्न हुए, उन्होंने देवताओं के साथ विचरते हुए, यज्ञ में पात्र और अंगुलियों के प्रक्षालन का जल रूप भाग पाया, यह कथा अतपथ १।२।३।४ में लिखी है।

ब्रजं गच्छ गोष्ठानम् । वर्षतु ते यौ. बधान देव
सवित परमस्या पृथिव्या ७ शतेन पाशैर्योऽस्मान्
द्रेष्टि यं च वयं द्विष्मस्तमतो मा मौक् ॥ २५ ॥'

इस काण्डिका में चार मन्त्र है, प्रथम "पृथिवि देवयजन्योप-
ध्यास्ते मूलमाहि ७ सिपम्, मन्त्र का प्राजापत्य परमेष्ठी ऋषि,
यजुः, वेदि देवता और वृणों को हटाकर भूमि को स्फ्य से खो-
दने में विनियोग है । दूसरे "ब्रज गच्छ गोष्ठानम्" मन्त्र का
प्राजापत्य परमेष्ठी ऋषि, देवी जगती छन्द, पुरीष देवता और
खोदी हुई मृत्तिका को ग्रहण करने में विनियोग है । तीसरे "व-
र्षतु ते यौ., मन्त्र का प्राजापत्य परमेष्ठी ऋषि, देवी पंक्ति छन्द
वेदि देवता और वेदी को अर्दलोकन करने में विनियोग है
चौथे 'बधान देव सवित. परमस्या पृथिव्या ७ शतेन पाशैर्योऽस्मान्
द्रेष्टि यं च वयं द्विष्मस्तमतो मा मौक्' मन्त्र का प्राजापत्य परमेष्ठी
ऋषि, यजु सविता देवता और खोदी हुई मृत्तिका को उत्कर
(घूरा) स्थान में डालने में विनियोग है ।

प्रथम मन्त्र को पढ़कर वृणों को हटाकर भूमि खोदी जाती है,
मन्त्र का अर्थ यह है कि—(देवयजानि) देवताओं के यज्ञ करने
के योग्य (पृथिवि) हैं पृथिवी ! मैं (ते) तेरी (ओपध्या)
वृणरूप ओषधि की (मूलम्) मूल को (माहिंसिपम्) नष्ट नहीं
करता हूँ, (किन्तु यज्ञ के निमित्त खोदता हूँ) ।

दूसरे मन्त्र को पढ़कर पुरीष (कुदाल से खोदने पर उत्पन्न
हुई मृत्तिका) को ग्रहण किया जाता है मन्त्र का अर्थ यह है कि—
हे खोदी हुई मृत्तिका ! तू (गोष्ठानम्) जहा इस समय गौर्ष स्थित
है ऐसी (ब्रजम्) गोशाला को (गच्छ) जा ।

तीसरे मन्त्र को पढ़कर वेदिको (ठीक हुई या नहीं यह जानने
के लिये) देखा जाता है, मन्त्र का अर्थ यह है कि हे वेदी ! (ते)
तेरे लिये (यौ) शुलोक का अभिमानी देवता (वर्षतु) जल
की वर्षा करे (जिस से खोदने से होनेवाले दःख की शान्ति हो)

चाये मंत्रको पढ़कर उत्कर, (कूड़ा डालने के स्थान) पर कु-
दाल से खोदी हुई मृत्तिका डालीजाती है, मंत्रका अर्थ यह है
कि—(सवितः) हे सविता (देव) देवता ! (य) जो (अ-
स्मान्) हमारे ऊपर (द्वेष्टि) द्वेषदृष्टि रखता है (त्र) और (यम्) जिसके
मति (वयम्) हम (द्विष्मः) द्वेषदृष्टि रखते हैं (तम्) इसद्रोने
अकार के हमारे शत्रु को (परमस्याम्) अन्तिम (पृथिव्याम्)
पृथिवी के विषे अर्थात् जहा भूमिके अन्तिम स्थान में अन्धतामिस्र
नरक है तहा (शनेन) सैकड़ों (पाशैः) पाशों से (बधान) बांधो
और (अंत) उस अन्धतामिस्र नरक में से (मामौक्) कदापि
मत छोड़ो ॥ २५ ॥

अपारहं पृथिव्यै देवयजनाद् बध्यासम् । व्रजं
गच्छ गोष्ठानम् । वर्षतु ते द्यौः । बधान देव
सवितः परमस्या पृथिव्या शतेन पाशैर्योस्मा
न् द्वेष्टियं च वयं द्विष्मस्ततो मामौक् । अररो
दिव मा पन्त । द्विष्मस्ते द्यां मा स्कन् । व्रजं
गच्छ गोष्ठानम् । वर्षतु ते द्यौः । बधान देव स-
वितः परमस्या पृथिव्या शतेन पाशैर्योस्मान्
द्वेष्टि यं च वयं द्विष्मस्तमतो मा मौक् ॥ २६ ॥

इस कण्टिका में नौ मंत्र हैं—प्रथम “अपारहं पृथिव्यै देवयज-
नाद् बध्यासम्” मंत्र का भाजापत्य परमेशी ऋषि, आसुरी, गायत्री
छन्द, असुरदेवता और उत्कर स्थान में द्वितीय चार मृत्तिका डाल-
ने में विनियोग है । द्वितीय “व्रजमित्यादि” तृतीय “वर्षस्वि-
त्यादि” और चतुर्थ “बधानेत्यादि” मन्त्र इनके ऋषि इत्यादि
पच्चीसवीं कण्टिका की समान जानने । पाँचवें “अररो दिव मा
पन्त” मन्त्र का प्रा० प० पर० ऋषि, यजु, असुर देवता और उत्कर
के अभिमुख हाथों को रखने में विनियोग है । छठे “द्विष्मस्ते द्यां
मा स्कन्” मंत्रका प्रा० प० ऋषि, यजु, असुर देवता और तृतीय चार
मृत्तिकाको उत्करस्थान में डालने में विनियोग है ॥ सप्तम अष्टम और

नवम मंत्रका ऋषि छन्दादि पच्चीसवीं कंडिका की समान जानना ।

प्रथम मंत्र को पढ़कर द्वितीयवार, खोदी हुई मृत्तिका को ग्रहणकर उत्कर स्थान में डाले, मंत्र का अर्थ यह है कि— (पृथिव्यै) पृथिवी के (देवयजनात्) देवयजननामके वेदिके स्थान से (अररुम्) अररु नामक असुर को (अपवध्यासम्) दूर लेजाकर मारता हूँ ।

(द्वितीय, तृतीय और चतुर्थ मंत्र का कार्य और भावार्थ पूर्व अर्थात् पच्चीसवीं कंडिका की समान जानना)

पांचवें मन्त्र को पढ़कर उत्कर के अभिमुख हाथ रखे जाते हैं मंत्र का अर्थ यह है कि—हे अररुनामक असुर ! (दिवम्) यज्ञ के फलरूप धुलोक को (मा पसः) तू मत प्राप्त हो ।

छठे मंत्र को पढ़कर तृतीय वार मृत्तिका को ग्रहण कर उत्कर स्थान में डाला जाता है, मंत्र का अर्थ यह है कि—हे वेदिके देवता ! (ते) पृथिवी रूप जो तू तिसका (द्रप्सः) उपजीव्य रस अर्थात् भोग (धाम्) स्वर्गलोक को (मास्कन्) मतजाओ ।

(सातवें आठवें और नवें मंत्रों का कार्य और भावार्थ पच्चीसवीं कण्डिका की समान जानना) ॥ २६ ॥

गायत्रेण त्वा छन्दसा परिगृह्णामि । त्रैष्टुभेन त्वा छन्दसा परिगृह्णामि । । जागतेन त्वा छन्दसा परिगृह्णामि । सुह्मा चासि शिवा चासि । स्योना चासि सुपदा चासि । ऊर्जस्वती चासि पर्यस्वती च ॥ २७ ॥

इस कण्डिका में छः मंत्र हैं—प्रथम 'गायत्रेण त्वा छन्दसा परिगृह्णामि' मंत्र का मा० पर० ऋषि, आसुरी अनुष्टुप् छंद विष्णु देवता और वेदि खोदने से पहिले स्फ्य से रेखा खंचने में विनियोग है। द्वितीय 'त्रैष्टुभेन त्वा छन्दसा परिगृह्णामि' मंत्र का मा० पर० ऋषि आसुरी अनुष्टुप्छन्द, विष्णु देवता और स्फ्य से द्वितीय रेखा खंचने में विनियोग है। तृतीय "जागतेन त्वा छन्दसा परिगृह्णामि" मंत्र का मा० पर० ऋषि, आसुरी अनुष्टुप् छंद, विष्णु

देवता और स्फ्य से तीसरी रेखा करने में विनियोग है। चौथे 'सु-
क्ष्मा चासि शिवा चासि' मंत्र का प्रा० पर० ऋषि, प्राजापत्या
गायत्री छंद वेदि देवता और वेदि खोदने के पश्चात् स्फ्य से रेखा
करने में विनियोग है। पाँचवें 'स्थोना चासि सुपदा चासि' मंत्रका
प्रा० पर० ऋषि, आसुरी जगती छंद वेदि देवता और द्वितीय रेखा
करने में विनियोग है। छठे 'उजस्वती चासि पयस्वती च' मंत्र का
प्राजापत्य, प० ऋषि, आसुरी पंक्ति छंद वेदि देवता और तृतीय रेखा
करने में विनियोग है ॥

जिस स्थान से अररु नामक अमुर को निकाला तहाँ वेदी के परि-
माण का निश्चय करने के लिये दक्षिण पश्चिम उत्तर इन तीन दिशाओं
में स्फ्य से रेखा करी जाती है, तिसमें से प्रथम मंत्रको पढ़कर दक्षिण में
द्वितीय को पढ़कर पश्चिम में और तृतीय मंत्रको पढ़कर उत्तर में रेखा
करे इस कर्म का नाम पूर्वपरिग्रह है तीनों मंत्रों का अर्थ यह है
कि—हे यज्ञ ! गायत्री त्रिष्टुप् और जगती छंद रूप से भावना
करे हुए स्फ्य के द्वारा (त्वा) तुभ्य को (गायत्रेण) गायत्री के
(छन्दसा) छन्दोरूप स्फ्य करके (परिगृहामि) परिग्रहण करता
हूँ; (त्रिष्टुभे च) त्रिष्टुप् के (छन्दसा) छंदोरूप स्फ्य करके (त्वा)
तुभ्यको (परिगृहामि) परिग्रहण करता हूँ (जागतेन) जगती
के (छन्दसा) छंदोरूप स्फ्य करके (त्वा) तुभ्यको (परिगृहामि)
परिग्रहण करता हूँ, (तीनों छंदों के देवता तीनों दिशाओं में तेरी अमुरों
से रक्षा करूँगे और पूर्व दिशा में आहवनीय अग्नि ही रक्षा करेगा)
चौथे पाँचवें और छठे मंत्र को पढ़कर उत्तरपरिग्रह किया जाता
है अर्थात् पहिले जो पूर्व परिग्रह कर्म कहा वह वेदि खोदने से पूर्व
किया जाता है, और वेदी खोदने के अनन्तर चतुर्यादि तीनों मंत्रों
को पढ़कर फिर दक्षिणादि तीनों दिशाओं में स्फ्य से तीन रेखा
करी जाती हैं, इस का नाम उत्तरपरिग्रह कर्म है। मंत्रों का अर्थ
यह है कि—हे वेदी तुम ईश्वर के तेज से युक्त होने के कारण
(सुक्ष्मा) सुन्दर (चासि) है (च) और उग्र अमुर के निकल

जग्ने तथा यज्ञपुरुष का निवासस्थान होने से (शिवा) शांतस्वरूप (च) भी (असि) हो (च) और (स्योना) सुखरूप (असि) हो (च) और (सुपदा) देवताओं की सुन्दर स्थिति की स्थान (च) भी (असि) हो (ऊर्जस्वती) अन्न वाली (असि) हो (च) और (पर्यस्वती) दध्यादि के मूलभूत दुग्ध की खनि (च) भी हो ॥ २७ ॥

पुरा क्रूरस्य विसृषो विरप्शिन्नुदादाय पृथिवी जीवदानुम् यामैरयन् चन्द्रमासि स्वधाभिस्तामु धीरासोऽनु दिश्य यजन्ते । प्रोक्षणीरासादय । द्विपतो वधोऽसिः २८

इस कण्डिका में तीन मन्त्र हैं, प्रथम "पुरा क्रूरस्य विसृषो विरप्शिन्नुदादाय पृथिवी जीवदानुम् यामैरयन् चन्द्रमासि स्वधाभिस्तामु धीरासोऽनु दिश्य यजन्ते,, मन्त्र का अर्थशंस ऋषि, त्रिपुष् छन्द, चन्द्रमा देवता और वेदी को समान तथा शुद्ध करने में नियोग है । दूसरे "प्रोक्षणीरासादय" मन्त्र का अर्थशंस ऋषि याजुषी उप्पिण्क् छन्द, भैषदेवता और प्रोक्षणीपात्र को स्थापन करने में विनियोग है । तीसरे "द्विपतो वधोऽसि,, मन्त्र का अर्थशंस ऋषि, याजुषीगायत्री छन्द, अभिचारिक देवता और स्फ्यको ऊपरको उठानेमें विनियोग है । प्रथम मन्त्र को पढ़कर वेदी को लोप्रादि निकालकर समान और शुद्ध किया जाता है, मन्त्र का अर्थ यह है कि—(विरप्शिन्) हे परमेश्वर विष्णो ! तुम मर्त्यना को (शृणु) सुनो, और अनुग्रह करो * (विसृषः) नाना योधायुक्त (क्रूरस्य) युद्ध के (पुरा) प्रथम देवताओं ने (जीवदानुम्) जीवों की धारण करनेवाली सारभूत (याम्) जिस (पृथिवीम्) पृथिवी के आत्मा को (उदादाय) ऊँचा उठाकर (स्वधाभिः) वेदों सहित (चन्द्रमासि) चन्द्रमा में

* किसी समय असुरों के साथ देवताओं का युद्ध हुआ उस समय देवताओं ने आपस में सम्मति करी कि—इस भूमिका जो देवयजन नाम उतम स्थल है, उसको चन्द्रमा में स्थापन करके युद्ध करें, यदि हमारा पराजय होजायगा तो फिर भी यह करके असुरों को जीतलेंगे, यह सम्मति करके पृथिवीके सारभूत देवयजन भागको चन्द्रमामें स्थापित किया, अब भी वह कृष्णवर्ण दिव्यता है । (गत० १।२।१।२८)

(पेरयन्-) स्थापन कर दिया था (ताम्) उसही चन्द्रमा में स्थित पृथिवी के आत्मा को (अनुदिश्य) शास्त्रोपदेश के द्वारा सिद्ध करके अर्थात् वही सारभूत भूमि इस वेदीमें विद्यमान है ऐसी भावना करके (धीरासः) धीरपुरुष (यजन्ते) यज्ञ करते हैं ।

दूसरे मंत्र को पढ़कर मोक्षणी को लाया जाता है, अर्ध्वर्यु कहता है, हे अग्निधि ! (मोक्षणीः) मोक्षण करने के जलों को (आसादय) वेदी पर स्थापन करो ।

तीसरे मंत्र को पढ़कर स्फ्य को ऊँचा करके उत्तर स्थान में ढाला जाता है, मंत्र का अर्थ यह है कि—हे स्फ्य ! तू (द्विषतः) यज्ञ में विघ्न करने वाले शत्रुओं का (बधः) बध करने वाला (आसि) है ॥ २८ ॥

प्रत्युष्ट ॐ रक्षः प्रत्युष्टा अरांतयः । निष्टप्त ॐ रक्षो
निष्टप्ता अरांतयः अनिशितोऽसि सपत्नक्षिद्वाजिनं
त्वा वाजेध्यायै सम्मार्जिम । प्रत्युष्ट ॐ रक्षः प्रत्युष्टा
अरांतयः । निष्टप्त ॐ रक्षो निष्टप्ता अरांतयः । अनि
शितासि सपत्नक्षिद्वाजिनं त्वा वाजेध्यायै सम्मार्जिम ।

इस कण्डिका में छः मन्त्र हैं, प्रथम "प्रत्युष्ट ॐ रक्षः प्रत्युष्टा अरांतयः," और दूसरे "निष्टप्त ॐ रक्षो निष्टप्ता अरांतयः," मन्त्रका ऋषि, आदि सातवीं कण्डिका के अनुसार जानना केवल विनियोग में अन्तर है अर्थात् इसका सुब को तपाने में विनियोग है । तीसरे "अनिशितोऽसि सपत्नक्षिद्वाजिनं त्वा वाजेध्यायै सम्मार्जिम," मन्त्रका प्रा० पर० ऋषि, प्राजापत्या वृहती छन्द, सुबदेवता और सुबका मार्जन करने में विनियोग है । चौथे "प्रत्युष्ट ॐ रक्षः प्रत्युष्टा अरांतयः," और पाँचवें "निष्टप्त ॐ रक्षो निष्टप्ता अरांतयः," मन्त्रका ऋषि आदि ७ वीं कण्डिका के समान है और सुब को तपाकर अर्ध्वर्यु को समर्पण करने में विनियोग है । छठे "अनिशितोऽसि" मन्त्रका प्रा० पर० ऋषि, प्रा० प० बृह० छन्द, सुबदेवता और सुबका मार्जन करने में विनियोग है । प्रथम

वा द्वितीय मन्त्रको पढ़कर सुव (खैर के काठका हस्तकी समान यज्ञका पात्र) अग्निपर तपाया जाता है, इन दोनों मंत्रोंका अर्थ ७ वीं कण्डिका के १।२ मंत्रके अर्थकी समान जानना। तिसरे मन्त्रको पढ़कर सुव का सम्मार्जन करै, मंत्र का अर्थ यह है कि—हे सुव ! तुम हमारे विषय में (अनिशितः) तक्षिणता रहित, उपद्रव न करनेवाले, (आसि) हो (सप्तनजित्) हमारे शत्रुओं का वध करते हो, इस कारण, हमारे हितैषी होने से, (वाजिनम्) यज्ञ के द्वारा अन्न से युक्त, अथवा यज्ञनामक अन्न के योग्य तुम को (वज्रेध्यायै) यज्ञ नामक अन्नके प्रकाशके अर्थ (सम्मार्ज्मि) भली प्रकार शोधता हूँ, क्योंकि मार्जन करे हुए सुव में आज्य के ग्रहण करने और होम करने से अग्निदेवता प्रज्वलित होता है । उसमें आहुति देने से तिस आहुति का फलरूप अन्न प्रकाशित [उत्पन्न होता है] । छठे मन्त्र को पढ़कर सम्मार्जन करे हुए जुहू, उपभृत और ध्रुवनामक तीन घुच् (बटके पत्रकी समान आकृति वाला बाहुकी बराबर विद्धकत काष्ठका यज्ञका पात्र) का मार्जन करके भत्येक को चौथे और पांचवें मन्त्रको पढ़ कर अग्निपर तप्त कर २ के वेदी में स्थापन करने के निमित्त अध्वर्यु को देय चौथे और पांचवें मन्त्रका अर्थ ७वीं कण्डिका में कहे अनुसार जानना और छठे मन्त्रका अर्थ इसी कण्डिका के तिसरे मन्त्रकी समान जानना ॥ २९ ॥

अदित्यै रास्तासि । विष्णोर्विष्योऽसि । ऊर्जे त्वा ।

अर्द्धेन त्वा चक्षुषा च पश्यामि । अग्नेर्जिह्वासि सुहृ-
द्वेभ्यो धाम्ने धाम्ने मे भ्रुव यजुषे यजुषे ॥ ३० ॥

इस कण्डिका में चार मंत्र हैं, मथम “अदित्यै रास्तासि” मंत्र का प्रा० पर० ऋषि, याजुषी गायत्री छन्द, योक्त देवता और मुंज की रज्जुसे यजमानकी स्त्री की कमर को युक्त करने में विनियोग है । दूसरे “विष्णोर्विष्योऽसि” मंत्र का प्राजापत्य परमेशी ऋषि देवी, पंक्ति छन्द, योक्त देवता और कमर की रज्जु

को दक्षिणके पाश को उत्तर की ओर कमर में लगानेमें विनियोग है। तीसरे "ऊर्जे त्वा" मंत्र का मा० पर० ऋषि, देवी अनुष्ण छन्द, आज्य देवता और घृतपात्र को अग्निपर से उतारने में विनियोग है। चौथे "अदब्धेन त्वा चक्षुषावपरयामि अग्नेर्जिह्वासि सुहृदेभ्यो धाम्ने धाम्ने भव यजुषे यजुषे" मंत्रका मा० पर० ऋषि, यजुः, आज्य देवता और पत्नी के घृणावलोकन करने में विनियोग है ॥ प्रथम मंत्र को पढ़ कर, अग्नीध्र योक्त (तीन बल की मुंज की मेखला) से, गार्हपत्य अग्नि के दक्षिण में ईशान कोण को मुख करके बैठी हुई यजमान की भार्या की नाभि से नीचे कमर में प्रदक्षिण लपेटें, मंत्रका अर्थ यह है कि—हे मुंजकी मेखला तू (अदित्यै) भूमि की (रास्ना) मेखला (अस्ति) है। दूसरे मंत्र को पढ़ कर, तिस मेखला के दक्षिण पाश (सिरे) को शंकुस्थानीय (गुण्डी युक्त) दूसरे पाश (सिरे) में दो लपेटों से उरस कर ऊपर को उद्गूहन कर, मंत्र का अर्थ यह है कि—हेदक्षिण पाश ! तू (विष्णोः) यज्ञ का (वेपथः) व्यापक (अस्ति) है। तीसरे मंत्र को पढ़ कर घृत को अग्निपर से नीचे उतार कर यजमान की स्त्री के सम्मुख रखकर कहै कि—हेयजमान की पत्नी, घृतको अवलोकन कर, मंत्रका अर्थ यह है कि—हेघृत ! (त्वा) तुझको (ऊर्जे) उत्तम रसकी प्राप्ति के अर्थ । अग्निपर से तायकर उतारता हूँ (क्योंकि ताय हुआ घृत दोषरहित होनेके कारण अति स्वादरस युक्त होता है) । चौथे मंत्र को पढ़ते समय यजमान की स्त्री घृतको देखै, मंत्र का अर्थ यह है कि—हे घृत (त्वा) तुझको (अदब्धेन) अधोमुखी होकर नीरोग (चक्षुषा) नेत्रों से (अवपरयामि) अवलोकन करती हूँ, हेघृत ! तू (अग्नेः) अग्निकी (जिह्वा) जिह्वा रूप है, (क्योंकि अग्नि में घृतका हवन करनेपर जिह्वा की समान ज्वाला उत्पन्न होती है) तुम (देवेभ्यः) देवताओं की प्रसन्नता के निमित्त (सुहृः)

॥ से हमेजानेवाले (अस्ति) हो, अथवा तुम अग्नि की

जिन्हा हो कि—जिसके द्वारा देवगाओं का आवाहन होता है, (क्योंकि—यज्ञमें घेदके मंत्रों से प्रज्वलित हुई अग्नि की ज्वालाको देखकर देवता आते हैं) अतः हे घृत यज्ञकी आहुतियों में उत्तमता से साधनरूप होकर तू (मं) मेरे (धाम्ने धाम्ने) सब यागों के फलों के उपभोग के स्थानों की प्राप्ति कराने के अर्थ और (यजुषे यजुषे) तिम २ यागकी सिद्धि कराने के अर्थ [समर्थ] (भव) हो ३०

सवितुस्त्वा प्रसव उत्पुनाम्यच्छिद्रेण पवित्रेण सूर्यस्य रश्मिभिः। सवितुर्वः प्रसव उत्पुनाम्यच्छिद्रेण पवित्रेण सूर्यस्य रश्मिभिः। तेजोऽसि शुक्रमस्यमृतमसि धाम नामासि भियं देवानामनाघृष्टं देवयजनमसि ॥ ३१ ॥

इस कण्डिका में चार मंत्र हैं, प्रथम “सवितुस्त्वा प्रसव उत्पुनाम्यच्छिद्रेण पवित्रेण सूर्यस्य रश्मिभिः” मंत्र का प्राजापत्य परमेष्ठी ऋषि, साम्नी जगती छन्द, आज्य देवता और घृतको पवित्र करने में विनियोग है। दूसरे “सवितुर्वः प्रसव उत्पुनाम्यच्छिद्रेण पवित्रेण सूर्यस्य रश्मिभिः” मंत्र का प्राजापत्य परमेष्ठी ऋषि, प्राजापत्या पंक्ति छन्द, आपो देवता और मोक्षणके जल का शोधन करने में विनियोग है। तीसरे “तेजोऽसि शुक्रमस्यमृतमसि” मंत्र का प्राजापत्य परमेष्ठी ऋषि, याजुषी त्रिष्टुप् छन्द आज्य देवता और घृतके अवलोकन में विनियोग है। चौथे “धाम नामासि भियं देवानामनाघृष्टं देवयजनमसि” मंत्र का प्राजापत्य परमेष्ठी ऋषि, आर्ची उष्णिक् छन्द, आज्य देवता और सुवे से घृत को ग्रहण करने में विनियोग है। प्रथम मंत्र को पढ़कर घृत को पवित्र करा जाता है, मंत्र का अर्थ यह है कि—(सवितुः) सविता देवता की (प्रसवे) आज्ञा में वर्तमान होनेपर मैं हे घृत (त्वा) तुझको (अच्छिद्रेण) वायुरूप (पवित्रेण) पवित्रा और (सूर्यस्य) सूर्य की (रश्मिभिः) किरणोंसे (उत्पुनामि) पवित्र करता हूँ। द्वितीय मंत्र को पढ़कर मोक्षण का जल शोधजाता है, मंत्र का अर्थ यह है कि—हे जलों ! (सवितुः) सर्वमेरक देव

की (प्रसवे) मेरणा होनेपर मैं (वः) तुमको (अच्छिद्रेण) वायुरूप (पवित्रेण) पवित्रा और (सूर्यस्य) सूर्यकी (रश्मिभिः) किरणों से (उत्पुनामि) पवित्र करता हूँ । तीसरे मंत्रको पढ़कर घृत का अवलोकन किया जाता है, मंत्र का अर्थ यह है कि—हे आज्य ! तू (तेजः) शरीर की कान्ति का हेतु होने से तेजःस्वरूप (असि) है (अथवा गीता के भगवद्चनानुसार भगवान् की विभूति है) दीप्तिमान् अथवा वर्षा अन्नादि की उत्पत्ति का हेतु होने से वीर्यरूप है, (अमृतम्) अमृत (चिरकाल पर्यन्त निर्दोष रहनेवाला) (असि) है अथवा अमृत की समान देवताओं को तृप्ति देनेवाला है, अथवा पूर्ण मंत्र का ऐसा वाक्यार्थ समझना कि—जो घृत का भक्षण, दान वा हवन करता है उसको घृताभि मानी देवता, तेज, वीर्य और अमृत (चिरकालस्थायित्व) देता है । चौथे मंत्र को पढ़कर एक सुवे में घृत लेय और तीन सुवे में बिना मंत्र बोले मौन होकर घृत लेय, मंत्रका अर्थ यह है कि—हे आज्य ! तू (धाम) धाम (देवताओं की चित्त की वृत्ति के धारण होने का स्थान) (असि) है (नाम) नाम (सकल जीवों को अपनी ओर भुक्ताने वाला) (असि) है क्योंकि घृतको देवकर भोजन करनेके लिये सब नमते है) (देवानाम्) देवताओंका (मियम्) मिय (अनाधृष्टम्) यज्ञ में विघ्न करनेवाले राक्षसों करके अभतिहत (देवयजम्) देवताओं के याग का साधन (असि) है, इस कारण मैं तुम्हको ग्रहण करता हूँ ॥ ३१ ॥

इतिथी शुक्लयजुर्वेदान्तर्गत माध्यान्दिनीयशाखाद्येतु भारद्वाजगोत्रो
 द्भूतगौरवशावतेसश्रीमद्गोलानाथात्मजरामस्वरूपशर्मा द्वारा प्राचीन
 ख्वटग्रहोपरपदि भाष्यों के अनुसार सम्पादित अन्वय पदार्थ
 और भावार्थ सहित शुक्ल यजुर्वेदकी माध्यन्दिनीय शाखाकी
 आज्यब्रह्मण्य प्रथम अध्याय समाप्त,

द्वितीयोऽध्यायः ।

कृष्णोऽस्याखरेष्टोऽग्नये त्वा जुष्टं प्रोक्षामि । वहिरसि
 वहिषे त्वा जुष्टं प्रोक्षामि । वहिरसि सुग्भ्यस्त्वा
 जुष्टं प्रोक्षामि ॥ १ ॥

इस कण्डिका में तीन मंत्र हैं, प्रथम "कृष्णोऽस्याखरेष्टोऽग्नये त्वा जुष्टं प्रोक्षामि," मंत्र का मा० पर० ऋषि, आसुरी उष्णिक् छन्द, इध्म देवता, इध्ममोक्षण में विनियोग है । दूसरे वेदिरसि वहिषे त्वा जुष्टं प्रोक्षामि,, मंत्र का मा० पर० ऋषि, आसुरी अनुष्टुप् छन्द, लिङ्गोक्त देवता और वेदी के मोक्षण में विनियोग है । तीसरे वहिरसि सुग्भ्यस्त्वा जुष्टं प्रोक्षामि,, मन्त्रका मा० पर० ऋषि, मात्रापत्य उष्णिक् छन्द, लिङ्गोक्त देवता और कुशमोक्षण में विनियोग है । प्रथम मन्त्रको पढ़कर इध्म (ईधन-काष्ठ) का मोक्षण कियाजाता है मन्त्रका अर्थ यह है कि—हे इध्म-तू (आखरेष्टः) स्वर्ग देनेवाले आहवनीय अग्निमें स्थित, (कृष्णः) कृष्णमृगरूप यज्ञ(असि) है, अग्निके अर्थ(जुष्टम्) प्रिय (त्वा) तुझको (प्रोक्षामि) शुद्धिके निमित्त जलसे मोक्षण करता हूँ। दूसरे मन्त्रको पढ़कर वेदीका मोक्षण कियाजाता है, मन्त्रका अर्थ यह है कि—हे वेदी तुम (वेदीः) असुरों से देवताओं को प्राप्त होने के कारण वेदी नाम-वाली (असि) हो(वहिषे)वहिके अर्थ (जुष्टम्) प्रिय (त्वा) तुझको (प्रोक्षामि) मोक्षण करता हूँ । तीसरे मन्त्रको पढ़कर, वेदी में पूर्वग्रन्थि करके कुशों का मोक्षण करे, मन्त्रका अर्थ यह है कि—हे दर्म ! (वहिः) बहुत होने से वेदी की शुद्धि करने में समर्थ (असि) हो (सुग्भ्यः) सुचों के धारणार्थ (जुष्टम्) प्रिय (त्वा) तुझको (प्रोक्षामि) मोक्षण करता हूँ ॥ १ ॥

अदित्येऽव्युन्दनमसि विष्णोस्तुपोऽसि । जूर्णमूदसं त्वा नमः
 स्तृणामि स्वासस्थां देवेभ्यः । भुवपतये स्वाहा । भुव-
 नपतये स्वाहा । भूतानां पतये स्वाहा ॥ २ ॥

इस कपिडका में छः मंत्र हैं, प्रथम "अदित्यै व्युन्दनमसि" मंत्रका मा० पर० ऋषि, मांजापत्या गायत्री छन्द आपो देवता और मोक्षणावशिष्ट जल को कुशाओं के पूले की मूल पर डालने में विनियोग है । द्वितीय "विष्णोस्तुपोऽसि" मंत्रका मा० पर० ऋषि, देवी पंक्ति छन्द, मस्तारो देवता और मस्तरग्रहण में विनियोग है । तृतीय "ऊर्णभ्रदसं त्वा स्तृणामि स्वासस्थां देवेभ्यः" मंत्र का मा० पर० ऋषि, आसुरी गायत्री छन्द, वेदि देवता और वेदी को कुशाओं से आच्छादन करने में विनियोग है । चतुर्थ "भुवपतये स्वाहा" मंत्र का मा० पर० ऋषि, देवी जगती छन्द, अग्निदेवता स्कन्न के स्पर्श में विनियोग है । पंचम "भुवनपतये स्वाहा" मा० पर० ऋषि, मांजापत्या गायत्री छन्द, अग्निदेवता और स्कन्न को स्पर्श करने में विनियोग है । छठे "भूमानां पतये स्वाहा" मंत्र का मा० पर० ऋषि, मांजापत्या गायत्री छन्द, अग्नि देवता और स्कन्न को स्पर्श करने में विनियोग है । प्रथम मंत्र को पढ़कर मोक्षण से बचेहुए जल को कुशाओं के पूले की जड़ में डाले; मंत्रका अर्थ यह है कि—हे मोक्षणशेषजल के अभिमानी देव! तुम (अदित्यै) भूमि को (व्युन्दनम्) विशेष करके आर्द्र करनेवाले (असि) हो । दूसरे मंत्र को पढ़कर कुशाओं के पूले को खोल कर पूर्वभाग से मस्तर को ग्रहण कर मंत्रका अर्थ यह है कि—हे दर्भ के पूलेरूप मस्तर तुम (विष्णोः) यज्ञपुरुष की (स्तुपः) शिखा (असि) हो । तीसरे मंत्र को पढ़कर वेदीके ऊपर कुशाओं को बिछावे, मंत्रका अर्थ यह है कि—हे वेदी (ऊर्णभ्रदसम्) जिस प्रकार स्वामी के बैठालने को भूमि ऊर्णासन बिछाकर कोमल करीजाती है तिसीप्रकार (देवेभ्यः) देवताओं के अर्थ (स्वास स्याम्) मुखपूर्वक स्थिति होने के लिये (त्वा) तुम्हें को कुशाओं से (स्तृणामि) आच्छादन करता हूँ । चौथे पांचवें और छठे मंत्र को पढ़कर स्कन्न (हविको ग्रहण करतेसमय जो परिधि

* परिकाल में अग्नि के आता उपकार के मय से भूमि में प्रवेश कराने, मंत्र

से बाहर गिरा हो उस) को स्पर्श करा जाता है, चतुर्थ मंत्र का अर्थ यह है कि—यह स्कन्न हवि अग्नि के प्रथम भ्राता (भुवंपतये) भुवंपति के अर्थ (स्वाहा) दिया । पंचम मंत्र का अर्थ यह है कि यह स्कन्न हवि अग्नि के द्वितीय भ्राता (भुवनपतये) भुवनपति के अर्थ (स्वाहा) दिया । छठे मंत्र का अर्थ यह है कि—यह स्कन्न हवि अग्नि के तृतीय भ्राता (भूतानां पतये) भूतपति के अर्थ (स्वाहा) दिया ॥ २ ॥

गन्धर्वस्त्वां विश्वावसुः परिदधातु विश्वस्यारिष्ट्यै यजमानस्य परिधिरस्यग्निरिड ईडितः । इन्द्रस्य बाहुरसि दक्षिणो विश्वस्यारिष्ट्यै यजमानस्य परिधिरस्यग्निरिड ईडितः । मित्रावरुणौ त्वोत्तरतः परिधत्तां ध्रुवेण धर्मणा विश्वस्यारिष्ट्यै यजमानस्य परिधिरस्यग्निरिड ईडितः ३

इस कण्डिका में तीन मन्त्र हैं, “ प्रथमं गन्धर्वस्त्वा विश्वावसुः परिदधातु विश्वस्यारिष्ट्यै यजमानस्य परिधिरस्यग्निरिड ईडितः ” मंत्र और द्वितीय “ इन्द्रस्य बाहुरसि दक्षिणो विश्वस्यारिष्ट्यै यजमानस्य परिधिरस्यग्निरिड ईडितः ” मंत्र तथा तीसरे “ मित्रावरुणौ त्वोत्तरतः परिधत्तां ध्रुवेण धर्मणा विश्वस्यारिष्ट्यै यजमानस्य परिधिरस्यग्निरिड ईडितः,, मंत्र का प्रा० पर० ऋषि, यजुः, परिधि देवता और क्रमसे पश्चिम दक्षिण और उत्तर में तीनों परिधियों के स्थापन में विनियोग है । प्रथम मन्त्र को पढ़कर पश्चिमदिशामें परिधि को स्थापन करा जाता है, मन्त्र का अर्थ यह है कि—हे परिधिदेव । (विश्वावसुः) विश्वा-

के दुःख से अग्नि भी भागकर जलमें प्रवेश करगया, तब देवताओं ने अग्नि को लाकर उसके अधिकार में स्थापित किया, उससमय अग्नि ने कहा कि मेरे भ्राताओं को मेरे पास ही चारों ओर रक्खो, और इनको यज्ञ का भाग दो, उससमय से यह अग्नि के भ्राता परिधिरूप हुए और स्कन्न (गिराहुआ) हवि उनका भाग हुआ । यह कथा गतगथ १ । ३ । ३ । १३-१६ में लिखी है ॥

वसु (सर्वत्र निवास करनेवाला) * (गन्धर्वः) गन्धर्व (विश्वस्य)
 आहवनीय अग्नि के सकल स्थान को (अरिष्ट्यै) रक्षा के निमित्त
 (त्वा) तुमको (परिधायु) पश्चिम दिशामें सर्वत्र स्थापन करै,
 जिससे राक्षस उस स्थान में प्रविष्ट होकर विघ्न न करै, तुम केवल
 आहवनीय अग्नि के ही परिधि नहीं हो किंतु तुम (यजमानस्य) यज
 मान की भी रक्षा के लिये (परिधिः) पश्चिम दिशा में स्थापन कर
 हुए हो । तुम (इडः) स्तुति के योग्य और (ईडितः) होता आदि
 करके स्तुति (अग्निः) ?
 को स्थापन

धिदेव तुम (विश्वस्य) सकल विघ्नों की (अरिष्ट्यै) शान्ति करने
 के निमित्त (इन्द्रस्य) इन्द्र के (दक्षिणः) दक्षिण (वाहुः) बाहु की
 समान समर्थ (अग्निः) हो, तथा (यजमानस्य) यजमान के भी
 (परिधिः) रक्षक (अग्निः) हो, तुम (इडः) स्तुति के योग्य और
 (ईडितः) होता आदि करके स्तुति करे हुए (अग्निः) भुवनपति
 नामक अग्नि के द्वितीय भ्राता (अग्निः) हो । तीसरे मंत्र को पढ़
 कर उत्तर दिशा में तीसरे परिधि को स्थापन करा जाता है, मंत्र
 का अर्थ यह है कि—हे तीसरे परिधिदेव ! (मित्रावरुणौ) वायु
 आदित्य देवता, (विश्वस्य) सकल विघ्नों की (अरिष्ट्यै)
 शान्ति के लिये (त्वा) तुमको (ध्रुवेण) निश्चलता के साथ
 (धर्मणा) धारण करके (उत्तरतः) उत्तर दिशा में (परिधत्ताम्)
 स्थापन करै, तुम (यजमानस्य) यजमान के भी (परिधिः) रक्षक
 (इडः) स्तुति के योग्य और (ईडितः) होता आदिको करके
 स्तुति करे हुए (अग्निः) भूतपति नामक अग्नि के तीसरे भ्राता
 (अग्निः) हो ॥ ३ ॥

३. धीतिहोत्रं त्वा कवे शुमन्तु ७३ समिधीमहि अग्ने बृ-
 हन्तामध्वरे ॥ ४ ॥

* बुलाके ये स्थित लोग की रक्षा करने के लिये उनके समीप में सर्वत्र गन्धर्व कलता
 था यह शतपथ की धृति में कथा है ।

। इस मंत्र का प्राजापत्य परमेष्ठी ऋषिः गायत्री छंद अग्नि देवता और परिधि को स्पर्श कर समिधा को अग्नि में छोड़ने में विनियोग है । इस मंत्र को पढ़कर समिधा से परिधि को स्पर्श कराकर अग्नि में छोड़ें मंत्र का अर्थ यह है कि—(कवे) हे भूत भाविष्य और दूरवर्ति पदार्थों के प्रतिक्षण जाननेवाले कवि (अग्ने) भगवान् अग्निदेव ! हवन करने से—(वीतिहोत्रम्) यजमान को पुत्र पौत्र पशु धनादि समृद्धि प्राप्त कराने वाले (धुमन्तम्) स्वतः प्रकाशवान् (बृहन्तम्) महान् (त्वा) तुमको (अश्वरे) इस यज्ञ में । यजमान को पुत्र पौत्र पशु धनादि समृद्धि की प्राप्ति के निमित्त (सामिधीमहि) ईधन के काष्ठ से हम प्रज्वलितकते हैं ॥ ४ ॥

समिदसि । सूर्यस्त्वा पुरस्तात्पातु कस्याश्चिदभिशस्त्यै । सवितुर्वाहस्थः । ऊर्णमृदसं त्वा स्तृणामि स्वासस्थं देवेभ्यः । आ त्वा वसवो रुद्रा आदित्याः सदन्तु ॥

। इस काण्डिका में पाँच मंत्र हैं, मयम “समिदसि” मंत्र का प्रा० पर० ऋषि, देवी बृहती छंद अग्नि देवता और परिधि को विना स्पर्श करे दूसरी समिधा को अग्नि में छोड़ने में विनियोग है । दूसरे “सूर्यस्त्वा पुरस्तात्पातु कस्याश्चिदभिशस्त्यै” मंत्र का प्रा० पर० ऋषि, आसुरी, गायत्री छंद, लिङ्गोक्त देवता और अग्नि को देखते हुए इस मंत्र का जप करने में विनियोग है । तीसरे “सवितुर्वाहस्थः मंत्र का प्रा० पर० ऋषि, याजुपी गायत्री छंद, विधृति देवता और दो कुशों को उत्तराय स्थापन करने में विनियोग है । चौथे “ऊर्णमृदसं त्वा स्तृणामि स्वासस्थं देवेभ्यः” मंत्र का प्राजापत्य पर० ऋषि, आसुरी गायत्री छंद, मस्तर देवता और कुशों पर मस्तर को स्थापन करने में विनियोग है । पाँचवें “आ त्वा वसवो रुद्रा आदित्याः सदन्तु” मंत्र का प्रा० पर० ऋषि आसुरी गायत्री छंद, मस्तर देवता और मस्तर पर दोनों हाथ रखने में विनियोग है । मयम मंत्र को पढ़कर परिधिको विना स्पर्श करे अग्नि में दूसरी समिधा छोड़े, मंत्र का अर्थ यह है कि—हे

सामेवात् (समिद्) अग्नि को दीप्त करने वाला (आसे) है। दूसरे मंत्र को अध्वर्यु बैठकर आहवनीय अग्नि को देखता हुआ पढ़े, मंत्र का अर्थ यह है कि—हे आहवनीय अग्ने ! (पुरस्तात्) पूर्वदिशा में (सूर्यः) सूर्य (त्वा) तुम को (कस्थाधित्) किसी (अभिशास्त्यै) हिंसाओंसे (पातु) रक्षा करे (तीनों दिशाओं में तीन परिधि रक्षक हैं, इस कारण शेष पूर्व दिशामें सूर्य को रक्षक कहा, इसही विषय को 'गुप्त्यै वा अभितः परिधयो भवन्त्यथैतत्सूर्यमेव पुरस्ताद् गोप्तारं करोति, महशतपथ १. ३। ४। ८ की श्रुति कहती है)। तीसरे मंत्र को पढ़कर दो कुशा के तृणमस्तर को स्थापन करने के लिये उत्तर को अग्रभाग रहै इस प्रकार स्थापन करे, मंत्र का अर्थ यह है कि हे कुशातृणों—तुम दोनों (सवितुः) सविता की (वाह) वाहुरूप (स्यः) हो। चौथे मंत्र को पढ़कर उन दोनों कुशाओं पर प्रसार विद्वावै, मंत्र का अर्थ यह है कि—हेमस्तर ! (ऊर्णम्रसम्) उनकी समान कोमल (स्वासस्यम्) देवताओंके सुवासनरूप (त्वा) तुम्हें (स्तृणाभि) विद्धाता हूँ। पांचवें मंत्र को पढ़कर मस्तर पर दोनों हाथ रखवै, मंत्र का अर्थ यह है कि हेमस्तर ! मातः माध्यन्दिन और तृतीय इन तीनों सवनों के अभिमानी (वसवः) वसु, (रुद्राः) रुद्र और (आदित्याः) आदित्य देवता (त्वा) तुम्हें (आसदन्तु) सर्वतः फैलावें ॥ ५ ॥

घृताच्यसि जुहर्नाम्ना सेदं प्रियेण धाम्ना प्रियं सद आसीद । घृताच्यस्युपभृन्नाम्ना सेदं प्रियेण धाम्ना प्रियं सद आसीद । घृताच्यसि घृवा नाम्ना सेदं प्रियेण धाम्ना प्रियं सद आसीद । प्रियेण धाम्ना प्रियं सद आसीद । घृवा असदन्नृतस्य योनौ ता विष्णो पाहि । पाहि यज्ञम् । पाहि यज्ञपतिम् । पाहि मां यं ज्ञान्यम् ॥ ६ ॥

इस कण्डिका में छः मंत्र हैं, मध्यम 'घृताच्यसि जुहर्नाम्ना सेदं

भियेण धाम्ना भियञ्छसद् आसीद्' मंत्र का प्रा० पर० ऋषि, साम्नी त्रिष्टुप् छन्द, जुहू देवता और जुहू को प्रस्तरपर स्थापन करने में विनियोग है । दूसरे घृताच्यभ्युपभृत्नाम्ना सेदं भियेण धाम्ना भियञ्छसद् आसीद्' मन्त्र का प्रा० पर० ऋषि, साम्नी त्रिष्टुप् छन्द, उपभृत् देवता और प्रस्तरपर उपभृत् को स्थापन करने में विनियोग है । तीसरे घृताच्यसि ध्रुवा नाम्ना सेदं भियेण धाम्ना भियञ्छसद् आसीद्' मन्त्र का प्राजापत्य पर० ऋषि, साम्नी त्रिष्टुप् छन्द, ध्रुवा देवता और ध्रुवा को प्रस्तरपर स्थापन करने में विनियोग है । चौथे 'भियेण धाम्ना भियञ्छसद् आसीद्' मन्त्र का प्रा० पर० ऋषि याजुषी जगती छन्द हविर्देवता और हवियों को वेदीपर स्थापन करने में विनियोग है । पांचवें "ध्रुवा असदन्वृतस्य योनौ ता विष्णो पाहि पाहि यज्ञम् पाहि यज्ञपतिम्' मन्त्र का प्रा० पर० ऋषि ध्रु, विष्णुदेवता और सबका स्पर्श करने में विनियोग है । छठे 'पाहिमां यज्ञन्यम्' मन्त्र का प्रा० पर० ऋषि, याजुषी गायत्री छन्द, विष्णुदेवता और अपने को स्पर्श करने में विनियोग है ।

प्रथम मंत्रको पढ़कर जुहू को ग्रहण कर प्रस्तरपर स्थापन करै मंत्रका अर्थ यह है कि—हे जुहू ! तुम (घृताची) घृतसे पूर्ण (नाम्ना) नाम करके प्रसिद्ध (जुहूः) तुम्हारे द्वारा हवन किया जाता है, इसकारण जुहू नामवाले (असि) हो । (सा) ऐसे तुम (भियेण) देवताओं के भिय (धाम्ना) घृत करके सहित (इदम्) इस (भियम्) भियं (सदः) प्रस्तररूप स्थानपर (आसीद्) स्थित होवो । दूसरे मंत्रको पढ़कर उपभृत् को ग्रहण कर प्रस्तरपर स्थापन करै, मंत्रका अर्थ यह है कि—हे उपभृत् ! तुम (घृताची) घृत से पूर्ण (नाम्ना) नाम करके प्रसिद्ध (उपभृत्) समीप में स्थित होकर घृत को ग्रहण करनेवाले (असि) हो । (साः) वह तुम (भियेण) देवताओं के भिय (धाम्ना) घृत करके सहित (इदम्) इस प्रस्तररूप (सदः) स्थानपर (आसीद्) स्थित होवो । तीसरे मंत्र को पढ़कर ध्रुवा को ग्रहण कर प्रस्तरपर स्थापन करै, मंत्र

का अर्थ यह है कि—हे ध्रुव तुम (घृताची) घृत से पूर्ण (नाम्ना) नामकरके मसिद्ध (अभि) हो । (ध्रुवा) निश्चल अर्थात् जुहूँ और उषमृत् की समान चलायमान नहीं (असि) होते हो [इसकारण तुम्हारा नाम ध्रुवा है], (सा) वह तुम (भियेण) देवताओं के भिय (धाम्ना) घृत करके सहित (इदम्) इस मस्तरूप (भियम्) भिय (सदः) स्थानपर (आसीद) स्थित होवो । चौथे मंत्रको पढ़कर आज्यस्थाली पुरोडाशादि हवि को वेदी के विषे स्थापित करै, मन्त्रका अर्थ यह है कि—हे हवि ! (भियेण) देवताओं के भिय (धाम्ना) घृत करके सहित (इदम्) इस (भियम्) भिय (सदः) स्थानपर (आसीद) स्थित होवो ।

पाँचवें मन्त्रको पढ़कर सबको स्पर्श करै, मन्त्र का अर्थ यह है कि (ऋतस्य) अवश्य फल युक्त होने के कारण सत्यरूप यज्ञके (धोनौ) स्थान में जो हवि (असदन्) हे, (विष्णो) हे व्यापक यज्ञ-पुरुष विष्णुभगवान् (ताः) उन हवियों को (पाहि) रक्षा करो, (यज्ञम्) यज्ञ को (पाहि) रक्षा करो, (यज्ञपतिम्) यजमान को (पाहि) रक्षा करो । छठे मंत्रको पढ़कर अध्वर्यु अपने हृदय को स्पर्श करै, मंत्रका अर्थ यह है कि—हे विष्णुभगवन् (यज्ञन्यम्) यज्ञ करानेवाले (माम्) मुझ अध्वर्यु को (पाहि) रक्षा करो ॥६॥
 अग्ने वाजजिद्राजं त्वा सरिप्यन्तं वाजजितं सम्मार्जिम ।
 नमो देवेभ्यः । स्वधा पितृभ्यः । सुयमे मे भू-
 योस्तम् ॥७॥

इस काण्डका में चार मन्त्र हैं, भयम 'अग्ने वाजजिद्राजं त्वा सरिप्यन्तं वाजजितं सम्मार्जिम' मन्त्र का मा० पर० ऋषिः ब्रजुः अग्निदेवता और अग्नि के मार्जन में विनियोग है । दूसरे 'नमो देवेभ्यः' मंत्रका मा० पर० ऋषिः, देवी पंक्ति छंद, देवा देवता और अञ्जलि करने में विनियोग है । तीसरे 'स्वधा पितृभ्यः' मंत्रका माजापत्य परमेष्ठी ऋषि, देवी पंक्ति छन्द, पितर देवता और दक्षिण को उत्तान अञ्जलि करने में विनियोग है । चौथे

‘सुयमे मे भूयास्तम्’ मंत्रका प्रा० पर० ऋषि, आर्ची उपिण्क् ब्रह्म जुहूपभृत् देवता और जुहू उपभृत् को ग्रहण करने में विनियोग है। प्रथम मंत्र को पढ़कर इन्धन के बाँधने के वेत् (जने) से दक्षिण उत्तर और पश्चिम की परिधियों के समीप तीन तीनों नैऋत नैऋत नैऋत अग्नि का मार्जन करे, मंत्रका अर्थ यह है कि—(वाजजित्) हे अन्न को जीतनेवाले (अग्नेः) अग्निदेव ! (अन्नम्) अन्नको (सरिष्यन्तम्) सम्पादन करने में उपयुक्त (वाजजित्) अन्न के प्रतिबन्ध का निवारण करनेवाले (त्वा) तुमको (सम्मार्जिम) सम्मार्जन करता हूँ ॥

दूसरे मंत्र को पढ़कर पूर्व दिशा की ओर को हाथ जोड़े, मंत्र का अर्थ यह है कि—(देवेभ्यः) जो देवता इस यज्ञरूप अनुष्ठान का ऊपर अनुग्रह करते हैं उनको (नमः) नमस्कार काता हूँ। तीसरे मंत्र को पढ़कर दक्षिण दिशा की ओर को ऊपर को हाथ जोड़े जाते हैं, मंत्र का अर्थ यह है कि—(पितृभ्यः) जो पालन करने वाले पिता हैं, उनके अर्थ (स्वधा) स्वधा हो अर्थात् उनको जो देना योग्य है सो दूँगा। चौथे मंत्र को पढ़कर जुहू और उपभृत् को ग्रहण करे, मंत्र का अर्थ यह है कि—जुहू और उपभृत् (मे) मे (निमित्त (सुयमे) भली प्रकार सावधान (भूयास्तम्) होवो जिससे कि अनुष्ठान में तुम्हारे विषे धारण कराहुआ घृत गिरै नहीं, तुम्हारे अभिमानी देव तुमको ऐसी शक्ति दें ॥७॥

अक्कन्नमद्य देवेभ्य आज्यं सन्ध्रियासम् । अङ्घ्रिणां
विष्णो मा त्वाक्कमिपम् । वसुमतीमग्ने ते छायाः
सुपस्थेपं विष्णो स्थानमसि । इत इन्द्रो वीर्यमकृणोः
दूर्ध्वोऽध्वरं आस्थात् ॥ ८ ॥

इस कण्डिका में ‘अक्कन्नमद्य देवेभ्य आज्यं सन्ध्रियासम्’ पूर्व मंत्रका शेष है, इससे आगे प्रथम ‘अङ्घ्रिणां विष्णो मा त्वाक्कमिपम्’ मंत्रका प्रा० पर० ऋषि, याजुषी त्रिष्टुप् ब्रह्म, विष्णु देवता और दक्षिणांतिकमण्य में विनियोग है। दूसरे ‘वसुमती-

मंजने ते छायांमुपस्थेपं विष्णोः स्थानमसि' मंत्रका मा० पर० ऋषि
 यजुः अग्नि देवता और अस्थान में विनियोग है । तीसरे 'इत
 इन्द्रो वीर्यम्' इन्द्र देवता और हवन करने में विनियोग है । प्रथम मंत्रके
 शेष का अर्थ यह है कि—तुम्हारे सांवाधान होनेपर (अथ) आत्र
 इस अनुष्ठान के दिनमें (देवेभ्यः) देवताओं के उपकारके नि-
 मित (आज्यम्) घृत तुममें (अस्कन्नम्) जैसे भूमिमें न गिरै
 तिस प्रकार (सम्भ्रयासम्) धारण करता हूँ । प्रथम मंत्र को
 पढ़कर दक्षिण दिशा अर्थात् यजन के स्थान को गमन करै, मंत्र
 का अर्थ यह है कि—(विष्णोः) हे व्यापक यज्ञपुरुष विष्णु भगवन् ! मैं
 (अद्विष्टा) चरण करके (त्वा) तुमको (भावक्रमिषम्) अव-
 क्रमण न करूँ अर्थात् चरण से तुमको उल्लंघन करनेका दोष मुझ
 को न हो । दूसरे मंत्र को पढ़कर यजनस्थान में ईशान को मुखकरके
 बैठे, मंत्रका अर्थ यह है कि—(अग्ने) हे अग्निदेव ! (ते)
 तुम्हारी (छायाम्) छाया की समीपवर्ती (वसुमतीम्) भूमिको
 (उपस्थेपम्) सेवन करूँ, हे भूमि तू (विष्णोः)
 यज्ञपुरुष का (स्थानम्) स्थान (असिः) है अर्थात् यहां
 बैठकर यज्ञ करने में समर्थ होते हैं, अथवा ऐसा अर्थ करना कि
 हे अग्निदेव ! मैं धनमाप्ति करानेवाले तुम्हारे आश्रय का सेवन
 करता हूँ क्योंकि—तुम यज्ञ पुरुष विष्णु का स्थान हो । तीसरे
 मंत्र को पढ़कर अग्नि में घृत का हवन करै मंत्र का अर्थ यह है कि—
 (इन्द्रः) इन्द्र (इह) इस देवयजन नामक स्थान से उद्युक्त होकर
 (वीर्यम्) शत्रुबधरूप वीर का कार्य (अकृणोत्) करता हुआ
 इस कारण ही (अध्वरः) यज्ञ (ऊर्ध्वम्) श्रेष्ठ (आस्थात्)
 माना गया है ॥ ८ ॥

अग्ने वेर्द्धां च वेर्द्ध्यम् । अर्वातां त्वां यावापृथिवी ।

अव त्वं यावापृथिवी सिंघ्रकुरेवेभ्य इन्द्र आज्येन

ऋषिषा भूत् स्वाहा । संज्योतिषा ज्योतिः ॥ ९ ॥

इसमें " अग्ने वेहोत्रं वेदृत्यम् अवतां त्वां धावापृथिवी अव त्वं
 धावापृथिवी स्विष्टकृदेवेभ्य इन्द्र आज्येन हविषा भूत् स्वाहा." यह पूर्व मंत्रका शेष है, और " संज्योतिषा ज्योतिः." मंत्र का
 मा० पर० ऋषि, याजुषी गायत्री छन्द, आज्यदेवता और जुहूस्प
 घृत को धुवा में टपकाने में विनियोग है ॥ भावार्थ—इसमें प्रथम
 मंत्र के शेष " अग्ने इत्यादि " का अर्थ यह है कि—(अग्ने) हे
 अग्निदेव ! तुम (होत्रम्) होताके कर्म को (वेः) जानो, और
 देवताओं के (दृत्यम्) दूत कर्म को (वेः) जानो (अर्थात् इस
 याग में दूतरूप * होकर देवताओं का भाग पहुंचाओ) (धावा
 पृथिवी) धुलोक और पृथिवी के अभिमानी देवता (त्वाम्)
 तुमको (अवताम्) रक्षा करें और तुम (धावापृथिवी) धुलोक
 तथा पृथिवी के अभिमानी देवताओं की (अव) रक्षा करो, इस
 प्रकार परस्पर रक्षा करने से (इन्द्रः) इन्द्रदेव इस याग में हमारे
 दियेहुए (आज्येन) घृतरूप हवि के द्वारा (देवेभ्यः) देवताओं
 के अर्थ (स्विष्टकृत्) शोभन इष्ट करनेवाले (भले प्रकार अभीष्ट
 भाग देनेवाले) (भूत्) हों अर्थात् हम जो २ भाग जिस २ देवता
 के अर्थ दें वह (स्वाहा) पूर्णाङ्गतापूर्वक उन सकल देवताओं को
 प्राप्त हो हमारा इन्द्रके उद्देश्य से होमाहुआ घृतरूप हवि सुहुत
 हो अर्थात् इन्द्र देवता को प्राप्त हो इस " संज्योतिषेत्यादि " मंत्रको
 पढ़कर जुहू नामक मुत्र मेंके घृत का विन्दु धुवा में डाले, मंत्रका
 अर्थ यह है, (ज्योतिषा) धुवा में स्थित घृतरूप ज्योति के साथ
 (ज्योतिः) टपकायाहुआ घृत (सङ्घ्नताम्) मिले ॥ ९ ॥
 मयीदमिन्द्रहृन्दियं दधात्वस्मान् रायोंसघवानः सच-
 न्ताम्, अस्माकं सन्त्वाशिषः सत्यानः सन्त्वाशिषः
 उपहृता पृथिवी मातोप मां पृथिवी माता ह्यताम्,
 अमिराग्नीधात् स्वाहा ॥ १० ॥

* होतृत्वं दूतत्वं धानेः कर्म तथा च श्रुतिः " उभयं वा एतदग्निदेवाना उ दै होता
 च मन्त्र " (तत् ० ११४ (१) ४) .

इस कण्डिका में दो मंत्र हैं, प्रथम " मयीदमिन्द्र इन्द्रियं दधा-
त्वस्मान् रायो भगवानः सचन्ताम्, अस्माकं सन्त्वाशिषः सत्वा
नः सन्त्वाशिषः " मंत्र का प्रा० पर० ऋषिः, यजुः, आशीर्देवता
और आशासन में विनियोग है । दूसरे " उपहृता पृथिवी मातोष
मां पृथिवी माता ह्वयताम्, अग्निरग्नीध्रात् स्वाहा " मंत्र का प्रा०
पर० ऋषिः, यजुः, पृथिवी, देवता और हविः, माशन में विनियोग है ।
प्रथम मंत्र को प्रधान याग के अनन्तर शेष पुरोडाश के माशन के
समय होता आशीर्वाद देय उस समय यजमान पढ़े, मंत्र का अर्थ
यह है कि— (इन्द्रः) परमेश्वर (इदम्) इस (इन्द्रियम्) इच्छित
वीर्य को (मयि) मुझ यजमान के विषय (दधातु) स्थापन करे,
(रायः) धन और (भगवानः) धनवान् (अस्मान्) हमको
(सचन्ताम्) सेवन करे, (अस्माकम्) हमको (आशिषः)
अभीष्ट अर्थ के आशीर्वाद (सन्तु) हों और वह (नः) हमारे
विषय के (आशिषः) आशीर्वाद (सत्याः) सत्य (सन्तु) हों।
होता के धावा पृथिवी का उपह्वान करते समय दोनों पुरोडाशों
में से एक २ अंशके छः छः भागकर आग्नीध्र को देवे और इस
दूसरे मंत्र को पढ़कर उनका भक्षण करे, मंत्र का अर्थ यह है कि—
(माता) जगत् का निर्माण करने वाली पृथिवी, (उपहृता)
मुझ से आवाहन की गई है, यह (मातां) मातारूप मानी हुई
(पृथिवी) पृथिवी (माम्) मुझको (उपह्वयताम्) शेषहवि के
भक्षण की आज्ञा देय में (आग्नीध्रात्) अग्नि का कर्म करनेवाला
होने के कारण (अग्निः) अग्निरूप (अग्नि देव करके अपनाया
हुआ) होकर तिस हविः शेष को भक्षण करता है, यह जाठराग्नि
में (स्वाहा) सुहृत हो ॥१०॥

उपहृतो यौष्पितोष मां यौष्पिता ह्वयताम् अग्निरग्नी-
ध्रात् स्वाहा । देवस्य त्वा सवितुः प्रसवेऽश्विनोर्बाहुभ्यां
पूष्णो हस्ताभ्यां प्रतिगृह्णामि अग्नेर्द्व्यास्येन प्राशामि ? ?
इस कण्डिका में चार मंत्र हैं, प्रथम " उपहृतो यौष्पितोष मां

द्यौःपिता ह्यन्तामग्निराग्नीध्रात् स्वाहा' मंत्र का प्रा० पर० ऋषि साप्त्री त्रिष्टुप् छन्द, द्यौर्देवता और द्वितीयवार माशन में विनियोग है। द्वितीय 'देवस्य त्वा सवितुः मसवेऽश्विनोर्बाहुभ्यां पूष्णो हस्ताभ्याम्' मंत्र का वृहस्पति * ऋषि प्राजापत्या वृहती छन्द, सविता देवता एवं तृतीय 'प्रतिग्रहणामि' मंत्र का वृहस्पति ऋषि, दैवी पंक्ति छन्द, माशित्रदेवता और द्वितीय तृतीय इन दोनों मंत्रों का स्वीकार करने में विनियोग है। चौथे 'अग्नेष्वास्येन माश्रामि' मंत्र का वृहस्पति ऋषि, प्राजापत्या गायत्री छन्द, माशित्र देवता और भक्षण में विनियोग है। प्रथम मंत्र को पढ़कर दूसरा भाग भक्षण किया जाता है, मंत्र का अर्थ यह है कि—(पिता) जगत् का पालन करनेवाला (द्यौः) स्वर्ग (उपहृता) मुझ से आवाहन किया गया वह (पिता) पितारूप भावना किया हुआ (द्यौः) स्वर्ग (माम्) मुझको (उपहृत्याम्) इस शेष हवि के भक्षण की आज्ञा देय, मैं (आग्नीध्रात्) अग्नि का कर्म करने वाला होने के कारण (अग्निः) अग्निरूप (अग्नि देवता करके अपनाया हुआ) होकर तिस हविः शेष को भक्षण करता हूँ, यह जाठराग्नि में (स्वाहा) सुहुत हो। दूसरे और तिसरे मंत्र को पढ़कर माशित्र को ग्रहण किया जाता है मंत्रों का अर्थ यह है कि—हे माशित्र ! (सवितुः) सविता (देवस्य) देवता की (मसवे) भरण होने पर मैं (अश्विनोः) अश्विनी कुमारों के बाहुओं की करी है भावना जिन में ऐसे (बाहुभ्याम्) बाहुओं करके और (पूष्णः) पूषा देवता के हस्तों करी है भावना जिन में ऐसे (हस्ताभ्याम्) हस्तों करके (त्वा) तुझको (प्रतिग्रहणामि) स्वीकार करता हूँ। चतुर्थ मंत्र को पढ़कर तिस ग्रहण करे हुए माशित्र को इस प्रकार भक्षण करे कि—दंतों से स्पर्श न हो, मंत्र का अर्थ यह है कि—हे माशित्र ! (अग्निः) अग्नि देवता के (आस्येन) मुख करके (त्वा) तुझको (माश्रामि)

* यहाँ से लेकर "अ प्रतिष्ठ" यहाँ पर्यन्त के मंत्रों को अग्रत्वं है, इन का आश्रित रत्न वृहस्पति ऋषि है।

स्येनं मसवेनापोहामि ॥ १५ ॥

इस कण्डिका में । अग्नीषोमयोरित्यादि । इन्द्राग्न्योरित्यादि । इन्द्राग्नी इत्यादि । यह तीन मन्त्र हैं, तीनों का प्राजापत्य ऋषि, छंद पहिले का यजुः, दूसरे का आर्षी उष्णिक्, तीसरे का आर्षी पंक्ति । और तीनों का लिङ्गोक्त देवता । पहिले मंत्र को पढ़कर यजमान जुहू को अपने स्थान पश्चिम से उठाकर पूर्व में रखे, और उपभृत् को पूर्व से उठाकर पश्चिम में रखे । मंत्र का अर्थ यह है कि—(अग्नीषोमयोः) द्वितीय पुरोडाश देवताओं के (उज्जितम्) निर्विघ्नता के साथ हविको स्वीकार करनेपर उत्तम बिजयको (अनु) अनुसरण करके (उज्जेषम्) उत्तम जयको प्राप्त हुआ हूँ (वाजस्य) पुरोडाश आदि अन्न की (मसवेन) भरणों से (मां) मुझ जुहूरूप यजमान को (मोहामि) उत्साह देता हूँ [उपभृत् को पश्चिम में रखे] (यः) जो अमुरादि शत्रु (अस्मान्) हमारे प्रति (द्वेषि) द्वेष करता है (च) और (यम्) जिस अनुष्ठानविरोधी शत्रु के प्रति (वंयम्) हम (द्विष्मः) द्वेष करते हैं (तम्) उसको (अग्नीषोमौ) अग्नि और सोमदेवता (अपनुदताम्) तिरस्कृत कर (वाजस्य) अन्न के (मसवेन) आर्घ्या करनेपर (अपोहामि) निराकरण करता हूँ । अगले, दूसरा और तीसरा दोनों मंत्र दशके अधिष्ठात्री देवता की प्रार्थना विषय के हैं, एकसमान पद होने से सबका अर्थ प्रथम मंत्र के अनुसार है केवल (अग्नीषोमौ) के स्थान में (इन्द्राग्नी] पद है, उसका अर्थ है—इन्द्र और अग्निदेवता ॥ १५ ॥

वसुभ्यस्त्वा रुद्रेभ्यस्त्वा आदित्येभ्यस्त्वा सज्जानाथा
यावापृथिवी मित्रारुणौ त्वा वृष्ट्यावताम् ॥ अयन्तु
वयोऽस्तुरिहाणाः सरुतां पृषतीगच्छ वशा पृश्निभूत्वा
दिर्वहच्छ ततो नो वृष्टिमावह ॥ चक्षुष्पा अग्नेऽसि
बभुमे पाहि ॥ १६ ॥

इस कण्डिका में वसु० रुद्रे० आदि० सज्जाना० यावापृथिवी० मित्रारुणौ० त्वा वृष्ट्यावताम् ॥ अयन्तु वयोऽस्तुरिहाणाः सरुतां पृषतीगच्छ वशा पृश्निभूत्वा दिर्वहच्छ ततो नो वृष्टिमावह ॥ चक्षुष्पा अग्नेऽसि बभुमे पाहि ॥ १६ ॥

न्वु० इ० । छःमन्त्र हैं । सब का मजापति ऋषि है । छन्द—
 पहिले और दूसरे का दैवी बृहती, तीसरे का दैवीपंक्ति । चौथे
 का यजुः । पाँचवें का मजापत्या गायत्री । छठे का बृहती । १
 २ । ३ मंत्र का परिधि देवता । ४ । ५ । का मस्तर देवता और
 ६ का परिध्यग्नि देवता है । पहिले मंत्र को पढ़कर मध्यमपरिधि
 को जुहू के द्वारा घृत से छिड़कें मंत्र का अर्थ यह है कि—हे
 मध्यम परिधि (वसुभ्यः) वसुदेवताओं की प्रीति के लिए (त्वा)
 तुझको, घृत से सींचताहूँ । दूसरे मंत्र से दक्षिण परिधि को
 सींचा जाता है, मंत्र का अर्थ यह है कि—हे दक्षिण परिधि !
 (रुद्रेभ्यः) रुद्रों की प्रीति के निमित्त (त्वा) तुझको, घृत-
 सिक्त करता हूँ । तीसरे मंत्र से उत्तरपरिधि को सींचा जाता है,
 अर्थ यह है—हे उत्तर परिधि (आदित्येभ्यः) आदित्य देवता
 ओं की मसन्नतार्थ (त्वा) तुझको, घृतसिक्त करताहूँ । चौथे
 मंत्र से मस्तर ग्रहण किया जाता है, मन्त्रार्थ यह है कि—(चावा-
 पृथिवी) हे ध्रुलोक भूलोक के अधिष्ठात्री देव ! (सज्जानायाम्)
 इस ग्रहण किएहुए मस्तर को भलीभकार जानो । हे मस्तर
 (मित्रावरुणौ) वायु और सूर्य देवता (त्वा) तुझको (वृ-
 ष्ठा) जल की वर्षा से (अन्नताम्) रक्षा करें । पाँचवें मंत्र को
 पढ़कर ग्रहण करेहुए मस्तर के अग्र-मध्य—और मूलभागों को
 क्रम से जुहू—उपभृत्—और ध्रुवा में स्थित घृत से लिप्त करें,
 मन्त्रार्थ—(अक्तम्) घृतलिप्त मस्तर को (रिहाणाः) चाटतेहुए
 (वयः) अन्तरिक्षचारी देवता वा पक्षिरूप गायत्री आदिछन्द
 (व्यन्तु) विचरें [इस मस्तर कदिए पूली में से एक कुश अलग
 करके उस को नीचे हाथ से छटे मंत्र को पढ़ताहुआ अग्नि में
 छोड़ें] मन्त्रार्थ यह है—हे मस्तर तुम (मरुताम्) मरुत् नामक
 देवताओं के (पृपतीः) वाहन को (गच्छ) माम हो अर्थात् पवन
 के वाहन की समान वेग से जा । (वशा) स्वाधीन (पृाशिनः)
 दिव्यशरीर धारिणी कामधेनु गौकी समान वृत्ति करने वाली

(भूत्वा) होकर (दिवम्) स्वर्ग को (गच्छ) जा । (गत)
 तिसके अनन्तर (नः) हमारे निमित्त (दृष्टिम्) वर्षा को
 (आनय) ला । अर्थात् अंतरिक्ष में जाकर तहाँ वाहनसहित
 मरुत्तगणों को तृप्त करो फिर स्वर्ग में जाकर देवताओं को तृप्त
 करो जिससे पृथिवीपर वर्षा हो, यह आहुति का फल दिखाया
 [आगे के मंत्र से अध्वर्यु प्रस्तर से लियेहुए तृण को आहवनीय
 अग्नि में डालकर आत्मा को हृदयदेशपर स्पर्श करके आचमन
 करे] मन्त्रार्थ यह है—(अग्ने) हे अग्निदेव ! क्योंकि—तुम (च-
 क्षुप्सा) नेत्रोंकी रक्षा करनेवाले (असि) हो, इसकारण (मे)
 मेरे (चक्षु) नेत्रको (पाहि) रक्षाकरो, अर्थात् प्रस्तर की तीव्र
 ज्वाला से नेत्रोंको पीडा न पहुँचै ॥ १६ ॥ ।

यं परिधिं पर्यधत्या अग्ने देव पणिभिर्गुह्यमान । तं
 तं एनमनु जोपम्भराम्येष नेत्स्वदपचेतयानै । अग्ने-
 मिय पायोऽपीतम् ॥ १७ ॥ ।

इस कण्डिका में—य परिधिमित्यादि और अग्नेरित्यादि दो मंत्र
 हैं, दोनों का देवल ऋषि, अग्निदेवता तथा पहिले का विराटरूप
 त्रिष्टुप्छन्द और दूसरे का याजुषी छन्द है । पहिले मंत्र को पढ़
 कर मन्थम परिधि को अग्नि में डालाजाता है, मन्त्र का अर्थ यह
 है कि—(अग्नेदेव) हे आहवनीय अग्निदेव (पणिभि) असुरों
 से (गुह्यमान) रुकेहुए तुम (यम्) जिस (परिधिम्) परिधि
 को, असुरोंका उपद्रव दूर करने को पश्चिम दिशा में (पर्यधत्या)
 स्थापित करोहुए (ने) तुम्हारे (जोपम्) मिय (तम्) उस (एनम्)
 इस परिधि को (अनुभरामि) अग्नि में डालकर तुम्हारे अर्पण
 करना हूँ (एष) यह पारधि (त्वत्) तुम से (न इत्-अपचेतयानै)
 नियुक्त न हो [दूसरे मन्त्र को पढ़कर दक्षिण उत्तर परिधि का अ-
 ग्नि में डालाजाता है] मन्त्रार्थ—हे दक्षिण उत्तर परिधि ! तुम
 (अग्ने) अग्नि के (मियम्) मिय (पायः) भक्षणयोग्य अ-
 क्षमाई को (इतम्) मात करो ॥ १७-॥ ।

संस्तरेष्वाः परिधेयाश्च
 देवाः । इमां वाचमभिविश्वे गृणन्त आसद्यस्मिन् ।
 वहिषि मादयध्वम् । स्वाहा वाद् ॥ १८ ॥
 इस कण्डिका में दो मंत्र हैं । १. संस्तवभागां इमां २. स्वाहा-
 वाद् । दोनों का सोमगुण्य ऋषि । पहिले का त्रिष्टुप् छन्द । दूसरे
 का यजुः । और दोनों के विश्वेदेवा देवता हैं । पहिले को पढ़कर
 अध्वर्यु घृत से गीले मस्तर का हवन करे । मंत्रार्थ यह है—(हे विश्व-
 देवाः) हे विश्वेदेवा तुम (संस्तवभागाः) ताण्डुण घृत के भागी
 (इमां) घृतयुक्त अन्न के द्वारा (गृहन्तः) महान् (च) और
 (मस्तरैष्वाः) मस्तर पर स्थित (परिधेयाः) परिधि से मादुर्भूत
 (स्थ) हो (इमाम्) इस मेरी (वाचम्) वाणी को (अभिगृणन्तः)
 सादर ग्रहण कर वर्णन करनेहुए (अस्मिन्) इस (वहिषि) यज्ञ
 में (आसद्य) प्राप्त होकर (मादयध्वम्) तृप्त होओ [दूसरे मंत्र
 से होम करे] (स्वाहा) हमारे दिग्दृष्ट हवि को ग्रहण करो (वाद्)
 हमारी दी हुई आहुति को भली प्रकार स्वीकार करो ॥ १८ ॥
 घृताचीं स्थो धुर्यो पात सुम्ने स्थः सुम्ने मा धत्तम् ।
 यद् नमश्च त उप च यज्ञस्य शिवे सन्तिष्ठस्व स्विष्टे
 मे सन्तिष्ठस्व ॥ १९ ॥

इस कण्डिका में दो मंत्र हैं—घृताची इत्यादि पहिले मंत्र का
 मजापानि ऋषि, अनुष्टुप् छन्द सुक् सुक् देवता और यज्ञ नम इत्यादि
 दूसरे मंत्रका शूर्पादि ऋषि, यजुश्छन्द तथा यज्ञ देवता है । पहिले
 मंत्र को पढ़कर अध्वर्यु जुहू और उपभृत् को शकट की धुरी पर
 धरे । मंत्रार्थ—हे जुहू उपभृत् तुम दोनों (घृताचीं) घृत को प्राप्त
 करनेवाले (स्थ) हो (धुर्यो) शकट के दोनों वाहनों को (पातम्)
 परखा करो, तुम (सुम्ने) मुखरूप (स्थ) हो (सुम्ने) सुख में
 (मा) मुझको (धत्तम्) स्थापन करो [दूसरे मंत्र को पढ़कर
 वेदी को स्पर्श किया जाता है] मंत्रार्थ—(यद्) हे वेदी ! (नमः)
 तुम्हारे अर्थ (नमः) नमस्कार हो (नत्र) और (उपभृत्) ऋषि

भी हो (यज्ञस्यः) यज्ञ के (शिवे) कल्याण में (सन्तिष्ठस्व)
स्थित हो (मे) मेरे (स्वित्ते) सुन्दरयाग में (सन्तिष्ठस्व)
प्राप्ति कराओ ॥ १९ ॥

अग्नेऽदध्यापोशीतम प्राहि मां दिव्योः । प्राहि मसित्यै ।
प्राहि दुरिष्ट्यै । प्राहि दुरदमन्या अविषं नः पितुं कृणु ।
सुपदा योनौ स्वाहा वाद । अग्नये संवेशपतये स्वाहा ।
सरस्वत्यै यशोभगिन्यै स्वाहा ॥ २० ॥

इस कण्टिका में ३ मंत्र हैं । १ अग्नेऽध्या० इ० । अग्नये० इ० ।
३ सरस्व० इ० । पहिले का म० प० ऋषि, याजुषी छन्द, गार्ह
पत्याग्नि देवता । दूसरे का म० ऋ०, याजुषी त्रिष्टुप् छन्द, द-
क्षिणाग्नि देवता । और तीसरे का म० ऋ०, या०, त्रि० छन्द,
तथा लिङ्गोक्त देवता है । पहिले मंत्र [को पढ़कर अध्वर्यु होमार्थ
सूक्त और सुख को ग्रहण करे] मन्त्रार्थ — (अदध्यापो) हे
यज्ञमान के मङ्गलकारिन् (अशितम्) बहुभोजी वा सर्वत्र व्या-
पक (अग्ने) गार्हपत्यनामाग्ने (मा) मुझको (दिव्योः) शत्रु
के बन्धसमान शत्रु से (प्राहि) रक्षा करो (मसित्यै) बंधन
करने वाले जाल से (प्राहि) रक्षा करो (दुरिष्ट्यै) अशास्त्रीय
याग से (प्राहि) रक्षा करो (दुरदमन्याः) दूषितभोजन से
(प्राहि) रक्षा करो (सुपदायोनौ) सम्यक् स्थितियोग्य स्थान में
(नः) हमारे (पितुम्) अन्न जल को (अविषम्) विषरहित
(आकृणु) करो (स्वाहावाद्) यह आहुति मलीप्रकार स्वीकृत
हो [दूसरे तीसरे मंत्र को पढ़कर सुवे से दक्षिणाग्नि में हवन करे]
मन्त्रार्थ (संवेशपतये) स्त्रीपुरुषों के एकत्र शयन को संवेश कहते
हैं तिस के पति (अग्नये) अग्नि के निमित्त (स्वाहा) सुन्दर
हविदिवा अर्थात् इस आहुति के फल से हम को संवेश का फल
मिले (यशोभगिन्यै) यश की वहिन वाणीरूप (सरस्वत्यै)
सरस्वती के अर्थ (स्वाहा) सुन्दर आहुति हो अर्थात् इसके फल
हम को यश मिले ॥ २० ॥

वेदोऽसि येन त्वन्देव वेद देवेभ्यो वेदोऽभवस्तेन महं
वेदो भूयाः । देवा गातु विदो गातुं विच्चागातुमित
मनसस्पत इमं देव यज्ञं स्वाहा वाते धाः ॥ २१ ॥

इस कण्डिका में दो मंत्र हैं । १ वेदोसीति । २ विच्चा इत्या० ।
पहिले का मजापति ऋषि, याजुषी छन्द, वेदा देवता । दूसरेका
मनसस्पति ऋषि, त्रिपदा विराट् छन्द और वातदेवता है, पहिले
को पढ़कर यजमान की पत्नी मुठीभर दर्भके पूलेकी गाँठ को खो-
लती है जो कि-वेदी से पहिले ही बनाया जाता है, मन्त्रार्थ-हे कुश
मुष्टिसे निर्मित वेदपदार्थ (वेदोऽसि) तुम ऋगादि वेदरूप हो
(देव) हैं प्रकाशात्मक (वेद) सबके ज्ञाता (येन) जिसकारण
से तुम यज्ञका समस्त वृत्तान्त आद्योपान्त जानते हो अतः (देवेभ्यः)
देवताओं के अर्थ (वेदः) ज्ञापक (अभवः) होतेहुए (तेन)
जिसकारण से (मह्यम्) मेरे निमित्त (वेद) ज्ञापक (भूयाः)
हो [दूसरे मंत्र को पढ़कर यज्ञके आगे से देवताओं का विसर्जन
किया जाता है] मन्त्रार्थ-(गातुविदः) यज्ञके जाननेवाले (देवाः)
देवताओं ! (गातुम्) यज्ञके सब वृत्तान्त को (विच्चा) जानकर
(गातुमित) यज्ञ के प्रति आओ वा हमारे यज्ञसे सन्तुष्ट हो-
कर अपने लोकों को जाओ (मनसस्पते) हे मन के मवचर्क
(इमम्) इस (यज्ञम्) यज्ञ को (स्वाहा) तुम्हारे अर्पण क-
रता हूँ, आप इस यज्ञको (वाते) वायुरूप देवता में (धाः)
स्थापित करो ॥ २१ ॥

सम्बार्हिरङ्क्ता हविषा घृतेन समादित्यैर्वसुभिः सम-
रुद्रिः । समिन्द्रो विश्वदेवेभिरङ्क्तां दिव्यं नभो गच्छ
तु यत् स्वाहा ॥ २२ ॥

इस कण्डिका में १ मंत्र है, इसका म० प० ऋषि, विराटरूपा
त्रिष्टुप् छन्द और बार्हि देवता है, इसको पढ़कर जुहू से कुशा का
होम होता है । मन्त्रार्थ-(इन्द्रः) इन्द्र देवता (बार्हिः) कुशा
को (हविषा) हविरूप (घृतेन) घृत से (समङ्क्ताम्) भली

मकार लिप्त करो (आदित्यैः) १२ आदित्यों के (सम्) साथ (वसुभिः) वसुओं के (सम्) साथ (विश्वदेवेभिः) विश्व-
 देवों के (सम्) साथ (अङ्काम्) लिप्त करो, वह (यत्) जो
 (दिव्यम्) दिव्यमंकाशरूप (नभः) सूर्यरूप ज्योति को (गच्छतु)
 मापा हो (स्वाहा) सुन्दर होम हो ॥२२॥
 कस्त्वा विमुञ्चति सत्त्वा विमुञ्चति कस्मै त्वा विमु-
 ञ्चति तस्मै त्वा विमुञ्चति पोषाय रक्षसां भागोऽसि ॥
 इस कण्डिका में दो मंत्र हैं । १ कस्त्वा ० १ २ रक्षसां ० । पहिले
 का म० ऋषि, याजुषी, छन्द, मजापति देवता । दूसरे का म० प्र०
 ऋषि, याजुषी गायत्री छन्द और रक्षो देवता है । पहिले मंत्र को
 पढ़कर पूर्व स्थापित (१, ६) पात्र का विसर्जन करे । मन्त्रार्थ—
 अध्वर्यु, स्वयं आहवनीय की परिक्रमा करके वेदी के दक्षिणभाग
 में उत्तरमुख होकर माणीतापात्र को वेदी के मध्य में स्थापन कर
 किसी स्थान पर पलट देय । हे माणीतापात्र ! (कः) कौन (त्वा)
 तुमको (विमुञ्चति) त्याग करता है (सः) वह मजापति (त्वा)
 तुमको (विमुञ्चति) त्यागता है (कस्मै) किस निमित्त (त्वा)
 तुमको (विमुञ्चति) त्यागता है (तस्मै) उस मजापति के सन्तो-
 पार्थ (त्वा) तुमको (विमुञ्चति) त्यागता है (पोषाय) यजमान
 के पुत्र पौत्रादि को पोषण करने के निमित्त तुमको त्यागता हूँ ।
 दूसरे मंत्र को पढ़कर प्रथम पुरोडाश के कपाल से ओदनकणों
 को निकालकर कृष्णाजिन के समीप स्थान में उत्कर पर डाले ।
 मन्त्रार्थ—हे कणसमूह ! तुम (रक्षसाम्) राक्षसों के (भागः)
 भाग (असि) हो ॥२३॥

संवर्चसा पर्यमा सन्ननुभिरगन्महि मनसा संशिवेभः ।

० त्वष्टा सुदत्रो विदधातु रायोऽनुमाष्टु तन्वो याद्विलिष्टम् ॥

इस कण्डिका में १ मंत्र है, तिस का म० ऋषि, त्रिष्टुप् छन्द
 और त्वष्टा देवता है । इस मंत्र को पढ़कर यजमान अंजुलि से
 पूर्ण पात्र को गृहण करे । अध्वर्यु आहवनीय की परिक्रमा कर

दक्षिण में त्रैलोक्या उत्तर को मुखकर पूर्णपात्र को लेय तथा यजमान अर्जुन में जल लेकर मुख शुद्ध करे । मन्त्रार्थ—हो आज (वचसा) ब्रह्मतेज से वा अन्न से (समगन्माहि) संयुक्त हों (पयसा) दुग्धादि रस से संयुक्त हों (तनुभिः) अनुग्रान में समर्थ शरीर के अवयवों से संयुक्त हों (शिबेन) शान्ताकर्म अदायुक्त (मनसा) मन से संयुक्त हों (सुदत्रः) उत्तम दानी (त्वष्टा) त्वष्टा देवता (रायः) धन (विदधातु) विधान करे (यत्) जो (तन्वः) शरीरका (विलिष्टम्) दोषरूप न्यून अङ्ग है उस को (अनुमार्ष्टु) शोधन करे ॥ २४ ॥

दिवि विष्णुर्व्यक्रस्त जागतेन छन्दसा ततो निर्भक्तो योऽस्मान् द्वेष्टि यच्च वयं द्विष्मः । अन्तरिक्षे विष्णुर्व्यक्रस्त त्रैष्टुभेन छन्दसा ततो निर्भक्तो योऽस्मान् द्वेष्टि यच्च वयं द्विष्मः । पृथिव्यां विष्णुर्व्यक्रस्त गायत्रेण छन्दसा ततो निर्भक्तो योऽस्मान् द्वेष्टि यच्च वयं द्विष्मः । अस्मादन्नात् । अस्यै प्रतिश्रायै । अगन्मस्वः । संज्योतिषाभूमः ॥ २५ ॥

इस कण्डिका में ७ मंत्र हैं । पहिले दिवि इत्यादि मंत्र का म० ऋषिः याजुषी छ०, विष्णुदेवता । दूसरे अस्यै इत्यादि का म० ऋषिः याजुषी गायत्री छ०, विष्णुदेवता । तीसरे पृथि० इत्यादि का म० ऋ०, याजुषी गा० छ०, विष्णु दे० । चौथे अस्मात् इत्यादि मंत्र का म० ऋ०, देवी वृह० छ० भाग देवता पांचवे अस्यै इत्यादि का म० ऋ०, याजुषी गा० छ०, भूमिदेवता । छठे अगन्मस्वः का म० ऋ०, देवी वृ० छ०, देवा देवता और सातवें संज्यो० इ० का म० ऋ०, गा० छ०, आहवनीय देवता है । पहिले तीन मंत्रों को पढ़कर यजमान अपने आसन से उठकर वेदीपर खड़ा हो धीरेर कुछ पग चले, ऐसे मदक्षिणा करे और यह विचारै कि—यज्ञपति विष्णु ही यह चरण रख रहे हैं । मन्त्रार्थ—(विष्णुः) सर्वव्यापी नारायण (जागतेन छन्दसा)

वृ० छ०; सूर्य देवता है। पहिले दूसरे मंत्रको पढ़कर सूर्य को देखै। मन्त्रार्थ—हे सूर्य तुम (स्वयंभूः) स्वयंसिद्ध (असि) हो (श्रेष्ठः) अत्यन्त श्रेष्ठ (रश्मिः) हिरण्यगर्भ पुरुष, हो। क्योंकि तुम (बर्चोदा) तेज के देनेवाले (असि) हो, अतः (मे) मेरेनिमित्त (बर्चः) ब्रह्मतेज को (देहि) दो तीसरे मंत्र को पढ़कर प्रदक्षिणा करै। मन्त्रार्थ—(सूर्यस्य) सूर्य की (आवृत्तम्) प्रदक्षिणा को (आवर्त्ते) करता हूँ ॥ २६ ॥

अग्ने गृहपते सुगृहपतिस्त्वयाग्नेऽहंगृहपतिनाभूयास
 सुगृहपतिस्त्वं मयाग्नेगृहपतिना भूयाः अस्थूरिणौ
 गार्हपत्यानि सन्तु शतं हिमाः। सूर्यस्यावृत्तमन्वावर्त्ते २७

इस कण्डिका में दो मंत्र है, पहिले अग्ने इत्यादि मंत्र का म० ऋ०, ब्राह्मी वृहती छ०, गार्हपत्याग्नि देवता। दूसरे सूर्यस्य इत्यादि का म० ऋ०, याजुषी वृ० छ० और सूर्य देवता है, पहिले मंत्र से गार्हपत्य का उपस्थान करै। मन्त्रार्थ—(गृहपते) मेरे घर के रक्षक (अग्ने) हे गार्हपत्य अग्निदेव ! (त्वया) तुम (गृहपतिना) गृहपति करके (अहम्) मैं (सुगृहपतिः) सुन्दर गृहपति (भूयासम्) होऊँ (अग्ने) हे अग्निदेव (त्वम्) तुम (मया) मुझ (गृहपतिना) गृहपति करके (सुगृहपतिः) श्रेष्ठ घरके रक्षक (भूयाः) होवो (अग्ने) हे अग्निदेव (नौ) हमदोनोंके (गार्हपत्यानि) गृहपति संबन्धी कर्म (शतम्) पूर्णायुपर्यन्त (हिमाः) वर्षोंतक (अस्थूरि) निरन्तर (सन्तु) हों। अगले मंत्र से सूर्य की परिक्रमा करै। मन्त्रार्थ—(सूर्यस्य) सूर्य की (आवृत्तम्) परिक्रमा को (आवर्त्ते) करता हूँ ॥ २७ ॥

अग्ने व्रतपते व्रतमचारिणं तदंशकं तन्मैऽराधि। इदमहं
 यण्वास्मि सोऽस्मि ॥ २८ ॥

इस कण्डिका में दो मंत्र है, पहिले अग्ने इ० का म० ऋ०, साम्नी पंक्ति छ०, अग्नि देवता। दूसरे इदमहमित्यादि का म० ऋ०, याजुषी पंक्ति छ० और अग्नि देवता है। पहिले को पढ़-

कर व्रत का विसर्जन करै । मंत्रार्थ—(अग्ने) अग्निदेव ।
 (व्रतपते) व्रत के पालक (व्रतम्) जिसव्रतको (अचारिषम्)
 किया (तम्) उसको (अशकम्) तुम्हारी कृपा से करने में
 समर्थ हुआ (मे) मेरे (तत्) उस कर्मको (अराधि) आपने
 सिद्ध किया । दूसरे मंत्र को पढ़कर कर्म को समाप्त करै । (इदम्)
 यह (अहम्) मैं (यः) जो (अस्मि) या (सः) वही देवता
 (अस्मि) हूँ ॥ २८ ॥

अग्नये कव्यवाहनाय स्वाहा । सोमाय पितृमते स्वाहा ।
 अपहता असुरारक्षांसि वेदिपदः ॥ २९ ॥

इस कण्डिका में ३ मंत्र हैं, पहिले अग्न इ० का प्र० ऋ०,
 याजुपी गा० छ०, देव देवता । दूसरे सोमाय इ० का प्र० ऋ०,
 याजुपी छ०, देव देवता और तीसरे अपहता इ० का प्र० ऋ०,
 उष्णिक् छ०, असुर देवता है । पहिले और दूसरे मंत्र को पढ़ता
 हुआ सार चावल को कुछ एक पकाकर अभिधारण उद्दासन और
 देखने के पश्चात् होम करै । मंत्रार्थ—(कव्यवाहनाय) पितरों के
 हवि को उनके पांसपहुँचानेवाले (अग्नये) अग्नि के अर्थ (स्वाहा)
 यह आहुति सुन्दर रूप से प्राप्त हो (पितृमते) पितरों के अधि-
 दान (सोमाय) सोमदेवता के अर्थ (स्वाहा) यह आहुति सुन्दर
 रूप से प्राप्त हो । तीसरे मंत्र से दक्षिण ओर रेखा करै मंत्रार्थ—
 (वेदिपदः) वेदी पर स्थित होनेवाले (असुराः) असुर (रक्षांसि)
 राक्षस (अपहताः) वेदी से दूर निकालेण ॥ २९ ॥

ये रूपाणि प्रतिमुञ्चमाना असुराः सन्तः स्वधया च
 रन्ति । पुरापुरो निपुरो ये भरन्त्यग्निष्टान् लोकात्
 प्रणुदात्पुस्मात् ॥ ३० ॥

इस कण्डिका में १ मंत्र है, उसका प्र० ऋ०, त्रिष्टुप्छन्द और
 कव्यवाहन अग्नि देवता । इसको पढ़कर वेदी के आगे एक जलती
 हुई लकड़ी धुमाकर रखदेय । मंत्रार्थ—(स्वधया) पितरों का अन्न
 भक्षण करना चाहिये इस इच्छा से (रूपाणि) अपने रूपों को

(प्रतिमुञ्जमानाः) पितरों की समान करते (सन्तः) हुए (ये) जो (असुराः) अमुर (चरन्ति) पितृगण में फिरते हैं (ये) जो असुर (परापुरः) स्थूल शरीर (निपुरः) अपना असुरत्व छुपाने के लिए सूक्ष्म शरीरों को (भ्रान्ति) धारण करते हैं (अग्निः) उल्मुकरूप अग्नि (अस्माल्लोकात्) इस पितृयज्ञस्थान से (तान्) उन असुरों को (मगुदतु) दूर इटाओ ॥ ३० ॥

अत्र पितरो मादयध्वं यथाभागमावृषायध्वम् । अमी मदन्त पितरों यथाभागमावृषायिपत ॥ ३१ ॥

इस कण्डिका में दो मंत्र हैं । पहिले अत्र इ० का प्र० ऋ०, साम्नी बृहती छन्द, पितर देवता । दूसरे अमी इ० का प्र० ऋ०, सा० वृ० छ० और पितर देवता है । यजमान पङ्कलि करे पीछे पिण्ड के सामने श्वास रोककर जब तक न थके पहिले मंत्र का जप करे, थकनेपर दूसरे मंत्र को पढ़कर रोकालुआ श्वास छोड़देय मन्त्रार्थ—(पितरः) हे पितरों ! (अत्र) इन कुशों पर (मादयध्वम्) बैठकर मसन्न हूजिए (यथाभागम्) अपने २ भागों को (आवृषायध्वम्) वृष की समान भोजन कर तृप्ति पाओ (पितरः) यह पितर (अमीमदन्त) अत्यन्त मसन्न होतेहुए (यथाभागम्) अपने २ भागको (आवृषायिपत) वृषभ की समान स्वीकार कर तृप्त होवो ॥ ३१ ॥

नमो वः पितरो रंसाय । नमो वः पितरः शोषाय ।
नमो वः पितरो जीवाय । नमो वः पितरः स्वधाय । नमो
वः पितरो घोराय । नमो वः पितरो मुन्यवे । नमो वः
पितरः पितरो नमो वः । गृहान्नः पितरो दत्त सतोवः
पितरो देष्म । एतर्हः पितरो वासु आर्षत्त ॥ ३२ ॥

इस कण्डिका में ८ मंत्र हैं । नमो वः इत्यादि पहिले ६ मंत्रों का प्र० ऋ०, याज्ञुपी वृ० छ० पृष्ठ्यार्पी उष्णिक् छन्द लिङ्गोक्त देवता । गृहान्त इ० सातवें का प्र० ऋ०, साम्नी अनुष्टुप् छन्द, पितर देवता, और एतत् इ० आठवें का प्र० ऋ०, प्राजा० गाय०

छ०; पितर देवता हैं । पहिले छः मंत्रों को पढ़ता हुआ पितरों के
 आगे हाथ जोड़े । मंत्रार्थ-१ (पितरः) हे पितरों ! (वः) तुम्हारे
 (रसाय) रसस्वरूप वसन्त ऋतु के अर्थ (नमः) नमस्कार है ।
 २ (पितरः) हे पितरों (वः) तुम्हारे (शोषाय) ग्रीष्मऋतु के
 अर्थ (नमः) नमस्कार है । ३ (पितरः) हे पितरों (वः) तुम्हारे
 (जीवाय) प्राणियों के जीवनस्वरूप वर्षाऋतु के अर्थ (नमः)
 नमस्कार है । ४ (पितरः) हे पितरों (वः) तुम्हारी (स्वधायै)
 स्वधारूप शरदऋतु को (नमः) नमस्कार है । ५ (पितरः) हे पि-
 तरों (वः) तुम्हारी (घोराय) जीवमान को असह्य हेमन्त ऋतु
 को (नमः) नमस्कार है । ६ (पितरः) हे पितरों (वः) तु-
 म्हारे (मन्यवे) क्रोधरूप शिशिरऋतु को (नमः) नमस्कार
 है, अर्थात् हे पितरों ! आप के अनुग्रह से देश में वसन्त ऋतु के
 मंचार से सब वस्तु रसयुक्त हों ग्रीष्म शुभदायक होकर बरें, सब
 को सजीव करनेवाली वर्षा उत्तम हो, शरद में श्रेष्ठ अन्न उत्पन्न
 हों, हेमन्त से किसी को कष्ट न हो और शीतऋतु में किसी का
 स्वास्थ्य न बिगड़े । (पितरः) हे छः ऋतुरूप पितरों (वः)
 तुम्हारे अर्थ (नमः) नमस्कार है (पितरः, वः, नमः) हे पितरों,
 आप को, नमस्कार है । सातवें मंत्र को पढ़ता हुआ स्त्री की ओर
 देखे । मंत्रार्थ- (पितरः) हे पितरों (नः) हमारे अर्थ (गृहान्)
 स्त्री पुत्रादि घर के स्वरूप को (दत्त) दो । (पितरः) हे पितरों
 (वः) तुम्हारे अर्थ (सतः) देने योग्य विद्यमान वस्तुएं (देष्मः)
 देते हैं अर्थात् दानकरते हुए हमारा धन कमी कम न हो । आठवें
 मंत्र को पढ़कर पितृपिण्डों पर ऊन के दशासूत्र या साठ बर्ष से
 अधिक अवस्था का यजमान अपनी छाती के बाल धरै मंत्रार्थ-
 (पितरः) हे पितरों ! (वः) तुम्हारे अर्थ है (एतत्) यह (वासः)
 सूत्ररूप पहिरने का वस्त्र (आघत्त) धारण करो ॥ ३२ ॥
 आघत्त पितरों गभं कुमारं पुष्करस्रजम् । यथेह पुरु-
 षोऽसत् ॥ ३३ ॥

इस कण्डिका में १ मंत्र है, उसका प्र० ऋ०, गायत्री छ० और पितर देवता है। इसको पढ़ते में पुत्र की इच्छावाली पत्नी बीच के पियड को उठाकर खालेय। मंत्रार्थ—(पितरः) हे पितरों ! (यथा) जैसे (इह) इस ऋतु में (पुरुषः) देव पितर मनुष्यों की अभिलाषा को पूरी करनेवाला (अस्तु) होवे, इसप्रकार (पुष्करस्रजम्) पुष्कर मालाधारी अश्विनीकुमार की समान नीरोग सुन्दर (कुमारम्) पुत्ररूप (गर्भम्) गर्भको (आधत्त) स्थापन करो ॥ ३३ ॥
 ऊर्जं वहन्तीं गृतं घृतं पयः कीलालं परिश्रुतम् । स्वधा स्थं तर्पयत मे पितृन् ॥ ३४ ॥

इस कण्डिका में १ मंत्र है, उसका प्र० ऋ०, त्रिपदाविराट् छन्द और आप देवता है, इसको पढ़कर कुशमार्जन से बचे जल को पिठों पर सींचे। मंत्रार्थ—(ऊर्जम्) अनेक प्रकार के स्वादुरस (अमृतम्) सकल रोग और मृत्युनाशक (परिश्रुतम्) पुष्पसार (घृतम्) घृत (कीलालं) सब बंधन दूर करनेवाले (पयः) दुग्ध को (वहन्तीः) धारण करनेवाले जलों (स्वधा, स्थ) पितरों की दधिःस्वरूप हो (मे) मेरे (पितृन्) पितरों को (तर्पयत) तृप्त करो ॥ ३४ ॥

इन दोनों अध्यायों का दयानन्दजी का किया अर्थ ब्राह्मण कल्पसूत्र मीमांसा आदि के सर्वथा विरुद्ध होने के कारण मान्य नहीं होसक्ता ॥

इति श्रीछन्दोग्यजुर्वेदान्तर्गत माध्यन्दिनीपशाखाध्येतृ भारद्वाजगोत्रो-
 द्भूतगौडवंशावतंस श्रीमद्गोडानाथात्मजरामस्वरूपशर्मा द्वारा
 अश्वट्महीपरादिप्राचीनभाष्यों के अनुसार सन्पादित अन्वय
 पदार्थ और भावार्थसहित इधमप्रोधादि पित्र्यान्त
 द्वितीय अध्याय समाप्त.



आदधे) अन्नादि लाभ की इच्छा के लिए, अन्न के भक्षक, अग्नि को, स्थापन करता हैं । और उसको स्थापन करके (भूम्ना, धौरिव) बहुतायत से तारागण से भरे बुलोक की तुल्य पुत्रपौत्र आदि से युक्त होऊँ (वरिम्णा, पृथ्वीव) बहुताओं के आश्रय से बड़ी होने के कारण, पृथ्वी की समान अनेकों का आश्रय होऊँ (तैत्तिरीय उपनिषद् के ५ वें अनुवाकमें ३ व्याहृतिका विस्तार के साथ वर्णन है) ॥ ५ ॥

आयँ गौः पृश्निरक्रीदिसदन्मातरं पुरः । पितरं च प्रयन् स्वः ॥ ६ ॥

इस कण्डिका में एक मंत्र है, उसका सर्पराज्ञी कटू ऋ०, गायत्री छ०, और अग्नि देवता है, यहाँ से तीन मंत्रों को पढ़कर गार्हपत्य, आहवनीय और दक्षिणाग्नि को क्रम से स्थापन करें । मन्त्रार्थ — (अयम्) यह अग्नि (गौः) यज्ञसाधनार्थ यजमान के घर जानेवाला (पृश्निः) अनेकों वर्णों की ज्वालायुक्त (आक्रीदत्) सब ओर तीनों अग्नियों के स्थानों में पादक्रमण करता हुआ (पुरः, मातरम्, असदत्) मैंने आहवनीयरूप से पृथ्वीको, पाया (स्वः, प्रयन्) सूर्यरूप से स्वर्ग में, विचरा, (पितरञ्च असदत्) बुलोक को भी, प्राप्त किया अर्थात् अग्नि से सब, जगत् का पालन होता है ॥ ६ ॥

अन्तश्चरति रोचनास्य प्राणादपान्ती । व्यख्यन्म-
ह्विषो दिवम् ॥ ७ ॥

इस कण्डिका में १ मंत्र है, उस का म० अ०, गायत्री छन्द, अग्नि देवता है । वायुरूप से अग्निकी स्तुति करते हैं । मन्त्रार्थ — (अस्य, रोचना, प्राणात्, अपान्ती, अन्तः, चरति) इस अग्नि की, वायुनामक कोई शक्ति, प्राण के अनन्तर, अपान की शक्ति को बढ़ाती हुई, पृथिवी स्वर्ग के मध्य में, चलती है । इस प्रकार वायु आदित्यस्वरूप अपनी शक्ति से जगत् के ऊपर अनुग्रह करके (महिषः, दिवम्, व्यख्यत्) अग्नि, भोगस्थान बुलोक को

विशेष प्रकाशित करता हुआ ॥ ७ ॥

त्रिशदाम विराजति वाक् पतङ्गाय धीयते । प्रति
वस्तोरह्युभिः ॥ ८ ॥

इस कण्डिका के १ मंत्र का प्र० ऋ०, और अग्नि देवता है। इस से अग्नि का उपस्थान होता है। मंत्रार्थ (वाक्, त्रिशदाम, विराजति) जो वेदवाणी, तीस मुहूर्त स्थानों में, शोभा पाती है (प्रतिवस्तोः), अह्युभिः, पतङ्गाय, धीयते) प्रतिदिन, ब्रह्मरिद आगे कहे रूपों से, अग्नि के अर्थ, उच्चारण की जाती है। अर्थात् वेदमंत्रों में अग्नि की जो स्तुति की जाती है, वह विशेष विराजित होती है ॥ ८ ॥

अग्निर्ज्योतिर्ज्योतिर्गग्निः स्वाहा । सूर्यो ज्योतिर्ज्योतिः
सूर्यः स्वाहा । अग्निर्वर्चो ज्योतिर्वर्चः स्वाहा । सूर्यो
वर्चो ज्योतिर्वर्चः स्वाहा । ज्योतिः सूर्यः सूर्यो
ज्योतिः स्वाहा ॥ ९ ॥

इस कण्डिका में १ अग्निरित्यादि । २ सूर्यो ज्योतिरित्यादि
३ अग्निर्वर्चरित्यादि । ४ सूर्यो वर्चरित्यादि । ५ ज्योतिः सूर्य इत्यादि
५ मंत्र हैं। ऋषि पहिले और दूसरे का तक्षा, तीसरे चौथे का प्र०
और पाँचवें का जीवल । इन्द्र पाँचों का एकपदा गायत्री,
तथा देवता पाँचों का लिङ्गोक्त है। यहाँ से अग्निहोत्र के मंत्र हैं।
पहिले मंत्र को पढ़कर सायंकाल समिधा से होम करे। मंत्रार्थ—
(अग्निः, ज्योतिः, ज्योतिः, अग्निः, स्वाहा) जो अग्निदेव है,
वही ब्रह्मज्योति है, जो ब्रह्मज्योति है, वही अग्निदेव है, ऐसे
अग्नि को मैं हवि देता हूँ। दूसरे मंत्र से प्रातःकाल होम करे।
मंत्रार्थ—(सूर्यः, ज्योतिः, ज्योतिः, सूर्यः, स्वाहा) जो सूर्य देवता
है, वही ब्रह्मज्योति है, जो ब्रह्मज्योति है, वही सूर्य है, इससे
ज्योतिको मैं हवि देता हूँ। ब्रह्मतेज चाहने वाला ३ रे मंत्र से
सन्ध्या के समय हवन करे। मंत्रार्थ—(अग्निः, वर्चः, ज्योतिः,
वर्चः, स्वाहा) जो अग्नि है, वही ब्रह्मतेज है, जो ब्रह्म ज्योति

है वही तेज है, उस के अर्थ अच्छा होम हो। ब्रह्मतेज की इच्छा से प्रातःकाल हवन करने का ४ वां मंत्र है उस का अर्थ—(सूर्यः, वर्षः ज्योतिः, वर्षः स्वाहा) जो सूर्य है, वही ब्रह्मतेज है, जो ज्योति है, वही तेज है, उस के अर्थ श्रेष्ठ होम हो । प्रातःकाल हवन करने के पांचवें मंत्र का अर्थ—(ज्योतिः, सूर्यः, सूर्यः, ज्योतिः, स्वाहा) जो ज्योति है, वही सूर्य है, जो सूर्य है, वही ब्रह्मज्योति है, उस के लिए श्रेष्ठ होम हो ॥ ९ ॥

सजुदेवेन सवित्रा सजुराद्येन्द्रवत्या । जुषाणो अग्निवेतु स्वाहा ॥ सजुदेवेन सवित्रा सजुरवसेन्द्रवत्या । जुषाणः सूर्यो वेतु स्वाहा ॥ १० ॥

इस कण्डिका में २ मंत्र हैं, १ सजुरित्योदि । २ सजुरित्यादि दोनों का प्रजापति ऋ०, एकपदा गा० ऋ० और लिङ्गोक्त देवता है । दोनों मंत्रों को पढ़कर हवन किया जाता है । मंत्रार्थ—१ (सवित्रा, देवेन, सजूः) सब के भेरक, सूर्यदेव के साथ, प्रीति करने वाले (इन्द्रवत्या, रात्र्या, सजूः) इन्द्र देवतावाली, रात्रिके साथ, प्रीति करनेवाले (जुषाणः, अग्निः, वेतु, स्वाहा) हम पर प्रीति करनेवाले, अग्नि देवता, इसको स्वीकार करें, उनको यह श्रेष्ठ आहुति दी । २ (सवित्रा, देवेन, सजूः) सर्वभेरक, देव के साथ प्रीति करनेवाले (इन्द्रवत्या, उपसा, सजूः) इन्द्र देवतावाली, उपा के साथ, प्रीति करनेवाले (जुषाणः, सूर्यः वेतु, स्वाहा) हम पर भेर करनेवाले सूर्यदेव, आहुति को वा हमारे कर्म को प्रातः करो, उनके निमित्त यह सुन्दर होम हो ॥ १० ॥

उपमयन्तो अष्ट्वरं मन्त्रं वोचिमाग्नये । आरे अस्मे च षट्पञ्चने ॥ ११ ॥

इस कण्डिका के मंत्र का गौतम ऋ०, निच्युद्गायत्री ऋ०, और अग्नि देवता है, यहां से लेकर ३६ वीं कण्डिका तक के मंत्रों को तीन १. बार पढ़कर तीन २. आहुति देता हुआ दोनों प्रजापति अग्नि का उपस्थान करें, पहिले आहवनीय का उपस्थान

है। मन्त्रार्थ—(अध्वरं, उपमयन्तः, आरे, च, अस्मे, शृणवते, अग्नये, मन्त्रं, वोचेम) यज्ञ के प्रति, जातेहुए हम, दूर, और, अपने समीप, मुननेवाले, अग्नि देव के अर्थ, मंत्रन करतेही रक्षा और उच्चारण करते ही मनोरथ सिद्ध करनेवाले शब्दसमूह रूप मन्त्र को, उच्चारण करते हैं ॥ ११ ॥

अग्निर्मूर्धा दिवः किकुत्पतिः पृथिव्या अयम् । अपा
रेतांसि जिन्वति ॥ १२ ॥

इस कण्डिका के मंत्र का विरूप ऋ०, निच्युद्गायत्री छ०, और अग्नि देवता है। मन्त्रार्थ—(अयम्, अग्निः, दिवः, मूर्धा, किकुत्) यह, अग्नि, स्वर्गलोक का, शिर की समान प्रधान, वैल के कन्धे की समान सर्वोन्नत वा जगत् का महान् कारण है। (पृथिव्यां, पतिः) सूर्यरूप से प्रकाश देने के कारण पृथिवी का, पालक है। (अपाम्, रेतांसि, जिन्वति) जलों के, सारभागों को, पुष्ट करता है अर्थात् ध्रुलोक से गिरतेहुए वर्षा के जलों को अन्नादि के पकाने की शक्ति देता है, वा आहुति के फल से वर्षा को उत्पन्न करता है ॥ १२ ॥

उभा चाग्निन्द्राग्नी आहुवर्ध्या उभा राधसः सह मा-
दयर्ध्वे । उभा दाताराधिवा रयीणामुभा वाजस्य
सातये हुवे वाम् ॥ १३ ॥

इस कण्डिका के मंत्र का भरद्वाज ऋ०, त्रिपुष्पच्छन्द और इन्द्राग्नी देवता हैं। मन्त्रार्थ—(इन्द्राग्नी, वाम्, उभा, आहुवर्ध्वे) हे इन्द्र अग्नि देवताओं !, तुम, दोनों को, आन्वहान करना चाहता हूँ (उभा, सह, राधसः, मादयर्ध्वे) दोनों को, एकसाथ, हविरूप धन से, प्रसन्न करना चाहता हूँ। (उभा, इपाम्, रयीणाम्, दातारां) तुमदोनो, अन्नो के, और धनों वा जलों के, देनेवाले हो। (वाम्, उभा, वाजस्य, सातये, हुवे) तुम, दोनों को, अन्न के, दानार्थ, आन्वहान करता हूँ ॥ १३ ॥

अयं ते योनिर्भृत्वियो यतो जाति अरोचयाः ।

जानन्नन्न आरोहाथा नो वर्धया इयिम् ॥ १४ ॥

इस कण्डिका के मन्त्र का देवश्रव और देववात ऋषि, स्वराह अनुष्टुप् छन्द और अग्नि देवता है। मन्त्रार्थ—(अग्ने, अबम्, ते ऋत्विगः, योनिः) हे गार्हपत्य अग्ने ! यह, तुम्हारा, साथ मातःकाल सम्बन्धी, उत्पत्ति स्थान है (यतः, जातः, अरोचयाः) जिससे, प्रकट हुए तुम, कर्मकाल में प्रज्वलित होते हो (तम्, जानन्, आरोह) उस गार्हपत्य को, जानते अर्थात् अपना अंश मानते हुए, उसमें प्रविष्ट हजिये (अय, नः, रथिम्, आवर्द्धय) फिर, हमारे निमित्त, यज्ञ साधन धनको, चारों ओर से बढ़ाइये ॥ १४ ॥

अयमिह प्रथमो धायि धातृभिर्होता यजिष्ठो अध्वरे-
प्वीडयः। यमप्रवानो भृगवो विरुरुषुर्बनेषु चित्रं विभुं
विशेविशे ॥ १५ ॥

इस कण्डिका के मन्त्र का वामदेव ऋषि, जाती वा भुरिकु त्रिष्टुप् छं०, और अ० दे० है। मन्त्रार्थ—(अयम्, होता, यजिष्ठः अध्वरेषु, ईड्यः, इह, धातृभिः, आधायि) यह अग्नि, देवताओं का आवाहन करनेवाला, यज्ञ में स्थित वा अतिशय यज्ञ करानेवाला, यज्ञों में, ऋत्विजों से स्तुति किया हुआ, इस कर्म स्थान में, स्थापन करनेवालों करके, स्थापित किया गया है। (अमवानः, भृगवः, विशेविशे, चित्रम्, विभुम्, यम्, बनेषु, रुरुषुः) पुत्रवान्, यज्ञविद्या जाननेवाले भृगुवंशी मुनियों ने, यजमान के उपकारार्थ, आश्रमरूप, व्यापक शक्तिवाले, जिस अग्नि को, घनों में, प्रज्वलित किया है ॥ १५ ॥

अस्य मत्नामनु द्युतं शुक्रं दुदुहे अन्हयः। पयः सहस्र-
सामृषिम् ॥ १६ ॥

इस कण्डिका के मन्त्रका अवत्सार ऋ०, गा० छं० और गोमिपय देवता है। मन्त्रार्थ—(अहयः, अस्य, मत्नाम्, द्युतम्, अनु, ऋषिम्, सहस्रसाम्, शुक्रम्, पयः दुदुहे) संस्कारशुद्ध होने से अयोग्यता की लज्जा से रहित ऋषि, इस अग्नि की, पुरात्म, कान्ति को, अनुसरण करके, दोहनस्थान में जानेवाली गौके द्वारा सहस्रोंकारों

के साधक, शुद्ध, दूधको, दुहतेहुए ॥ १६ ॥

तन्नूपा अग्नेऽसि तन्वु मे पाहि । आयुर्दा अग्नेऽस्यायुं
मे देहि । वर्चोदा अग्नेऽसि वर्चो मे देहि । अग्ने यन्मे
तन्वा ऊनं तन्मे आपृण ॥ १७ ॥

इस कपिडका के मंत्र का अर्थ अत्र ॐ त्रिष्टुप् छ० और अग्नि देवता है । मन्त्रार्थ—(अग्ने, तन्नूपाः असि) हे अग्निदेव, तुम स्वभाव से ही अग्निहोत्रियों के रक्षक, हो (मे, तन्वम्, पाहि) मेरे, शरीर को, रक्षा करो (अग्ने, आयुर्दा, असि) हे अग्ने तुम, आयु देनेवाले, हो (मे, आयुः, देहि) मेरे लिये, आयु, दीजिये (अग्ने, वर्चोदा, असि) हे अग्ने, तेज देनेवाले, हो (मे, वर्चः, देहि) मेरे लिए, तेज, दीजिए (अग्ने, मे, तन्वाः, यत् ऊनम्, तत्, आपृणः) हे अग्निदेव, मेरे शरीर का, जो अङ्ग, कम हो, उसको, सब प्रकार से पूर्ण करो ॥ १७ ॥

इन्धानास्त्वा शत ३ हिमा शुमन्त ३ समिधीमहि ।

वयस्वन्ती वयस्कृत ३ सहस्वन्तः सहस्कृतम् । अग्ने
सपत्नदम्भनमदब्धासो अदाभ्यम् । चित्रावसो स्वस्ति
ते पारमशीय ॥ १८ ॥

इस कपिडका के मंत्र का अर्थ अत्र ॐ निच्युद्ब्राह्मी पंक्ति वा महापंक्ति छन्द और अग्निदेवता है । मन्त्रार्थ—(अग्ने, इन्धानाः, वयस्वन्तः, सहस्वन्तः, अदब्धासः, शुमन्तम्, वयस्कृतम्, सहस्कृतम्, सपत्नदम्भनम्, अदाभ्यम्, त्वा, शतम्, हिमाः, समिधीमहि) हे अग्निदेव ! दीप्तिमान्, अन्नवान्, बलवान्, पीडारहित हम, कान्तिमान्, अन्नवान्, बलवान्, शत्रुओं के हिंसक, किसी से पीड़ा न पानेवाले, तुमको, सौ, वर्षोपर्यन्त, निरन्तर प्रज्वलित करें । अर्थात् हमको यह सब पदार्थ प्राप्त हों (चित्रावसो, स्वस्ति, ते, पारम्, अशीय) हे चन्द्रतारागणादिकी निवासस्थान रात्रि, कल्याणपूर्वक, तेरे, पारको, पाऊं । देवयज्ञ में राक्षस न घुस जायें इसलिये रात्रि से प्रार्थना की है ॥ १८ ॥

सं त्वमग्ने सूर्यस्य वर्चसागथाः समृषीणांश्च स्तुतेन ।
 सं प्रियेण धाम्ना । समहमायुषाः सं वर्चसां सं प्रजया
 सं रायस्पोषेण ग्मिषीय ॥ १९ ॥

इस मंत्र का अर्थ—(अग्ने, त्वम्, सूर्यस्य, वर्चसा, समगथाः) हे अग्निदेव! तुम, रात में सूर्य के, तेज से, युक्त हुए हो (ऋषीणाम्, स्तुतेन, सम्) मंत्रों के, स्तोत्र से, संयुक्त हुए हो (प्रियेण, धाम्ना, सम्) प्रिय, आहुति से, संयुक्त हुए हो । उसी प्रकार (अहम्, आयुषा, संग्मिषीय) मैं, आपकी कृपा से अपमृत्युरहित आयु से, युक्त होऊँ (वर्चसा, सम्) विद्या ऐश्वर्य आदि के तेज से युक्त होऊँ (प्रजया, सम्) पुत्रादि से, संयुक्त होऊँ (रायस्पोषेण, सम्) धनकी पुष्टि से, संयुक्त होऊँ ॥ १९ ॥

अन्यस्थान्धों वो भक्षीय महं स्थ महो वो भक्षीयोजं
 स्थोजं वो भक्षीय रायस्पोषं स्थ रायस्पोषं वो भक्षीय ॥

इस कड़िका के मंत्र का याज्ञवल्क्य ऋ०, भुरिगृहती, छ० और गौ देवता है । वीसवीं और इकीसवीं कण्डिका को पढ़कर गौओं, के पास जाय मंत्रार्थ—हे गौओं ! तुम (अन्यः, स्थ) दूध आदि अन्न को उत्पन्न करनेवाली, हो (वः, अन्धः, भक्षीय) तुम्हारे दूध पी-आदि को, खाता रहूँ (महः, स्थ) पूज्यरूप, हो (वः, महः, भक्षीय) तुम्हारी, पूज्यता को, पाऊँ (ऊर्जः, स्व) बलरूप, हो (वः, ऊर्म, भक्षीय) तुम्हारे, दुग्धादि के द्वारा बल को, पाऊँ (रायस्पोषः, स्थ) धनपुष्टिरूप, हो (वः, रायस्पोषम्, भक्षीय) तुम्हारे अनुग्रह से, धनकी पुष्टि को, पाऊँ ॥ २० ॥

देवती रमध्वमस्मिन्धोनास्मिन् गोष्ठेऽस्मिन्लोकेऽस्मिन्
 नृत्तयेऽइहैव स्ते मयंजात ॥ २१ ॥

इस कण्डिका के मंत्र का याज्ञवल्क्य ऋ०, उषिण्कू छ० और गौ देवता है । मंत्रार्थ—(अस्मिन्, गोष्ठे, अस्मिन्, लोके, अस्मिन् लये, रमध्वम्) हे धनप्राप्ति की साधन गौओं, इस, दुग्ध के स्थान

में, इस, गोठ में, इस, यजमान की दृष्टि में वा रात में, इस, यजमान के घर में, क्रीडा करो (इह, एव, स्त, मा, अपगोत) यहां यजमान के घर में, ही, रहो, मत, जाओ ॥ २१ ॥

स ऋषितासि विश्वरूप्यर्जमाविश गोपत्येन । उप
त्वाग्ने दिवेदिवे दोषावस्तर्धिया वयम् । नमो भरन्तु
गमसि ॥ २२ ॥

इस कण्डिका में दो मंत्र हैं । पहिले संहितेत्यादिका वैश्वामित्र मधुच्छन्दा ऋषि, भुरिगासुरी गायत्री छ०, गौदेवता । दूसरे उपेत्यादि का पूर्वोक्त ऋ०, गायत्री छन्द, और अग्नि देवता है । पहिले मंत्र से गौ को स्पर्श करै । मन्त्रार्थ—हे गौ ! तुम (विश्वरूपी, संहिता, आसि) अनेकों रूपवाली, हविके निमित्त यज्ञ में संयुक्त हो (ऊर्जा, गोपत्येन, माम्, आविश) दूध आदि रस से, गोस्वामित्व से, मुझ में, सब प्रकारसे प्रवेश कर अर्थात् हमारा गोस्वामित्व श्रुत रहै । दूसरे मंत्र से गार्हपत्य में जाय । मन्त्रार्थ— (दोषावस्तः, अग्ने, वयं, दिवेदिवे, धिया, नमो भरन्तः, त्वा, उपपमसि) रात में भी निरन्तर बसनेवाले, हे अग्निदेव ! हम प्रतिदिन श्रद्धायुक्त बुद्धि से, नमस्कार करते हुए, तुम को, प्राप्त होते हैं ॥ २२ ॥

राजन्तमध्वराणां गोपामृतस्य दीदिविम् । वर्धमानं च
स्वे दमे ॥ २३ ॥

इस कण्डिका के मंत्र का वै० मधु० ऋ०, गायत्री छ०, अग्नि दे० है । मन्त्रार्थ—(राजन्तम्, अध्वराणाम्, गोपाम्, मृतस्य, दीदिविम्, स्वे, दमे, वर्धमानम्) दीप्तिमान्, यज्ञों के, रक्षक, सत्यवन्त, रूपव्रत के, रक्षक, अपने, घर में, (सोम आदि) से बढ़नेवाले । अग्नि की हम शरण हैं ॥ २३ ॥

सनः पितेर्व सूनवेऽग्ने सृपायनो भवः । सचंखाना
स्थस्तये ॥ २४ ॥

इस कण्डिका के मंत्र का वै० मधु० ऋ०, विराट् गायत्री छन्द

ब्रह्मणस्पते ॥ ३० ॥

इस कण्डिका के मंत्रका सत्यधृति वारुणी ऋषि, निच्यूद् गायत्री छन्द और ब्रह्मणस्पति देवता है मन्त्रार्थ—(ब्रह्मणस्पते, अरुषः मर्त्यस्य, शंसः, धृतिः, नः, मा, मणक्, नः, आरक्ष) हे वेदरक्षक जगदीश्वर !, देवपितरों को कभी हव्यकव्य न देनेवाले यज्ञ से विमुख, मनुष्य का, अनिष्टचिन्तन, द्रोह, हमको, न, सतावै, हमारी, सबकार से रक्षा करो ॥ ३० ॥

महिं त्रीणामवोऽस्तु शुक्तं मित्रस्यार्घ्यम्णः । दुराधर्षं वरुणस्य ॥ ३१ ॥

इस कण्डिका के मंत्रका सत्यधृति वारुणी ऋषि, विराद् गायत्री छन्द और आदित्य देवता है । मन्त्रार्थ (मित्रस्य, अर्घ्यम्णः, वरुणस्य, त्रीणाम्, महि, शुक्तम्, दुराधर्षम्, अवः, अस्तु) प्राणवृत्ति और दिन के अधिष्ठात्रीदेव मित्र, नेत्र वा सूर्य के अधिष्ठात्री देव अर्घ्यमा, अपान और जलोंके अधिष्ठात्री देव वरुण, इन तीनोंसे सम्बन्ध रखनेवाली, बड़ी, कान्तिमान् सुवर्णादि से युक्त, तिरस्कार पाने को अशक्य, रक्षा, हमको प्राप्त हो ॥ ३१ ॥

नहि तेषाम्मा चन नाध्वंसु वारणेषु । ईशे रिपुघ्नं शंसः ॥ ३२ ॥

इस कण्डिका के मन्त्र का सत्यधृति वारुणी ऋषि, निच्यूद् गायत्री छन्द और आदित्य देवता है । मन्त्रार्थ—(तेषाम्, अर्घ्यमा, अध्वंसु, वारणेषु, चन, अधशंसः, रिपुः, नहि ईशे) ईश्वर और इनतीन देवताओं की उपासना करने वालों के, घर में, मार्ग में, दुर्गम वन आदि और संग्रामों में, भी, स्थित यजमान को, कष्टपहुँचाने को पापकर्मा, शत्रु, समर्थ नहो ॥ ३२ ॥

ते हि पुत्रासो आदितेः प्रजीवसे मर्त्याय । ज्योतिर्यच्छन्त्यजस्रम् ॥ ३३ ॥

इस कण्डिका के मंत्रका स०धृ०वारु० ऋ०, वि० गा० छन्द और आदित्य देवता है । मन्त्रार्थ—(हिते, आदितेः, पुत्रासः,

मर्त्याय, प्रजीवसे, अजस्रम्, ज्योतिः, प्रयच्छन्ति) क्योंकि, वह मित्र अर्थमादि, देवमाता के, पुत्र इसमनुष्य यजमानको, चिरजीवन के निमित्त, निरन्तर, अखण्ड तेज, देते हैं ॥ ३३ ॥

कदाचन स्तरीरसि नेन्द्रं सश्वसि दाशुपे । उपोपेन्नु
मघवन् भूय इक्षु ते दानं देवस्य पृच्यते ॥ ३४ ॥

इस कण्डिका के मन्त्र का मधुच्छन्दाऋ०, पथ्या वृहती छ०, और इन्द्र देवता है । मन्त्रार्थ—(इन्द्र, कदाचन, स्तरीः, न, अ-सि) हे परमेश्वर्यवान् तुम, कभी भी, हिंसक, नहीं, हो (दाशुपे, उप इक्षु, सश्वसि) हवि देनेवाले के, हवि को समीप होकर, से-वन करते हो (मघवन्, देवस्य, ते, भूय इत्, दानम्, नु, इत, उ-पपृच्यते) हे ज्ञानधनवाले इन्द्र नामक जगदीश्वर, दीप्यमान, तु-झारे, बहुतसे, दान को, शीघ्र ही यजमान, प्राप्त होता है ॥ ३४ ॥

तत्सवितुर्वरेण्यं भर्गो देवस्य धीमहि । धियो यो नः
प्रचोदयात् ॥ ३५ ॥

इस कण्डिका के मन्त्रका विश्वामित्र ऋषि, निच्यूद्गायत्री छन्द और सविता देवता है । मन्त्रार्थ—(सवितुः, देवस्य, तत्, वरणीयम्, भर्गः, धीमहि, यः, नः, धियोः, प्रचोदयात्) आदित्य मण्डलस्थित अन्तर्यामी सविता नामक, प्रकाशस्वरूप परब्रह्म के, उस, सबके वरणीय, सर्वपापनिवर्त्तक तेज को, ध्यान करते हैं, जो सविता देवता, हमारी, बुद्धियों को, सत्कर्मों में प्रेरित करें ॥ ३५ ॥

परिं ते दूडभो रथोऽस्मान् २॥ अंश्रोतु विश्वतः । येन
रक्षसि दाशुपः ॥ ३६ ॥

इस कण्डिका के मन्त्र का वामदेव ऋषि, नि० गायत्री छन्द और अग्नि देवता है । मन्त्रार्थ—हे अग्ने (ते, दूडमः, रथः, अस्मान्, विश्वतः, पर्यश्रोतु, येन, दाशुपः, रक्षसि) तुझारा, स्वच्छन्दगतिवाला, रथ, हमको, रक्षा करने के लिए सबदिशा-ओं में स्थित हो, जिसके द्वारा, यजमानों की, रक्षा करते हो ३६

भूर्भुवः स्वः सुभजाः प्रजाभिः स्यात् सुवीरौ वीरैः सुपोषः

पोषैः । नर्यं प्रजां मे पाहि । शंस्यं पशुन्मे पाहि ।
अर्थं पितुं मे पाहि ॥ ३७ ॥

इस कण्डिका में चार मन्त्र हैं, १ भूरित्यादि का वामदेवऋषि
ब्राह्मी उष्णिक इन्द्र, और अग्नि देवता है । २ नर्येत्यादि का
वाम० ऋ० यजु छ०, अग्नि दे० शंस्येत्यादि का वाम० ऋ०,
यजु छ०, अग्नि देवता । ४ अर्थयित्यादि का वाम० ऋ०, यजु
छ० और अग्नि देवता है । पहिले मंत्र से क्षुल्लकोपस्थान, दूसरे से
ग्रामान्तर को जातेसमय गार्हपत्य उपस्थान, तीसरे से आहवनी
योपस्थान और चौथे से दक्षिणाग्नि का उपस्थान करै । मन्त्रार्थ—१
(भूः, भुवः स्वः प्रजाभिः सुप्रजाः, वीरैः, सुवीरः, पोषैः, सुपोषः,
स्याम् (हे अग्ने तुम भूः, भुवः, स्वः तीन व्याहृति वा तीनलोकस्वरूप
हो तुम्हारे अनुग्रह से, सन्तानों से, सुन्दर सन्तानवाला, वीरपुत्रों
से, प्रशंसित वीर पुत्रों वाला, और अधिक सम्पत्तियों से, सुन्दर
सम्पत्तिवाला, प्रसिद्ध होऊँ (नर्यं, मे, प्रजाम्, पाहि) हे हि
तसाधक अग्ने, मेरी, पुत्रादि प्रजा को, रक्षा करो । ३—(शंस्यं,
मे, पशुन्, पाहि) हे अनुष्ठान वालों से प्रशंसित अग्ने, मेरे, गौ-
आदि पशुओं को, रक्षा करो । ४—(अर्थं, मे, पितुम्, पाहि)
हे निरन्तर गमन शील अग्ने, मेरे, पिता को, रक्षा करो ॥ ३७ ॥

आर्गन्म विश्ववेदसमस्मभ्यं वसुवित्तमम् । अग्ने स-
म्राडभि शुम्नसुभि सह आपच्छस्व ॥ ३८ ॥

इस कण्डिका के मन्त्र का आसुरि ऋ०, अनुष्टुप् इन्द्र और
आह० अग्नि देवता है । मन्त्रार्थ—(सम्राट्, अग्ने, अभ्यागमन्म,
विश्ववेदसम्, अस्मभ्यम्, वसुवित्तमम्, शुम्नसु, सह, अभि आय-
च्छस्व) हे सम्यक्प्रदीप्त, अग्निदेव !, ग्रामान्तर से आये हैं, क्यों
कि—तुम विश्व के सब चरित्र जानते हो, हमको, अत्यन्त धन के
दनेवाले हो, धनयुक्त बलके सहित, आइये, और हम में धन
बल स्थापित कीजिये ॥ ३८ ॥

अपमग्निर्गार्हपतिर्गार्हपत्यः प्रजाया वसुवित्तमः । अ-

अं गृहपतेऽभि शुम्नमभि सह आर्यच्छस्व ॥ ३९ ॥

इस कण्डिका के मंत्र का आसुरि ऋ०, न्यडुसारिणी बृहती छन्द और गार्हपत्याग्नि देवता है। मन्त्रार्थ—(अयम्, गार्हपत्यः, अग्निः, गृहपतिः, मजायाः, वसुवित्तमः) यह, गार्हपत्य, अग्निही, हमारे घरका अधिपति है, पुत्रपौत्रादि का अनुग्रह करनेवाला, अत्यन्त धनवान् है। (गृहपते, अग्ने, शुम्नम्, अभि, सह अभि, आर्यच्छस्व) हे गृहपालक, अग्निदेव, धन को, सब ओर से, बलको भी सब ओर से, दीजिये ॥ ३९ ॥

अयमग्निः पुरीष्यो रयिमान् पुष्टिवर्धनः । अग्नें पुरीष्याभि शुम्नमभि सह आर्यच्छस्व ॥ ४० ॥

इस कण्डिका के मन्त्र का आसुरि ऋ०, निचपृद् अनुष्टुप् छ०, और दक्षिणाग्नि देवता है। मन्त्रार्थ—(अयम्, अग्निः, पुरीष्यः, रयिमान्, पुष्टिवर्धनः, पुरीष्य, शुम्नम्, अभि, सह अभि, आर्यच्छस्व) यह, दक्षिणाग्नि, पशुओं का हितकारी, धनी, पुष्टिवर्धक है, हे पशुओं के हितकारिन् !, सब ओर से धनको, सब ओर से बलको, दीजिये ॥ ४० ॥

गृहा मा विभीतु मा वेपध्वमूर्जं विभ्रतु एमसि । ऊर्जं विभ्रद्ः सुमनाः सुमेधा गृहानैमि मनसा मोदमानः ॥ ४१ ॥

इस कण्डिका के मन्त्र का आसुरि, ऋषि, आर्षी पंक्ति छन्द और धारस्तु अग्नि देवता है। मन्त्रार्थ—(गृहाः, मा, विभीतु) हे घर के अधिष्ठात्री देवताओं !, मत, डरो (मा च, वेपध्वम्) और मत, काँपो (ऊर्जम्, विभ्रतः, एमसि) बल को, धारण करनेवाले आपके, निकट प्राप्त हुए हैं (ऊर्जम्, विभ्रतु, सुमनाः, सुमेधाः, मनसा, मोदमानः, गृहान्, एमि) मैं भी बलको, धारण करता हुआ, श्रेष्ठमनवाला, सुन्दर बुद्धि से युक्त, दुःखरहित-मन से, मसन्त होता हुआ, घरों में, प्राप्त होता हूँ ॥ ४१ ॥

येषामध्येति प्रवसन् येषु सौमनसो बह्वः । गृहानुपेक्षयामहे ते नो जानन्तु जानतः ॥ ४२ ॥

इस कण्डिका के मंत्रका शंयु ऋ०, अनुष्टुप् छन्द और वास्तुपति अग्निदेवता है । मन्त्रार्थ—(मसवन्, येषाम्, अध्येति) देशान्तर को जाताहुआ यजमान, जिन घरों की, कुशल चाहता है (येषु, बहुः, सौमनसः, गृहान्, उपह्वयामहे) जिन घरों में, बहुत, प्रीति करता है, उन गृहों को, प्रीति से आब्हान करते हैं । घर के अधिष्ठात्री देव हमारे निकट आवें (ते, जानतः, नः, जानन्तु) वह हमारे बुलापहुए देवता, उपकार को जाननेवाले, हम को, अकृतघ्नी जानें ॥ ४२ ॥

उपहृता इह गाव उपहृता अजावयः । अथो अन्नस्य
कीलाल उपहृतो गृहेषु नः । क्षेमाय वः शान्त्यै प्रपथे
शिवम् शग्मम् शंयोः शंयोः ॥ ४३ ॥

इस कण्डिकामें दो मंत्र हैं, उपहृता इत्यादि पहिले मंत्रका शंयु वार्हस्पत्य ऋ०, भुरिग् जगती छन्द, वास्तुपति देवता । क्षेमायेत्यादि का शंयु वार्हस्पत्य ऋ०, यजुश्छन्द और वास्तुपति देवता है । मन्त्रार्थ—(इह, नः, गृहेषु, गावः, उपहृताः, अजावयः, उपहृताः, अथ, अन्नस्य, कीलालः, उपहृतः) इन, हमारे, घरों में, गौएं, हमारी आज्ञा से सुखपूर्वकरहो, बकरी भेड़आदि सुखपूर्वकरहो, और, अन्नसम्बन्धिरस, बढ़ता रहै । यह हमारी आप से प्रार्थना है । २ (क्षेमाय, शान्त्यै, वः, प्रपथे) हे गृहों ! के अधिष्ठात्री देवों ! धन की कुशल केलिए, सकल अरिष्टों की शान्ति के लिए, आप को, शरणागत होता हूँ । (उशंयोः, शिवम्, शंयोः, शग्मम्) सब सुखसाधन चाहने वाले मुझ यजमान का, कल्याण हो, पारलौकिक सुख चाहनेवाले मुझ यजमान का, कल्याण हो ॥४३॥

अथ चातुर्मास्यमन्त्राः

प्रधासिनो हवामहे मरुतश्च विशादसः । करग्भेण
मजोषसः ॥ ४४ ॥

इस कण्डिका के मन्त्र का, प्रजापति ऋ०, गायत्री छन्द और मरुन् देवता है । चातुर्मास्य यज्ञ के चार पर्व हैं, वैश्वदेव, वरुण

प्रघास, सांकमेध, शुनासीरीय । वैश्वदेव और शुनासीरीय का इस में उपदेश नहीं है, शेष दोनों का विधान करते हैं । वरुणप्रघास नाम दूसरे पर्व में दक्षिण उत्तर दोनों वेदियों में हवि स्थापन कर आवाहन करे । मन्त्रार्थ—(रिशादसः, करम्भेण, सजोपसः, च, प्रघासिनः, मरुतः, हवामहे) शत्रु की कीहुई हिंसा को दूर करने वाले, दधि मिले सक्तु के साथ सब समान भीति करने वाले तथा, प्रघासनामक हवि को भक्षण करनेवाले, हे मरुतगणों ! हम तुम्हारा आवाहन करते हैं ॥ ४४ ॥

यद् ग्रामे यदरण्ये यत्सभायां यदिन्द्रिये । यदेनश्चकृमा
व्यमिदं तदवयजामहे स्वाहा ॥ ४५ ॥

इस कण्विका के मन्त्र का प्रजापति ऋषि, स्वराट् अनुष्टुप् छन्द और मरुत् देवता है । यजमान पत्नी को साथ लेकर करम्भ भरे कई पात्रों को शूर्प में मस्तकपर रखकर वेदीके पूर्व पश्चिम में खड़ा होकर दक्षिणाग्नि में हवन करताहुआ इस मंत्र को पढ़े । मन्त्रार्थ—(यत्, एनः, ग्रामे, यत्, अरण्ये, यत्, सभायाम्, इन्द्रिये, अचकृम, तत्, इदम्, अवयजामहे, स्वाहा) जो, पाप, ग्राम में वसतेहुए, जो पाप, वन में, जो पाप, सभा में और इन्द्रियोंके विषय में, किया है, उस, इस पापको, आहुति देकर नष्ट करता हूँ, यह हवि पापनाशक देवता को सुन्दर रूपसे मांसहो ॥ ४५ ॥

मो पू ण इन्द्रात्र पत्सु देवैरस्ति हि ष्मा ते शुष्मि-
न्नवयाः । महश्चित्स्थं मीढुषो यव्या हविष्मतो म-
रुतो वन्दते गीः ॥ ४६ ॥

इस कण्विका के मन्त्र का अगस्त्य ऋषि, भुरिक् पंक्ति छन्द और इन्द्रमरुत् देवता है । इसका जप करे । मन्त्रार्थ—(शुष्मिन्, इन्द्र, अत्र, पत्सु, देवैः, नः, मा, सु, ते, अवयाः, हिस्म, मीढुषः, हविष्मतः, यव्याः महश्चित्, गीः, मरुतः, वन्दते) हे बलवन् !, इन्द्रदेव, इन, संग्रामों में, मरुत् देवताओं के साथ, हमको, विनष्ट न करो, भले प्रकार रक्षा करो, तुम्हारा, यज्ञीयभाग, स्थित है,

वर्षा के द्वारा जगत् को सींचनेवाले, हवि पानेवाले आपकी, यबकी पिथी के करम्भ पात्रों से निष्पन्न हुई होमक्रिया से, निश्चित पूजा करते हैं, हमारी स्तुति, आपके सखा महत्देवताओं को, मणाम करती है ॥ ४६ ॥

अक्रन् कर्म कर्मकृतः सह वाचा मयोभुवा । देवेभ्यः
कर्म कृत्वास्तं प्रेतं सचाभुवः ॥ ४७ ॥

इस कण्डिका के मन्त्र का अगस्त्य ऋषि, विराट् अनुष्टुप् छन्द और अग्निदेवता है । प्रतिमस्याता यजमान को, करम्भपात्र के होम-स्थान से अपने स्थान को लेजाताहुआ इस मन्त्र को पढ़े । मन्त्रार्थ— (कर्मकृतः, मयोभुवा, वाचा, सह, कर्म, अक्रन्, सचाभुवः, देवेभ्यः कर्मकृत्वा, अस्तम्, प्रेत) वरुणमघास कर्म को करनेवाले ऋत्विज्, सुखरूप, स्तुति के साथ, वरुणमघास को, करचुके, इस कर्मस्थित हे ऋत्विजों देवताओं के लिए, वरुणमघास कर्म, करके, घर को, जाओ ॥ ४७ ॥

अवभृथ निचुम्पुण निचेरुरसि निचुम्पुणः । अब दे-
वैर्देवकृतमेनोऽयासिषमव मर्त्यैर्मर्त्यकृतम् । पुरुराष्णां
देव रिषस्पाहि ॥ ४८ ॥

इस कण्डिका के मन्त्र का अर्णवाम ऋषि, प्राची अनुष्टुप् छन्द और यज्ञ देवता है । वरुणमघासकर्म के अन्त में, स्त्री पुरुष को जल में अवभृथस्नान करावै, उस समय पढ़ने का यह मन्त्र है । मन्त्रार्थ— (निचुम्पुण, अवभृथ, निचेरुः, असि) हे मन्दगति जलाशय, अवभृथ नामक यज्ञ, तुम अत्यन्तगमन करनेवाले, हो (निचुम्पुण) यहां पर मन्दगति हजिये (देवैः, देवकृतम्, एनः, अवयासिषम्) ज्ञानेन्द्रियों से, जो कुछ हविके स्वामी देवताओं का, ज्ञानपूर्वक पापकिया, वह सब मैंने इस जलाशय में त्यागदिया (मर्त्यैः, मर्त्यकृतम्, अव) हमारे सहायक ऋत्विजों करके, यज्ञ देखने की आएहुए मनुष्यों का, अवज्ञा रूप पापकिया है, उसको इसजल में त्यागदिया, (देव, पुरुराष्णाः, रिषः)

पाहि) हे अन्नभृथ यज्ञ के अधिष्ठात्री देव, विरुद्धफल देनेवाले वध वा हिंसा से, हमारी रक्षा करो ॥ ४८ ॥

पूर्णां दर्वि परापत सुपूर्णा पुनरापत । वस्नेव विक्रीणा-
वष्टा इपमूर्जे शतक्रतो ॥ ४९ ॥

इस कण्डिका के मंत्रका और्णवाभ ऋ०, अनुष्टुप् छन्द और इन्द्र देवता है । इस मन्त्र को पढ़कर दर्विके द्वारा स्थाली से अन्न ग्रहण करे । मन्त्रार्थ—(दर्वि, पूर्णा, परा, पत) हे अन्न देने के साधन काष्ठपात्र, तुम स्थाली के निकट से अन्न को ग्रहण करने से पूर्ण होकर, उत्तमता को प्राप्त होतेहुए, इन्द्र के प्रति गमन करो । (सुपूर्णा, पुनः, आपत) कर्मफल से सम्यक् पूर्ण होकर, फिर, हमारे निकट आओ (शतक्रतो, वस्नेन, इपम्, ऊर्जम्, विक्रीणावष्टा) हे बहुकर्मा इन्द्र, मूल्य द्वारा, अभीष्ट हविरूप अन्न को, परस्पर बेचें । अर्थात् मैं तुम्हें हविदेता हूँ और तुम मुझको बल तथा पुण्यदो ४९ देहि मे ददामि ते नि मे धेहि नि ते दधे । निहारञ्च हरासि मे निहारं निहराणि ते स्वाहा ॥ ५० ॥

इस कण्डिका के मंत्र का और्णवाभ ऋषि, भुरिक् अनुष्टुप् छन्द और इन्द्र देवता है । इस को पढ़कर आहुति देय । मन्त्रार्थ मन में यह कल्पना करे कि—इन्द्र कह रहे हैं (मे, देहि, ते, ददामि) हे यजमान ! तुम मुझ इन्द्र के अर्थ, प्रथम हविदो, तुम यजमान के अर्थ, पीछे अपेक्षित हवि दूँगा (मे, निधेहि, ते, निदधे) मुझ इन्द्रके निमित्त, पहिले हवि सम्पादन कर, तुम यजमान के अर्थ, फिर मैं इच्छितफल देता हूँ । यजमान कहता है—(निहारम् मे, हरासि, निहारम्, ते, निहराणि, स्वाहा) हे इन्द्र मूल्य से खरीदने योग्य पदार्थ, मुझे दीजिये, मूल्यरूप हवि को, मैं तुझारे अर्थ, समर्पण करता हूँ, यह आहुति भलीमकार फलीभूत हो ॥ ५० ॥

अक्षन्नमीमदन्तु ह्यव प्रिया अधूपत । अस्तापत स्व-
भानवो विम्रा नविष्ठया मती योजान्विन्द्र ते हरी ॥ ५१ ॥

इस कण्डिका के मन्त्र का गौतम ऋषि, विराट् पंक्ति छन्द

और इन्द्र देवता है । इस को पढ़कर पितृयजन करै । मंत्रार्थ—इस पितृयज्ञ कर्म में जो पितर हैं वह हमारे दिए हविस्वरूप अन्न को (असन्, हि, अमीमदन्त, मियाः, अधूपत, मियाः, अवाधूपत) खानुके, क्योंकि, प्रसन्नहुए, और हमारी भक्ति को जानकर प्रीतियुक्त हो, अपना शिर हिलातेहुए, अपने शरीरों को, कम्पित करतेहुए । और (स्वभानवः, विप्राः, नविप्रया, मती, अस्तोषत) स्वयं दीप्तियुक्त, वह बुद्धिमान, नवीनबुद्धि से, युक्त होकर, स्तुति करतेहुए, अर्थात् हमारी आहुति को स्वीकार करके कृतज्ञता प्रकाशित की, इस कारण (इन्द्र, नु, से, हरी, अयोज) हे इन्द्र ! तुमभी सन्तुष्ट होकर इन पितरों के साथ मिलने के उद्देश्य से, शीघ्रही, तुम अपने, हरितवर्ण के दोनो घोड़ों को, जाने के निमित्त रथ में जोतो अर्थात् पितरों की वृत्ति से सन्तुष्ट होकर आप को आना चाहिये ॥ ५१ ॥

सुसन्द्दशं त्वा वयं मघवन् वन्दिषीमहि । प्र नूनं पूर्ण-
बन्धुरः स्तुतो यासि वशान् ॥ अनुयोजान्विन्द्र ते
हरीं ॥ ५२ ॥

इस कण्विका के मन्त्र का गौतम ऋषि, विराट् पंक्ति छन्द और इन्द्र देवता है, इस से आहवनीय का उपस्थान होता है । मन्त्रार्थ—(मघवन्, वयम्, सुसन्द्दशम्, त्वा, वन्दिषीमहि) हे इन्द्रदेव ! हम, सबको अनुग्रह युक्त समदृष्टि से देखनेवाले, आपकी, स्तुति करते हैं (स्तुतः, वशान्, अनु, नूनम्, यासि, पूर्णबन्धुरः, इन्द्र, से, हरी, आयोज) स्तुति कियेहुए तुम, अभिलाषावाले यजमानों को, देखकर, अवश्य, आश्चर्य, कारण कि तुम हमारी कामना पूरी करने को रथपर स्थित हो, अतः हे इन्द्र ! तुम, अपने, घोड़ों को, जोतो ॥ ५२ ॥

मनो न्वाहामहे नाराशं सेन स्तोमैः । विष्णोः
मन्मभिः ॥ ५३ ॥

इस कण्विका के मन्त्रका बन्धुर्वर्च०, अतिपाद् निब्यूह गायत्री

छन्द और मन देवता है । इससे गार्हपत्य का उपस्थान करै । मन्त्रार्थ—(नाराशंसेन, म्तोमेन, च, पितृणाम्, मन्मभिः नु, मनः, आब्हामहे) हम मनुष्यों के योग्य स्तुति वाले, स्तोत्र, और, पितरों के, इच्छित स्तोत्रों से, शीघ्र, मन के अधिष्ठात्री देवता को, आब्हान करते हैं । अर्थात् पितृयज्ञ को करते समय हमारा मन पितृलोक को गयासा होगया था, उसको बुलाते हैं ॥ ५३ ॥

आ न एतु मनः पुनः ऋत्वे दक्षाय जीवसे । ज्योक् च सूर्य्ये दृशे ॥ ५४ ॥

इस कण्डिका के मंत्र का बन्धुर्ऋ०, विराट् गायत्री छन्द और मन देवता है । इस से भी गार्हपत्य का उपस्थान करै । मन्त्रार्थ—(नः, मनः, ऋत्वे, दक्षाय, ज्योक्, जीवसे, सूर्य्ये दृशे, च, आप्तु) हमारा, मन, यज्ञसङ्कल्प के लिए, कर्मानुष्ठान के उत्पाद के लिए, चिरकालतक, जीवन के लिए, चिरकालतक सूर्य के दर्शन के लिए भी, प्राप्तहो ॥ ५४ ॥

पुनर्नः पितरो मनो ददातु दैव्यो जनः । जीवं व्रातं सचेमहि ॥ ५५ ॥

इस कण्डिका के मन्त्र का बन्धुर्ऋषि, निच्युट् गायत्री छन्द और मन देवता है । इससे भी उपस्थान करै । मन्त्रार्थ—(पितरः, दैव्यः, जनः, नः, मनः, पुनः, ददातु) हे पितरों ! आपकी आज्ञा से, देवसम्बन्धी, पुरुष, हमारे लिए, हमारे पूर्वोक्त मनको, फिर इस कार्य के लिये देय । इसप्रकार अनुष्ठान करके हम आपके अनुग्रह से (जीवम्, व्रातम्, सचेमहि) जीवन वाले, पुत्र पशु आदिकों को, हम सेवन करै ॥ ५५ ॥

वयं सोम व्रते तव मनस्तनुषु विभ्रतः । पूजावन्तः सचेमहि ॥ ५६ ॥

इस कण्डिका के मन्त्र का बन्धुर्ऋषि, गायत्री छन्द और सोम देवता है । इससे दक्षिणाग्नि का उपस्थान कर जप करै । मन्त्रार्थ—(सोम, वयम्, तव, व्रते, तनुषु, मनः, विभ्रतः, पूजावन्तः, सचे-

महि) हे पितृपन्न के सोमदेव ! हम यजमान, तुम्हारे, व्रतानुष्ठान में वर्त्तमान हुए, आपके शरीरों में, चित्तको, धारण करते हुए, आपके अनुग्रह से, पुत्र, पौत्रादि को प्राप्त हुए, हम, सेवन करते हैं ॥

एष ते रुद्र भागः सह स्वस्वाम्बिकया तं जुषस्व स्वाहा ।

एष ते रुद्र भाग आखुस्ते पशुः ॥ ५७ ॥

इस कण्डिका में दो मन्त्र हैं । एषत इत्यादि पहिले मंत्रका बन्धुर्ऋषि, राजापत्या गायत्री छन्द और रुद्र देवता है । दूसरे एषत इत्यादि मंत्र का याजुपीगायत्री छन्द और रुद्र देवता है । शाकमेध के अङ्ग, पितृपन्न के शेषांश त्र्यम्बकयाग [चन्द्रयाग] का आरम्भ होता है, उस में इस कण्डिका के पहिले मंत्र से अवदान हवन करै । मन्त्रार्थ—(रुद्र, ते, स्वस्वा, अम्बिकया, एषः, भागः, तं, जुषस्व) हे पाषियों और देहाभिमानियों को रुलानेवाले रुद्र, अपनी, भगिनी, अम्बिका के साथ, यह हमारादिया हुआ, पुरोडाशरूपमाग है, उसको, सेवन करिये । यजमान के जितने पुत्र पौत्रादि पुरुषों, उनमें से हरएक का एक २ पुरोडाश, फिर उन में से और एक अधिक पुरोडाश निर्वपण करै, उस अतिरिक्त पुरोडाश का होम न करै, किन्तु चूहे के खोदे बिल के समीप खोदी हुई मट्टीपर इस दूसरे मंत्र को पढ़कर बखेरदेय । मन्त्रार्थ—(रुद्र, एषः, ते, भागः, ते, आखुः, पशुः) हे रुद्र, यह हमारा बखेराहुआ, तुम्हारा, पुरोडाश, सेवनीय है, आपका, सुहा, रक्षणिय पशु है ॥ ५७ ॥

अवं रुद्रमदीमह्यवं देवं त्र्यम्बकम् । यथा नो वस्यसु-

स्करथथा नः श्रेयसस्करथथा नो व्यवसाययात् ॥५८॥

इस कण्डिका के मंत्र का बन्धुर्ऋषि, विराट् पंक्ति छन्द और रुद्र देवता है । चूहे की मट्टी के पास से आकर इस का जप करै । मन्त्रार्थ—(रुद्रम्, त्र्यम्बकम्, देवम्, अव, अदीमहि) शत्रुओं को रुलानेवाले, तीनों लोकों के रक्षक, सृष्टि आदि से क्रीड़ा करने वाले वा शत्रुजयशील वा सब प्राणियों में आत्मस्वरूप से चेशा

करनेवाले, श्रुतिमान्, स्तोत्रों से स्तुत वा सर्वगत परमेश्वर को, गुरु तथा शास्त्र के द्वारा जानकर, सब दुःखों का नाश करते हैं (यथा, नः, वस्यस्करत्, यथा, नः, श्रेयस्करत्, यथा, नः, व्यवसा- ययात्) जिस प्रकार हमको वह, उत्तम प्रकार से निवास करने वाले करें, जिस प्रकार, हमको, ज्ञातियों में श्रेष्ठ करें, जिस प्रकार हमको, सब कार्यों में निश्चययुक्त करें । इस प्रकार इनका जप करते हैं ॥ ५८ ॥

**भेषजमसि भेषजं गवेऽश्वाय पुरुषाय भेषजम् । सुखं
मेषाय मेष्यै ॥ ५९ ॥**

इस कण्डिका के मन्त्र का बन्धुऋषि, स्वराइ गायत्री छन्द और रुद्र देवता है । जप करें । मन्त्रार्थ—(भेषजम्, असि) हे रुद्र आप औषध की समान सब उपद्रवों को दूर करनेवाले, हो (गवे, अश्वाय, पुरुषाय, भेषजम्, मेषाय, मेष्यै, सुखम्) गौ, घोड़े, और पुत्र पौत्रादि परिवार के लिये, रोगदूर करने को औषधि दो, मेष, मेषी आदि पशुओं के निरुपद्रव जीवन के लिये, अपने सुखदायक स्वरूप का प्रकाश करिये ॥ ५९ ॥

**त्र्यम्बकं यजामहे सुगन्धिं पुष्टिवर्धनम् । उर्वारुकमिव
बन्धनान्मृत्योर्मुक्षीय मामृतात् । त्र्यम्बकं यजामहे
सुगन्धिं प्रतिवेदनम् । उर्वारुकमिव बन्धनादितो मु-
क्षीय मामृताः ॥ ६० ॥**

इस कण्डिका में दो मंत्र हैं, त्र्यम्बकम् इत्यादि पहिले का वशिष्ठ ऋषि, बाह् ग्राही त्रिष्टुप् छन्द और रुद्र देवता है दूसरे त्र्यम्बकमित्यादि का ऋषि आदि पूर्वोक्त है । जैसे पितृमेध में पुत्रादि अपनी वाम ऊरु को ताड़न करके उलटी प्रदक्षिणा करते हैं तथा देवता की सेवा में दाहिनी जंघा ताड़न करके, तीन प्रदक्षिणा करते हैं, तिसी प्रकार इसमें भी पुरुष पहिले मंत्र जपकर अग्नि की तीन प्रदक्षिणा करते हैं । मन्त्रार्थ—(सुगन्धिम, पुष्टि वर्धनम्, त्र्यम्बकम्, यजामहे) दिव्यगन्धयुक्त मर्त्यधर्महीन उभय

लोक का फल देवेवाले, धन धान्यादिकी पुष्टि बढ़ानेवाले, पूर्वोक्त तीन नेत्रोंवाले शिवको, हम पूजते हैं । वह हमको (मृत्योः, मुक्षीय, बन्धनात्, उर्वारुकामिव, अमृतात्, मामुक्षीय) संसार के मरण से छुड़ावे, बन्धन से, कर्कटी फल को जैसे, अर्थात् जैसे पकाहुआ फल अपनी घुंटी से छूटकर भूमि पर गिरजाता है, तैसेही, शिवकी कृपा से मैं जन्ममरण रहित होजाऊँ, और अमरतारूप मुक्ति से, भ्रष्ट न होऊँ । दूसरे मंत्र को पढ़कर यजमान की कन्या तीन परि-
क्रमा करे । मन्त्रार्थ—(पतिवेदनम्, सुगन्धिम्, ध्यम्बकम्, यजामहे, उर्वारुकम्, इव, इतः, बन्धनात्, मुक्षीय, अमृतः, मा) सुन्दर पति के प्राप्त करानेवाले, दिव्य यशवाले—धर्माधर्म के ज्ञाता, ध्यम्बक शिवको, हम पूजती हैं, कर्कटीफल की, समान, इस माता पितादि कुटुम्ब रूप बन्धन से, छूटकर, विवाह उपरान्त पति के समीप से, भत हुआओ । अर्थात् पिता के गोत्र और घर से अलग होकर पति के घर और गोत्र में शिवजी के अनुग्रह से सदा नि-
वास करूँ ॥ ६० ॥

एतत्ते रुद्रावसं तेन पुरो मूर्जवतोऽर्तीहि । अव तत-
धन्वा पिनांकावसः कृत्तिवासा अहिंस्रसन्नः शिबो-
ऽर्तीहि ॥ ६१ ॥

इस कण्डिका के एतत् पहिले मंत्र का वशिष्ठ ऋषि, भुरिगा-
स्तार पंक्ति छन्द और रुद्र देवता है दूसरे कृत्तिवासा इत्यादि का वशिष्ठऋषि, भुरिगास्तार पंक्ति छन्द और रुद्र देवता है । ध्य-
म्बक याग के हवन से बचे हुए चावल जौ आदि पुरोडाश को वृण वांस आदि के बने हुए दोपात्रों में रखकर एक वांस की लकड़ी के दोनों सिगों में उस को बांध कंधेपर रखकर उत्तरको मुख किए कुछ दूरजाकर जिसको गौ मुख उठाकर संघन सकै ऐसे वृक्ष आदि ऊँचे स्थान पर इस मंत्रको पढ़कर स्थापन करै, इस से गौओं को रोग न होगा । मन्त्रार्थ—(रुद्र, एतत्, ते, अवसम्) हे रुद्रदेव ! यह आपका, हविःशेष नामक भोजन है (तेन, अ-

वततधन्वा, पिनाकावसः, मूजवतः, परः, अतीहि) तिस के साथ तुम, हमारे विरोधियों के न रहने से मृत्यञ्चा उतारे हुए अपने पिनाक धनुष को वज्र से ढाँपे, मूजवान नाम पर्वत के, पार होकर, गमन करो । जिससे कि माणी भयभीत न हों । दोनों पात्रों को वृक्ष आदि ऊँचे स्थान में स्थापित करके यजमान वेदी के पास आ दूसरे मंत्र से जल स्पर्श करे । मन्त्रार्थ—(कृत्तिवासाः, नः, अर्हिसन्, शिवः, अतीहि) हे रुद्र तुम चर्माम्बर धारण किए हो वा सबप्राणियों के, अन्तर्गामी होने से चर्माम्बरधारी हो, हमारी हिंसा न करतेहुए, हमारी पूजा से मसन्न हो कल्याणस्वरूप होतेहुए, अपने स्थान में निवास करो ॥ ६१ ॥

श्यायुषं जमदग्नेः कश्यपस्य श्यायुषम् । यद्देवेषु श्यायुषं तन्नो अस्तु श्यायुषम् ॥ ६२ ॥

इस कण्डिका के मंत्र का नारायण ऋषि, उष्णिक् छन्द और रुद्र देवता है । यजमान शिर का मुण्डन करावै उससमय पहिले इस मंत्रको पढ़े । मन्त्रार्थ—(जमदग्नेः, श्यायुषम्, कश्यपस्य, श्यायुषम्, यत्, देवेषु, श्यायुषम्, तत्, श्यायुषम्, नः, अस्तु) जमदग्नि ऋषिकी, जो बालकपन आदि तीन अवस्था हैं, कश्यप प्रजापति की, जो तीनों अवस्था हैं, जैसी, देवताओं में, तीन अवस्था हैं, वह सब, श्यायुष, हम यजमानों को, प्राप्त हों अर्थात् रुद्र के अनुग्रह से हमारे चित्र इनके से होजायें ॥ ६२ ॥

शिवो नामासि स्वधितिस्ते पिता नमस्ते अम्तु मा मा हिंसीः । निर्वर्त्तयाम्पायुषेऽन्नाद्याय प्रजननाय रायस्पोषाय सुप्रजास्त्वाय सुधीर्याय ॥ ६३ ॥

इस कण्डिका में दो मंत्र हैं, पहिले शिव इत्यादि का नारायण ऋषि, भुरिग्न जगती छन्द और क्षुर देवता है, निर्वर्त्तयेत्यादि दूसरे मंत्रका नारायण ऋ०, भुरिग्नजगती छन्द और लिङ्गोक्त देवता है । पहिले को पढ़कर क्षुर उठावै । मन्त्रार्थ—(सर्वव्यापक होने से क्षुरे में भी विद्यमान देव ! तुम (नाम, शिवः, अस्ति)

नाम से, शान्तस्वभाव वा कल्याणकारक, हो (स्वधितिः, ते, पिता) वज्र, तेरा, रक्षक है (ते, नमः) तुझको, नमस्कार है (माम्, मा, हिंसीः) मुझको, मत, हिंसितकरो । दूसरे मंत्रको पढ़कर मुण्डन करे । मन्त्रार्थ—हे यजमान ! इस कर्म के फल से (आयुषे, अन्नाद्याय, प्रजननाय, रायस्पोषाय, सुमजास्त्वाय, सुधीर्याय, निर्वर्त्तयामि) जीवन के लिये, अन्नादि भक्षण के लिए अधिक सन्तान के लिए, धनपुष्टि के लिए, सन्तान उत्पन्न करने की उत्तम शक्ति के लिए, और श्रेष्ठ बलकी प्राप्ति के लिये, मुण्डन करता हूँ ॥ ६३ ॥

इति श्रीशुक्लयजुर्वेदान्तर्गत माध्यन्दिनीपशाखाध्येन्द्र मारुद्राजगोशो-

पुस्तके तृतीयोऽध्यायः समाप्तः ॥

तृतीय अध्याय समाप्त.

अथ चतुर्थोऽध्यायः ।

एदमंगन्म देवयजनं पृथिव्या यत्र देवासो अजुषन्तु विश्वं । ऋक्सामाभ्यां सन्तरन्तो यजुर्भी रायस्पोषेण समिषा मदेम । इमा आपः शमु मे सन्तु देवीः । ओषधे त्रायंस्व । स्वधिते मैनं हिंसीः ॥ १ ॥

इस कांडिका में ४ मन्त्र हैं । १ एदमित्यादि का प्रजा० ऋ० विराह ब्राह्मी जगती छन्द देवयजन देवता है । २ आप इत्यादि का प्र० ऋ०, पूर्वोक्त छ०, आप देवता है । ३ ओषध इ० का प्र० ऋ० वि० प्रा० पंक्ति छ० ओषधि देवता है । ४—स्वधित इत्यादि का ऋषि छन्द पूर्वोक्त और सुर देवता है । तीसरे अध्याय में आधान, अग्निहोत्र, उपस्थान और चातुर्मास्य के मन्त्र कहे अब ४ अध्याय में ३२ काण्डिका तक अग्निष्टोम के मंत्र कहे जायेंगे, आदि में यजमान १६ ऋत्विजों का वरण करके अरणी में अग्नि का समारोपण कर पहिले मंत्र को पढ़ता हुआ यज्ञशाला में प्रवेश करे, मन्त्रार्थ-

(इदम् पृथिव्याः, देवयजनम्, आ अगन्म) हम इस, पृथ्वीसम्बन्धी, देवयजनस्थान में, आये हैं (यत्र, विश्वेदेवाः, अजुपन्त) जहाँ, सबदेवता, प्रीति से स्थितहुए (ऋक्सामाभ्याम्, यजुभिः, सन्तरन्तः, रायः, पोषेण, इपा सम्मदेम) हम ऋग्वेद सामवेद, और यजुर्वेद के मन्त्रों से, समुद्रसमान गम्भीर सोमयागको करते हुए, धनकी, पुष्टि, और इच्छित अन्न से, हृष्ट और वृत्त हों। दूसरे मन्त्र से यजमान के बाल भिगोवै। मन्त्रार्थ (देवीः, आपः, मे, शम्, उ, सन्तु) प्रकाशयुक्त निर्मल, शिरपर लगाएहुएजल, मुझ यजमान के निमित्त, सुखदायक—ही, हों। तीसरे मन्त्र को पढतेहुए सूक्ष्म कुशाग्र को छुरेसे काटकर जलपात्र में डालै। मन्त्रार्थ—(ओषधे, नायस्व) हे कुशतरुण ओषधि के देवता, यजमान की छुरे से रक्षा करो। अध्वर्यु चौथे मन्त्र के पढेजाने पर नाई को छुरादेय वह यजमान का क्षौर करै। मन्त्रार्थ—(स्वधिते, एनम्, मा, हिंसीः) हे धुर के अधिष्ठात्री देव, इस यजमान को, मत पीड़ा दो ॥ १ ॥

आपो अस्मान्मातरं शुन्धयन्तु घृतेन नो घृतप्वः पुनन्तु । विश्वम् हि रिप्रम्ब्रह्मन्ति देवीरुदिदाभ्यः शुचिरापूत एमि । दीक्षातपसोस्तनूरसि तान्त्वां शिवा-
 च्छ अगमात्परिदधे भद्रं वर्णम्पुष्यन् ॥ २ ॥

इस कण्डिका में दो मन्त्र हैं, आप इत्यादि और दीक्षेत्यादि दोनों का प्रजा० ऋ० और स्वराह् ब्राह्मी त्रिष्टुप् छन्द है, पहिले का आप और दुसरेका वास देवता है। १ मन्त्रमे तडाग आदि में स्नान करके निकलै। मन्त्रार्थ—(मातरः, आपः, अस्मान्, शुन्धयन्तु) माताकी समान पालनकर्त्ता, हेजलों, हमको शुद्ध करो। (घृतप्वः नः, घृतेन पुनन्तु) पढतेहुए जलों से पवित्र करनेवाले हेजलदेवताँ! क्षरितजलसे, हमको, शुद्ध करो (हि, देवीः, आपः विश्वम्, रिप्रम्, ब्रह्मन्ति) निश्चय, दीप्तिमान्, निर्मल, जल, सम्पूर्ण, पापको, धोदेते हैं। (आभ्यः, शुचिः, आपूतः, उत्-इत्, एमि) इनजलोंसे, स्नान करने पर शुद्ध, बाहर भीतर प-

वित्र हुआ मैं, इस जल से ऊपर, आता हूँ । दूसरे मन्त्र से स्नान के अनन्तर रेशमी वा कोरी धोती पहिरै फेंक न बांधै । मन्त्रार्थ—(दी-क्षातपसोः, तनूः, असि) हे क्षीमवस्त्रतुमदीक्षाभिमानि और तपोऽभि-मानी देवता के, शरीरसमान भिय, हो (ताम्, शिवाम्, शग्माम् त्वा, वर्णम्, पुण्यन्, परिदधे) उस दीक्षा तप के शरीर रूप, कल्याण रूप, सुखस्पर्श, तुमको, तुम्हारे धारने से कल्याणरूपकान्ति को, पुष्ट करता हुआ, मैं धारण करता हूँ ॥ २ ॥

महीनाम्पयोऽसि वच्योदा असि वच्यो मे देहि । वृ-
त्रस्यासि कनीनकश्चक्षुर्दा असि चक्षुर्मे देहि ॥ ३ ॥

इस कण्डिका में महीनामित्यादि और वृत्रस्येत्यादि दो मंत्र हैं, दोनों का प्रजा० ऋ०, भुरिक्विणुब्जद और पहिले का नवनीत देवता तथा दूसरे का अञ्जन देवता है । पहिले मन्त्र से यजमान शाला के पूर्व में कुशाओं पर पूर्वमुख बैठ कर गौ के मक्खन का मस्तक से चरणतक उबटन करे । मन्त्रार्थ—(महीनाम्, पयः, असि) हे नवनीत तुम गौओं के दूधरूप, हो । (वच्योदाः, असि, मे, वच्यो, देहि) तेजसम्पादन करने में समर्थ हो, मुझको तेज, दो । दूसरे मंत्र से त्रिककुन् पर्वत के, उसके न मिलने पर दूसरे अञ्जन को यजमान दाईं आँख में दो बार और बाईं में तिनवार अँजै । मन्त्रार्थ—(वृत्रस्य, कनीनकः, असि) हे अञ्जन तुम वृत्रासुर की, काली पुतलीरूप, हो, (चक्षुर्दाः, असि, मे, चक्षुः, देहि) चक्षु इन्द्रिय को शक्ति देने वाले, हो, मुझको, दृष्टि, दो ॥ ३ ॥

चित्पतिर्म्मा पुनातु वाक्पतिर्म्मा पुनातु देवो मां स-
ञ्चिता पुनात्वाच्छिद्रेण पवित्रेण सूर्यस्य रश्मिभिः ।
तस्य ते पवित्रपते पवित्रं पूतस्य यत्कामः पुने सच्छ-
केपम् ॥ ४ ॥

इस कण्डिका में तीन मन्त्र हैं तिनोका प्रजापति ऋ० निच्युद्ब्राह्मी पंक्ति छन्द और प्रजापति सविता देवता है । इन ३ मन्त्रों को सात सात बार पढ़कर कुश से शिर पर मर्जन करे । मन्त्रार्थ—(चित्पतिः,

अच्छिद्रेण, पवित्रेण, सूर्यस्य, रश्मिभिः, मा, पुनातु) ज्ञानाधीश
ब्रह्मा, वायुरूप, पवित्रेसे, सूर्यकी किरणों से, मुझको, पवित्र करें ।
(वाक्पतिः, मा, पुनातु) वाणी का अधिष्ठात्री देवता, मुझको
पवित्र करे । (सविता, देवः, मा, पुनातु) सर्वान्तर्यामी, देव,
मुझको, पवित्र करें । (पवित्रपते, तस्य पवित्रपूतस्य, ते, यत्, कामः,
पुने, तत्, शक्यम्) हे पवित्रात्मा के रक्षक, उस, पवित्रपूत, आपके,
पवित्रे से मैं पवित्र हुआ हूँ, जिस, कामनासे, मैं पवित्र हुआ हूँ
उसको करने को, मैं समर्थ होऊँ ॥ ४ ॥

आवों देवास ईमहे वामम्प्रयुत्प्रध्वरे । आवों देवास
आशिषो यज्ञियासो हवामहे ॥ ५ ॥

इस कण्डिका में १ मन्त्र है, उसका प्र० ऋ० निच्युदाप्यनु
मुच्छन्द और आशीर्देवता है । इस मंत्र को अध्वर्यु यजमान से
कहलावै । मन्त्रार्थ—(देवासः, अध्वरे, प्रयाति, वामम्, वः, अइम-
हे) देवताओं !, इस यज्ञ के, वर्तमान होनेपर, आपसे माँगनेयोग्य
यज्ञफल को, आपसे, माँगते हैं । (देवासः, यज्ञियासः, आशिषः,
आ, वः, हवामहे) हे देवताओं, यज्ञसम्बन्धी, फलरूप आशीर्वादों
के, प्राप्त करने को, आपको, आवाहन करते हैं ॥ ५ ॥

स्वाहा यज्ञम्मनसः स्वाहोरोऽन्तरिक्षात् । स्वाहा धावा
पृथिवीभ्याम् । स्वाहा वातादारभे स्वाहा ॥ ६ ॥

इस कण्डिका में ४ मन्त्र हैं, चारों का प्र० ऋ०, निच्युदाप्यनु
नु० छन्द और यज्ञदेवता है । पहिले मन्त्र से दोनों हाथ की कन
अंगुलियों को सकोटकर तथा शेष मन्त्रों से, और अंगुलियों को
सकोटकर मुझी बाँध स्वाहा कहै और मौन होकर फिर खोलै ।
मन्त्रार्थ—(मनसः, यज्ञम्, आरभे स्वाहा) चित्त से, यज्ञ को, आर-
म्भ करता हूँ, यह सुसिद्ध हो । (उरोः, अन्तरिक्षात्, स्वाहा) वि-
स्तीर्ण, अन्तरिक्ष से, यज्ञलाभ करते हैं । (धावापृथिवीभ्याम्, स्वाहा)
धुलोक और भूलोक से, यज्ञलाभ करते हैं । (वातात्, १५
मवहमानवायु से, यज्ञलाभ करते हैं । (स्वाहा) यह अनुष्ठान पु

आकृत्यै मयुजेऽग्नये स्वाहा मैथायै मनसेऽग्नये स्वाहा
 दीक्षायै तपसेऽग्नये स्वाहा सरस्वत्यै पूष्णेऽग्नये स्वा-
 हा । आपो देवीवृहतीविश्वशम्भुवो धावापृथिवी उरो
 अन्तरिक्ष बृहस्पतये हविषा विधेम स्वाहा ॥ ७ ॥

इस कण्डिका में ५ मन्त्र हैं । पहिले चार का म० ऋ०, पंक्ति
 छ०, अग्नि देवता है । ५ वें का म० ऋ०, आर्षी वृहती छ०
 और लिङ्गोक्त देवता है । इन में पहिले ४ मन्त्रों से अन्नग्रहण
 करके ५ वें मन्त्र से तथा अगली कण्डिका के मन्त्रों से स्थाली
 में से खुबे के द्वारा दो उद्ग्रभण (कार्यारम्भसूचक) आहुति
 देय । मन्त्रार्थ (आकृत्यै, मयुजे, अग्नये, स्वाहा) यज्ञ करने की
 मनकी प्रबल इच्छा को पूरी करने के लिए, भेरक, अग्नि के अर्थ,
 यह आहुति सुसिद्ध हो (मैथायै, मनसे, अग्नये स्वाहा) धारण शक्ति
 के लिये, मनके भेरक, अग्नि के अर्थ, यह आहुति, सुसिद्ध हो
 (दीक्षायै तपसे, अग्नये, स्वाहा) प्रतनियमादि दीक्षा की सिद्धि
 के लिये, तप के भवर्त्तक, अग्निदेव के अर्थ, यह आहुति सुसिद्ध हो
 (सरस्वत्यै, पूष्णे, अग्नये, स्वाहा) मन्त्रोच्चारण की शक्ति के
 लिये, पुष्टि के साधक, अग्निदेव के अर्थ, यह आहुति सुसिद्ध हो
 (देवाः, वृहतीः, विश्वशम्भुवः आपः, धावापृथिवी, उरो, अन्तरिक्ष,
 बृहस्पतये, हविषा, विधेम, स्वाहा) मकाशवान्, महान्, जगत्
 के सुखदाता, हे जलों, हे पृथिवी सुलोकः हे विस्तीर्ण, अन्तरिक्ष
 तुम्हारे अर्थ और बृहस्पति के अर्थ, हवि, देते हैं, सुहुत हो ॥ ७ ॥

विश्वो देवस्य नेतुर्मत्तां वुरीत सख्यम् । विश्वो गाय
 इपुष्याति शुम्नं वृणीत पुष्यसे स्वाहा ॥ ८ ॥

इस कण्डिका में एक मन्त्र है, उसका स्वस्त्याश्रेय ऋ०, आ-
 र्पणुषुष्यन्द और सविता देवता है । इस मन्त्र से औद्ग्रभण का
 हवन करे । मन्त्रार्थ— (विश्वः, मत्ताः, नेतुः, देवस्य, सवितुः, स-
 ख्यम्, वुरीत,) सकल मनुष्यों के, कर्षानुसार नियामक, दाना-
 दिगुणयुक्त, परत्मा के, भाक्तिभाव को, चाहो । (पुष्यसे, शुम्नम्

वृणीत) कर्म-उपासना-ज्ञान की पुष्टि के लिये, अन्नको, चाहो (विश्वः, राये, इषुध्यति, स्वाहा) सकल मनुष्य, धन के लिए परमात्मा की प्रार्थना करते हैं, उस परमेश्वर के लिये श्रेष्ठ होम हो ॥ ८ ॥

ऋक्सामयोः शिल्पे स्थस्ते वामारंभे ते मा पातु मास्य
यज्ञस्योदृचः । शम्मांसि शर्म मे यच्छ नमस्ते अस्तु
मा मा हिंसी ॥ ९ ॥

इस काण्डिका में २ मन्त्र हैं, दोनों का आङ्गिरस ऋ०, आर्यी पंक्ति छन्द और कृष्णाजिन देवता है । पहिले मंत्र से यजमान बैठने को बिछाई हुई मृगचर्म के शुक्ल कृष्ण रोमों की संधि को छुए । मन्त्रार्थ— (ऋक्सामयोः, शिल्पे, स्थः) हे मृगचर्म के श्वेतश्याम रेखाओं, तुम ऋक्साम के मंत्रों के अधिष्ठात्री देवताओं के, चातुर्य, हो (ते, वाम्, आरभे) उन, तुमको, स्पर्श करता हूँ (ते, मा, अस्य, यज्ञस्य, आ उदृचः, पातम्) वह तुम, मुझको, इस, यज्ञकी, समाप्तिक, रक्षा करो । दूसरे मंत्र से मृगचर्म पर दाहिने जानु से चट्टे और पश्चिम भाग में उसी दाक्षिण जानु से बैठे । मन्त्रार्थ— (शर्म, अंसि, मे, शर्म, यच्छ) शरणदाता, हो, मुझे, शरण, दो । (ते, नमः, अस्तु, मा, माहिंसीः) तुम्हें नमस्कार, हो, मुझको, मत पीडा दो ॥ ९ ॥

ऊर्गस्याङ्गिरस्पूर्णमृदा ऊर्जम्मयिं धेहि । सोमस्य नी-
विरंसि विष्णोः शम्मांसि शर्म यजमानस्येन्द्रस्य यो-
निरसि सुसस्याः कृपीस्कृषि । उच्छ्रयस्व वनस्पत
ऊर्ध्वो मा प्राह्यहंस आस्य यज्ञस्योदृचः ॥ १० ॥

इस काण्डिका में ६ मन्त्र हैं सब का आङ्गिरस ऋ० १।२।३।४।
कानिच्युदापी जगती छन्द ५।६ का साम्नात्रिष्टुप् छन्द १।२।३।४ का
मेखला-नीवी-वस्त्र-कृष्णविषाण देवता । ५ । ६ का कृष्ण
विषाण द्युह देवता है । पहिले मन्त्र से यजमान बेणी के आकार
तिहरी सन भुंज मिलीमेखला धोती के भीतर बांधे । मन्त्रार्थ-आ-

द्विरसी, ऊर्क, ऊर्णम्मृदाः, आसि, ऊर्जम्, मयि, धेहि) हे मेखला तुम अंगिरावंशी ऋषियों से सम्बन्ध रखने वाली, अन्नरसरूप, जनकी समान कोमल, हो, अन्नरस को, मुझ में स्थापन करो । दूसरे मन्त्र से मेखलाको कमर में बांधें । मन्त्रार्थ—(सोमस्य नीधिः) हे मेखले ! तुम सोम देवता की, नीची हो । तीसरे मन्त्र से शिरपर पगड़ी पहिरें । मन्त्रार्थ—(विष्णोः, शर्म, आसि) हे उष्णीष तुम बहुव्यापी यज्ञकी, कल्याणरूप, हो (यजमानस्य, शर्म) मुझ यजमान का, कल्याण करो । चौथे मन्त्र से तनि वा पांचरेखावाले कालेमृग के सींग को टुपट्टे के किनारे में बांधें इस से खुंजावै और दक्षिण भों के ऊपर ललाट में स्पर्श करें । मन्त्रार्थ—(इन्द्रस्य, योनिः) हे विषाण तुम जैसे इंद्रके, स्थान हो तैसे मेरे होओ । पांचवें मंत्र से वेदी के बाहर विषाण से रेखा करें । मन्त्रार्थ—(कृषिः, सुशस्याः, कृधि) हे विषाण तुम खेती को, सुन्दर धान्य वाली, करो । छठे मंत्र से यजमान अपने मुखतक ऊंचा गूलड का दण्डा लेकर उस को खड़ा करें । मन्त्रार्थ—(वनस्पते, उच्छ्रयस्व, उर्ध्वः, अस्य, यज्ञस्य, उदृचः, मां, अंहसः, पाहि—) हे वनस्पति के, दण्ड, तुम ऊंचे होवो, ऊंचे होकर, इस, यज्ञकी, समाप्ति पर्यंत, मुझको, पाप से, रक्षा करो ॥ १० ॥

व्रतङ्कृणुत व्रतङ्कृणुतामिर्ध्रामिर्ध्रजो वनस्पतिर्य-
ज्ञियः देवीन्धियंमनामहे सुमृडोकामभिष्टये । वचोधा
यज्ञवाहसश्च सुतीर्थी नो असदृशे । ये देवा मनोजाता
मनोयुजो दक्षकृतवस्ते नोवन्तु ते नः पान्तु तेभ्यः
स्वाहा ॥ ११ ॥

इस कण्डिका में ३ मंत्र हैं, तीनों के आह्निरस ऋषि, पहिले का स्वराहवाही अनुष्टुप्छन्द, यज्ञ देवता, दूसरे का प्राजापत्या जगती छन्द यज्ञ देवता और तीसरे का प्राजापत्या त्रि० छ० और अग्निमित्रावरुणादित्यविश्वेदेवा देवता हैं । पूर्वमुख दीक्षित यजमान आहवनीय के सामने व्रतं कृणुत, इस मंत्र को तीन बार

पढ़कर 'अग्निर्व्रतम्' कहकर वाग्विसर्जन कर ऋत्विजों को यज्ञकी आज्ञादेय । मन्त्रार्थ—(व्रतम्, कृणुत, व्रतम्, कृणुत, अग्निः, ब्रह्म अग्नि, यज्ञः, वनस्पतिः, याज्ञियः) हे ऋत्विजों, व्रतानुष्ठान, करो, दुग्धको, दोहन आदि से सम्पादन करो, यह यज्ञाग्नि, तीनों वेदरूप है, यह अग्नि, यज्ञसाधनरूप है, खादिरादि वनस्पति, यज्ञ के योग्य होने से यज्ञस्वरूप है । दूसरे मंत्र से यजमान आचमन करे । मन्त्रार्थ—(अभिष्टये, दैवीम्, सुमृडीकाम्, वचंधाम्, यज्ञ बाहसम्, धियम्, मनामहे) इस अनुष्ठानकी सिद्धि के लिए देव-संबंधिनी, सुन्दर, सुखकारिणी, तेजोधारिणी, यज्ञ का निर्वाह करने वाली, बुद्धि को, परमात्मा से प्रार्थना करते हैं (सुतीर्थ्याः, नः वशे, असत्) सर्वमसंनीय बुद्धि, हमारे, वशमें, हो । तीसरे मंत्र से यजमान मृत्तिका के पात्रमें दूधपिये । मन्त्रार्थ—(ये, मनोजाताः, मनोयुजः, दक्षक्रतवः, देवाः, ते, नः, अवन्तु, तेभ्यः, स्वाहा) जो, इच्छारूप मनसे मकड़ हुए, रूपादि को देखते में मनसे युक्त, सत्सङ्कल्पवाले, चक्षुरादि इन्द्रिय रूप प्राण, वे सब, हमको, विघ्नदूरकर रक्षाकरो, उन देवताओं के अर्थ, यह क्षीर-सुफल हो ॥ ११ ॥

श्वान्नाः पीता भवत यूयमापो अस्माकंमन्तरुदरे सुशेवाः । ता अस्मभ्यमयक्ष्मा अनमीवा अनागसः स्वदन्तु देवीमृता ऋतावृधः ॥ १२ ॥

इस कण्डिका में एक मंत्र है, इसका आर्ति ० ऋ०, जगती छन्द और आप देवता है । इस मंत्र से यजमान अपनी नाभि का स्पर्श करे । मन्त्रार्थ—(आपः, यूयम्, पीताः, श्वान्नाः, भवत) हे दुग्धरूप जलों, तुम, पिये हुए, शीघ्रही जीर्ण, होजाओ (अस्माकम् अन्तरुदरे, सुशेवाः, ताः, अयक्ष्माः, अनमीवाः, अनागसः, ऋतावृधः, देवीः, अमृताः, अस्मभ्यम्, स्वदन्तु) हम पीनेवालों के, उदर के भीतर, सुखकारी, वह तुम, रोगादिरहित, साधारण रोगों को दूर करनेवाले, भूख प्यास आदि दोषों को दूरकरनेवाले, यज्ञवृद्धि के हेतु, मकाशवान्, मृत्युको हटानेवाले स्वयं मरण धर्मरहित तुम,

हमारे लिए, स्वादयुक्तहोयो ॥ १२ ॥

इयन्ते यज्ञियांतनूरपो भुञ्चामि न मजाम् । अ० ह्यो
 भुचः स्वाहाकृताः पृथिवीमाविंशतं पृथिव्या सम्भव १३
 इस कण्डिका में ३ मन्त्र हैं, तीनों के आङ्गिरस ऋषि, १ । ३ का
 राजापत्या गा० छ०, २ का याजुपी छन्द । १ का यज्ञदेवता-२ का
 यजमान देवता और ३ का पृथिवी देवता है । १ मन्त्र से मस्राव के
 समय यजमानकाले हिरन के सींग से मट्टी या, कुब्र वृण ग्रहण करै ।
 मन्त्रार्थ—(इयम्, ते, यज्ञिया, तनूः) हे यज्ञपुरुष ! यह पृथिवी,
 तुम्हारा, यज्ञ के योग्य, शरीर है । अतः यहां मूत्र की, अपवित्रता
 दूर करने को ढेले वा वृण ग्रहण करता हूँ । दूसरे मन्त्र से मूत्र-
 त्याग किया जाता है । मन्त्रार्थ—(अपः, भुञ्चामि, न, मजाम्, अं-
 होमुचः स्वाहाकृताः, पृथिवीम्, आविशतं) मैं मूत्ररूप जल को,
 छोड़ता हूँ, नकि, सन्तानोत्पात्ति के कारण वीर्य को, हे मूत्ररूपजल
 अशुचिरूप तुम, दूधपीतेसमय स्वाहामन्त्र से स्वीकृत तुम, पृथिवी
 में प्रवेश करो । वह ग्रहणकी हुई मृत्तिका वा वृण दुर्गन्धि दूरकरने-
 को मूत्र की भूमिपर ढालै । मन्त्रार्थ—(पृथिव्या, सम्भव) हे लोष्ट
 आदि तुम पृथिवी के साथ, एकीभाव को प्राप्त होजाओ ॥ १३ ॥

अग्ने त्वं सुजागृहि वयं सुमन्दिपीमहि । रक्षाणो
 अप्रयुच्छन् मवुधे नः पुनस्कृधि ॥ १४ ॥

इस कण्डिका में १ मन्त्र है उस के आङ्गिरस ऋ० अनुष्टुप् छन्द
 और अग्नि देवता है । इस मन्त्र से यजमान आहवनीय अग्नि के
 दक्षिण में उत्तरमुख वा पूर्व को शिरकरके अग्नि की अपेक्षा नीची
 भूमि में सोवै । मन्त्रार्थ—(अग्ने, त्वं सुजागृहि) हे अग्ने ! आप,
 भलेभकार जागिये (वयम्, सुमन्दिपीमहि) हम, मुख से सोवें
 (अप्रयुच्छन्, नः, आरक्ष) सावधानी से, हमको, चारों ओर
 से रक्षा करो (नः, पुनः, मवुधे, कृधि) हम को, फिर, भवोध के
 निमित्त, उपयुक्त करो ॥ १४ ॥

पुनर्मनः पुनरार्युर्म आगन् पुनः प्राणः पुनरात्मा म्

आगन् पुनश्चक्षुः पुनः श्रोत्रंम आगन् । वैश्वानरो
अदब्धस्तनूपा अग्निर्नः पातु दुरिताद्वधात् ॥ १५ ॥

इस कण्डिका में १ मन्त्र है, उसके आङ्गिरस ऋषि, भुरिग्राह्मी
वृहती छंद और अग्नि देवता है । फिर जागकर इस मंत्र को पढ़े
मन्त्रार्थ—(मे, मनः, पुनः आगन्) मेरा, मन, सुपुष्टि काल में
विलिखि होकर फिर, शरीर में प्राप्त हुआ (आयुः, पुनः,) स्वप्न
में नष्टप्राय हुई आयु फिर प्राप्त हुई (प्राणाः, पुनः, आगन्) वही प्राण,
फिर, प्राप्त हुए (मे, आत्मा, पुनः) मेरा, जीवात्मा, फिर,
प्राप्त हुआ (चक्षुः, पुनः) चक्षु इन्द्रिय, फिर प्राप्त हुई (मे,
श्रोत्रम्, पुनः, आगन्) मेरी, श्रोत्र इन्द्रिय, फिर, प्राप्त हुई (वैश्वान-
नरः, अदब्धः, तनूपाः, अग्निः, अवधात्, दुरितात्, नः, पातु)
सबमनुष्यों का उपकारक, अविनाशी, हमारे शरीर का रक्षक,
ईशानाग्नि, निन्दित, पाप से, हमारी, रक्षा करे ॥ १५ ॥

त्वमग्ने व्रतुपा असि देव आमर्त्येष्व । त्वं यज्ञेष्वी-
त्यः । रास्वेयत्सोमाभूयो भर देवो नः सविता वसो
दाता चस्वदात् ॥ १६ ॥

इस कण्डिका में २ मन्त्र हैं, दोनों का वत्स ऋ० भुरिगार्पी पंक्ति
छन्द १ का अग्नापोम देवता और २ का सोम देवता है ।
१ मन्त्र से यजमान, किसी कारण क्रुद्ध होना पडा हो या यज्ञवि-
रुद्ध भाषण करना पडा हो उसका दोष दूर करने को प्रायश्चित्त
करे । मन्त्रार्थ—(अग्ने, देवः त्वम्, आमर्त्येषु, व्रतपाः, असि)
हे अग्ने, प्रकाशात्मक, तुम, मनुष्यपर्यन्त सब प्राणियों में, यज्ञकर्म
के रक्षक, हो (यज्ञेषु, आईदृश्यः) यज्ञों में, सब प्रकार से पूजनयोग्य
हो । दूसरे मंत्र से अग्नि में हवन करने को लाए हुए सुवर्ण को
स्पर्श करे । मन्त्रार्थ—(सोम, इयत्, रास्व, भूयः, आभर,
वसोः, दाता, सविता, देवः नः वसु, अदात्) हे, सोम, इतना,
धन दीजिये, फिरभी, धन दीजिये । क्योंकि धन के दाता सविता,
देवता ने, हमको, धन, दिया था ॥ १६ ॥

एषां ते शुक्रतनूरेतद्वर्चस्तया सम्भव भ्राजङ्गच्छ ।
जूरसि धृता मनसा जुष्टा विष्णवे ॥ १७ ॥

इस कण्डिका में २ मन्त्र हैं—दोनों का वत्स ऋषि और आर्षी त्रिपुच्छन्द, पहिले का हिरण्यज्य देवता और दूसरे का वाग्देवता है : पहिले मंत्र से अध्वर्यु ध्रुव के आज्य से जुहू को ४ बार भर कर उस घी में दर्भ से बँधे हुए सुवर्ण को छोड़े, मन्त्रार्थ—(शुक्र एषा, ते, तनूः एतत्, वर्चः, तथा, सम्भव, भ्राजम्, गच्छ) हे दीप्यमान अग्ने, यह घृत तुम्हारा, शरीर है, यह सुवर्ण, तेज है, इन दोनों से एकीभाव को प्राप्त हजिये, सुवर्ण में की कान्ति को प्राप्त हजिये। दूसरे मंत्र से अग्नि में समिदाधानकरताहुआ होम करे। मन्त्रार्थ—(जूः, असि, मनसा, धृता, विष्णवे, जुष्टा) हे वाणी तुम वेगवान्, हो, वा जीवन देनेवाली हो, मन से, धारण की हुई, यज्ञ पुरुष के लिये, प्रीतियुक्त हो ॥ १७ ॥

तस्यांस्ते सत्यसवसः प्रसवे तन्यो यन्त्रमशीयि स्वाहा ।

शुक्रमसि चन्द्रमस्यमृतमसि वैश्वदेवमसि ॥ १८ ॥

इस कण्डिका के मंत्र का वत्स ऋ०, स्वराढार्षी वृहती छ० और वाक्य हिरण्य देवता हैं। इस मंत्र से जुहू में के वृणवद् सुवर्ण को निकाल कर वेदी पर धरे। मन्त्रार्थ—(तस्याः, ते, सत्यसवसः, प्रसवे, तन्वाः, यन्त्रम्, अशीय, स्वाहा) उस, तुझ, सत्य अनुज्ञा वाली वेदवाणी की, आज्ञा में वर्तमान मैं, शरीर के नियमनकी, वृद्धता को, प्राप्त करूँ, इस घृत की सुन्दर आहुति हो (शुक्रम्, असि, चन्द्रम्, असि, अमृतम्, असि, वैश्वदेवम्, असि) हे सुवर्ण तुम दीप्यमान, हो, आल्हाद के देनेवाले, हो, जीवन के उपाय, हो, सब देवताओं के सम्बन्धी, हो। क्योंकि—सब देवता सुवर्णदान से वृप्त होते हैं ॥ १८ ॥

चिदंसि गुनांसि धीरंसि दक्षिणांसि क्षत्रियांसि यज्ञि-

यास्यदितिरस्युभयतःशीर्ष्णी । सानः सुमोची सुभ्र-

तीच्येधि मित्रस्त्वापदि बध्नीताम्पूषाध्वनस्पतिव-

न्द्रायाध्यक्षाय ॥ १९ ॥

इस काण्डिका के मंत्र का वत्स ऋ०, भुरिग्राही पंक्ति छन्द और वाग्देवता है। इस मंत्र से वाग्रूप अध्यारोप कल्पना करके सोम-क्रयणी गौ की स्तुति की जाती है। मंत्रार्थ—(चित्, असि, मनासि, धीः, असि) हे सोमक्रयणी गौ ! तुम चिदात्मा, हो, ब्रह्माविष्णुमहेशरूप पूज्य, हो, बुद्धिस्वरूपा, हो, (दक्षिणा, असि, क्षत्रिया, असि, यज्ञिया, असि) दक्षिणारूप, हो, दाता की कष्ट से रक्षा करने वाली, हो, यज्ञसम्बन्धिनी होने से, यज्ञ के योग्य हो (अदितिः, असि, उभयतःशीर्ष्णी) अखण्डिता देवमाता रूप, हो, पृथिवी और स्वर्ग दोनों और शिर रखनेवाली अर्थात् दिव्य एवं भौम भोगों की देने वाली हो (सा, नः, सुमाची, सुप्रतीची, एधि) वह तुम, हमारे लिये, पूर्वमुखी, पश्चिममुखी, होवो (मित्रः, पदि, त्वा, वध्नीताम्) सूर्य, दक्षिणपाद में, तुम्हको, बाँधे (पूषा, अश्वि, इन्द्राय, अध्वनः, पातु) पूषा देवता, यज्ञ के स्वामी, इन्द्रदेवता की प्रसन्नता के अर्थ, मार्ग में, तुम्हारी रक्षा करें ॥ १९ ॥

अनु त्वा माता मन्यतामनुपितानु भ्राता सगर्भ्योऽनु
सखा सयूथ्यः । सा देवि देवमच्छेहीन्द्राय सोमं
रुद्रस्त्वा वर्त्तयतु स्वस्ति सोमसखा पुनरेहि ॥ २० ॥

इस काण्डिका के मंत्र का वत्स ऋ०, पूर्वार्द्ध का साम्नी जगती और उत्तरार्द्ध का भुरिगार्घ्युष्णिक् छन्द और वाक् तथा गौ देवता हैं। इस से भी गौ की स्तुति की जाती है। मन्त्रार्थ—(त्वा, माता, अनुमन्यताम्) हे गौ हे वाक्, सोम लाने में प्रवृत्त तुमको, तुम्हारी पृथिवी माता, आज्ञा देय (पिता, अनु) पिता स्वर्ग, आज्ञा देय (सगर्भ्यः, भ्राता, अनु) सहोहर, भाई ईश, आज्ञा देय (सयूथ्यः, सखा, अनु) एक युद्ध में प्रकट होने वाला, सखा आत्मप्रतिबिम्ब, आज्ञा देय (देवि, मा, इन्द्राय, सोमम्, देवम्, अच्छेहि) हे दिव्य-गुणयुक्त सोमक्रयणी, वह तुम, इंद्रके अर्थ, सोमलता, देवता को, पाने को जाओ (रुद्रः, त्वा, वर्त्तयतु) रुद्र देवता, तुम को, हमारी

ओर को लौटावें (सोमसखा, स्वस्ति, पुनः, एहि) सोमसहित
तुम, क्षेमपूर्वक, फिर, आओ ॥ २० ॥

वस्यस्यदितिरस्यादित्यासि रुद्रासि चन्द्रासि । बृहस्प-
तिंष्ट्रवा सुम्ने रमणा तु रुद्रो वसुभिराचके ॥ २१ ॥

इस मंत्र का वत्स ऋ० विराडापीं वृहती छंद और वाक् गौ देवता
हैं । इस मंत्र से सोमक्रयणी को उत्तर की ओर गमन कराके उस
के पीछे २ जाकर स्तुति करें । मन्त्रार्थ—(वस्वी, असि, अदितिः,
असि, आदित्या, असि, रुद्रा, असि, चन्द्रा, असि) हे वाक् हे गौ
तुम वसुदेवता की शक्तिरूप, हो, देवमातारूप, हो, द्वादश आदित्य
रूप, हो, एकादश रुद्ररूप, हो, चन्द्ररूप, हो, (वृहस्पतिः, त्वा,
सुम्ने, रमणातु) वृहस्पति देवता, तुमको, सुख में, रमण करावें,
(रुद्रः, वसुभिः, आचके) रुद्र देवता, आठ वसुओं के साथ, तुम्हें
रक्षा करने की कामना करें ॥ २१ ॥

अदित्यास्त्वा मूर्धन्नाजिघर्षि देवयजने पृथिव्या इडा-
यास्पदमसि घृतवत्स्वाहा । अस्मे रमस्वास्मे ते वन्धु-
स्त्वे रायों मे रायों मा वयश्च रायस्पोषेण वियौष्म तातो
रायः ॥ २२ ॥

इस कण्विकामें ७ मंत्र हैं, सबका वत्स ऋ० और ब्राह्मी पंक्ति
छन्द है । देवता पहिलेका आज्य, दूसरेका स्थान, तीसरेका पद,
चौथे और पांचवेंका यजमान, छठेका अध्वर्यु और सातवें का
पत्नी है । पहिले मंत्र से सोमक्रयणी के पीछे छः पग चलकर
जहां ७वाँ पग पढ़कर तुरका चिन्ह हो उसमें सोनेका टुकड़ा डाल-
कर उसपर घीकी आहुति देय । मन्त्रार्थ—(अदित्याः, पृथिव्याः
मूर्धन्, देवयजने, त्वा, आजिघर्षि, इडायाः, पदम्, असि, घृत-
वत्, स्वाहा) अखंडित, पृथ्वीके, शिरःस्वरूप हे घृत, देवताओं
के यज्ञयोग्य स्थान में, तुमको, टपकाता हूं, हे स्थान तुम गौके,
चरणचिन्ह, हो, घृतयुक्त, श्रेष्ठ होम होय । दूसरे मंत्रसे अध्वर्यु गो-
चरणचिन्ह में स्पर्शसे ३ रेखा करें । मन्त्रार्थ—(अस्मे, रमस्व)

हे गोपद तुम मुझमें, क्रीड़ा करो । तीसरे मंत्रसे उसमें की मट्टी सोनेको हटाकर हाथसे ले थालीमें डाले । मंत्रार्थ—(अस्मे, ते, वन्धुः) हम, तुम्हारे, वन्धुरूप हैं । चौथे मंत्रसे गौके उठाएहुए पद के स्थानपर जल डालकर वह पद यजमान को देय । मंत्रार्थ (त्वे, रायः) हे यजमान, तुममें, धन इस पदरूपा से स्थित हो । पांचवें मंत्रसे यजमान ग्रहण करे मंत्रार्थ—(मे, रायः) यह मेरे, धन वा पशु हैं । छठे मंत्रसे अध्वर्यु अपने हृदय को लुए । मंत्रार्थ (वयम्, रायः, पोषेष्ण, मा, वियौष्म) हम, धनकी, पुष्टिसे, न, वियुक्त हों । अध्वर्यु यजमान से पद लेकर पत्नी को देय और सहकारी अध्वर्यु ७वें मंत्रको पढ़े । मंत्रार्थ—(तोतः, रायः) ब्रह्मा विष्णु महेश—परारूपधारी पत्नीसहित यजमान को, धन वा पशु, प्राप्त हों ॥ २२ ॥

समख्ये देव्या त्रिया सन्दक्षिणयोरुचक्षसा । मा म
आयुः प्रमोपीमो अहन्तव वीरं विदेय तव देवि स-
न्दशिं ॥ २३ ॥

इस मंत्रका वत्स ऋ०, आस्तारपंक्ति छन्द और वाग्देवता है । सोमकृयणी को देखनेवाली पत्नी से अध्वर्यु यह मंत्र पाठ करावे । मंत्रार्थ—(देव्या, दक्षिणया, उरुचक्षसा, धिया, समख्ये) हे सोमकृयणी गौ प्रकाशवान्, यज्ञकी प्रधानदक्षिणा के योग्य, विशाल दर्शनवाली तेरे द्वारा, मैं बुद्धिपूर्वक, यज्ञपुरुष को देखनी हूँ (मे, आयुः, मा, प्रमोपीः) तुम मेरी, आयुको, मत, खण्डित करो (तव, आयुः, अहम्, मा, उ) तेरी, आयु को, मैं, खण्डित न करूँ (देवि, तव, सन्दशि, वीरम्, विदेय) हे पराशक्ति, तेरा, सुन्दर दर्शन होनेपर, वली पुत्र को, प्राप्त करूँ ॥ २३ ॥

एव ते गायत्रो भाग इति मे सोमाय वृताद्रेप ते त्रै-
ष्टुभो भाग इति मे सोमाय वृताद्रेप ते जागतो भाग
इति मे सोमाय वृताच्छन्दोनामानाः साम्राज्यङ्गा-
च्छेति मे सोमाय वृतादास्माकोऽसि शुक्रस्ते अशो-
विचितस्त्या विचिन्वन्तु ॥ २४ ॥

इस कण्डिका में ४ मंत्र हैं, १।२।३ का वत्स ऋ०, ब्राह्मी जगती छन्द, लिङ्गोक्त देवता ४ का वत्स ऋ०, याजुपी पंक्ति छन्द और लिङ्गोक्त देवता हैं। १।२।३ मंत्र को अध्वर्यु सोमकी और जानेवाले यजमान से कहलावे। मंत्रार्थ—(सोमाय, मे, इति, वृतात्, ते, एपः, भागः, गायत्रः) हे अध्वर्यु, सोमाधिष्ठात्री देवता के अर्थ मेरा, यह वचन, कहो, कि—तुम्हारा, यह भाग, गायत्रीसम्बन्धी है १।(ते, एपः, भागः, त्रैप्रुभः, इति, मे, सोमाय, वृतात्,) तुम्हारा यह, भाग, त्रिप्रुष्वन्दसम्बन्धी है, ऐसा, मेरा, वचन, सोमदेवता के अर्थ, कहो २।(एपः, ते, भागः, जागतः, इति, मे, सोमाय, वृतात्) यह तुम्हारा, भाग, जगतीछन्दसम्बन्धी है, यह, मेरा वचन, सोमदेवता से, कहो (छन्दोनामानाम्, साम्राज्यम्, गच्छ, इति, मे, सोमाय वृतात्) तुम उष्टिण्क् आदि सब छंदों के, आधिपत्य को, पाओ, यह मेरा वचन, सोम देवता से, कहो ३। यजमाने पूर्वमुख बैठकर इस ४ मंत्र से सोम स्पर्श करे। मंत्रार्थ— (आस्माकः असि, शुक्रः, ते, ग्रहः, विचितः, त्वा, विचिन्वन्तु) हे सोम क्रयमार्ग से प्राप्त हुए तुम हमारे, हो, यह शुक्रनामक सब, तुम्हारे, ग्रहण करने योग्य है, यह सब माहात्मा तुम्हारा सारासार जानने में समर्थ हैं, सारासार विचार कर तुम्हारे सारभाग को, ग्रहण करे ॥ २४ ॥

अभित्यन्देवः सवितारभोण्योः कविक्रंतुमर्चामि सत्यसवः रत्नधामभि प्रियम्मतिङ्कविम् । ऊर्ध्वा घस्या मतिर्भा अदिद्युतत्सवीमनि हिरण्यपाणिरमिमीत सुक्रतुः कृपास्वः प्रजाभ्यस्त्वा प्रजास्त्वानुप्राणन्तु प्रजास्त्वमनुप्राणि हि ॥ २५ ॥

इस कण्डिका में ३ मंत्र हैं, तीनोंका वत्स ऋ०, १ का विराट् ब्राह्मी जगतीछन्द, २ का निच्यूदारपी गायत्रीछन्द, ३ का यजुरछन्द और तीनोंका सविता देवता है। १ मंत्रसे सोम बांधने के कर्पड़े को दुहरा तिहरा करके उसमें १० चुकटी सोम डालें। मंत्रार्थ— (तम्, ओण्योः, देवम्, कविक्रुणुम्, सत्यसवसम्, रत्नधाम, अभिप्रियम्, मतिम्, कविम्, सवितारम्, अभ्यर्चामि) उस, थावा

पृथिवी के, प्रकाशक, ब्रह्मसङ्कल्पसे प्रकट, सत्य भेरणावाले, रत्नों के धारक, समस्त चराचर के मिय, अनूपम कल्पना शक्तिवाले, वेदाविद्या के उपदेशक, सूर्यदेव को, सब ओरसे पूजता हूँ (यस्य, अमितिः, ऊर्ध्वा, भाः, सर्वामनि, अविद्युतत्) जिस सूर्यकी, अनंत आकाशाभिमुखी, दीप्ति, आकाश अथवा परंप्रकृतिरूप ब्रह्माण्ड को, प्रकाशित करती है (हिरण्यपाणिः, सुक्रतुः, कृपाः, स्वः) ज्योतिःस्वरूप, हाथवाले, सत्यसंकर्य जिसकी, कृपा से, स्वर्ग रचागया है, उसकी पूजा करता हूँ ।

दूसरे मंत्रसे उष्णीश के दोनों सिरे मिलाकर गांठ देय । मन्त्रार्थ—(प्रजाभ्यः, त्वा) हे सोम ! प्रजाके उपकार के अर्थ, तुझ को बांधता हूँ । तीसरे मंत्रसे गांठ के बीचमें अंगुली देकर छिद्र करै, जिससे उष्णीश में बँधे सोमका श्वास न रुके । मन्त्रार्थ—(प्रजाः, त्वा, अनुपाणन्तु, त्वम्, प्रजाः अनुपाणिहि) हे सोम ! प्रजा, श्वास लेतेहुए तुझको, अनुसरण करके जीवित रहें, तू, श्वास लेनेवाली, प्रजा का, अनुसरण कर ॥ २९ ॥

शुक्रन्त्वां शुक्रेण क्रीणामि चन्द्रञ्चन्द्रेणामृतममृतेन सग्मे ते गोस्मे ते चन्द्राणि तपसस्तनूरंसि प्रजापते र्वर्णः परमेण पशुनां क्रीयसे सहस्रपोपम्भुपेयम् ॥२६॥

इस कण्डिका में ४ मंत्र हैं । सबका वत्स ऋषि, मुरिग् ब्राह्मी पंक्ति छन्द और देवता पहिलेका सोम, दूसरे तीसरेका लिङ्गोक्त, तथा चौथेका अजा है । यजमान को सुवर्णका स्पर्श कराकर पहला मंत्र उच्चारण करवावे । मन्त्रार्थ—(चन्द्रम्, अमृतम्, शुक्रम्, त्वा, शुक्रेण, अमृतेन, चन्द्रेण, क्रीणामि) हे सोम ! तुम आलहाद करने वाले, अमृत की समान स्वादु, दीप्तिमान् हो, तुमको, दीप्तिमान् विनाशरहित, आलहादकारक, सुवर्ण से क्रय करता हूँ । दूसरे मंत्र से सोना सोम बेचने वाले को देकर उसको कर्षित करै । मन्त्रार्थ (गोः, ते, सग्मे) हे सोम बेचनेवाले, सोम के मूल्य में दीहुई गौ, तेरी गौ, फिर लौटकर यजमान के घर में स्थित हो । तीसरे मंत्र

इस कण्डिका में ३ मन्त्र हैं, ऋषि तीनों का वत्स। छन्द पहिले का स्वाराह याजुषी त्रिष्टुप्, दूसरे का विराढार्षी त्रिष्टुप् और तीसरे का स्वाराह ब्राह्मी है। देवता पहिले का कृष्णाजिन दूसरे का सोम और तीसरे का वरुण है। पहिले मन्त्र से शकट के ऊपर मृग चर्मबिद्धावै। मन्त्रार्थ—(अदित्याः, त्वक्, असि) हे कृष्णाजिन भुम पृथिवी के, त्वचारूप, हो। दूसरे मंत्र से उसपर सोम की गाँठरक्खे। मन्त्रार्थ—(अदित्यै, सदः, आसीद) भूमिसम्बन्धी, स्थानपर, सवमकार स्थित होवो। तीसरा मंत्र सोम को स्पर्श करता हुआ पढ़ै। मन्त्रार्थ—(वृषभः, घाम्, अन्तरिक्षम्, अस्तभ्नात्) श्रेष्ठवृषभरूप वरुण, शुलोक को, अन्तरिक्षको, स्थिर करता हुआ (पृथिव्याः, परिमाणम्, अमिमित) पृथिवी के, विस्तारको, जानता हुआ (सम्राट्, विश्वा, भुवनानि, आसीदत्, विश्वा, इत्, वरुणस्य, व्रतानि) सम्यक् प्रकाशवान् ब्रह्म सम्पूर्ण, संसार में प्रविष्ट हुआ, सब, ही, वरुणदेव के, कर्म हैं अर्थात् वह सदा जगन्निर्माणदि कर्म करता है ॥ ३० ॥

वनेषु अन्तरिक्षन्ततान् वाजमर्वत्सु पयं उस्त्रियांसु ।
हृत्सु ऋतुं वरुणो विक्ष्वग्निन्दिवि सूर्यमद्घात्सोम-
मर्त्री ॥ ३१ ॥

इस कण्डिका के मन्त्र का वत्स ऋ०, विराढार्षी त्रिष्टुप् छन्द और वरुण देवता है, सोम बांधने के वस्त्र से सोमको सब ओर से बांधकर इस मंत्रको जपै। मन्त्रार्थ—(वरुणः, वनेषु, अन्तरिक्षम्, विततान्) वरुणस्वरूप विष्णु ने, वनके वृक्षोंके अग्रमें, आकाशको, फैलाया है (अर्वत्सु, वाजम्, उस्त्रियांसु, पयः, हृत्सु, ऋतुम्, विषु, अग्निम्, दिवि, सूर्यम्, अद्रौ, सोमम्) पुरुषों में, वीर्यको, गौओं में, दुग्धको, हृदयों में, संकल्पात्मक मनको, प्रजाओं में, जाठराग्नि को, शुलोक में, सूर्यको, पर्वतों में, बलीरूप सोमको, स्थापित किया है ॥ ३१ ॥

सूर्यस्य अक्षरारोहाग्नेरक्षः कुनीनकम् । यत्रैतंशोभि-

रीयसे आजमानो विपश्चिता ॥ ३२ ॥

इस काण्डिका के मन्त्र का वत्स ऋ०, निच्यूदाप्यनु० छ० और कृष्णाजिन देवता है। इस मंत्र को पढ़कर, आसन के लिए जो दो मृगचर्म हैं, उन में से एक को शकट के पूर्वभाग में, जुए के समीप ऊंचे दण्ड में लगावै, यदि आसन का मृगचर्म एकही हो तो उस की ग्रीवा की ओर के भाग को अलग करके शकट के पूर्वभाग में लगावै। मन्त्रार्थ—(सूर्यस्य, चक्षुः, अग्नेः, अक्षुणः, कनीनकम्, आरोह) हे कृष्णाजिन तुम—सूर्य के, नेत्र, और अग्नि के, नेत्र के तारे पर, आरोहण करो (यत्र, विपश्चिता, आजमानः, एतशेभिः, ईयसे) जहाँ इन दोनों के दर्शन वा प्रकाश में सर्वज्ञ सूर्य और अग्नि से, प्रकाशित होता, अश्वों के द्वारा, गमन करता है। क्यों कि—सूर्य और अग्नि की दृष्टि, पढ़ने से मार्ग, राक्षसों की बाधा से मुक्त होता है ॥ ३२ ॥

उत्सावेतं धूर्पाहौ युज्येथामनश्च अवीरहणो ब्रह्मचोद-
नौ । स्वस्ति यजमानस्य गृहान् गच्छतम् ॥ ३३ ॥

इस काण्डिका के मंत्र का व० ऋ०, ऊर्ध्ववृहती छ० और अन-
इवाह देवता हैं। इससे बैलों को शकट में जोड़े। मन्त्रार्थ—(उत्सा, धूर्पाहौ, अनश्च, अवीरहणौ, ब्रह्मचोदनौ, एतम्, युज्येथाम्, स्वस्ति, यजमानस्य, गृहान्, गच्छतम्) हे अनइवानों, शकट के धुर को धारण करने में समर्थ, उत्साहवाले, सींगों से बालकों को न मारने वाले, ब्राह्मणों को यज्ञ में भेरेणा करनेवाले तुम दोनों, इस शकट में, जुत जाओ, कुशलपूर्वक, यजमान के, घरों को, जाओ ॥ ३३ ॥

भद्रो भेसि प्रच्यवस्व भुवस्पते विश्वान्युभिधामानि ।

मा त्वा परिपरिणो विदन्मा त्वा परिपन्थिनो विदन्मा

त्वा धृका अधायवो विदन् । श्येनो भूत्वा परापत

यजमानस्य गृहान् गच्छतन्नी संस्कृतम् ॥ ३४ ॥

इस काण्डिका के मंत्र का व० ऋ०, भुरिगार्पी गायत्री और भु०
आ० वृ० छन्द तथा सोम देवता है। सोम लेकर यज्ञशाला में जा

नेवाले यजमान से अध्वर्यु यह मंत्र कहलावै । मन्त्रार्थ—(मे, मद्रः, असि, भुवः पते, विश्वानि, धामानि, अभिमच्यवस्व) हे सोम तुम मुझ यजमान के लिए, कल्पारणरूप, हो, हे यजमान अध्वर्यु आदि सबके पालक, सब, पत्नीशाला हविर्धानादि स्थानों को, देखकर चलो (त्वा, परिपरिणः, मा, विदन्) तुमको, सब ओर फिरनेवाले तस्कर, न, जानै (परिपन्थिनः, त्वा, मा, विदन्) यह द्रोही, तुम को, न, जानै (अधायवः, वृकाः, त्वा, मा, विदन्) दूसरों का अपराध करनेवाले, दुर्जन, तुमको, न, जानें (श्येनः, भूत्वा परापत) श्येन की समान बेगामी, होकर, सन्मुख चलो (यजमानस्य, गृहान्, गच्छ, तत्, नौ संस्कृतम्) यजमान के घरों को, जाओ, वह यज्ञस्थान, हम तुम दोनों के लिए, सब सामग्री से युक्त है ॥१४॥
 नमो मित्रस्य वरुणस्य चक्षसे महोदेवाय तदृतं सं-
 पर्यत । दूरेदृशे देवजाताय केतवे दिवस्पुत्राय सूर्याय
 शंसत ॥ ३५ ॥

इस क० के मंत्र का व० ऋ० नि० जगती छ० और सूर्यदे० है। इसको पढ़कर प्रतिप्रस्थाता शाला के पूर्व में कृष्णशरङ्ग पशु को, उसके अभाव में लोहित सारंग को लेकर स्थित होय । मन्त्रार्थ— (मित्रस्य, वरुणस्य, चक्षसे, महोदेवाय, दूरेदृशे, देवजाताय, केतवे, दिवः, पुत्राय, सूर्याय, नमः तत्, ऋतम्, सपर्यत, शंसत) चराचर के मित्र, दुःखों को दूर करनेवाले सूर्यदेवता के, सन्मुख, महातेजःस्वरूप प्रकाशवान्, सब जगत् को दूर से ही देखनेवाले, देवसाधों पर अनुग्रह करने को उत्पन्न हुए, प्रज्ञानघन, शुलोक के, पुत्रवत् प्रिय, सूर्य देवता के अर्थ, नमस्कार है, उस, सत्यब्रह्मको, भजो, तथा उन की स्तुति करो ॥ ३५ ॥

वरुणस्योत्तम्भनमसि वरुणस्यस्कम्भसर्जनी स्थो वरु-
 णस्य ऋतसर्दन्यसि वरुणस्य ऋतसर्दनमसि वरुणस्य
 ऋतसर्दनमासीदि ॥ ३६ ॥

इस कण्विका में ५-मंत्र हैं । ऋषि सबका वत्स, छंद बिराहब्राह्मी

दृहती और देवता वरुण हैं। पहिले को पढकर शाला के समीप शकट को पूर्वमुख वा उत्तरमुख खडाकर तिपाए से बाँधै। मन्त्रार्थ— (वरुणस्य, उत्तमनम्, असि) हे काष्ठाभिमानी देवता तुम-वरुण देवता की प्रीति के लिए इस शकट में, वत्सवद्ध सोम के उन्नमन, हो। दूसरे मंत्र से दोनों बैलों को शम्पा से मुक्त करै। मन्त्रार्थ— (वरुणस्य, स्कम्भसर्जनी, स्यः) हे शम्पे तुम दोनों—वरुण की, रोकनेवाली, हो। तीसरे मंत्र से अश्वर्यु आदि चारों ऋत्विज्जूलङ्गी की लकड़ी की बनी हुई, नाभिप्रमाणवाले पायों की, फैली कन अंगुलि से मुठीतक नाप में लम्बी, दिव्य कपास के डोरों से घुनी हुई मञ्जिका को आसन्दी कहते हैं, उस सोम रखने को शकट के समीप लावै और हाथसे स्पर्श करै मन्त्रार्थ—(वरुणस्य, ऋतसदनी, असि) हे आसन्दी तुम-वरुण देवता की प्रीति के लिए, यज्ञकी प्राप्तिका स्थान, हो। चौथे मंत्र से मञ्जिका पर मृगचर्म बिछावै। मन्त्रार्थ—(वरुणस्य, ऋतसदनम्, असि) हे कृष्णाजिन तुम-वरुण की प्रीति के लिए अथवा वद्ध सोमके, यज्ञके निमित्त बैठने का स्थान, हो। पांचवें मंत्रसे मृग चर्मपर सोमवल्ली की गांठ धरै। मन्त्रार्थ—(वरुणस्य, ऋतसदनम्, आसीद) हे सोम तुम-वरुणदेव की प्रीति के लिए लाए गए हो, यज्ञसम्बन्धी आसन्दीपर बिछे हुए मृगचर्मपर, मुख से स्थित हूजिए ॥ ३६ ॥

या ते धामानि हविषा यजन्ति ता ते विश्वा परिभू-
रस्तु यज्ञम् । गयस्फानः प्रतरणः सुवीरो वीरहा प्रच-
रा सोम दुर्यान् ॥ ३७ ॥

इस कण्डिका के मन्त्र का गौतम ऋ०, निच्युदार्पी अष्टुप् छन्द और सोम देवता है। सोम को स्थापित कर अध्वर्यु यजमान से यह मंत्र कहलावै। मन्त्रार्थ—(सोम, ते, या, धामानि, हविषा, यज्ञम्, यजन्ति) हे सोम, तुम्हारे, जिन, मातःसोमादि स्थानोंको पाकर, तुम्हारे रसरूप हविसे, यज्ञपुरुष का, पूजन करते हैं (ते, ता, विश्वा, परिभूः, अस्तु) तुम्हारे, वह, सम्पूर्ण, स्थान, तुमसे

सब ओर से व्याप्त, हों (गयस्फानः, मतरणः, सुवीरः, अवीरहा, दुर्यान्, आचर) धरकी वृद्धि करनेवाले, यज्ञको प्राप्त कराने वाले, हम ऋत्विज् वा यजमान के पुत्र पौत्रादि से सम्पन्न तुम, वीर पुरुषों को पालनेवाले, यज्ञगृहों को, प्राप्त होजिये ॥ ३७ ॥

इति श्रीशुक्लयजुर्वेदान्तर्गत माध्विन्द्रीयशास्त्राध्येष्ट भारद्वाजगोत्रो-

द्भूतगौडवंशावतंस श्रीमद्गोलानाथात्मज रामस्वरूपशर्मा द्वारा

उत्पद्यमहीधरादिप्राचीनभाष्यों के अनुसार सम्पादित अन्वय

पदार्थ और भावार्थसहित शालागमनाद्याचानन्ति

चतुर्थ अध्याय समाप्त.

॥❀॥ अथ पञ्चमोऽध्यायः ॥❀॥

चौथे अध्याय में ऋत्विज् सहित यजमान के शालाप्रवेश से लेकर सोमक्रय करके शाला आगमनतक के मंत्रकहे, अब पांचवें अध्याय का प्रारम्भ होता है, जिसकी आदिमें आतिथ्येष्टि, हविर्ग्रहणादि के मंत्रोंका वर्णन है—

ॐ अग्नेस्तनूरसि विष्णवे त्वा सोमस्य तनूरसि विष्णवे त्वातिथेरान्तिथ्यमसि विष्णवे श्येनाय त्वा सोमभृते विष्णवे त्वाग्नये त्वा रायस्पोषदे विष्णवे त्वा ॥१॥

इस कण्डिका के मंत्रका गोतम ऋषि, स्वराह ब्राह्मी बृहती छन्द और विष्णुदेवता है । इस मंत्रसे हविर्ग्रहण करै, मन्त्रार्थ— १ (अग्नेः, तनूः, असि, विष्णवे, त्वा) हे सोम तुम-अग्नि के, शरीर, हो, परमात्मा की प्रीति के निमित्त, तुमको ग्रहण करता हूँ । २ (सोमस्य, तनूः, असि, विष्णवे, त्वा) तुम सोमदेवता के, शरीर, हो; विष्णु के अर्थ, तुमको ग्रहण करता हूँ । ३ अतिथेः, आतिथ्यम्, विष्णवे, त्वा) हे सोम तुम-यज्ञमंडप में आयेहुए अतिथि के, अथितिसत्कार से सन्तुष्ट करनेवाले हो, विष्णुदेव की प्रीति के निमित्त, तुमको ग्रहण करता हूँ । ४ (सोमभृते; श्येनाय, विष्णवे, त्वा) हे सोम-सोम लानेवाले, शत्रुके दमन

करनेको श्येन की समान उद्योगी मुझ यजमान के कल्याणार्थ
यज्ञाधिष्ठात्री विष्णुदेवता के पूसन्नतार्थ, तुमको ग्रहण करता हूँ।
५ (रायस्पोपदे, अग्नये, त्वा, विष्णवे, त्वा) धनसम्बन्धी पु-
ष्टि देनेवाले, अग्नि के निमित्त, तुमको ग्रहण करता हूँ, यज्ञपति
विष्णुदेव की प्रीति के निमित्त, तुम को ग्रहण करता हूँ ॥ १ ॥

अग्नेर्जनित्रमसि वृषणौ स्थ उर्वश्यस्यायुरंसि पुरुरवा
असि । गायत्रेण त्वा छन्दसा मन्यामि त्रैष्टुभेन त्वा
छन्दसा मन्यामि जागतेन त्वा छन्दसा मन्यामि ॥ २ ॥

इस कण्डिका में ८ मंत्र हैं, ऋषि सब का गोतम छंद पहिले ५
का आर्षी गायत्री, ६ । ७ । ८ का आर्षी त्रिष्टुप् देवता १ से ५
तक का शकलादि, ६ से ८ तक का अग्नि है, पहिले से यज्ञसंबंधी
वृक्ष के टुकड़े को लेकर वेदीपर उत्तर को अग्रभाग करके धरै।
मन्त्रार्थ—(अग्नेः, जनित्रम्, असि) हे खण्ड तुम—अग्नि के, उ-
त्पन्न करनेवाले, हो, । दूसरे से उस टुकड़ेपर कुशतरुण को रखै
मन्त्रार्थ—(वृषणौ, स्थः) हे दोनों कुश तुम—सींचनेवाले अर्थात्
अरणि काष्ठों में अग्नि उत्पन्न करने की शक्ति देनेवाले हो।
तीसरे से इन दोनों कुशाओं पर नीचे की अरणि को उत्तराग्र धरै
मन्त्रार्थ—(उर्वशी, असि) हे नीचे की अरणि ! अग्नि की उत्पत्ति
के लिए हमने तुमको स्त्रीरूप माना है अब तुम—उर्वशी नामवाली,
हो । चौथे मंत्र से आज्यस्थालीः से, उत्तरारणि का स्पर्श करै।
मन्त्रार्थ—(आयुः, असि) हे स्थाली के आज्य तुम—अग्नि की आयु,
हो। पाँचवें मन्त्र से नीचे की अरणि पर उत्तर अरणि धरै। मन्त्रार्थ—
(पुरुरवाः, असि) हे उत्तरारणि ! हम अग्नि उत्पन्न करने के निमित्त
तुमको पुरुष रूपसे कल्पना करते हैं अतः तुम—पुरुरवा नामक,
हो। ६ । ७ । ८ मन्त्र से दोनों अरणियों को मंथकर अग्नि निकालै।
मन्त्रार्थ—(गायत्रेण, छन्दसा, त्वा, मन्यामि) गायत्री, छन्द के अधि-
ष्ठाता, अग्नि देवता केवलसे, तुम को मन्थन से प्रकट करता हूँ। (त्रैष्टु-
भेन, छन्दसा, त्वा, मन्यामि) त्रिष्टुप् छन्द के अधिष्ठाता इन्द्रदेवता

केवल से, तुभको, दो अरणियों के द्वारा मयता हूँ (जांगतेन, छन्दसा, स्वा, मन्यामि) हे अग्ने-जगती, छन्द के अधिष्ठाता विश्वेदेवा के वलसे, तुभको, दो अरणी के द्वारा मयता हूँ ॥ २ ॥

भवतन्नः समनसौ सचेतसावरेपसौ । मा यज्ञं हि
सिष्ट मा यज्ञपतिञ्जातवेदसौ शिवौ भवतमय नः । ३ ।

इस काण्डिका के मन्त्र का ऋ० गो०, छन्द आर्षी पंक्ति और देवता निर्भथ्याहवनीयाग्नि । इस से मयीहुई अग्नि को आहवनीय अग्नि के साथ युक्त करै । मन्त्रार्थ—(जातवेदसौ, नः, समनसौ, सचेतसौ, अरेपसौ, भवतम्) हे दोनो अग्नि !, हमारी कार्यसिद्धि के लिए, एकाग्रमन, समानचित्त, हमपर कोप न करनेवाले, हजिये (यज्ञम्, मा, हिंसिष्ट, यज्ञपतिम्, मा) यज्ञ को, मत, नष्ट करो, यज्ञपति को, मत क्षतग्रस्त करो (अय, नः, शिवौ, भवतम्) आज, हमारे निमित्त, कल्याणस्वरूप, हजिये ॥ ३ ॥

अमायग्निश्चरति प्रविष्ट ऋषीणाम्पुत्रो अभिशस्तिपा
वा । स नः स्योनः सुयजा यज्ञेह देवेभ्यो हव्यं सद-
मप्युच्छन्स्वाहा ॥ ४ ॥

इस काण्डिका के मन्त्र का ऋ० गोतम, छन्द आ० त्रि० और देवता अग्नि है । सुवे से आज्यस्थाली में का पी लेकर ढाली हुई अग्नि पर इस मन्त्र से आहुति देय । मन्त्रार्थ—(ऋषीणाम्, पुत्रः, वा, अभिशस्तिपाः, अग्निः, अग्नौ, प्रविष्टः, चरति, सः, नः, स्योनः, सुयजा, इह, सदम्, अप्युच्छन्, देवेभ्यः, हव्यम्, यज्ञ, स्वाहा) वेदवेत्ता ऋषियों के, उत्पन्न कियेहुए ऋषिकुमार, या, वैकल्यानि-मित्तक अभिशाप से या दुष्टों के आक्रमण से रक्षा करने वाला, मथित अग्नि, आहवनीय अग्नि में प्रविष्ट हुआ, इवि को भक्षण करता है, वह अग्नि तुम, हमको, सुखरूप होकर, सुन्दर याग से, इस स्थान में, सदा प्रमादरहित होकर, इन्द्रादि देवताओं के अर्थ, इवि, तेजाओ, तुम्हारे निमित्त घृतका श्रेष्ठ होम हो ॥ ४ ॥

आपतये स्वा परिपतये गृह्णामि तन्नृजन्त्रं प्राक्बराय

शक्वेन ओजिष्ठाय । अनाधृष्टमस्यनाधृष्यन्देवाना-
मोजोनंभिशस्त्यभिशस्तिपा अनभिशस्तेन्यमञ्जसा
सत्यमुपगेपः स्विते मां धाः ॥ ५ ॥

इस कण्डिका में २ मंत्र हैं, ऋषि दोनों का गोतम छन्द पहिले का
आप्युष्णिक्, दूसरेका भुरिगार्पी पंक्ति, देवता पहिले का वायु और
दूसरे का आज्य है । पहिले को पढ़कर व्रतपदान पात्र में सुबे से दो
वार आज्य लेय । मन्त्रार्थ— (त्वा, परिपतये, तनूनप्ते, शाकराय,
शक्ने, ओजिष्ठाय, आपतये, परिपतये, गृह्णामि) हे आज्य । तुझ
को, सर्वज्ञ, सब जगत् के विस्तारकर्त्ता आत्मा के पौत्र, आकाश के
पुत्र, सब कर्मों में समर्थ, बलवान्, सदागति वायुदेवता के लिए, ग्रहण
करता हूँ । वेदी की दक्षिण श्रोणि अर्थात् नैर्ऋत्य कोणपर आज्यपात्र
रखकर ऋत्विक् और यजमान सब मिलकर पात्र को स्पर्श करेगुरुप
इसदूसरे मन्त्र को पढ़ें मन्त्रार्थ—(अनाधृष्टम्, अनाधृष्यम्, देवानाम्,
ओजः, अनभिशस्ति, अभिशस्तिपम्, असि, आअञ्जसा, अनभिशस्ते
नम्, सत्यम्, उपगेपम्, स्विते, मा, धाः) हे आज्य तुम आज तक
किसी से तिरस्कार न पानेवाले, न आगे किसी से तिरस्कार पाओगे,
तुम देवताओंके, सारपदार्थ, स्वयं अनिन्दनीय, निन्दित कर्म से हमारी
रक्षा करने वाले, हो । इस कारण हे आज्य सीधे मार्गसे, अनिन्दित
मोक्ष के प्राप्त करनेवाले हो आज हम सरल अन्तःकरण से तुम
को स्पर्श कर शपथपूर्वक, यज्ञ करने का भार लेते हैं । अब शोभन
मार्ग वाले यज्ञानुष्ठान में, मुझ को, स्थापन करो ॥ ५ ॥

अग्ने व्रतपास्त्वे व्रतपा या तव तनुरियः सा मयि यो
भम तनुरेपा सा त्वरि । सह नो व्रतपते व्रतान्यनु मे
दीक्षान्दीक्षापन्तिर्मन्यतामनु तपस्तपस्पतिः ॥ ६ ॥

इस मन्त्र का ऋषि गोतम, छन्द विराड् ब्राह्मी पंक्ति और देवता
अग्नि है । इस को पढ़कर आहवनीय और गार्हपत्य अग्नि में समिधा
छोड़ें । मन्त्रार्थ—(व्रतपाः अग्ने, त्वे, व्रतपाः तव, या, तनूः, सा, इय
म्, मयि, या, भम, तनूः, सा एपा, त्वाये, व्रतपते, नो व्रतानि, सह,

दीक्षापतिः, मे, दीक्षाम्, अनुमन्यताम्, तपस्पतिः, तपः, अनु) हे सब
 ब्रतों के रक्षक, अग्निदेव, तुम, हमारे ब्रतकी रक्षा करो । तुम्हारा,
 जो, शरीर है, वह, यह, मुझ में हो । जो, मेरा, शरीर है, वह, यह,
 तुममें, हो । हे ब्रतरक्षक, हम दोनोंके, अनुष्ठित कर्म, साथ हों । दीक्षा
 का रक्षक सोम, मेरी, दीक्षाको, मानै । उस सद्रूप तप का रक्षक सोम
 देवता, मेरे सद्रूप तपको, मानै ॥ ६ ॥

अ० शु० गु० दे० सोमाप्यायतामिन्द्रायैकधनविदे ।

आ तुभ्यमिन्द्रः प्यायतामात्वमिन्द्राय प्यायस्व । आ-
 प्यायतास्मान्त्सखीन्त्सन्धा मेघया स्वस्ति ते देव सोम
 सुत्यामंशीय । एष्टा रायः मेघे भगाय ऋतमृतवादिभ्यो
 नमो धावांष्टिवीभ्यान् ॥ ७ ॥

इस काण्डका मैं २ मंत्र हैं, ऋषि पहिले का गोविम, दूसरे का
 वेत्स । छन्द पहिले का आ० वृहती, दूसरे का धा० जगती । देवता
 पहिले का सोम और दूसरे का लिङ्गोक्त है । पहिले मंत्र से ब्रह्मा
 उद्गाता; होता, अर्धर्षु, अग्नीध्र यह पाँचों ऋत्विक् और बड़ा
 यजेमान सोमको जल से सजीव करें । मंत्रार्थ—(देव, सोम, ते,
 अंशुः, अंशुः, एकधनविदे, इन्द्राय, आप्यायताम्, तुभ्यम्, इन्द्रः, आप्या-
 यताम्, त्वम्, इन्द्राय, आप्यायस्व, सखीन्, अस्मान्, सन्धा, मेघया,
 आप्यायस्व, सोम-देव, ते, स्वस्ति, सुत्याम्, अशीय) हे सोम-देवता,
 तुम्हारे, सब अवयव, गाँठ, मुख्य धन प्राप्त करने वाली, इन्द्रदेव
 की प्रीति के लिये, वृद्धि पाओ । तुम्हारे पान के लिए, इन्द्र, प्रादु-
 र्भूत हों । तुम, इन्द्रके पान के लिए, सब ओर से वृद्धि पाओ । हे
 सोम-सत्त्वा की समान प्रीति के पान, हम ऋत्विजोंको, धनदान,
 और धारणशक्ति से, बढाओ । हे सोम, देवता, तुम्हारा, कल्याण
 हो । तुम्हारी कृपा से मैं-सोमपत्र के अन्तस्नान दिनको, पाऊँ ।
 दूसरे मंत्रसे सब ऋत्विज् प्रसार के ऊपर दोनों हाथों को ऊँचा कर
 के बाँ दाहिने हाथको ऊँचा रखकर रक्षा के लिए सोम की परिचर्या
 करें । मंत्रार्थ—(एष्टाः, रायः, मेघे, भगाय, ऋतवादिभ्यः, ऋतम्,

द्यावापृथिवीभ्याम्, नमः) हे सोम-हमारे इच्छित, धन, जिसे तुम्हें
अवश्य भरण करो ऐसे, ऐश्वर्यादि हमको प्राप्त हों। सत्य बोलने
वाला हमारा अवश्य भावियुक्त कर्म सम्पादन करो, स्वर्गपृथिवी के
अभिमानी देवताओं को, नमस्कार है ॥ ७ ॥

या ते अग्नेः शया तनूर्वर्षिष्ठा गह्वरेष्ठा उग्रं वचो अ-
पावधीत्वेपं वचो अपावधीत्स्वाहा । या ते अग्ने रजः-
शया तनूर्वर्षिष्ठा गह्वरेष्ठा उग्रं वचो अपावधीत्वेपं
वचो अपावधीत्स्वाहा । या ते अग्ने हरिशया तनूर्व-
र्षिष्ठा गह्वरेष्ठा उग्रं वचो अपावधीत्वेपं वचो अपाव-
धीत्स्वाहा ॥ ८ ॥

इस काण्डिका में ३ मंत्र हैं, ऋषि पहिले का गोतम, दूसरे तीसरे
का वत्स । छन्द पहिले का वि० आ० वृहती, दूसरे तीसरे का नि०
आ० वृ० । देवता तीनों का अग्नि है । पहिले मंत्र से जुहुआदिमें
मस्तर को लगाकर परिधिस्थापन पूर्वक मुनेसे उपसद अग्नि में हवन
करै । मंत्रार्थ—(अग्ने, या, ते अग्नेः शया, तनूः वर्षिष्ठा, गह्वरेष्ठा,
उग्रं, वचः, अपावधीत्, त्वेपम्, वचः, अपावधीत्, स्वाहा) हे उपसद
नामक अग्ने, जो, तुम्हारा, लोहपुरवासी, शरीर, देवताओं को इ-
च्छित फल देनेवाला, और असुरों के विषम देश में स्थित रहने
वाला है उसने, दैत्यों की कठोर, बाणीको, भतिकरूप में नष्ट किया
है । असुरों के कहे देवताओं पर आक्षेपरूप, वाक्यको, नष्ट किया,
ऐसे उपकारक तुम्हें अग्नि के लिये श्रेष्ठ होम हो । दूसरे दिन दूसरी
उपसद नामक अग्नि में आहुति देय । मंत्रार्थ—(अग्ने, या, ते,
रजः शया, तनूः, वर्षिष्ठा, गह्वरेष्ठा, उग्रम्, वचः, अपावधीत्, त्वेपम्,
वचः, अपावधीत्, स्वाहा) हे उपसद अग्ने, जो, तुम्हारा, रजत-
पुरवासी, शरीर, देवताओं को इच्छित फलदाता, और असुरों के
विषम देश में स्थितिशील है उसने, दैत्यों की द्विन्धि भिन्धिरूप
उग्र, बाणीको, नष्ट किया था, उनके आक्षेपरूप, वचन को, नष्ट किया
था, ऐसे उपकारक अग्नि के लिये श्रेष्ठ होम हो । तीसरे दिन तीसरे

मंत्र से आहुतिदेय । मन्त्रार्थ—(अग्ने, या, ते, हरिशया, तनूः वर्षिष्ठा, गङ्गरेष्ठा, उग्रम्, वचः अपानधीत्, त्वेपम्, वचः, अपानधीत्, स्वाहा) हे अग्ने, जो, तुम्हारा, सुवर्णपुरवासी, शरीर, देवताओं को इच्छित फलदाता, और असुरों के विपमदेश में स्थितिशील है उसने. असुरों के तीव्र, वचनों को, विनष्ट किया है । असुरों के आक्षेपरूप, वचनों को, नष्ट किया है, ऐसे उपकारक अग्नि के लिए श्रेष्ठ होम हो ॥

आख्यायिका—ततोऽसुरा एषु लोकेषु पुरंधाक्रौ अयस्मयीमेवास्मिन् लोके रजतामन्तारिक्षे हरिणीं दिवि [३ । ४ । ४ । १ शतपथ] इत्यादि श्रुतियों में लिखा है कि—मजापति के पुत्र देवता और असुरों में परस्पर वैर था अतः असुरों ने तप करके त्रिलोकी में ३ पुर बनाये, पृथिवी में लोहे का, अन्तारिक्ष में चाँदी का और स्वर्ग में सुवर्ण का । तब देवताओं ने अग्नि की उपासना करी वह अग्नि 'उपसद' नामवाला हुआ, उसने देवताओं के हितार्थ उन पुरों में प्रवेश कर उनको भस्म कर डाला तब वह तीनों पुर अग्नि के शरीर कहाए और देवताओं की विजय हुई, इसी प्रकार जो कोई उन अग्नि-यों की उपासना करेगा वह शत्रुओं के किले आदि तोड़कर जय पावेगा ॥ ८ ॥

१ त्सायनी मेसि विसायनी मेस्यवतान्मा नाधिताद्व-
तान्मा व्यधितात् । विदेदग्निर्नभोनामाग्ने अद्भि
आयुना नाम्नेहि योस्याम्पृथिव्यामसि यत्तेनाधृष्टन्नाम
यज्ञियन्तेन त्वादधे विदेदग्निर्नभो नामाग्ने अद्भि
आयुना नाम्नेहि यो द्वितीयस्यां पृथिव्यामसि यत्ते-
नाधृष्टन्नाम यज्ञियन्तेन त्वादधे विदेदग्निर्नभो
नामाग्ने अद्भि आयुना नाम्नेहि यस्तृतीयस्याम्पृथि-
व्यामसि यत्तेनाधृष्टन्नाम यज्ञियन्तेन त्वादधे । अनुं
त्वा देववीतये ॥ ९ ॥

इस णिडका में १४ मंत्र हैं, ऋषि १ से ४ तक का गोतम, ५ से ४ तक का वत्स छन्द १ से ४ तक का भुरिगर्षी गायत्री, ध्रुव का

भुरिग्वाह्मी वृहती, षष्ठे का निच्युद्वाह्मी जगती, ७ वें का यजुः, ८ वें का भु० ब्रा० वृ०, ९ म का नि० ब्रा० ज०, १० वें का यजुः, ११ वें का भुरि०, १२ वें का नि० ब्रा० ज०, १३ वें का यजुः, १४ वें का याजुषी अनुष्टुप् है। देवता-१ से ४ तक का पृथिवी, ५, ६, ११ वें का अग्नि, ६।७।९।१०।११।१२।१३।१४ वें का लिङ्गोक्त है। चारोंदिशा में शम्भा गाढ़कर स्फ्य से चौकोण रेखा करे उन चारों रेखाओं को करतेसमय पहिले चारों मंत्र पढ़े। मंत्रार्थ—(मे, तप्तायनी, असि) हे भूमि तुम मेरे ऊपर अनुग्रह करने को, निर्धनतासे दुःखी पुरुषों को शरण देनेवाली, हो (मे, वित्तायना, असि) हे भूमि—मेरे निमित्त, धनार्थियों को धनकी खानि, हो (मा, नायितात्, अवतात्) हे भूमिदेवि—भुक्त को, याचना से, रक्षाकरो (मा, व्यधितात्, अवतात्) हे भूमि—भुक्त, मन की पीड़ासे, रक्षाकरो। ५ वें मंत्र से उन रेखाओं के आगे को स्फ्य से चत्वाल खोदें, जिस स्थानमें से वेदी बनाने के लिए मट्टी खोदीजाय उसको चत्वाल कहते हैं। मंत्रार्थ—(नभः, नाम, अग्निः, विदेत्) हे चत्वालमें की मृत्तिके—नभ, नामवाला, तेरा अधिष्ठाता अग्नि, भुक्तसे खोदीहुई तुम्हको जानै। छठे मंत्रसे गढ़े में से खोदीहुई मिट्टी निकालै। मंत्रार्थ—अङ्गिरः, अग्ने, आयुना, नाम्ना, एहि) हे गतिमान्, अग्ने, आयु, नामसे—तुम इस स्थानमें, आओ। ७ वें से उत्तर वेदी के स्थानमें उस मृत्तिका को डालै। मंत्रार्थ—(अस्याम्, पृथिव्याम्, असि, ते, यत्, यज्ञियम्, अनाधृष्टम्, तेन, त्वा, आदधे) हे अग्ने जो तुम—इस, पृथिवी में, हो, इससे तुम्हारा, जो, यज्ञ के योग्य, अनिन्दनीय, नाम है, उससे, तुमको, इस स्थान में स्थापन करता हूं। ८ वें से दूसरी रेखाकी ओर चत्वाल खोदें। मंत्रार्थ—(नभः, नाम, अग्निः, विदेत्) हे मृत्तिके तुमको—नभ, नामा, अग्नि, जानै। ९ वें से खोदी मट्टी गढ़े से निकालै। मंत्रार्थ—(अङ्गिरः, अग्ने, आयुना, नाम्ना, एहि) हे गतिमान्, अग्ने, आयु, नाम से, आओ। १० वें से उत्तर वेदी के स्थान में सब मट्टी डालै। मंत्रार्थ—(यः, द्वितीयस्याम्, पृथिव्याम्,

असि) हे अग्ने क्योंकि तुम-दूसरी, पृथ्वी अर्थात् अन्तरिक्ष में, हो (ते, यत्, अनाधृष्टम्, यज्ञियम्; नाम, तेन, त्वा, आदधे) इसकारण तुम्हारा, जो, यज्ञके योग्य, अमिन्दनीय, नाम है, उससे, तुमको, यहाँ स्थापन करना हूँ। ११ वें से तीसरी, और खोदें मंत्रार्थ-(नभ-इत्यादि) अर्थ १ वें की समान जानना। १२ वें से मृत्तिका निकालें। मंत्रार्थ-(अद्विर इत्यादि) अर्थ नवम की समान। १३ वें से मृत्तिका ढालें। मंत्रार्थ-(यः, तृतीयस्याम्, पृथिव्याम्, असि, ते, यत्, यज्ञियम्, अनाधृष्टम्, नाम, तेन, त्वा, आदधे) हे अग्ने जिससे कि तुम ताँसरी, पृथ्वी दुर्लोक में स्थित, हो, शेष अर्थ १० वें मंत्रवत् जानना। १४ वें से चौथी ओर खोदकर मट्टी निकालना ढालना आदि सब कार्य करै। मंत्रार्थ-(देववीतये, त्वा, अनु) हे मृत्तिके-देवताओं की प्रीति के निमित्त उंचरवेदी बनेगी अतः पूर्ववत्, तुमको, आहरणादि करता हूँ ॥ ९ ॥

सिंहिसि सपत्नसाही देवेभ्यः कल्पस्व सिंहिसि
सपत्नसाही देवेभ्यः शुन्धस्व सिंहिसि सपत्नसाही
देवेभ्यः शुम्भस्व ॥ १० ॥

इस काण्डिका में ३ मंत्र हैं, तीनों का ऋ० गोतम, छ० ब्राह्मी उच्छिन्क, और देवता वेदि है। पहिले को पढ़कर वेदी को शम्पा से ठीककर चारों ओर मध्यभाग में समान करै। मंत्रार्थ-(सिंही, सपत्नसाही, असि, देवेभ्यः, कल्पस्व) हे वेदी तुम-सिंहीके समान शत्रुओं का विरस्कार करनेवाली, हो, देवताओं के उपकारार्थ, उत्तर वेदीरूप से समर्थ होजाओ। दूसरे को पढ़कर वेदी का प्रोक्षण करै मन्त्रार्थ-(सिंही, सपत्नसाही, असि, देवेभ्यः, शुन्धस्व) सिंही समा न, शत्रुओं का पराभव करती, हो, देवताओं की प्रीति के अर्थ, शुद्ध होजाओ। तीसरे को पढ़कर वेदी के कंकर आदि दूर करै। मंत्रार्थ-(सिंही, सपत्नसाही, असि, देवेभ्यः, शुम्भस्व) हे उत्तर वेदी तुम-सिंहीसमान, शत्रुओं का विरस्कार करनेवाली, हो, देव-
ताओं के लिए सिकता पढ़ने से शोभिग होजाओ ॥ १० ॥

इन्द्रघोषस्त्वा वसुभिः पुरस्तात्पातु प्रचेतास्त्वा रुद्रैः
 पश्चात्पातु मनोजवास्त्वा पितृभिर्दक्षिणतः पातु विश्वकर्मा
 त्वादित्यैरुत्तरतः पातु विदमहन्तसं वार्धहिर्धा
 यज्ञान्निःसृजामि ॥ ११ ॥

इस कण्डिका में ५ मंत्र हैं, पाँचों का गोतम ऋ०, निचपृद्वाह्वी
 त्रिपुष् छन्द और उत्तर वेदि देवता है। पहिले चार मंत्रों से उत्तर
 वेदी की पूर्वादि चारों दिशा में जलद्वारा हाथ से मार्जन करें।
 मंत्रार्थ—(इन्द्रघोषः, वसुभिः, त्वा, पुरस्तात्, पातु) हे उत्तर वेदी-
 इन्द्र नाम से प्रसिद्ध देवता, आठ वसुओं के साथ, तुमको, पूर्व-
 दिशा में, रक्षा करें। (प्रचेताः, रुद्रैः, पश्चात्, त्वा, पातु) वरुण
 देव, ११ रुद्रों के साथ, पश्चिम में, तुमको, रक्षा करें। (मनोजवाः,
 पितृभिः, दक्षिणतः, त्वा, पातु) मनकी समान वेगवाले यमदेवता,
 दिव्य पितरों सहित, दक्षिण में, तुम्हारी, रक्षाकरें (विश्वकर्मा,
 आदित्यैः, उत्तरतः, त्वा, पातु) विश्वकर्मा, १२ आदित्यों के साथ,
 उत्तर में तुम्हारी, रक्षा करें। पाँचवें मंत्रको पढ़कर मार्जन से बचा
 जल वेदी के बाहर दक्षिण में लगाहुआ डालें। मंत्रार्थ—(अहम्,
 तप्तम्, इदम्, वाः, यज्ञात्, वार्धिर्धाः, निःसृजामि) मैं, अग्नि-
 वारणार्थ जिससे प्रोक्षण किया था उस अग्नि, इस, जलको,
 यज्ञकी वेदी से बाहर, डालता हूँ ॥ ११ ॥

सिंध्यसि स्वाहा सिंध्यस्यादित्यवनिः स्वाहा सिं-
 द्यासि प्रह्यवनिः क्षत्रवनिः स्वाहा । सिंध्यसि सुप्र-
 जावनी रापस्पोपवनिः स्वाहा सिंध्यस्यावह देवान्य-
 जमानाय स्वाहा भूतेभ्यस्त्वा ॥ १२ ॥

इस कण्डिका में ६ मंत्र हैं, १ ले ५ तक का गोतम ऋ०, मुरिग्राह्वी
 पंक्ति छ०, वेदि देवता। ६ ठें का गो० ऋ०, यजुः, औरसुग देवता
 है। पहिले ५ मंत्रों को पढ़कर वेदी की दोनों श्रोणी और दोनों
 अंश तथा नाभि में कुब्ज २ सुवर्ण स्थापन करके उसको देखते २
 अर्घ्य जुहूँ में आज्यलेकर पाँच आहुति देय। पहिली दक्षिण अंश

आग्नेय कोण में, मंत्रार्थ—(सिंही, असि, स्वाहा) हे उत्तरवेदी-
 असुरों का भक्षण करनेवाली, हो, तुमको यह हवि देते हैं सुन्दर रूपसे
 ग्रहण करो । दूसरी आहुति उत्तर श्रोणि वायुकोण में देया मन्त्रार्थ—
 (आदित्यवनि, सिंही, असि, स्वाहा) हे उत्तरवेदि तुम आदित्यों
 को मसन्न करनेवाली, सिंहीरूप, हो, तुमको हवि देते हैं सुन्दर
 रूप से ग्रहण करो । तीसरी आहुति दक्षिण श्रोणी नैऋ-
 त्यकोण में देय । मन्त्रार्थ—(ब्रह्मवनि, सिंही, असि, स्वाहा)
 हे उत्तरवेदी तुम—ब्राह्मण क्षत्रियों की प्रीति को देनेवाली, सिंही
 समान, हो, यह सुन्दर आहुति तुमको देने हैं । चौथी आहुति उ-
 त्तर अंश ईशानकोण में देय । मन्त्रार्थ—सुमजावनि, रायस्पोषवनि,
 सिंही, असि, स्वाहा) हे उत्तरवेदी तुम, अच्छी मजा और,
 धन पुष्टि को देनेवाली, पराक्रममें सिंही, हो, यह आहुति देते हैं
 इसको श्रेष्ठरूप से स्वीकार करो । ५. वीं आहुति उत्तरवेदी को म-
 ध्यनिदु नाभि में देय । मन्त्रार्थ—(सिंही, असि, यजमानाय, दे-
 वान्, आवह, स्वाहा) हे उत्तरवेदी तुम—सिंहीरूप हो, यजमान
 के उपकारार्थ, देवताओं को, यहां पहुँचाओ, यह हवि तुमको देते
 हैं । छठे से वेदीके ऊपर जुहू को ग्रहण करै । मन्त्रार्थ—(भूतेभ्यः,
 त्वा) हे घृतयुक्त जुहू—सब प्राणियों की प्रीति के लिये, तुम को
 वेदी के ऊपर ग्रहण करता हूँ—तुम जरायुजादिभाग हो ॥ १२ ॥
 ध्रुवोसि पृथिवीन्दृह ध्रुवक्षिदंस्यन्तरिक्षन्दृहाच्युत-
 क्षिदंसि दिवं दृहाग्नेः पुरीपमसि ॥ १३ ॥

इस कण्डिका में ४ मन्त्र हैं, चारों का गोतम ऋ०, १ से ३
 तक का भुरिगार्घ्यनु० छन्द, ४ थे का देवी जगती छ०, देवता १
 से ३ तक का परिधि और ४ थे का सम्भार है । पहिले ३ मंत्रों को
 पढ़कर देवदारु की वनी ३ परिधियों के द्वारा उत्तर वेदी की नाभि
 से, दश पीर्णमास इष्टिकी समान पश्चिम, दक्षिण, उत्तर तीन दिशा
 ओं में परिधि करै । मन्त्रार्थ—(ध्रुवः, असि, पृथिवीम्, दृह ध्रुवसि
 असि, अन्तरिक्षम्, दृह । अच्युतक्षिद, आसि दिवम्, दृह) हे मध्य

मपरिधि तुम-स्थिर हो, यहां की पृथ्वी को, दृढ़ करो । हे दक्षिण
परिधि तुम-स्थिर, यज्ञ में निवास करती, हो, अन्तरिक्ष को, दृढ़
करो । हे उत्तरपरिधि ? तुम-अविनाशी यज्ञ में निवास करती, हो,
धुलोक को, दृढ़ करो । चौथे मंत्र से नाभि के मध्यविन्दु में सम्भार
(शूल, तेजपात भेड़के बाल) स्थापन करै । मंत्रार्थ—(अग्नेः, पुरीषम्,
आसि) हे सम्भार, तुम अग्नि के, पूर्णकर्ता हो ॥ १३ ॥

युञ्जते मन उत युञ्जते धियो विप्राविप्रस्य बृहतो वि-
पश्चितः ॥ विहोत्रादधे वयुना विदेक इन्महीदेवस्य ।
सवितुः परिष्टुतिः स्वाहा ॥ १४ ॥

इस कण्विका के मन्त्र का श्यावाश्व ऋ०, स्वराहार्षी ज० छ०
और सविता देवता है । हविर्धान मण्डप बनाकर अध्वर्युशाला में
मवेशकर आज्य का संस्कार करके चार बार ग्रहण किए हुए आज्य
को परिस्तरणसमिदाधोनपूर्वक अग्नि में इस मंत्र से आहुति देय ।
मंत्रार्थ—(बृहतः, विपश्चितः, विप्रस्य, विप्राः, होत्राः, मनः, युञ्जते,
उत, धियः युञ्जते, वयुनावित्, एकः, इत्, विदधे, सवितुः, देवस्य
परिष्टुतिः, मही, स्वाहा) वेदपाठ से महत्व को प्राप्त, सर्वज्ञ, यज्ञ-
मान के वेदवेत्ता, होम करने वाले ऋत्विज्, मनको, यज्ञानुष्ठान में
लगाते हैं, और इंद्रियों को, लगाते हैं, क्यों कि—सब प्राणियों के
मन बुद्धि की वृत्तियों को जाननेवाले, अकेले सृष्टिकर्ता में ही इन
घ्राहणों की मनोवशीकारादि सामर्थ्य को रचा है, क्योंकि—पेरक
अन्तर्यामी, परमात्मा देवकी, सदा कीहुई भुक्ति, बही है, उस पर-
मेश्वरके निमित्त श्रेष्ठ होम हो ॥ १४ ॥

बृद्विष्णुर्विचक्रमे त्रेधा निदधे इदम् ॥
समूढमस्य पांसुरे स्वाहा ॥ १५ ॥

इस मंत्र का मेधातिथि ऋ०, भु०, गाय० छ० और विष्णु देवता है ।
फिर घृत का संस्कार कर और ४ बार ग्रहण किए हुए को लेकर
दक्षिण हविर्धान के दक्षिण चक्रमार्ग में, सुवर्ण को रखकर शाला
द्वार की अग्नि में इस मंत्र से होम करै । मंत्रार्थ—(विष्णुः, इदम्,

विचक्रमेः, त्रेधा, पदम्, निदधे, अस्य, पांसुरे, समूढम्, स्वाहा) सर्व-
व्यापी त्रिविक्रमावतारधारी विष्णुने, इस विश्व को; विभागपूर्वक
उल्लंघन किया, पहिला भूमि में दूसरा अन्तरिक्ष में तीसरा चुलोक
में ऐसे तीन प्रकार, पद, रक्खा; इस विष्णु के, पद में, सम्यक्प-
कार विश्व अन्तर्भूत है, उस परमात्मा को हवि देते हैं ॥

इस मंत्र में वामनावतार की कथा गर्भित है जिसका प्रमाण नि-
रुक्त का यह वचन है— "अदिदं किञ्च विक्रमते विष्णुस्त्रिधा निधत्ते
पदं त्रेधाभावाय पृथिव्यामन्तरिक्षे दिवीति शाकपूणिः । समारोहेण
विष्णुपदे गयाशिरसीत्यार्णनाम् । समूढमस्य पांसुरे ध्यायनेऽन्तरिक्षे
पदं न दृश्यतेपि वोपमार्थे स्यात्समूढमस्य पांसुर इव पदं न दृश्यते
इति पांसवः पादैः सूयन्त इति वा पन्नाः शेरतः इति वा पंसतीया
भवन्तीति वा" ॥ १५ ॥

इरावती धेनुमती हि भूतं सूयवसिनी मनवे दश-
स्या । व्यस्कभ्ना रोदसी विष्णवे ते दार्धर्षे पृथिवीम्-
भित्तौ मयूखैः स्वाहा ॥ १६ ॥

इस कण्डिका के मंत्र का वशिष्ठ ऋ०स्व० आ० त्रि० छ० और
विष्णु देवता है । आहवनीय अग्नि के ईशानकोण में रक्षित उत्तर
शकट (हविर्धान) के दक्षिण चक्रमार्ग में सुवर्ण रखकर प्रतिपस्याता
और अर्धव्यु के दिये हुए सुवे और स्थाली को लेकर चारवार लिए
हुए पृत का हवन करे । मंत्रार्थ—(रोदसी, इरावती, धेनुमती, सूय-
वसिनी, मनवे, दशस्या, भूतम् विष्णो, पते, व्यस्कभ्नाः, पृथिवीम्
मयूखैः, अभितः, दार्धर्षे, स्वाहा) हे यावापृथिवी, इस यजमान के
कल्याणार्थ अन्नजल वाली, बहुतसी धेनुओं से युक्त, बहुत से उत्तम
खाने के पदार्थवाली, ज्ञानी यजमान के लिये, यज्ञसाधनों की देने
वाली, हो, हे सर्वव्यापी परमात्मन् !, इन स्वर्ग पृथिवी को, स्तंभित
किये हो, पृथिवी को, अपने तेजःस्वरूप सूर्यचन्द्रादि के द्वारा, सब ओर
से, धारण कर रहे हो, उन विष्णु को यह आहुति देते हैं ॥ १६ ॥

देवभूतौ देवेष्वाघो वतस्पाधी प्रेतमध्वरइल्पयन्ती ऊ-

ध्वं यज्ञन्नयत्तम्मा जिह्वरतम् । स्वहोष्ठमावदतन्देवी
 वृथे आणुर्मा निर्वादिष्टम्रजाम्मा निर्वादिष्टमत्रं रमेधां
 चर्म्मन् पृथिव्याः ॥ १७ ॥

इस काण्डिका में ४ मन्त्र हैं, ऋषिचारों का वशिष्ठ, छन्द पहिले चौथे का याजुषी पंक्ति, २ रे का निच्युदापी गायत्री; तीसरे का भुरिगार्पी गा० और देवता चारों का हविर्धान है। शाला के दक्षिण द्वार से लाईहुई पत्नी चारवार लिपहुण होम से शेषयुत को लेकर दोनों अक्ष के धुरों में इस मंत्र से लगावे। मंत्रार्थ—(देवश्रुतौ, देवेषु, अधोपतम्) हे अक्षधुरों तुम-देवसभामें मसिद्ध, देवताओं में, उच्च स्वर से कहो कि—यजमान यज्ञ करता है। शकट के यथास्थान में आने पर यजमान इस मंत्र को पढ़कर पूर्वमुख हो इसकी दृढ़रूप से रक्षा करै। मंत्रार्थ—(अध्वरम्, कल्पयन्ती, माची, भेतम्, यज्ञम्, ऊर्ध्वम्, नयतम्, मा—जिह्वरतम्) हे दोनों शकट-यज्ञ को, समर्थ कर तोहुण, पूर्वमुख, जाओ। यज्ञ को, ऊर्ध्वलोकवासी देवताओं के समीप, लेजाओ, कुटिल मतहोओ। तीसरे मंत्र से यजमान अक्ष को आघात करशब्द करै। मन्त्रार्थ—(दुर्ये, देवी, स्वम्, गोष्ठम्, आवदतम्, आयुःमा-निर्वादिष्टम्, गजाम्, मा-निर्वादिष्टम्) हे गृहसमान, शकटरूप देवताओं, अपने, गोठ को, संव ओर से कहो, यजमान की आयु को, पशु आदि से रहित मत उच्चारण करो, पुत्रादि प्रजा को, शाप रूप दुर्वाक्य को मत कहो। चौथे मंत्र से उत्तर वेदी के पश्चिम में ३ परिक्रमा होजाने पर दोनों शकट को मध्यफलकाधारस्थ कर के स्थापन कर इस मंत्र से अभिमन्त्रण करै। मंत्रार्थ—(पृथिव्याः, अत्र, चर्म्मन्, रमेधाम्) पृथिवी के, इस, देवयजन रूप स्थान में, कीड़ा करो ॥ १७ ॥

विष्णोर्नृकं धीर्गणि प्रवोचं यः पार्थिवानि विममे र-
 जांसि । यो अस्कभांयुदुत्तरं सधस्थं विचक्रमाणस्त्रे-
 योर्गुणायो विष्णवे त्वा ॥ १८ ॥

इस काण्डिका में २ मंत्र हैं, दोनों का औतथ्य दीर्घतमा ऋ०,

छन्दः ३० ले, का, स्वरादापीं त्रि०, २: रे को यजु और देवता दोनो का विष्णु है। अर्ध्वैर्यु दोनो हविर्धान को उत्तर और से परिक्रमण कर दक्षिण हविर्धान को इस मंत्र से स्तम्भ पर खड़ा करे। मंत्रार्थ— (विष्णोः, नुकम्, वीर्याणि, प्रबोचम्, यः, पार्थिवानि, रजांसि, विम मे, यः, श्रेया, विचक्रमाणः, उरुगायः, उत्तरम्, सधस्यम्, अस्क भायते) सर्वव्यापी विष्णु भगवान् के, किन् २ क्रमों को, कहें, अर्थात् परमात्मा की क्या स्तुति करूं। उनकी महिमा असीम है, जिस परमात्मा ने, भूमि, अन्तरिक्ष, स्वर्गसम्बन्धी ज्योतिषियों को, रचा है, जो परमात्मा, तीन लोक में अग्नि वायु सूर्यरूप से, तीन पद धारण करता हुआ, महात्माओं से गाया गया है, ऊपरके देवताओं के स्थानरूप घुलोक को, स्तम्भित किया है। दूसरे मंत्र से अग्नि कोष में स्थूल गाँदे। मंत्रार्थ— (विष्णवे, त्वा) हे स्थूलकाष्ठ, विष्णु देव की असन्नता के लिए, तुम्हको गाड़ता हूँ ॥ १८ ॥

॥ द्विषो वा विष्णो उत वा पृथिव्या महो वा विष्ण उरो-
 अन्तरिक्षात् । उभा हि हस्ता वसुना पृणस्वाप्रयच्छ
 दक्षिणादौत सव्याद्विष्णवे त्वा ॥ १९ ॥

॥ इस कण्डिका के मंत्र का श्रौत० दीप० ऋ०, निच्यूदापीं जग०
 छ० और विष्णुदेवता है। इस मंत्र से प्रतिपस्याता उत्तर शकटको
 खड़ा करता हुआ भूमि में पूर्ववत् स्तम्भको खननकर गाँदे। मंत्रार्थ
 (विष्णोः, विष्णो, दिवः, वा, पृथिव्याः, उत वा, महः, उरोः,
 अन्तरिक्षात्, वा, वसुना, उभा, हि, हस्ता, पृणस्व, दक्षिणात्, उत,
 सव्यात्, आप्रयच्छ, विष्णवे, त्वा) हे सर्वव्यापिन्, परमात्मन्,
 स्वर्गलोक से, वा, पृथिवीलोक से, भी, और, वड़े, विस्तीर्ण, अन्त-
 रिक्ष से, भी, धन से, दोनो, ही, हाथ, पूर्णकरो, तब धनपूर्ण—दहिने,
 वा, वामहस्तसे, अनेक प्रकार के धनस्त्र हमको दो, हे काष्ठस्तम्भ,
 विष्णुदेव की प्रीति के लिए, तुम्हको गाड़ता हूँ ॥ १९ ॥

प्रतद्विष्णुस्तवते वीर्येण भृगो न भीमः कुचरो गिरि-
 ष्ठाः । यस्योरुषु त्रिषु विक्रमणीष्वधिक्षियन्ति भुव-

॥ नानि विश्वा ॥ २० ॥ (विष्णोः, रराटमसि, असि, विष्णोः, स्यूरसि, विष्णोः ध्रुवोसि) ।
 इस मंत्रको औं दी० ऋ०, विरा० त्रि० छन्द और विष्णुदेवता ही
 मध्यम छंदी को स्पर्शकर इस मन्त्र को पढ़े। मन्त्रार्थ—(तत्, भीमः,
 कुचरः, मृगः—न, गिरिष्ठाः, विष्णुः, धीर्मेण, मस्तवते, यस्य, उरुपु,
 त्रिपु, विक्रमणेषु, विश्वा, भुवतानि, अधिक्षियन्ति) वह, जिसेसे
 चराचर भयमानते हैं, सिद्धकी—समान, पृथिवीपर मत्स्यादिरूप से
 विचरनेवाला, देह में अन्तर्यामीरूप से स्थित, सर्व व्यापी परमा-
 त्मा, अमूर्तवध तथा भक्त और धर्मकी रक्षारूप पराक्रम से, स्तुति
 को प्राप्त होता है, जिस परमात्मा के, महान्, तीन, पाँदमक्षेपण स्थान
 तीनी लोकों में, सब, लोक, निवास करते हैं ॥ २० ॥ (विष्णोः,
 विष्णोः रराटमसि, विष्णोः, अन्त्रे स्थो, विष्णोः स्यूरसि,
 विष्णोः ध्रुवोसि । विष्णोः वमसि, विष्णोः त्वा ॥ २१ ॥ (विष्णोः,
 स्यूरसि, विष्णोः ध्रुवोसि) ।
 इस कण्डिका में ५ मंत्र हैं, ऋषि चारों का औं दी०, छन्द १ले का,
 याजु० उ०, २। ३। ४ का, दे० पंक्ति, ९ वें का याजु० वृह०।
 देवता चारों का विष्णु है। दोनो हविर्धान शकट को दक्षिणोत्तर
 स्थापन करके उनके ढकने को मण्डप बनावै और विष्णुदेवता होने
 से मण्डप को भी विष्णु कहते हैं और विष्णु के सब अवयव होने
 से जैसे ललाट उच्च अवयव है उसी मकार हविर्धान मण्डप के पूर्व
 द्वारवर्ती स्तम्भ के मध्य में एक कुशों की माला गुंथी जाती है
 उस माला वा उसके बन्धनाधार तिरछे बाँसका सम्बोधन
 करते हैं उसका मंत्र । मन्त्रार्थ—(विष्णोः, रराटम, असि) हे धर्म-
 मालाधार वंश तुम—यज्ञरूप विष्णु के, ललाट स्थानीय, हो । दूसरे
 मंत्र से उच्छ्राई ललाट के प्रान्तों को स्पर्श करे। मन्त्रार्थ—(विष्णोः,
 अन्त्रे, स्यः) हे ललाट के प्रान्त तुम दोनो—यज्ञरूप विष्णु के, औं-
 ष्टसन्धिरूप, हो । तीसरे मंत्र से अध्वर्यु सूए में सुतली परोकर उस
 से रराटी के चारों ध्रुव द्वारशाखाओं की सीवै। मन्त्रार्थ—(विष्णोः,
 स्यूरसि) हे वृहत्सूची तुम—यज्ञीयमण्डप की, सूची, हो । चौथे
 मंत्र से सीवन के आरम्भ में रस्सी की जड़ में गाँठ देव । मन्त्रार्थ—

(विष्णोः, ध्रुवः, असि) हे ग्रन्थि तुम-यज्ञीय विष्णुरूप मण्डप की; अतिदृढ़ ग्रन्थि, हो । पाँचवें मंत्रसे पूर्वार्ध वाँसों के मण्डपको वनाकर स्पर्श करै । मन्त्रार्थ—(वैष्णवम्, असि, विष्णवे, त्वा) हे हविर्धान तुम-विष्णु सम्बन्धी, हो, इस कारण विष्णु की प्रीति के अर्थ, तुम्हको स्पर्श करता हूँ ॥ २१ ॥

देवस्य त्वा सवितुः प्रसवेभ्विनोर्बाहुभ्याम्पूष्णो हस्ताभ्याम् । आददे नार्यसीदमहश्च रक्षसां रक्षसां ग्रीवा अपि कृन्तामि बृहन्नसि बृहद्रवा बृहतीमिन्द्राय वाचं वद ॥ २२ ॥

इस कण्डिका में ४ मंत्र हैं, चारों का औ० दीर्घ० ऋ०; छंद १० ले का प्राजा० बृह०, २ रे का याजु० गाय०, ३ रे का आसु० उष्टिणक; ४ थे का आर्षीपक्ति । देवता पहिले और दूसरे का अग्नि, ३ रे का रक्षोग्र और ४ थेका उपरव है । १ ले मंत्र से काठका कुदाल लेकर यूपवाटकी समान चार गड़ोंका चिन्ह करै । मन्त्रार्थ—(सवितुः देवस्य, प्रसवे, अश्विनोः, बाहुभ्याम्, पूष्णः, हस्ताभ्याम्, त्वा, आददे) हे अग्नि-सविता, देवता की, प्रेरणा होनेपर, अश्विनीकुमार की, बाहुभावको प्राप्त अपनी भुजाओं से, पूषादेवता के, हस्तभाव को प्राप्त अपने हाथों से, तुम्हको, उपरवकार्य में ग्रहण करता हूँ । इस अग्नि को खतनोन्मुख करके दूसरे मंत्र से दृढ़मुष्टि करै । मन्त्रार्थ (नारी, असि) हे अग्नि, तुम हमारा उपकार करनेवाली, हो । तीसरा मंत्र पढ़कर अग्निद्वारा अग्निकीण आदि चारों कोनों में चार गड़हे खोदने को प्रादेश भर गोल आकार में कुरेद । मन्त्रार्थ—(इदम्, अहम्, रक्षसां, ग्रीवा, अपि, कृन्तामि) यह, मैं अध्वर्यु; यज्ञविनाशक राक्षसों की, गर्दनो को, भी, काटता हूँ । चौथे मंत्र से परकण्डिका के प्रथम मंत्रतक चारों ओर लिखनेके अनुसार बाहु भर के चार गड़हे खोदें । मन्त्रार्थ—बृहत्, बृहद्रवाः, असि, इन्द्राय, बृहतीम्, वाचम्, वद) हे घोरतर शब्दकारी उपरव-तुम-महान्, महाशब्द करते, हो, इन्द्रदेवता की प्रीति के लिए, ऐसी उच्चाध्वनि

वाली, वाणी को, बोलो ॥ २२ ॥
 - रक्षोहर्णं बलगहनं वैष्णवीमिदमहन्तं बलगमुत्किरामि
 - यम्मे निष्टयो यममात्यो निचखानेदमहन्तं बलगमु-
 - त्किरामि यम्मे समानो यमसमानो निचखानेदमहन्तं
 - बलगमुत्किरामि यम्मे सर्वन्धुयमसवन्धुर्निचखानेद-
 - महन्तं बलगमुत्किरामि यम्मे सजातो यमसजातो नि-
 - चखानोत्कृत्याङ्किरामि ॥ २३ ॥

इस काण्डिका में ५ मंत्र है, पाँचों का औत० दी० ऋ०, छंद-
 १ले का निच्यु० गाय०, २।३।४ थे का भुरि० गाय०, ५वें का
 यायुषीगा० । देवता सबका लिङ्गोक्त है । पूर्वमंत्र का शेष-(रक्षो-
 हणम्, बलगहनम्, वैष्णवीम्) राक्षसवधविषयक, कृत्यानाशक, और
 यज्ञरक्षक विष्णु से सम्बन्ध रखनेवाला है. यह इन्द्र से कहो ।
 १ले मंत्र से अग्निकोण के गढ़े में से मट्टी निकालो। मंत्रार्थ-(निष्टयः,
 यम्, अमात्यः, यम्, मे, निचखान, अहम्, तम्, इदम्, बलगम्,
 उत्किरामि) अत्यन्त संघातरूप से वर्धमान चाण्डाल आदि या
 शरीर के सम्बन्धी आदि ने, जिसका, घर के कृत्यदाता सम्म-
 तिदाता ने, जिसका, मेरे, अनिष्ट के लिये, प्रयोग किया, मैं, उस,
 इस, अभिचार को, दूर करता हूँ । दूसरे मंत्र से नैऋत्यकोण के
 गढ़े से मट्टी निकालकर फेंकौ। मंत्रार्थ-(समानः, यम्, असमानः,
 यम्, मे, निचखान, अहम्, तम्, इदम्, बलगम्, उत्किरामि)
 धनकुल आदि समान ने, जिस कृत्यको, तथा जिसको, धनकुल
 आदि में न्यून वा अधिकने, मेरे वधके निमित्त, प्रयोग किया है,
 मैं, उस, इस, कृत्या को, उतखात सहित निकालकर फेंकता हूँ ।
 तीसरे मंत्र से वायुकोण की मृत्तिका निकालौ। मंत्रार्थ-(सवन्धुः,
 यम्, असवन्धुः, यम्, मे, निचखान, अहम्, तम्, इदम्, बलगम्,
 उत्किरामि) मातुलादि समान कुलवाले ने, जिसकृत्याको, तथा
 असम्बन्धीने, जिसको, मेरे निमित्त, प्रयोग किया, मैं, उस, इस
 कृत्याको, दूर फेंकता हूँ । ४ थे मंत्र से ईशानकोण के की

ऋषि सब का औत्तम्य दीर्घतमा है। इन्द्र ४ का आसुरी उषिण्क्, ५ का याजुपी जगती, ६ का याजुपी पंक्ति और ७ का देवी जगती है। देवता ४।५।६ का यव, ७ का औदुम्बरी, ८।९ का पितर है। २२ वीं कण्डिका में प्रथम ३ मंत्रों का विनियोग और व्याख्या हो चुकी है। चौथे मंत्र से इस गर्त के चारों ओर जल बिड़ककर गीली भूमि में जाँ योवै। मंत्रार्थ—(यवः, असि, द्वेषः, अस्मत्, यवय, अरातीः, यवय) हे शस्य ! तुम यवहो, हमारे, शत्रु वा दुर्भाग्य को हमसे दूर करो, हमारे वैरियों को, दूर करो। ५ वें मंत्र से गूलड की शाखा के अग्र, मध्य और मूल में, जलपात्र में जाँ बालकर मोक्षण करै। मंत्रार्थ—(देवि, त्वा, अन्तरिक्षाय, त्वा, पृथिव्यै, त्वा) हे गूलड की शाखा के अग्रभाग ! तुलोक की प्रीति के अर्थ, तुझको मोक्षण करता हूँ, हे मध्यभाग ! अन्तरिक्ष की प्रीति के अर्थ, तुझको मोक्षण करता हूँ, हे मूलभाग ! पृथिवी की प्रीति के अर्थ, तुझको मोक्षण करता हूँ। छठे मंत्र से बचेहुए जल को उस गर्त में डालै। मंत्रार्थ—(पितृपदनाः, लोकाः, शु-ग्भताम्) पितरों के निवासस्थान, लोक, शुद्धहों। ७ वें मंत्र से गर्त के चारों ओर उत्तराग्र कुशा बिछावै। मंत्रार्थ—(पितृपदनम असि) हे कुशाओं ! तुम पितरों के बैठने का आसन, हो ॥२६॥

चद्विबंठस्तभानान्तरिक्षम्पृण दठंहस्व पृथिव्यान्तु-
तानस्त्वां मारुतो मिनोतु मित्रावरुणौ ध्रुवेण धर्मणा।
ब्रह्मवनिस्त्वा क्षत्रवनि रायस्पोषवनि पर्यूहामि ब्रह्म
दठंह क्षत्रं दृश्यायुर्दृशं प्रजान्दृशं ॥ २७ ॥

इस कण्डिका में ४ मंत्र हैं, ऋषि चारों का औत्तम्य दीर्घतमा। इन्द्र पहिले का भुरिक् प्राजापत्यानुग्रुप्, दूसरे का आर्ष्युषिण्क्, तीसरे का भुरिक्साम्नीवृहती और चौथे का आसुरी गायत्री है। देवता चारों का औदुम्बरी है। प्रथम मंत्र से औदुम्बरी को खड़ा करै। मंत्रार्थ—(दिवम्, उत्तमान, अन्तरिक्षम्, पृण, पृथिवीम्, आदृशस्व) हे औदुम्बरी देवता ! तुलोक को, स्ताम्भन करो।

अन्तरिक्ष को, पूरित करो । पृथिवी को, दृढ करो । दूसरे मंत्र से गूलद की शाखा को गड़े में डाले । मंत्रार्थ—(मित्रावरुणौ, युतानः, मारुतः, ध्रुवेण, धर्मणा, त्वा. मिनोवु) हे गूलरकी शाखे मित्रावरुण नामक दोनों देवता, दीक्षिमान्, वायुदेवता, स्थिर, धर्म से, तुझको, गड़े में डालै । तीसरे मंत्र से यूप की समान मटी डालकर जल से पूरित करै । मंत्रार्थ—(ब्रह्मवानि, क्षत्रवानि, रायस्पोपवनि, त्वा, पर्युहामि) हे गूलर की शाखे ! ब्राह्मणों से सेवनीय, क्षत्रियों से सेवनीय, धनपुष्टि के लिये सेवनीय । तुझ को, इस गड़े में मटी डालकर दृढ करता हूँ । चौथे मंत्र से अध्वर्यु उस मटी से भरेहुए गड़े को मित्रावरुण दण्ड से झूटै और मटी को गड़े में डालै । मंत्रार्थ—(ब्रह्म, दृंह । तत्रम्, दृंह । आयुः, दृंह । मजाम्. दृंह) हे शाखा ! ब्राह्मणजाति को, दृढ कर । क्षत्रियजाति को, दृढकर । जीवन को, दृढकर । पुत्र आदि मजा को, दृढ कर ॥ २७ ॥

ध्रुवासि ध्रुवोऽयं यजमानोऽस्मिन्नायतने मजया
पशुभिर्भूयात् । घृतेन द्यावापृथिवी पर्येथामिन्द्र-
स्य छदिरसि विश्वजनस्य छाया ॥ २८ ॥

इस काण्डिका में ३ मंत्र हैं । ऋषि तीनों का औत्थयदी०, छन्द-
१ ले का निष्पृदार्षी गायत्री, २ रे का याजुषी त्रिपुष् और ३ रे का
साम्न्युष्णिक् है । देवता—१ ले का औदुम्बरी, २ रे का द्यावापृथिवी
और ३ रे का इन्द्र है । १ ले मंत्र को पढ़कर औदुम्बरी को स्पर्श
करै । मंत्रार्थ—(ध्रुवा, असि । अयम्, यजमानः, अस्मिन्, आय-
तने; मजया, पशुभिः, ध्रुवः, भूयात्) हे शाखा ! तू स्थिर, है । यह,
यजमान, इस, अपने स्थान में, स्नान सहित, पशुओं सहित, स्थिर,
हो । दूसरे मंत्र से अध्वर्यु औदुम्बरी के, जहाँ से दो शाखा उत्पन्न
हुई हों उस प्रदेश में सुवे से घृत का होम करै । मंत्रार्थ—(घृतेन,
द्यावापृथिवी, पर्येथाम्) होमेहुए घृत से, पृथिवी और स्वर्ग, पूरित
हो । तीसरे मंत्र से औदुम्बरी को गाढ़कर सदः नाम मण्डप को
बनाकर उसको धाने के लिये तृणों की चटाई को लगावै । मंत्रार्थ

(इन्द्रस्य, छदिः, विश्वजनस्य, छाया, आसि) हे तृण की चटाई
तू, ऐश्वर्यवान् यजमान के, इसमण्डप को छानेवाली, सबजनों
की छाया रूप, हो ॥ २८ ॥

परिस्वा गिर्वणो गिरं हृमा भवन्तु विश्वतः ।

वृद्धायुमनुवृद्धयो जुष्टा भवन्तु जुष्टयः ॥ २९ ॥

इस का मधुच्छन्दा ऋषि, अनुष्टुप् छन्द और इन्द्र देवता है।
इसमंत्र संछाने के परिवारकों से छतको चारों ओर से आच्छादन
करै। मंत्रार्थ—(गिर्वणः, इमाः, अनुवृद्धयः, गिरः, त्वा, विश्वतः,
परिभवन्तु । वृद्धायुम्, जुष्टयः, जुष्टाः, भवन्तु) हे स्तुतियोग्य सभा
के अधिष्ठात्री इन्द्रदेव !, यह, सवनक्रम से वृद्धियुक्त, स्तोत्र शास्त्र
रूप वाणी, तुमको, सब ओर से, ग्रहण करो, बड़े अन्नवान् तुमको
हमारी सेवा, भिय, हों ॥ २९ ॥

इन्द्रस्यस्यूरसीन्द्रस्य ध्रुवोसि । ऐन्द्रमसि वैश्वदेवमसि ३०

इस कण्विका में ४ मंत्र हैं । ऋषि—४ रों का मधुच्छन्दा ।
छन्द—१ । २ । ४ का याजुपी गायत्री और ३ रे का दैवी वृहती है
देवता १ । २ । ३ का इन्द्र और ४ थे का विश्वेदेवा है । १ ले मंत्र
को पढ़कर पूर्व द्वार के दक्षिण स्थूण आदि के मदाक्षिण क्रम से
चारों द्वारों का परिपीवण करै अर्थात् रस्ती को भिलावै। मंत्रार्थ—
(इन्द्रस्य, स्यूरः, आसि) हे रस्ती तू सभा के अधिष्ठात्री इन्द्रदेवता के
सम्बन्ध की, सीवन, है । दूसरे मंत्र से गाँठ दैय । मंत्रार्थ—(इ-
न्द्रस्य, ध्रुवः, आसि) हे गाँठ तू इन्द्र के सम्बन्धवाली, स्थिर, है
३ रे मंत्र से सभा को सम्बोधन करै । मंत्रार्थ—(ऐन्द्रम्, आसि)
हे सभातू इन्द्रदेवता की प्रसन्नता के लिये निर्मित, है । ४ थे मंत्र
से हविर्धान मण्डप के वायव्य कोण के उत्तरभाग में आग्निधि
नामक अग्निस्थान बनाकर उसको स्पर्श करै । मंत्रार्थ—(वैश्वदे-
वम्, आसि) हे आग्निधि तुम सब देवताओं के आवाहनस्थान, हो ।

विभूरसि म्बाहृणो वन्हिरसि हृद्यबाहनः ।

आश्रोसि प्रचेतास्तुथोसि विश्वबेदाः ॥ ३१ ॥

इस कण्डिका में ४ मंत्र है । ऋषि-सवका मधुच्छन्दा । छन्द-
१ ले का प्राजापत्या गायत्री, दूसरे तिसरेका याजुषी गायत्री और
चौथे का देवी जगती है । देवता चारों का अग्नि है, अध्वर्यु उत्तरमुख
बैठकर अग्नियों की आश्रय छोटी वेदीरूप धिष्ण्यों को मट्टी से
बनावै, उस में पाहिले आग्नीध्र की वेदी को प्रथम मंत्र पढ़कर
सम्हालै । मंत्रार्थ—(विभूः, प्रवाहणः, असि) हे आग्नीध्रीय धि-
ष्ण्य के अग्नि तुम नानारूपधारक; हावे के पहुँचानेवाले, हो ।
तदनन्तर पश्चिममुख अध्वर्यु पूर्व में सद के द्वार को, उसके उत्तर
में होता के धिष्ण्य को दूसरे मंत्र से सम्हालै । मंत्रार्थ—(बन्धिः,
हव्यवाहनः, असि) हे होतृधिष्ण्य के अग्नि तुम यज्ञकर्म के निर्वा
हक, देवताओं को हव्य प्राप्त करानेवाले, हो । फिर उत्तरमुख अध्वर्यु
औदुम्बरी के अग्निकोण और होतृधिष्ण्य के दक्षिण में मैत्रावरुण
के धिष्ण्य को तीसरे मंत्र से सम्हालै । मंत्रार्थ—(श्वात्रः, प्रचेताः,
असि) हे मैत्रावरुण धिष्ण्य के अग्नि तुम शीघ्रगामीमित्ररूप, श्रेष्ठ
ज्ञानवाले वरुणरूप, हो । होतृधिष्ण्य के उत्तर ब्राह्मणाच्छंसि, पोता,
नेष्टा, अच्छावाक् चारों ऋत्वजों के धिष्ण्यों को समानान्तर चौथे
मंत्र से सम्हालै । मंत्रार्थ—(तुथः, विश्ववेदाः, असि) हे ब्राह्मणा-
च्छंसि धिष्ण्य के अग्नि तुम ब्रह्मरूप अथवा देवताओं में दक्षिणा
विभाग करनेवाले, सर्वज्ञ, हो ॥ ३१ ॥

इशिगांसि क्विरिंघारिरसि वम्भारिरवस्यूरसि
दुवस्वाञ्छुन्ध्यूरसि मार्जालीयः सम्राडंसि कृशा
नुःपरिपद्योसि पर्वमानो नभोसि प्रतक्वा मृष्टोसि
हव्यसूदन ऋतधामासि स्वर्ज्योतिः ॥ ३२ ॥

इस कण्डिका में ९ मंत्र हैं । ऋषि-सवका मधुच्छन्दा, छन्द-१ ।
६ । ७ का याजुषी गायत्री, २ । ३ । ४ । ८ । ९ वें का याजुष्यनुष्टुप्
और ५ वें का याजुष्युष्णिक् है । देवता—१ । २ । ३ । ४ का अग्नि,
५ वें का आहवनीय, ६ ठे का वहिष्पवमान, ७ वें का चत्वाल, ८
वें का शामित्र और ९ वें का औदुम्बरि है । ब्राह्मणाच्छंसि धिष्ण्य

के कुछ उत्तर में पोतृधिष्य वनाकर उसपर अधिष्ठित अग्नि का प्रथम मंत्र से नामकरण करै । मंत्रार्थ (उशिक, कविः, असि) हे पोतृधिष्यग्ने ! तुम कमनीय, और क्रान्तदर्शी होने से कविनाम वाले, हो । पोतृधिष्यके कुछ दूर नेतृधिष्य वनाकर उसपर अधिष्ठित अग्नि का दूसरे मंत्र से नामकरण करै । मंत्रार्थ—(अंधारिः, वम्भारिः, असि) हे नेतृधिष्य के अग्नि ! तुम पापनाशक होने से अंधारि, पोपक होने से वम्भारि, हो । ३ रे मंत्र से नेतृधिष्य के कुछ दूर मण्डप के मध्यगत आग्नीध्र से कुछ दक्षिण में अञ्जवाक् धिष्य वनाकर उसपर स्थित अग्नि का नामकरण करै । मंत्रार्थ—(अवस्यूः, दुवस्वान्, असि) हे अञ्जवाक् धिष्य के अग्नि तुम अन्न चाहनेवाले, हविष्मान् हो । चौथे मंत्र से मार्जालीयधिष्य वनाकर उसपर अधिष्ठित अग्नि का नामकरण करै । मंत्रार्थ—(शुन्ध्यः, मार्जालीयः, असि) हे मार्जालीय धिष्य के अग्नि तुम पवित्र करनेवाले, मार्जन करनेवाले हो । प्रथम मंत्रसे सभामण्डप के पूर्वभाग की उत्तरवेदी में स्थित आहवनीय अग्नि का नामकरण करै मंत्रार्थ—(सध्राद्, कृशानुः, असि) हे उत्तरवेदी के आहवनीय अग्ने तुम बहुतप्रकार की आहुति धारण करने से भलेप्रकार शोभायमान, और पयोव्रत आदि से कृश यजमान के अनुगामी, हो । ६ठे मंत्र से पश्चिम में ऐष्टिक वेदी के उत्तर वहिष्यवमान धिष्य वनाकर उसका नामकरण करै । मंत्रार्थ—(परिपद्यः, पवमानः, असि) हे वहिष्यवमान देश तुम स्तुतिकारक ऋत्विजों की सभा के योग्य और पवित्र करनेवाले, हो । ७ वें मंत्र से सभामण्डप के पूर्वद्वार में चत्वाल का नामकरण करै । मंत्रार्थ—(नभः, प्रतका, असि) हे चत्वाल तुम द्विद्रयुक्त होने से आकाशस्वरूप, और ऋत्विजों के प्रदक्षिण चलने से प्रतका नामवाले, हो । ८ वें मंत्र से चत्वाल के दक्षिण में शामिप्रधिष्य का नामकरण करै । मंत्रार्थ—(मृष्टः, हव्यसूदनः, असि) हे शामिप्रनुम पवित्र, और हविषाक के कारण, हो । ९ वें मंत्र से सदोमण्डप के मध्य पश्चिम प्रान्त की औदुम्बरी

का नामकरण करै । मंत्रार्थ—(ऋतधामा, स्वर्ज्योतिः, असि) हे श्रीदुम्बरि तुम उद्गाता की प्रधानकार्यस्थान, और स्वर्गमकाशक, हो।

समुद्रोसि विश्वव्यचा अजोस्येकपादाहिरसि बु-
ध्न्यो वागस्यैन्द्रमांसि सदोस्पृतस्य दारौ मा मा
सन्ताप्तमध्वनामध्वपते प्रमातिरस्वस्ति मे-
स्मिन् पृथि देवयानं भूयात् ॥ ३३ ॥

इस काण्डिका में ६ मंत्र हैं । ऋषि सब का मधुच्छन्दा, छन्द
१ ले का प्राजा० गाय०, २ । १ कादौ० पंक्ति, ४ का याजुषोवृ०
१ वें का याजुषी० प०, ६ ठे का निच्युदार्पीगा० है, देवता १ ले का
ब्रह्मासन, २ रे का अग्नि, ३ रे का गार्हपत्याग्नि, ४ थे का सदः०
५ वें का द्यारिशाखे, ६ ठे का सूर्य है १ । २ । ३ मंत्र से सदोमण्डप के
पूर्वद्वार के पूर्वभाग में स्थित होता, ब्रह्मासन शालाद्वार और प्राज-
हित को देखै मंत्रार्थ—(१ समुद्रः, विश्वव्यचाः, असि) हे ब्रह्मासन
तुम सब देवताओं के सन्मुख आने के स्थान अथवा समुद्र तुम
ज्ञान से गम्भीर ब्रह्मा के आसन, यह में कृत अकृत देखने के स्थान
हो । (२ अजः, एकपात्, असि) हे शालाद्वार के अग्ने तुम आह-
वनीय रूप से यह में जानेवाले वा अजन्मा, अद्वितीय रक्षक वा
सब प्राणी जिस के एक चरण में हैं ऐसे, हो । (३ अहिः, बुध्न्यः
असि) हे प्राजाहितनाम गार्हपत्य अग्ने । तुम शालाद्वार के नए
गार्हपत्य के उत्पन्न होने परभी अक्षयरूप, और आधानकाल में
प्रथम स्थापित होने के कारण मूलरूप, हो । ४ थे मंत्र से सदोम-
ण्डप का मार्जन करै । मंत्रार्थ—(४ वाक्, असि । ऐन्द्रम्, असि,
सदः, असि) हे सभामण्डप तुम अपने मध्यवाक् से कर्म
होने के कारण वाणीरूप, हो, इन्द्र को देवता रखनेवाले,
हो । बैठने के स्थान, हो । ५ वें मंत्र से द्वार के दोनों ओर
स्थापित केले के खंभ आदिका मार्जन करै । मंत्रार्थ (५ ऋतस्य,
दारौ, मा, मा सन्ताप्तम्) हे यज्ञ के द्वार के शाखाओं तुम, युक्त
को, मत सन्तप्त करो । ६ ठे मंत्र से यजमान देवयानमार्ग के

संस्कार के लिये सूर्य का अभिमन्त्रण करै । मंत्रार्थ—(६ अध्वपते, अध्वनाम्, मा, मतिर । आस्मिन् देवयाने, पथि, मे, स्वस्ति भूयात्) हे मार्ग के रक्षक सूर्य, मार्गों में वर्तमान, मुझको बढ़ाओ । इस, देवयान, मार्ग में, मेरा, करवाए, हो ॥ ३१ ॥

मित्रस्य मा चक्षुषेक्षध्वमग्नयः सगराः सगरास्थ
सगरेण नाम्ना रौद्रेणानीकेन पातमाग्नयः पिपृत-

माग्नयो गोपायत मा नमो वास्तु मा मा हिंसिष्ट ३४

इस कण्डिका में २ मंत्र हैं । ऋषिदोनों का मधु०, छन्द-१ ले का याजुषीवृहती और २ रे का निष्युद्धाक्षी अनु० है । देवता १ ले का ऋत्विज और दूसरे का धिष्ण्य है । १ ले मंत्र से यज्ञमान सब ऋत्विजों का अभिमन्त्रण करै । मंत्रार्थ—(मित्रस्य, चक्षुषा, मा, ईक्षध्वम्) हे ऋत्विजों ! मित्र की, दृष्टि से, मुझको, देखो । दूसरे मंत्र से अध्वर्यु भाओं धिष्यों को देखता हुआ प्रार्थना करै । मंत्रार्थ (सगराः, अग्नयः, सगरेण, नाम्ना, सगराः, स्य । अग्नयः, रौद्रेण अनीकेन, मा, पातम् । अग्नयः, मा, पिपृत । मा, गो पायत । वः, नमः, वास्तु । मा, मा हिंसिष्ट) हे स्तुतियुक्त, धिष्यों की अग्नियों ! स्तुतियुक्त नामधिष्य से, स्तुति कीहुई, हो । हे अग्नियों ! उग्र सेना वा मुख से मुझको, रक्षा करो । हे अग्नियों, मुझको, धनादि से, पूर्ण करो । मुझको रक्षा करो । तुम्हारे अर्थ, मणाम हो । मुझको मत मारना अर्थात् यज्ञ में कोई विघ्न न हो ॥ ३४ ॥

ज्योतिरसि विश्वरूपं विश्वेषां देवानां समित् । त्वं
सोम तनूकृद्भ्यो देवोभ्यो न्यकृतेभ्य उरु यन्तासि
वरूपं स्वाहा । जुषाणो अप्तुराज्यस्य वेतु स्वाहा ॥ ३५ ॥

इस कण्डिका में ३ मंत्र हैं । ऋषि-१ ले का मधु०, २ । ३ का भृगु मुत्त क्रतु । छन्द-१ ले का साम्नी अनुष्टुप्, २ का अनवसानागाय०, ३ रे का एकपदा बिराट् है । देवता १ ले का विश्वेदेवा, २ । ३ का सोम । १ ले मंत्र से ध्रुवे में से ५ बार दधि मिला पृषदाज्य लेया मंत्रार्थ—(विश्वरूपम्, ज्योतिः, असि । विश्वेषाम्, देवानाम्, समित्) हे

आज्य । तुमरूप देने से विश्व के रूपा और दीप्ति देने से ज्योति, हो । सब देवताओं के, प्रकाशक हो । २ मंत्र से प्रज्वलित सामिधा के ऊपर एकवार लियेहुए घी का जुहु से होम करे । मंत्रार्थ—(सोम, त्वम्, अन्यकृतेभ्यः, द्वेषोभ्यः, तनूकृद्भ्यः, यन्ता, उरु, बरुथम्, आसि स्वाहा) हे सोम ! तुम हमारे विरोधियों से भेरित, शत्रुओं और शरीरच्छेदक राक्षसों के लिये, दण्डदाता, और बड़े बलरूप, हो, ऐसे के निमित्त यह होम हो । ३ मंत्र से फिर भी जुहु में एकवार लियेहुए घृतको प्रदीप्त सामिधा पर आहुति देय । मंत्रार्थ—(जुषाणः अप्सुः, आज्यस्य, वेसु, स्वाहां) मसन्न सोम, मेरे दियेहुए घृत का, पान करो, हमारी दीर्हुई आहुति सुन्दररूप से ग्रहण कीजाय ॥

अग्ने नर्य सुपथाराये अस्मान्विद्वानि देव वयु
नानि विद्वान् । युयोधयस्मज्जुहराणमेनो भूयि-
ष्ठान्ते नम उक्तिं विधेम ॥ ३६ ॥

इसका अगस्त्य ऋ०, त्रिष्टुब्धन्द और अग्नि देवता है । इस मंत्र को पढ़ताहुआ अध्वर्यु आग्नीध्र के समीप जाने को प्रवृत्त होनेपर यजमान से कहै । मंत्रार्थ—(अग्ने, देव, विश्वानि, वयुनानि, विद्वान् अस्मान्, राये, सुपथा, नय । अस्मत्, जुहुराणम्, एनः, युयोधि, ते, भूयिष्ठाम्, नम उक्तिम्, विधेम) हे अग्नि, देव, सब, ज्ञानों को जानने वाले तुम, हमको, धन और यज्ञफल के लिये, श्रेष्ठमार्ग से प्राप्त करो । हमारी, इच्छित क्रिया के प्रतिबन्धक, पापको, दूर करो । तुम्हारे अर्थ, बहुत, नमस्कार वचन को, हम उच्चारण करते हैं ॥ ३६ ॥

अपन्नो अग्निर्वरिवस्कृणोत्वंयस्मृथः पुर एतु
प्रभिन्दन् । अयम्वाजाज्ञयतु वाजसाताव्यथे
शत्रूञ्जयतु जर्हपाणः स्वाहा ॥ ३७ ॥

इसका अगस्त्य ऋ०, आ० त्रि० छन्द और अग्नि देव० है । इसको पढ़ताहुआ सब को मण्डप के उत्तर भाग में लेजाकर, ग्नीध्रीय धिष्ण्य में अग्नि को स्थापित करे, मंत्रार्थ—(अयम्

नः, वरिवः, कृणोवु) यह, अग्नि, हमारे, धनको, करै । (अयम् मृधः, अभिन्दन्, पुरः, एतु) यह अग्नि, संग्राम में, शत्रुसेनाओं को, छिन्नभिन्न करताहुआ, आगे आवै । (अयम्, वाजसतौ, वाजान्, जयतु) यह अग्नि, अन्नविभाग करने में अन्नों को, हमें देने के निमित्त जीते । (जर्हपायः, अयम्, जयतु, स्वाहा) अत्यन्त प्रसन्न होता हुआ, यह अग्नि, शत्रुओं को, जीतो, वह हमारी आहुति को सुन्दर रूप से ग्रहण करै ॥ ३७ ॥

उरु विष्णो विक्रमस्वोरु क्षयाय नस्कृधि घृतं
घृतयोने पिव प्र प्र यज्ञपतित्तिर स्वाहा ॥ ३८ ॥

इसका अग० ऋ०, भुरिग् आ० अनु० छन्द, विष्णोदेव० है । इस को पढ़कर उत्तरवेदी के आहवनीय अग्निकुण्ड में आहुति देय मंत्रार्थ—(विष्णो, उरु, विक्रमस्व) व्यापक आहवनीय, अग्निरूप परमात्मन्, बहुत पराक्रम करो, (क्षयाय, नः, उरु, कृधि) ब्रह्म में निवास के निमित्त, हमको, अधिकता, करो । (घृतयोने, घृतम्, प्रपिव) हेघृत से बढ़नेवाले, घृतको, पियो । (यज्ञपतिम्, पतिर, स्वाहा) यजमान को, षटाधो, तुमको यह आहुति देते हैं ॥ ३८ ॥

देव सवितरेपतेसोमस्त रक्षस्व मा त्वा दभन्
एतत्त्वं देव सोम देवो देवाना उपांगा इदम्-
हम्मनुष्यान् सह रायस्पोपेण स्वाहा निर्वरुणस्य
पाशान्मुच्ये ॥ ३९ ॥

इस कण्डिका में ३ मंत्र हैं । ऋषि तीनों का अगस्त्य, छन्द—१ का आ० गाय०, २ का मा० त्रि०, ३ का याजु० त्रि० है । देवता—१ का सविता २ का सोम, ३ का लिङ्गोक्त है, जुहूआदि आज्यस्थालीपर्यन्त स्थापन करके, यजमान से सोम लेकर हविर्धान में प्रवेश करै फिर दक्षिण हविर्धान में भृगुचर्म विद्धाकर उसपर सोम रखगा हुआ पहिला मंत्र पढ़े। दूसरे मंत्र से सोम का उपस्थान करे। तीसरे मंत्र से हविर्धानमण्डप से निकले । मंत्रार्थ—(१ सवितः, देव, एप, सोमः, ते । तम्, रक्षस्व । त्वा, मा, दभन्) हे सब के भेरक दे-

वता यह सोम आप के अर्पण है । उसको रक्षा करो । तुम सोम के रक्षक को कोई उद्रपव मास न हो । (२ सोम, देव, त्वम्, देवः देवान्, एतत्, उपागाः । इदम्, अहम्, रायस्पोपेण, सह, मनुष्यान्) हे सोमदेव तुम देवता हो, अतः देवताओं को इस समय मास हो जाओ । यह मैं यजमान धन और पुष्टि के साथ अपने मनुष्यों को मास हूँ । (३ स्वाहा, वरुणस्य, पाशात्, निर्मुच्ये) सोमरूप अन्न देवताओं को पहुँचे, उस सोमदान के मभाव से मैं वरुण की पाश से छूटूँ ॥ ३९ ॥

अग्नें व्रतपास्त्वे व्रतया या तव तनूर्मय्यभूद्रेपा
सा त्वयि यामम तनुस्त्वय्यभूद्वियं सा मयि ।
यथायथन्नो व्रतपते व्रतान्यनु मे दीक्षान्दीक्षाप-
तिरनुस्तानुतपस्तस्पपतिः ॥ ४० ॥

इस का अगस्त्य ऋ०, नि० ब्रा० त्रि० छन्द और अग्नि देवता है, इस मंत्र से आहवनीय में समिध रखकर मदन्ती का स्पर्शकर गाढ़तर मुष्टि मेखला को करै । मंत्रार्थ — (अग्ने, व्रतपाः, त्वे, व्रतपाः, तव, या, तनुः, मयि, अभूत्, सा, एपा, त्वयि) हे अग्निदेव ! तुम स्वभाव से सब व्रतों के रक्षक हो, अतः तुम मेरे व्रत के पालक होओ । आपका जो शरीर मुझ में स्थित हुआ, सो यह तुम्हारा शरीर तुम्हारा ही हो । (या, उ, मम, तनुः त्वयि, अभूत्, सा, इदम्, मयि) और जो यह मेरा शरीर तुम में स्थित था, वह यह मेरा शरीर मुझ में स्थित हो । (व्रतपते, नौ, व्रतानि, यथायथम्) हे व्रतके पालक हम तुम दोनों के कर्म सम्बन्ध को न तोड़ें । (दीक्षापतिः, मे, दीक्षा, अन्वमंस्त) दीक्षा के स्वामी तुमने, मेरी दीक्षाको अंगीकार किया है । (तपस्पतिः तपः अनु) उपसद् तप के पालक अग्नि ने, मेरा व्रतपालन उपसद्रूप तप स्वीकार किया ४०

उरु विष्णो विक्रमस्वोरु क्षयाय नस्कृधि । घृतङ्
घृतयोने पिव प्र प्र यज्ञपतिन्तिर स्वाहा ॥ ४१ ॥

रूप काटने के लिये वनको जाता हुआ, सफलता के लिये चार बार

सुवे में घी लेकर इस मंत्र से आहवनीय कुण्ड में हवन करे। इस की व्याख्या ३८ वें मंत्र में हो चुकी ॥ ४१ ॥

अत्यन्या ॐ अगन्नान्या ॐ उपागाम् पूर्वात्वा परे
भ्यो विदम्परो वरेभ्यः । तन्त्वा जुपामहे देव वनस्पते
देवयज्यायै देवास्त्वा देवयज्यायै जुपन्तां विष्णो-
वेत्वा । औपधे त्रायस्व स्वधिते मैत्रं हि ॐ सीः ॥ ४१ ॥

इस कण्डिका में ४ मंत्र हैं। ऋ० सब का अग०, बन्द० १। २ का यु० वा० वृ०, ३ का याजु० गा०, ४ का दैवीज० है। हुतशेष घृत लेकर तक्षा (बड़ई) के साथ वन में जाने पर १-मंत्र से यूप के योग्य एक वृक्ष को पूर्वाभिमुख हो अभिमर्शन वा अभिमन्त्रण करे। २ मंत्र से सुवे में जो हुतशेष घी हो उससे वृक्ष को स्पर्श करे। ३ मंत्र से कुशतरुण को रखकर उसके ऊपर कुठार का प्रहार करे। ४ मंत्र से यूप के योग्य वृक्ष को काटे। मन्त्रार्थ—(१ अन्यान, अत्यगाम्, अन्यान, न, उपागाम् । त्वा, परेभ्यः, अर्वाक्, अवरेभ्यः, परः, अविदम्, वनस्पते, देव, देवयज्यायै, तम्, त्वा, जुपामहे, देवाः, देवयज्यायै, त्वा, जुपन्ताम्) हे आगे वर्तमान यूपवृक्ष में तुमसे अन्य वृक्षों को छोड़कर आया हूँ। यूप के योग्य अन्य वृक्षों के समीप नहीं गया। तुम्हको दूर के वृक्षों से निकट और निकटों से श्रेष्ठ पाकर आया हूँ। हे वन के पालक देव! देवयज्ञ के लिये ऐसे तुमको हम सेवन करते हैं। देवताभी देवयजन के कार्य के लिये तुमको सेवन करें। (२ त्वा, विष्णवे) हे यूपवृक्ष तुमको परमात्मा की प्रीति के लिये स्पर्श करता हूँ। (३ औपधे, त्रायस्व) हे औपध तुम बज्रभय से मेरी रक्षा करो। (४ स्वधिते, एतम्, मा, हिंसीः) हे कुठार इस यूप के अन्य स्थान का मत व्याघात करो ॥ ४२ ॥

याम्मा लेखीरन्तरिक्षम्मा हिं ॐ सीः पृथिव्या स-
म्भवं । अय ॐ हित्वा स्वधिनित्तेति जानः प्राणि-
नांय महते सौमगाय । अतस्त्वन्देव वनस्पते
शतवल्गो विरोह सहस्त्रवल्गो विवय ५ रुहेम ॥ ४३ ॥

इस कणिकामंत्र मंत्र हैं। अपि सबका अगस्त्य है। छन्दः-१ का नि० साम्नीष्ट०, २ का साम्नीत्रि०, ३ का आपीष्ट० है। देवता तीनों का वृहस्पति है। १ मंत्र से यूप के निमित्त कटकर गिरती हुई शाखा का अभिमन्त्रण करै। २ से उस शाखा के पत्ते आदि दूर करै। ३ से आज्यस्थाली में से एकवार लियेष्टा को जुहू में लेकर, काटने के स्थान में आहुति देय, मंत्रार्थ—(१ घाम्, मा, लेखीः । अन्तरिक्षम्, मा, हिंसीः । पृथिव्याः, सम्भव) हे यूप वृक्ष तुम धुलोक को मत विगाडो। अन्तरिक्ष को पीटा मत दो। पृथिवी के साथ मिलो, अर्थात् तीनों लोकों में शान्ति हो। (२ हि, तेतिजानः, अयम्, स्वधितिः, महते, सौभगाय, त्वा, प्रणिनाय) क्योंकि—यह अति तीक्ष्ण कुठार, बड़ा भारी पेशवर्ध पाने के लिये तुमको यूप बनाता है। (३ वनस्पते, देव, अतः, त्वम्, शतवल्शः, विरोह । वयम्, सहस्रवल्शः, विरुहेम) हे वृक्षदेवता इस स्थाणु से तुम बहुत अद्भुत बाले होतेहुए उपजो। हम पुत्रपौत्र आदि बहुतसी शाखा वाले हों ॥४३॥
इति छन्दोग्यशुद्धेदान्तमंत्र वाजसनेयिसंहिता का साठवादा पञ्चम अध्याय समाप्त.

अथ षष्ठोऽध्यायः

जिसमें सोम की वेदी प्रधान है ऐसे षष्ठम अध्याय में आतिथ्य से लेकर यूपनिर्माणपर्यन्त मन्त्र कहे। अब छठे अध्याय में यूपसंस्कार से लेकर सोमाभिषेक उद्योगपर्यन्त मन्त्र कहे जायेंगे—

देवस्य त्वा सवितुः प्रसवेदिवनोर्वाहुभ्याम्पूष्णो
हस्ताभ्याम्। आर्देदे नार्यमीदमहश्चरक्षसाङ्गीवा
अपि कृन्तामि । यचोसि य्वयास्मद्द्वेषो य्वया
रातिर्दिवे त्वान्तरिक्षाय त्वा पृथिव्यै त्वा शुन्ध-
न्ताँल्लोकाः पितृपदनाः । पितृपदनमसि ॥ १ ॥

पीछे पाँचवें अध्याय की २६ वीं कणिकामंत्र में इस मंत्र की व्याख्या कर चुके हैं। वहाँ लिङ्गशरीर का संस्कार था यहाँ स्थूलशरीर के संस्कार का वर्णन है।

अग्नेयीरंसि स्वावेश उन्नेतृणामेतस्य विचादधि
 त्वा स्थास्यति देवस्त्वा सविता मध्वानक्तु सुपि-
 प्पलाभ्यस्त्वौपधीभ्यः । घामग्नेणास्पृक्ष आन्त-
 रिक्षम्मध्यैनाप्राः पृथिवीमुपरेणाह ७ हीः ॥ २ ॥

इस क० में ४ मंत्र हैं । सबका साकल्य ऋ०, छन्द-१।४ का नि०
 गाय०, २ का याजु० प०, ३ का याजु० वृ० । देवता ? का शकल
 २।४ का यूप, ३ का चपाल है । १ से यूप के गड़े में पहिले यूप
 के मूलभाग का खंभ डालें । २ से उसके ऊपर के भाग में घृत लेपें
 ३ से ऊपर घृत से लिप्त चपाल को यूप के अग्रभाग पर स्थापन करें ।
 ४ से ऊँचा करें । मंत्रार्थ—(१ उन्नेतृणाम्, स्वावेशः, अग्नेयीः,
 अंसि । एतस्य, विचात्, त्वा, अधि, स्थास्यति) हे यूपखण्ड उठाने
 वाले ऋत्विजों को, हलकी होने से सुख से गवेश करने योग्य
 अग्रसर हो, तुम इस कर्मको जानो जो कि—तुम्हारे ऊपर दूसरा और
 खण्ड स्थापित होगा (२ सविता, देवः, मध्वा, त्वा, अतक्तु) सब
 के प्रेरक देव मधुर घृत से तुम को सींचें (३ सुपिप्पलाभ्यः, औप-
 धीभ्यः, त्वा) हे चपाल ! शुभफलयुक्त औपधियों के निमित्त तुम्ह
 को यूपखण्ड पर स्थापित करता हूँ (४ अग्नेण, घाम्, अस्पृक्षः,
 मध्येन, अन्तारिक्षम्, आ अप्राः, उपरेण, पृथ्वीम् अहं हीः) हे यूप
 तुमने अग्रभाग से दुलोक को स्पर्श किया है, मध्यभाग से अन्तरिक्ष
 को पूर्य किया है, अधोभाग से पृथिवी को दृढ़ किया ॥ २ ॥

या ते धामान्युश्मन्निगमध्यै यत्र गावो भूरिशृङ्गा
 अयासः । अत्राहु तदुरुगायस्य विष्णोः परम
 स्पदमवभारि भूरि । ब्रह्मवन्ति वा क्षत्रवन्ति राय
 स्पोष्वनि पर्युहामि ब्रह्म दह क्षत्रन्दुहायुर्दह
 प्रजान्दह ॥ ३ ॥

इस कण्डिका में ३ मंत्र हैं । ऋषि सबका दीर्घत०, छन्द-१ले
 का नि०, २ का सामन्यु०, ३ का नि० मा० वृ० । देवता तीनों
 ॥ यूप है । १ से गड़े के मध्य में यूपकी लड़ को प्रविष्ट करें ।

२ से उस गढ़े को मट्टी से भरै । ३ से भरेहुए गढ़े को चारों ओर दण्डे से कूटै । मंत्रार्थ—(१ या, ते; धामानि, गमध्यै, उश्मसि, यत्र भूरिशृङ्गाः, गावः, अयासः, अत्र, उरुगायस्य, विष्णोः, परमम्, पदम्, आह, तत्, भूरि, अवभारि) हे यूप ! जो तेरे स्थान परगमन करने को हम कामना करै, जहाँ सूर्यदेवता की अति प्रकाशवान् किरणें विस्तृत होती हैं, इस स्थान में महात्माओं से स्तुति किये हुए व्यापक परमात्मा के उत्तम स्थान को कहते हैं, वह बहुत प्रकार से प्रकाश करता है । (ब्रह्मवनि, क्षत्रवनि, रायस्पोषवनि, त्वा, पर्यु हाभि) हे यूप ! ब्राह्मणों से स्वीकारयोग्य, क्षत्रियों से चाहनेयोग्य धन पुष्टि के निमित्त स्वीकृत तुझपर चारों ओर से मट्टी ढालता हूँ (ब्रह्म, दंड, क्षत्रम्, दंड, आयुः, दंड, मजाम्, दंड) हे यूप ब्राह्मण जाति को दृढ़कर, क्षत्रिय जाति को दृढ़कर, आयु को दृढ़कर, सन्तान को दृढ़कर ॥ ३ ॥

विष्णोः कर्माणि पश्यन्त यतो ब्रतानि पस्पशे ।

इन्द्रस्य युज्यः सखा ॥ ४ ॥

इस का मेधा तिथिऋ०, नि० ऋ० गा० छन्द और विष्णु देवता है। अध्वर्यु यूप का मध्यभाग यजमान को छुवाकर इस मंत्रको पढ़वावै मंत्रार्थ— (विष्णोः, कर्माणि, पश्यतायतः, इन्द्रस्य, युज्यः, सखा, ब्रतानि, पस्पशे) हे ऋत्विजों परमात्मा के, सृष्टि संहार आदि कर्मों को देखो, क्योंकि—वह इन्द्रका अनुरूप मित्र है, उसने लौकिक वैदिक कर्मों को रचा है ॥ ४ ॥

तद्विष्णोः परमम्पदम् सदा पश्यन्ति सूरयः ।

दिष्टीत्र चक्षुरार्ततम् ॥ ५ ॥

इस का मेधा० ऋ०, नि० आ० गा०, छन्द और विष्णु देवता है । अध्वर्यु यजमान को चपाल दिखाताहुआ यह मंत्र पढ़वावै । मंत्रार्थ—(सूरयः, विष्णोः, तत्, पदम्, सदा, पश्यन्ति, दिवि, चक्षुः, इव, आगतम्) वेदान्त के वेत्ता योगी सर्वव्यापक परमात्मा के उस मोक्ष स्वरूप परम पदको सदा देखते

हैं, निरावरण आकाश में चक्षु की समान व्याप्त है ॥ ५ ॥

पृथिवीरसि परि त्वा दैवीविशो व्ययन्तां परिमं
यजमानं रायो मनुष्याणाम् । दिवःसूनुंरस्येपते
पृथिव्याँल्लोक आरुण्यस्ते पशुः ॥ ६ ॥

इस क० में ३ मंत्र हैं । स्वता दीर्घ० ऋ०, छन्द-१ का मा-
जा० त्रि०, २ का दै० त्रि०, ३ का साम्नु० है । देवता-१ । ३
का रूप, १ का स्वरु है । १ मंत्र से तीन लडवाली कुशा की रस्ती
बनाकर यूप की नाभि में लपेटे । २ से अग्निष्ट के उत्तरभाग में स्वरु
का अवगूहन करे ३ से वर्षिष्ट यूप के दक्षिण में बिना छिले
११ यूप स्थापन करे । मंत्रार्थ-(१ परिवीः, असि, दैवीः, विशः,
त्वा, पृथिव्ययन्ताम् । मनुष्याणाम् रायः, इमम्, यजमानम्, परि)
हे यूप तुम चारों ओर रस्ती से घेरिएग वा हम से घिरे हो, देवता
ओं की मरुत्पण आदि मजा अथवा पशु तुमको चारों ओर से
घेरें, मनुष्य सम्बन्धी धन इस यजमान को चारों ओर से घेरें
(२ दिवः, सूनुः, असि) हे स्वरु ! तुम, स्वर्ग के पुत्र हो । अ-
र्थात् शुलोक से वर्षा से वृक्ष, उा से यूप और यूप से स्वरु होता है, इस
कारण पुत्र कहा है । (पृथिव्याम्, पपः, ते, लोकः, आरुण्यः,
पशुः, ते) हे यूप पृथिवी पर यह तेरा आश्रयस्थान है, वनस-
म्बन्धी पशु तेरा ही है ॥ ६ ॥

अग्निषोमीय पशुप्रयोग

मीमांसादर्शन में बताई हुई परिसंख्याविधि के अनुसार, जो
तानियजति आखेट में अत्यन्त मत्त होकर तामसमवृत्ति में को
भुक्ती चलीजारही है, उसको निवृत्ति मार्ग में लाने के लिये
वेद में अग्निषोमीय पशुप्रयोग देवने में आता है । यह अग्नि-
षोमीय यज्ञ सोमयाग का अद्भूत है, इस में पशु का संस्का
क्रिया जाता है । तैत्तिरीय कृष्ण यजुर्वेद कायद ६ अथाठक १ अ-
नुवाक ९ में लिखा है—“आंसोमं वहन्त्यग्निना प्रतिष्ठते
तां सम्भवन्तो यजमानमभिसम्भवतः । यदग्निषोमीयं

पशुमालभते, आरामनिष्कृष्य एव सः ।” जिस समय ऋत्विक् यज्ञशालामें अग्निके पास सोमको लाते हैं उस समय यह क्रियामें दीक्षितहुआ यजमान अपने शरीरको यज्ञकोनिमित्त समर्पित मानता है, उससमयजो अग्निष्टोम देवताके निमित्त पशु दियाजाता है सो मानो यजमान अपने शरीरका मुख्य देता है, इसप्रकारके पशुप्रयोगके द्वारा, स्वाभाविक हिंसा करनेवालोंके कामाचारका संकोच किया है, अर्थात् राज्यरक्षाकोनिमित्त आखेटआदि करनेपर स्वाभाविक प्रवृत्ति के अनुसार पशुमें अत्यन्त प्रीतिवाला क्षत्रिय यदि स्वर्द्ध सुखे चाहै तो इन हिंसाप्रधान कर्मोंको सर्वथा त्यागदेय और यदि एकसाथ इन्द्रियोंको रोकनेमें असमर्थ होता उनके रोकनेकी शास्त्रमें यह युक्ति कही है कि-यज्ञमें ही ऐसा करे और वह भी केवल सोमादि में ही और वह भी क्षत्रिय ही, इससे यह नहीं समझलेना कि-वेद मांसमसणके लिये पशुबागकी आज्ञा देताहै, किन्तु इसका भी एकप्रकारसे हिंसाके निषेधमें ही तात्पर्य है, जैसे-यदि कोई बालक अत्यन्त खेलकूदमें लगा हो और खेलमें गुथीहुई उसके मनकी प्रवृत्ति यदि एकसाथ न रोकीजासके, तो कुछ नियम कर दियाजाता है कि-हेबालक ! यदि तूभूसे खेलविना रहाही नहीं जाता तो अपने पदेहुयको धुद्धिस्य करलेनेके अनन्तर खिलालिया कर और वह भी अच्छे लड़कों के साथ तथा थोड़े ही समय, इस प्रकार खेलनेका सङ्कोच करते २ विद्या और संगतिके प्रयासे वह स्वयं ही खेलको, अमूल्य समय और अभिष्य जीवनका विनाशक समझकर त्यागदेगा, इसीप्रकार यदि उपकारक शास्त्रग्रंथ अनेकोंप्रकारकी प्रवृत्तियोंमें आसक्त पुरुषों को उन हानिकारक प्रवृत्तियों से एक साथ निवृत्त करे तो कुछ भी परिणाम न निकले, इसकारण कुछ नियम लिखकर संकोच किया है । इसप्रकार जैसे बालकके खेलनेका नियम बाँधनेसे उसकी माताका तात्पर्य खेलनेमें नहीं होताहै, किन्तु खेलनेका स्वभाव कुटानेमें होता है । जैसे ही आखेटासक्त क्षत्रियोंके लिये

पशुयाग आदिके नियम, धीरे-२ हिंसामें अरुचि कराकर उस अनर्णकारी स्वभावसे सर्वथा बचाने के ही लिये हैं। इसी कारण पशुयाग आदिका वेदमें विधानसा दीखनेपर भी वास्तवमें वह निवृत्तिमार्गमें ही पहुंचानेका उपाय है, क्योंकि—यहां तक संकोच किया है कि—यज्ञ करनेवाला भी उसको संयकर ही छोड़ देय। और सच्चा सुखतो सर्वथा अहिंसा आदि नियमोंके पालनमें ही है, यज्ञके निमित्त कीहुई हिंसाका भी शास्त्रमें दुःखरूप फल ही कहा है। इसकारण पशुयाग आदि विषयके वाक्य विधि नहीं हैं, किन्तु अगणिकगति हैं, कि—जिससे नैष्ठिक ब्रह्मचर्य न होसके वह आतुकालमें स्वभार्यागमन करनेके लिये वेदविधिसे विवाह करलेय जिसको मांसविना न सरे वह हुतशेषको स्वीकार करे, और जिसको मद्यविना न सरे वह यज्ञ करके ऋत्विजोंके निमित्त महौषधियों के रसका सेवन करे, वास्तवमें तो जहां तक होसके तहां तक मधुरता के साथ इनके त्यागमें ही वेदका तात्पर्य है, वेद यह नहीं कहता कि—सबको ऐसा करना ही चाहिये, इसकारण जो हिंसादियुक्त कर्मोंसे स्वयं निवृत्त हैं, वह तो यज्ञादि करनेवालोंसे उच्चाकोटिके जीव हैं, उनको ऐसे यज्ञ करनेकी कोई आवश्यकता नहीं है, क्योंकि—इस कर्मकी वेद भी प्रशंसा नहीं करता, किन्तु २० वीं काण्डका में कहा है यज्ञमान कहै कि—मैंने जो पशुके साथ बुरा व्यवहार किया है वह मेरा पाप दूर हो तथा मेरे घर पशु आदि बहुत बढ़ें इससे सिद्ध है कि—इसप्रकारके उपदेशसे यज्ञकर्त्ता मांसप्रेमी भी सचेत होकर अवश्य ही हिंसाप्रधान कर्मोंको त्यागदेगा, क्योंकि—उस मधुत्तिमें परममग्न यज्ञमानको निवृत्तिमार्गमेंको लेजाने के लिये यह यागादिकर्म सौपानरूप हैं, इससे आगे उपासना और ज्ञानकी भूमिकामें को बढ़नेपर तो इसका सर्वथा ही निषेध है, देखो राजा जो अफीम भोग आदि मादक वस्तुओंपर कर लगाता है, और उनके बेचनेके नियम बनाता है, तो इसका तात्पर्य मादकवस्तुओंके म्चारके लिये नहीं होता किन्तु रोकनेके लिये होता है यदि

ऐसा न होतो उनके प्रचारका कुछ ठिकाना न रहै, यह ही आभि-
 प्राय यागादिके विषयमें है, बहुत सूक्ष्म रीतिके साथ विचार करने
 पर विद्वानोंने यह ही तत्त्व निकाला है। धर्म अधर्मका ज्ञान हमको
 वेदसे ही होता है, इसकारण वेदमें जो कर्तव्य लिखा है वह धर्म है
 जिसका निषेध किया है वह अधर्म है, उसमें अल्पज्ञ मनुष्यको
 ननु नच करनेका अधिकार नहीं है।

वेदमें जो कर्तव्य है वह, सांसारिक अल्पज्ञ पुरुषों की दृष्टिमें
 अशुद्ध प्रतीत होता होता भी वह शुद्ध है, उससे अन्य संस्कार-
 शून्य होनेके कारण अशुद्ध है जैसे उबरकी औषध रोगीकी दृष्टिमें
 घृणास्पद होनेपर भी शाल की दृष्टिसे वह उबर को दूर करनेवाली
 है, परन्तु वह ही औषध संग्रहणके लिये अनुपयोगी है, इसीप्रकार
 वेद जिसकर्मको कल्याणकारक बताता है, वह वेदविधिसे प्रसिंकूल
 कियाजाय तो शुभदायक न होकर उलटा हानिकारक होजायगा।

अथवा इस पशुयागके विषयमें एक प्रकार का तत्त्व और भी
 है, वह यह कि इस संसारक्षेत्रमें तिसमें भी भारतवर्षमें मनुष्य
 शरीरको पाकर तिसपर भी मोक्षसाधन मार्गके द्वारपर्यन्त पहुँच
 हुए द्विजशरीरको पाकर अपने उद्धारका उपाय करतेहुए, अतिदूर
 अन्धकारमें पड़कर कष्ट पानेवाले पशु आदिका भी उद्धार करके
 उनको भी निरतिशय सुखका भागी बनाना चाहिये, अन्यथा पशु-
 ओंसे स्वयं तो अपनी उस योनिमेंके दुःखसे उद्धारका उपाय बन
 नहीं सकता, अतः महात्माओंका कर्तव्य है कि वह कृपाकर उनके
 उद्धारका उपाय करें। तुरीयावस्थांमें पहुँचने पर ही माणिको
 निरतिशय सुख वा. मुक्तिकी प्राप्ति होती है, जो तुरीया मनुष्योंके
 परमसाधन करनेपर प्रकट होती है वह पशु शरीरोंमें नादसे ही प्रकट
 होनेलागती है, इसीकारण सर्प मृग आदि वनिके नादको सुनतेही
 अपने शारीरिक भानको भूलजाते हैं, उससमय सांसारिक सुख
 दुःखका भान दूर होकर एक अनिर्वचनीय सुखका प्रवाह वहने
 लगता है, जिससमय यज्ञमें सामवेदका नाद होनेपर पशु तुरीया-

वस्थामें आते थे उसीसमय ब्रह्मा ऋत्विक् आदि पथोचित मन्त्र प्रयोगसे उसके परलोकगमन का विधान करते थे, यह मानो पथुके संसाररोगकी चिकित्सा है। चिकित्साके निमित्त शरीरका खण्डन होनेमें चिकित्सकको कुछ दोषन होकर उसको दुःखसे छुटानेके कारण कुछ पुण्यही होता है और रोगीभी रोगमुक्त होनेपर अनेकों आशीर्वाद देता है, इसी प्रकार यज्ञीय पशु, पशुशरीरसे छूटनेके अनन्तर मन्त्र के ममाघसे दिव्यशरीरको पाकर स्वर्गादि सुखप्रधान लोकोंमें गमन करते थे, परन्तु तुरीयाको मकट करनेकी योग्यता और तपका ममान रहनेसे कलियुगमें पशुयागोंके करनेका स्मृतियोंमें निषेध कर दिया है तथा उपासना और ज्ञानकी भूमिकामें पहुँचनेपर एवं ब्राह्मण वैश्योंके निमित्त तो इन पशुयागादिका विधान है ही नहीं इसकारण आगेके पशुयागविषयक मंत्रोंका पशुयागविषयक विनियोगोंके अनुसार अर्थ लिखकर हम मिथ्याचारियोंसे धार्मिकों के विचारको मथ्याचारियोंकी उल्लङ्घनमें नहीं डालना चाहते। किन्तु, वेदकी आधिभौतिक, आधिदैविक और आध्यात्मिक इन त्रिभिन्न प्रकारकी व्याख्याओंमें से आध्यात्मिक व्याख्या लिखना सङ्गत समझते हैं। और मखत्रवश पशुयाग के विषयपर जो यह इतना ध्यानदोजन किया इसका कारण यह है कि—संस्कृत तथा भाषा आदिमें जो अन्य व्याख्याएं पशुयागविषयक विनियोगोंके अनुसार लिखी जा चुकी हैं, उनको पढ़नेपर वास्तविक तत्त्वके न जानने से धार्मिक नामधारी मखत्र वेदशत्रुओंके बहकानेसे धार्मिकों के विचारमें उत्पन्न हुए सन्देहाभास दूर हो जायें।

यजुर्वेद अ० २३ । ११ में लिखा है, कि—'इयं वेदिः परो अन्तः पृथिव्या अयं यज्ञो भुवनस्य नाभिः।' अर्थात् वेदी ही पृथ्वीका अन्त है जहाँ सर्वप्रथम यज्ञ क्रिया हो रही है वह यज्ञ भुवनकी नाभि है, जिसमें सब क्रियाएँ मूलरूपमें होती हैं। ऐसे प्राकृतिक यज्ञमें दीक्षित हुए पुरुषको उचित है कि—योगाग्नि ज्ञानाग्निमें प्राणरूप पशुका बलिदेव क्यों कि—'अग्नि -

पोमात्मकं जगत् ।' अर्थात् यह जगत् अग्निपोमात्मक है और
ऐसा जगत् जिसका देवता है वह पशु अभिमान एवं प्राण ही है, उसी
का बलिदान करनेपर आध्यात्मिक उन्नति हो सकती है, अतएव आगे
के पशुयागविषयक मन्त्रोंका आध्यात्मिक अर्थ ही लिखते हैं—

उपावीरस्युपदेवान्दैवीर्विशः प्राशुंरुशिजो व-
न्हितमान् । देव त्वष्टृर्वसुरंम हृव्या ते
स्वदन्ताम् ॥ ७ ॥

(उपावीः, असि) हे सुपुत्राके अधिष्ठातृदेव ! तुम प्राणपशुके
निकटमें रहकर उसके रक्षक सखा हो (दैवीर्विशः, उशिजः, वन्हि-
तमान् देवान्, उप, प्राशुः) योगसाधना करनेवाले के प्राण, योग-
युक्तों को चाहनेवाले, श्रेष्ठ अग्निकी समान प्रकाशस्वरूप नर
नारायण को प्राप्त हों (देव, त्वष्टः, वसु, रम) हे दिव्यस्वरूप
भगवन् ! योगीके आत्मप्रतिविम्ब वा प्राणरूप धनमें रमण की-
जिये (ते, हृव्या, स्वदन्ताम्) हे भूतात्मन् ! तुम्हारी प्राणरूप
हाथे तुमको रुचै ॥ ७ ॥

रेवती रमध्वम्बृहस्पते धा रया वसूनि ।
ऋतस्य त्वा देवहविः पार्शेन प्रतिमुचामि
धर्षा मानुषः ॥ ८ ॥

(रेवतीः, रमध्वम्) क्षीर आदि धनवाली गौश्रोंकी समान
शम दम आदि धन से युक्त इन्द्रियरूप पशु आत्मस्वरूप यज्ञ-
मानके शरीरमें क्रीड़ा करें (बृहस्पते, वसूनि, रया, धाः) हे
परमात्मन् ! प्राण और इन्द्रियोंको योगलक्ष्मी के द्वारा पुष्ट करो
(देवहविः, ऋतस्य, पार्शेन, त्वा, प्रतिमुचामि) हे भूतात्मन् !
योगयज्ञके पाशसे तुम्हको बांधता हूं और कर्मबन्धनके पाशसे
तुम्हको योगयज्ञकेद्वारा मुक्त करता हूं (मानुषः, धर्षा) विष्णुरूप
प्राणाभिमानि देवता तुम्हको शमन करनेमें समर्थ है ॥ ८ ॥

देवस्यं त्वा सवितुः प्रसवेश्विर्नोर्वाहृभ्याम्पूष्णो
हस्ताभ्याम् । अग्नीपोमाभ्याञ्जुष्टान्निपुनजिमाः

अद्भ्यस्त्वोपधीभ्योनु त्वा माता मन्यतामनु
 पितानु भ्राना सगृभ्योनु सखाः सयूथ्यः ।
 अग्नीपोमाभ्यां त्वा जुष्टम्प्रोक्षामि ॥ ९ ॥

प्रतिविम्बके हवनसे पहिले भूतात्माके हवनको कहाँहैं, कि-
 हे भूतात्मन् (सवितुः, देवस्य, प्रसवे, अग्नीपोमाभ्याम्, जुष्टम्,
 त्वा, अश्विनोः, बाहुभ्याम्, पूष्णः, हस्ताभ्याम्, नियुनजिम)
 आत्मविचारकी श्रौको प्रेरणा करनेवाले गुरु देवकी प्रेरणा करने
 पर मैं प्रकृति पुरुषके लिये प्रिय, ऐसे तुझको मनःहृदयकी ग्रहण
 करनेकी शक्तिरूप बाहुओंसे और मानससूर्यकी ग्रहण करनेकी
 शक्तिरूप हाथोंसे, निश्चल करताहूँ (अग्नीपोमाभ्याम्, जुष्टम्,
 त्वा, अद्भ्यः, ओपधीभ्यः, प्रोक्षामि) हे भूतात्मन् ! प्रकृति
 पुरुषके लिये प्रिय, ऐसे तुझको ज्योति रसरूपजल और जन्म-
 रूप रोग का नाश करनेवाला ज्ञानस्वरूप औषधियों से प्रोक्षण
 करताहूँ (त्वा, माता, अनुमन्यताम्) ऐसे प्रोक्षित तुझको प्रकृति
 आज्ञा देय (पिता, अनु) पुरुष आज्ञा देय (भ्राता, अनु) सहोदर
 भ्रातासमान जीवात्मा अनुमति देय (सयूथ्यः, सखा, अनु)
 समान युथवाला ईशरूप मित्र आज्ञा देय ॥ ९ ॥

अपाम्पेरुःस्वापो देवीः स्वदन्तु स्वात्तांश्चित्स-
 देवहृविः । संन्ते प्राणो वातेन गच्छतां सम्-
 ज्ञानि यजत्रैः सं यज्ञपतिराशिषा ॥ १० ॥

हे भूतात्मन् ! तू (अपाम्, पेरुः, असि) ब्रह्मज्योतिके रसरूप
 अमृतका पान करनेवाला है (देवीः, आपः, स्वदन्तु) ब्रह्मज्योति
 के रसरूप जल तुझको स्वीकार कर (देवहृविः, स्वाम्, सत्,
 चित्) क्योंकि—ईशका हृवि, भलीप्रकार भक्षित होताहुआ ब्रह्मरूप
 होजाताहै (ति, प्राणः, वातेन, सद्गच्छताम्) हे भूतात्मन् ! तेरा
 प्राण समष्टिप्राणसे संयुक्त हो (अज्ञानि, यजत्रैः, सम्) तेरे अद्भ्य
 योग्यज्ञकी साधनामें जाओ (यज्ञपतिः, आशिषा, सम्) आत्मा-
 रूप यज्ञमान योग्यज्ञके फलरूप आशीर्वादसे युक्त हो ॥ १० ॥

घृतेनाक्तौ पशून्प्रायेथां रेवति यजमाने प्रि-
यन्वा आविश उरोग्न्तरिक्षात्सजृद्वेन वाते-
नास्य हविपस्तमना यज समस्य तन्वा भव ।
वर्षो वर्षीयसि यज्ञे यज्ञपतिन्धाः स्वाहा देवेभ्यो
देवेभ्यः स्वाहा ॥ ११ ॥

(घृतेन, अक्तौ, पशून्, प्रायेथाम्) हे बुद्धि मन, तुम दोनों
अग्नि की समीपतासे घृत की समान विषयों की समीपतासे पिछने
वाली इन्द्रियों की सकल शक्तियोंसे लित हो, भूतात्माके अङ्गप्राण
आदिकी रक्षा करो (रेवति, यजमाने, प्रियम्, धाः) हे महावाणी !
आत्मरूप यजमानमें इसके इच्छित मोक्षको धारण करो (देवेन
वातेन, सजूः, उरोः, अन्तरिक्षात्, आविश) मकाशवान् माण्डके
साथ प्रीतिवाली होकर गुरुके हृदयाकाशसे ज्ञानदानके द्वारा यज-
मानमें प्रवेशकर (अस्य, हविपस्तमना, यज) इस भूतात्माके
हविरूप शरीरका हवन कर (अस्य, तन्वा, सम्भव) इस भूतात्मा
के शरीरसे 'अहं ब्रह्मास्मि' इस आकारसे प्रकट हो (वर्षो, वर्षी-
यसि, यज्ञे, यज्ञपतिम्, धाः) हे विस्तारवाली सुपुम्ना ! अति वि-
स्तारवाले विष्णुपरमात्मामें योगयज्ञके कर्त्ताको स्थापन कर (देवे-
भ्यः, स्वाहा) कर्मेन्द्रियोंके लयस्थान देवताओंके अर्थ कर्मेन्द्रियों
का हवन हो (देवेभ्यः, स्वाहा) ज्ञानेन्द्रियोंके लयस्थान देवताओं
के अर्थ ज्ञानेन्द्रियोंका होम हो ॥ ११ ॥

माहिर्भूर्मा पृदाकुर्मस्त आतानानुर्वा प्रेहि ।
घृतस्य कुल्या उषं क्रतस्य पथ्या अनु ॥ १२ ॥

(अहिः, पृदाकुः, मा, भूः) हे सुपुम्ना ! तू सर्पकी समान
कुटिल चाल चलनेवाली और वीहूके समान मर्मस्थान को पीड़ा
देनेवाली मत हो (आतान, ते, नमः) हे योगयज्ञ ! तुम्हारे लिये
भूतात्मारूप अन्न है (अनुर्वा, प्रेहि) हे योगयज्ञके साधक !

तुम काम आदि शत्रुओं से रहित होते हुए सुपुम्नाके द्वारा गमन करो (ऋतस्य, पथ्याः, घृतस्य कुल्याः, अनु उपप्रेहि) प्रहमार्थमें हितकारी इन्द्रियोंकी सकल शक्तियोंके प्रवाहरूप नदियोंको देख कर त्रिदेवरूपधारी महाविष्णुको प्राप्त करो ॥ १२ ॥

देवीरापः शुद्धा बोहवम् सुपरिविष्टा देवेषु सु-
परिविष्टा व्यम्परिवेष्टारो ष्टयास्म ॥ १३ ॥

(देवीः, आपः, शुद्धाः, सुपरिविष्टाः, देवेषु, बोहवम्) हे इन्द्रियसम्बन्धी गोलरूप अन्तरिक्षो) सांसारिक सुख और शयनका दाता जो सुख है उसके धारण करनेवाले, देहमें प्रविष्ट हुए तुम भूतात्माको देवताओंमें पहुंचाओ अर्थात् उसकी ज्ञान-दशाकी प्राप्तिके साधन बनो (सुपरिविष्टाः, व्यम्, परिवेष्टारः, ष्टयास्म) और तुम्हारे प्रसादसे सबप्रकार योगयज्ञमें प्रविष्ट होकर वृक्षरूप हम वाक् आदि ऋत्विज् देवताओंको ही कर्मका फल अर्पण करनेवाले हों ॥ १३ ॥

वाचन्ते शुन्धामि प्राणन्ते शुन्धामि चक्षुस्ते शु-
न्धामि श्रोत्रन्ते शुन्धामि । नाभिन्ते शुन्धामि
मेहन्ते शुन्धामि पायुन्ते शुन्धामि चारित्रांस्ते
शुन्धामि ॥ १४ ॥

शुद्धि कहती है कि--हे भूतात्मन् (ते, वाचम्, शुन्धामि) मैं तेरी वाक् इन्द्रियको शुद्ध करती हूँ (ते, प्राणम्, शुन्धामि) तेरे प्राण को शुद्ध करती हूँ (ते, चक्षुः, शुन्धामि) तेरी चक्षु इन्द्रियको शुद्ध करती हूँ (ते, श्रोत्रम्, शुन्धामि) तेरी श्रोत्रेन्द्रियको शुद्ध करती हूँ (ते, नाभिम्, शुन्धामि) तेरी नाभिको शुद्ध करती हूँ (ते, मेहम्, शुन्धामि) तेरी लिङ्गेन्द्रियको शुद्ध करती हूँ (ते, पायुम्, शुन्धामि) तेरी गुदेन्द्रियको शुद्ध करती हूँ (ते चारित्रां-शुन्धामि) तेरे चरणोंको शुद्ध करती हूँ ॥ १४ ॥

मनस्त आप्यायताम् वाक् आप्यायताम्माणास्त
 आप्यायताम् चक्षुस्त आप्यायताम् श्रोत्रन्त आप्या-
 यताम् । यत्तं क्रूरं यदास्थितन्तत्त आप्या-
 यतामिष्टयाप्यन्तत्त शुद्धयतु समहोभ्यः ।
 ओपधे प्रायस्व स्वधिते मेमंथ हिंसीः ॥११॥

हे भूतात्मन् (ते, मनः, आप्यायताम्) तेरा मन साहस्य मोक्ष
 को पानेके लिये समष्टिमनके भावको पानारूप वृद्धिको पावै (ते,
 वाक्, आप्यायताम्) तेरी वाक् इन्द्रिय समष्टिभावको पावै (ते,
 प्राणः, आप्यायताम्) तेरा प्राण समष्टिभावको पावै (ते, चक्षुः,
 आप्यायताम्) तेरा चक्षु समष्टिभावको पावै (ते, श्रोत्रम्, आप्या-
 यताम्) तेरी श्रोत्रेन्द्रिय समष्टिभावको पावै (ते, यत्, क्रूरम्,
 आस्थितम्, ते, तत्, आप्यायताम्) तेरा जो कष्टदायक संसार
 बन्धन है वह तेरा शान्त हो (निष्टयाप्यताम्) द्वैतभावरहित होकर
 एकीभावरूप प्रह्लादभावको पावै (ते, तव, शुद्धयतु) तेरा वह, सब
 शुद्ध हो (अहोभ्यः, शम्) देवयानके सम्बन्धी दिनोंके निमित्त
 कल्याण हो (ओपधे, प्रायस्व) हे इन्द्रियोंकी शक्तियों ! रक्षा करो
 सन्मार्गमेंको न जाओ (स्वधिते, एनम्, मा हिंसीः) हे मन इस
 भूतात्माको संसारबन्धनसे नष्ट न करो ॥ ११ ॥

रक्षसाम्भागोसि निरस्तथ रक्ष इदम् इथ रक्षो-
 भित्तिष्ठामीदम् इथ रक्षोवधाथ इदम् इथ रक्षो-
 धमन्तमो नयामि । घृतेन आवापृथिवी प्रोर्णु-
 वाथां चापो वेस्तोकानामग्निराज्यस्य वेतु
 स्याद्वा स्वाहाकृते ऊर्ध्वनभसम्माकृतज्ञच्छतम् ॥१२॥

हे क्रोध आदिके समूह तुम (रक्षसाम्, भागः, असि) राजस
 समान काम आदिके भाग हो (रक्षः, निरस्तम्) योगयज्ञमें विघ्न
 करनेवाले अज्ञानका त्याग किया गया (अहम्, इदम्, रक्षः अभि-
 तिष्ठामि) मैं इस राक्षसरूप अज्ञानको पाँव से दबाकर स्थिर
 होताहूँ (अहम्, इदम्, रक्षः, अवधाथे) मैं इस अज्ञानको नष्ट

करताहूँ: (अहम्, इदम्, रसाः, अधमम्, तमः, नयामि) मैं इस
अज्ञानको असितिकृष्ट बसके उत्पत्तिस्थान तमोगुणमें पहुँचाताहूँ
(यावापृथिवी घृतेन ओर्गुणोयाम्) मेरे हृदयमें तुम दोनो
इन्द्रियोंकी शक्तियोंके समूहसे अपने आत्माको आच्छादनकरो
(वायो, स्तीकानाम्, वै:) हे प्राणावायो ! ब्रह्मरन्ध्रसे बपकने-
वाले अमृतरसकी बूँदोंका ज्ञान पाकर उसको पियो (अग्निः, आज्य-
स्य, वेतु स्वाहा) आत्माग्नि इन्द्रियोंकी शक्तियों के समूहको पिये
और मलीककार स्वीकार करे (स्वाहाकृते, जर्ध्वनमसम्, मास्तम्,
गच्छतम्) ब्रह्मज्ञानका उपदेश होनेपर तुम दोनो स्पष्ट और स-
माष्टिमतिविश्व ब्रह्मरन्ध्राकाशमें ऊपर वर्षमान समष्टिवायुको पाओ ।

इदमापः प्रबहुताद्युच्च मलञ्च यत् । यच्चा-

भिदुद्रोहानृतं पचं शोषं अभीरुणम् । आपो मा

तस्मादेनसः । पचमानश्च मुञ्चतु ॥ १७ ॥

(आपः, इदम्, मरुत) हे उपोत्तिरसामृतरूप जलों इस
कामनाओंके दाता अज्ञानको दूर करो (च, यत्, अवयम्, च,
मलम्, च, यत्, अनृतम्, अभिदुद्रोह) और जो निन्दित विषय
भोगहै और जो ज्ञानका आवरण मल है तथा जो अहंकार ममता
युक्त मिथ्यामोह है उसकी मारदियाँ (च, यत्, अभीरुणम्, शोषं,
आपः, च, पचमानः, तस्मात्, एनसः, मा, मुञ्चतु) और जो अद्वैत
आत्माको ब्रह्मसे पृथक् जानकर बसकी अवस्थानाकी ब्रह्मामृतरूप
जल और समष्टिवायु उस वापसे मुझें छुड़ाओ ॥ १७ ॥

सन्ते मनो मनसा सम्भाणः प्राणेन गच्छताम् ।

रेहंस्पग्निर्द्वा श्रीणात्थापस्त्वा समीरणन्वा-
सस्यत्वा ध्राज्यैः पूष्णो रथैश्वा ऊधमणो व्यधि-
पुत्र्युत्तन्द्रेषः ॥ १८ ॥

हे भूतात्माके हृदय (ते, मनः, मनसा, संगच्छताम्) मेरा मन
समाष्टि मनसे संयुक्त हो (प्राणः, प्राणेन, सम्) प्राण समाष्टिप्राण
से संयोगको पावे (रेहं, असि) हे मानसमूर्त्य ! तुम परिच्छिन्न-

होनेसे मष्ट से हो (अग्निः, त्वा, श्रीणातु) ब्रह्माग्नि तुभको स्वीकार करके बढ़ावै (आपः, त्वा, समीरणन्) उद्योतिरसामृत तुभको भलेप्रकार बढ़ावै (वातस्य, धाज्यै, पूष्यः, रंही, त्वा) प्राणको दहराकाशमें पहुँचानेके लिये और मानससूर्यकी भृकुटी में गतिके लिये तुभको स्वीकार करता हूँ (ऊष्मणः, व्यधिपत्) ब्रह्माग्निकी शुधारूप व्यथा प्रकट हो (द्रेपः, प्रयुतम्) कामनारूप राक्षस दूर हुआ ॥ १८ ॥

घृतं घृतपावानः पिबत वसां वसापावानः
पिपतातन्तरिक्षस्य हविरसि स्वाहा । दिशः
प्रदिशं आदिशं विदिशं उदिशं दिग्भ्यः
स्वाहा ॥ १९ ॥

(घृतपावानः, घृतम्, पिबत) हे इन्द्रियोंकी शक्तियोंके समूहको पीनेवाले समष्टिरूप मन-बुद्धि-प्राण ! इन्द्रियोंकी सकल शक्तियोंके समूहको पियो (वसापावानः, वसाम्, पिबत) हे मानससूर्यका पान करनेवाले ब्रह्मपरा नारायण नामक देवताओ ! मानससूर्यको पियो (अन्तरिक्षस्य, हविः, असि, स्वाहा) हे मानससूर्य ! तुम हार्दान्तरिक्षके हवि हो तुम्हारा श्रेष्ठ होम होय (दिशः, विदिशः, प्रदिशः, आदिशः, उदिशः, दिग्भ्यः, स्वाहा) विशेषरूपसे शास्त्रका उपदेष्टा ब्रह्मपराका उपदेष्टा तीन प्रकारका है—सावित्रीका उपदेष्टा, निर्गुण और सगुणका उपदेष्टा एवं उत्तम योगमार्गका उपदेष्टा, इन ब्रह्मा विष्णु महेशरूपे गुरुओंसे उपदेश किया गया है ॥ १९ ॥

ऐन्द्रः प्राणो अङ्गे अङ्गे निदीध्यद्रेन्द्र उदानो
अङ्गे अङ्गे निधीतः । देवत्वष्टृर्भूरिते सधं समेतु
सलक्ष्मा यद्विपु रूपं भवाति । देवत्रायन्तमवसे
सखायोनु त्वा माता पितरो मदन्तु ॥ २० ॥

(ऐन्द्रः, प्राणः, अङ्गे, अङ्गे निदीध्यत्) भूतात्माका प्राण ईश्वरके अङ्ग २ में स्थित हुआ (ऐन्द्रः, उदानः, अंगे, अंगे, निधीतः) भूतात्माका उदान ईश्वरके अंगोंमें धारित हुआ (देवः, त्वष्टः, ते, समु, भूरि) हे ज्योतिःस्वरूप ईश्वर ! तुम्हारा विष्णु

रूप परिपूर्ण है (अ, यत्, वः, इपुरुषम्, भवाति, सलक्ष्मा, सम, पत्) हे सर्वव्यापिन् ! क्योंकि-निवृत्तात्मा वायुरूप होता है, अतः अंगुष्ठस्वरूप आत्मा विष्णुको प्राप्त हो (देव, अवसे, अ, आयन्तम्, स्वा, सत्वायः, मात्रा, पितरः, अनुमदन्तु) हे सायुज्य के योग्य आत्मन् ! संसारसे रक्षा पानेके निमित्त विष्णुरूप अभिनमै जाने वाले तुम्हको प्राण आदि प्रकृति और देवता आश्वादे ॥ २० ॥

समुद्रंश्च स्वाहान्तरिक्षंश्च स्वाहा देवस्य स-
वितारंश्च स्वाहा मित्रावरुणौ गच्छ स्वाहा-
होराग्ने गच्छ स्वाहा छन्दांसि गच्छ स्वाहा
द्यावापृथिवी गच्छ स्वाहा यज्ञंश्च स्वाहा
सोमंश्च स्वाहा दिव्यभभो गच्छ स्वाहाग्नि
धैश्वानरंश्च स्वाहा मनो मे हावि यच्छ दि-
बन्ते धूमो गच्छतु स्तुज्योतिः पृथिवी भस्मना
पूण स्वाहा ॥ २१ ॥

देहके अवयवोंमें हर एक अवयवको उपदेश करता है कि- (समुद्रम् गच्छ, स्वाहा) हे भूतात्मामें के जन्त ! तुम अपनी समग्ररूप समुद्रमें लीन हो जाओ, अष्ट होम हो (अन्तरिक्षम्, गच्छ, स्वाहा) हे भूतात्मामें के वायु ! तुम अन्तरिक्षमें जाओ, अष्ट होम हो (देवम्, सवितारम्, गच्छ, स्वाहा) हे आत्मप्रतिबिम्ब ! तुम सूर्य देवताको पहुँचो, अष्ट होम हो (मित्रावरुणौ, गच्छ, स्वाहा) हे जीवात्मा तुम नर मारायणको पहुँचो, अष्ट हवन हो (अहो-राग्ने, गच्छ, स्वाहा) हे जन्म मरणकाल ! अहोरात्रिको पहुँचो अष्ट हवन हो (छन्दांसि, गच्छ, स्वाहा) हे शरीरके अवयवों ! तुम समष्टि शरीरके अङ्गोंको पहुँचो सुन्दर हवन हो (द्यावापृथिवी गच्छ, स्वाहा) हे मन, हृदय आदिके कमलों ! तुम पृथिवी और स्वर्गके अधिष्ठातृदेवोंको पहुँचो, अष्ट होम हो (यज्ञम्, गच्छ, स्वाहा) हे यज्ञक्रियाओ ! तुम यज्ञ पुरुष विष्णु को पहुँचो, अष्ट होम हो (सोमम्, गच्छ, स्वाहा) हे अन्न पान

आदि भोगके समूह तुम सोमदेवताको पढ़ेंचो, उत्तम होम हो (दिव्यम्, नमः, गच्छ, स्वाहा) हे भूतात्मामें के आकाश ! तुम दिव्य आकाशमें जा मिलो, श्रेष्ठ होम हो (वैश्वानरम्, अग्निम्, गच्छ, स्वाहा) हे जठराग्ने ! तुम वैश्वानर अग्नि देवताको प्राप्त होओ श्रेष्ठ होम हो (मे, हार्दि, मनः, यच्छ) हे योगशक्ते ! मेरे हृदय-सम्बन्धी मनको रोको (ते, धूमः, दिव्यम्, गच्छतु) हे भूतात्मन् ! तेरा धूम स्वर्ग को जाय (ज्योतिः, स्वः) आत्मज्योति सूर्यको प्राप्त हो (भस्मना, पृथिवीम्, आपृण, स्वाहा) भस्मके द्वारा पृथिवीको पूर्ण कर, इसप्रकारका प्राकृतिक होम हो ॥ २१ ॥

मापोमौषधीर्हिध्र्सीर्धाम्नो धाम्नो राज्ञस्ततो
वरुण मो मुख । घृत्वाह्वरुघ्न्या इति वरुणेति शपा
महे ततो वरुण नो मुञ्च । सुमित्रिया न आप
ओषधयः सन्तु दुर्मित्रियास्तस्मै सन्तु योस्मा
न्द्रेष्टि यच्च वयन्द्रिष्मः ॥ २२ ॥

वाणीसे भूतात्मा का हवन करके भव प्रारब्ध समाप्तिपर्यन्त फिर मार्यना करताहै कि—हे मन ! तू (आपः, मा, हिंसी,) इन्द्राग्नियों के अन्तरिक्षों को मत नष्ट करो (औषधीः मा) इन्द्रियोंकी शक्तियोंको मत नष्ट करो (राजन् वरुण, ततः, धाम्नः, धाम्नः, नः, मुञ्च) हे राजन् मन अपने पाशरूप प्रत्येक इन्द्रिय से हमको छोड़ो (अघ्न्याः, इति, यत्, आहुः, वरुण, इति, शपामहे, वरुणं, ततः, नः, मुञ्च) ईश्वरके पूजक देहके अवयव अवयव हैं, ऐसा जो शास्त्र कहतेहैं, हे मन हमतो इस योगकी विधिसे इनका वध करते हैं, हे मन उस पापसे हमको मुक्त कर (आपः, औषधयः, नः, सुमित्रियाः, सन्तु) इन्द्रियों के अन्तरिक्ष और इन्द्रिये हमारे श्रेष्ठ मित्र हों (यः, अस्मान्, द्रेष्टि, च, वयम्, यम्, द्विष्मः, तस्मै, दुर्मित्रियाः, सन्तु) जो काम हमारे प्रतिकूल होता है और हम योगी जिस कामको शत्रुदृष्टि से देखते हैं उस कामके लिये इन्द्रियान्तरिक्ष और इन्द्रिय शत्रुरूप

हो अर्थात् हमारी इन्द्रियों में किसीप्रकारकी विषयवासना उत्पन्न न हो ॥ २२ ॥

इति अग्निषोमीय ब्रह्मयोगकी भाष्यारम्भिक व्याख्या समाप्त

प्रथम प्रयोग अ० ५ की क० ७ तक पूर्ण किया, अवशेष कृत्स्न लिखते हैं कि-सूर्यास्तसे पहिले नदी आदिमें से बहतेहुए बस्तीवरी नाम जलको ग्रहण करे तिसका मंत्र—

हविष्मन्तीग्निमा आपोः हविष्मान्, आविवासाति ।

हविष्मान्देवो असुरो हविष्मान् अस्तु सूर्य ॥२३॥

(हविष्मान्, इमाः, हविष्मतीः, आपः, आविवासाति) हविसे युक्त यजमान इन हविसे युक्त बस्तीवरी नाम जलोंकी परिचया करता है अर्थात् जलके समूहमें से पुष्क करके छेता है (देवः अध्वरः हविष्मान्, अस्तु) प्रकाशवान् यज्ञ हविसे युक्त हो (सूर्यः, हविष्मान्) सूर्य भी हविष्मान् हो । क्योंकि-सूर्य जलको अन्य सब देवताओंके लिये ग्रहण करता है, सब देवता इस विराडात्मा सूर्य की किरणें हैं ॥ २३ ॥

अग्नेर्वोषन्नगृहस्य सदसि सादयामीन्द्रान्ग्यो

भागधेयीं स्य मित्रावरुणयोर्भागधेयीं स्य वि-

श्वेषान्देवानां भागधेयीं स्य असूर्या उपसूर्ये

पाभिर्षु सूर्यः सह । तानो हिन्वन्त्वध्वरम् ॥२४॥

इस कण्ठिकामें ५ मंत्र हैं । सबका मेधातिथि अ० १ खं० १ आसुरीगा० २ प्राजापत्या, गा० ३ याजुषी नि० ४ या० नि० ५ आर्युदिण्क और देवता, सबका आप है । मंत्रार्थः—(वः अपन्न-गृहस्य अग्नेः सदसि सादयामि) हे बस्तीवरी जलों ! तुमको अधिनश्चर परबाले अग्निके निकट स्थापन करता हूँ (इन्द्रान्ग्योः भागधेयी, स्य) तुम इन्द्र और अग्निदेवता के भाग हो (विश्वेषां देवानां भागधेयी, स्य) तुम सम्पूर्ण देवताओंके भागरूप हो (असूर्याः, उपसूर्ये, वा, सूर्यः, पाभिः, सह, ताः, नः अध्वरम् हिन्वन्तु) जो सम्पूर्ण जल बहुतकालतक रहनेके कारण सूर्यकी किरणोंसे

अदृश्य सूर्यके समीप स्थित हैं अथवा जिनके साथ सूर्य गमन करते हैं वे जल हमारे यज्ञको परितृप्त करो ॥ २४ ॥

हृदेस्त्वा मर्मसे त्वा दिधेस्त्वा सूर्याप त्वा ऊर्ध्व

मिममध्वरन्ट्रिवि देवेषु होत्रा यच्छ ॥ २५ ॥

इसका मेधाति० अ० धिराडनुष्टुब्ध, सोमो दे० । मंत्रार्थः-- (मनसे, त्वा, हृदे, त्वा, दिधे, त्वा, सूर्याप, त्वा, होत्रा, इमम्, अध्वरम्, ऊर्ध्वम्, दिवि, देवेषु, यच्छ) हे सोम ! हृदयवान मनुष्योंके निमिरा, संकल्प विकम्पात्मक मनके निमिरा, तुमको सुलोककी प्राप्तिके निमिरा सूर्यदेवताके निमिरा उपाहरण करता हूँ इस यज्ञ को उन्नत करके यज्ञके वपट्टकर्ता सात होताओं को देवलोकमें देवताओंके मध्य देवत्व प्रदान करो ॥ २५ ॥

सोमराजन्विश्यास्त्वम्प्रजा उपावरोह विश्वा-

स्त्वाः प्रजा उपावरोहन्तु । शृणोरेष्वग्निः समिधा

हृधस्मे शृण्वन्त्वापो, धिपणांश्च देवीः श्रोता

ग्रावाणो विदुषो न यज्ञथ शृणोतु देवः सविता

हृधस्मे स्वाहा ॥ २६ ॥

इस कं०, ३ मंत्र हैं । सबका मेधातिथि अ० । छं० १ का सामान्य-
ष्णिक, २ याजुपी त्रिष्टुप्, ३ त्रिष्टु० मंत्रार्थः-- (सोमराजन्, त्वं
विश्वाः, प्रजाः उपावरोह, विश्वाः, प्रजाः त्वाः, उपावरोहन्तु)
हे राजा सोम- तुम इन सम्पूर्ण अतिवृत्त गणोंको अपनी प्रजा
जानकर कृपा करो, हे सोम सम्पूर्ण प्रजा तुमको प्रणामद्वारा प्राप्त
हो (अग्निः, समिधा, मे, हृध, आपः, च, धिपणा, देवी, च,
ग्रावाणः, विदुषः, नः, यज्ञम्, आश्रोत, सविता, देवः, मे, हृध,
शृणोतु) अग्निदेवता समिधापूर्वक मेरी इस आहुतिसे मेरे आवा
गको सुनो । हे ग्रावासमूहः आपेपवके निमिरा प्राप्त हुए तुम
विद्वानों की समान एकाग्र चित्तसे मेरे यज्ञके आह्वान को सब
प्रकार सुनो, सबका प्रेरक परमात्मा देवता मेरे आह्वानको अवगण
करो यह आहुति भलीप्रकार श्रुतीत हो ॥ २६ ॥

देवीरापो अपान्तपाद्यो ष ऊर्मिर्हविष्य इन्द्रिया-
वान् मदिन्तमः । तन्नेवेभ्यो देवत्रा शुक्रपेभ्यो
येषां भागस्य स्वाहा ॥ २७ ॥

इस कण्डिका में दो मंत्र हैं । सबका मेधातिथि ऋ० । छं० ।
भुरिगार्पी पं० २ दैव्युष्णिक् और देवता १, २ का आप् । मंत्रार्थ-
(आपो, देवीः, वः, अपाम्, नपात्, हविषः, इन्द्रियावान्, मदिन्तमः,
ऊर्मिः) हे जलदेवियो तुम्हारे जलों के, अपत्परूप, हवियोग्य,
वीर्यवान्, वृत्त करनेवाली, लहर है (देवत्रा, तम्, शुक्रपेभ्यः,
देवेभ्यः, दत्त) देवताओंके प्रति जानेवाली, उस ऊर्मिको शुक्रादि
सौम्य ग्रह पीनेवाले देवताओंको प्रदान करो (येषां, देवानां, भागः,
स्यः) जिन देवताओं के तुम भाग हो इन सबके उद्देश्य से तुमको
हवि देते हैं (स्वाहा) यह आहुति भलीप्रकार गृहीत हो ॥ २७ ॥

कार्पिरसि समुद्रस्य त्वा क्षित्या वन्नयामि ।

समापो अद्भिरंगमत समोषधीभिरोषधीः । २८ ॥

इस कण्डिका में ३ मंत्र । सबका मेधा० ऋ० । छं० १ देवी
वृ० २ याजु० त्रि० ३ साम्न्यनु० और देवता १ का आज्य २, ३
का आप् । मंत्रार्थ—हे पृथ तुम (कार्पिः असि) देव उष्ण
पापके दूर करनेवाले हो (समुद्रस्य, अक्षित्यै, त्वा, वन्नयामि)
हे जलो वस्तीवरी लक्षणवाले सागररूप जलके अक्षीणताके
निमित्त तुमको ग्रहण करता हूँ (आपः, अद्भिः, समंगमत, औषधीः,
औषधीभिः, सम्) हे मित्रावरुण चमसमें स्थित जलो तुम इस
वस्तीवरी के जलके संग भलीप्रकार मिश्रित हो, सम्पूर्ण औषधी
औषधियों के साथ भलीप्रकारसे मिश्रित हों ॥ २८ ॥

यमग्ने पृत्सु मर्त्यमवा वाजेषु यजुनाः । स-

यन्ता शश्वतीरियः स्वाहा ॥ २९ ॥

इसका मधुच्छन्दा ऋ० भुरिगार्पी गायत्री छं० अभिदेवता है
मंत्रार्थ—(अग्ने, पृत्सु यम्, मर्त्यम्, अवाः, वाजेषु, यम् जुनाः, सः
शश्वतीः इयः, यन्ता, स्वाहा) हे अग्निदेव, बड़े संगामोंमें जिस

मनुष्यको तुम रसा करते हो, किञ्च इधिलक्ष्यवाले अन्नो में अन्न के निमित्त जिस मनुष्यके निकट तुम इधिग्रहण करनेको उपस्थित होतेहो वह मनुष्य तुम्हारे प्रसादसे निरन्तर अक्षय अन्नो तथा धनोंको पाताहै, हमारी यह आहुति भलीभकार गृहीत हो. २९.

देवस्य स्वा सवितुः प्रसवेभ्यिनोर्वाहुभ्यां पूषणो
हस्ताभ्याम् । आदेदे रायांसि गभीरमिममध्वर
इधीन्द्राय सुपूतमम् उत्तमेन पविनोर्जिह्वन्तम्
मधुमन्तम्पयस्वन्तन्निग्राभ्या स्थ देव धृतं
स्तर्पयत मा ॥ ३० ॥

इस काण्डिकामें २ मंत्र हैं । सवका मधु० ऋ० । छं० १ ब्रा० पं० २ आ० अ० और देवता १ अग्नि २ आप । मंत्रार्थ-हे सपांशु सवन (सवितुः देवस्य, मसवे, अश्विनोः वाहुभ्याम्, पूषणः, हस्ताभ्याम् स्वा, आदेदे) सविता देवताकी प्रेरणासे अश्विनी-कुमार की वाहु, पूषा देवता के हाथों से तुम्हको ग्रहण करताहूँ (रावा, असि) अभीष्ट फल के देनेवाले हो (इमम्, अध्वरम्, गभीरम्, कृधि, उत्तमेन, पविना, इन्द्राय, सुपूतमम्, ऊर्जः-स्वन्तम्, मधुमन्तम्, पयस्वन्तम्) -इस हमारे यज्ञको महान् करो उत्कृष्ट श्रेष्ठ वज्रसदृश तुम्हारे द्वारा इन्द्रदेवता के निमित्त भीतिवर्द्धक बलयुक्त स्थादिष्ट मधुर रसयुक्त दुग्ध के स्वादुरससे युक्त सोमको अभिपुगतम करताहूँ (निग्राभ्यः, स्य, देवश्रुतः, मा, तर्पयत) हे जलो तुम हमसे सम्बन्धकार से ग्रहण किये हो देवताओंके मध्यमें चिरप्रसिद्ध हो इसभकार बहुत मानसे युक्त तुम इस समय इस यज्ञमें मुझको वृत्ता करो ॥ ३० ॥

मनो में तर्पयतु वाचं मे तर्पयत प्राणम्भे तर्प-
यतु चक्षुर्भे तर्पयतु श्रोत्रं मे तर्पयतु आत्मानं मे
तर्पयत प्रजां मे तर्पयत पशून्मे तर्पयत गुणान्भे
तर्पयत गुणा मे मा धितृपन् ॥ ३१ ॥

इसका मधु छं० ऋ० वाइवा० ज० छं०, आप देवता है ।

मन्त्रार्थ-हे निग्राभ्य (मे, मनः, तर्पयत, मे, वाचं, तर्पयत, मे, प्राणं, तर्पयत, मे, चक्षुः, तर्पयत, मे, श्रोत्रं, तर्पयत, मे, आत्मानं, तर्पयत, मे, प्रजां, तर्पयत,) मेरे मनको तृप्त करो, मेरे प्राणको तृप्त करो, मेरी नेत्रइन्द्रियको तृप्तकरो, मेरे कर्णों को तृप्त करो, मेरी आत्माको तृप्त करो, मेरी प्रजाको तृप्त करो, (मे, पशून्, तर्पयत, मे, गणान्, तर्पयत, मे, गणाः, मा, भितृपन्,) मेरे पशुओंको तृप्त करो, मेरे मनुष्यसमूहोंको तृप्त करो, मेरे आत्मीयजन किसीप्रकारसे तृष्णासे कातर नहों ॥

इन्द्राय त्वा वसुमते रुद्रवत इन्द्राय त्वादित्य-
वत इन्द्राय त्वाभिमातिघ्ने । श्येनाय त्वा सोम-
भृतेऽग्नये त्वा रायस्पोपदे ॥ ३२ ॥

॥ इस कं० में ५ मंत्र हैं । सबका मधुच्छन्दा ऋ० । छं० १ सा० गा०, २, ३, ४ प्रा० गा०, ५ या० वृ०, और दे० सबका सोम है । मन्त्रार्थ-हे सोम ! (वसुमते, रुद्रवते, इन्द्राय, त्वा, आदित्यवते, इन्द्राय, त्वा, अभिमातिघ्ने, इन्द्राय, त्वा, सोमभृते, श्येनाय, रायस्पोपदे, अग्नये, त्वा) वसुनाम देवता से युक्त माध्यन्दिन सवनके रुद्रदेवतासे युक्त इन्द्रदेवताके निमित्त तुमको परिमित करताहूँ, हे सोम सीसरे सवनके आदित्य देवताके सहित वर्तमान इन्द्रदेवताके निमित्त तुमको परिमित करताहूँ, हे सोम शशुघाती इन्द्र देवताके निमित्त तुमको परिमित करताहूँ, हे सोम धन और पुष्टि देनेवाले अग्निदेवताके निमित्त तुमको परिमित करताहूँ ॥ ३२ ॥

यसो सोम दिवि ज्योतिर्यत्पृथिव्यां यदुरा-
धन्तरिक्षे तेनास्मै यजमानायोरु राघे कृधयधि-
दात्रे वाचः ॥ ३३ ॥

इस मंत्र का मधुच्छं० ऋ०, भुरिगा० वृ० छं० सोम देवता है । मन्त्रार्थ-(सोम, दिवि, यत्, ते, ज्योतिः, पृथिव्याम्, यत्, उरौ, अधन्तरिक्षे, यत्, तेन, अस्मै, उरु, कृधि,) हे सोम ! तुलोक में जो तुम्हारी ज्योति है, पृथ्वी में जो ज्योति है, विस्तीर्ण,

अन्तारिक्षमें जो ज्योति है, उस ज्योति के प्रभावसे इस यजमानके निमित्त इष्टधन विस्तार करो अथवा इसके यज्ञ में अपने शरीर को विस्तार करो) राये, उरु कृधि, दात्रे, अधिवोचः,) ऋत्विग्गणों को धनप्राप्ति के निमित्त अपने शरीरका विस्तार करो, दाता यजमानके निमित्त मैं सम्पूर्ण ज्योतिसे प्राप्त हुआ ऐसा कहो।

उवाचा स्थ वृत्रतुरो राधोगूर्त्ता अमृतस्य पत्नीः ।

ता देवीर्हवध्रेमं यज्ञन्नयतोपहृताः सोमस्य पियत ॥ ३४ ॥

इसका मधुच्छं० ऋ०, सुराढार्या प० वृ० छं०, आपो देवताहै मंत्रार्थ-हे जलो ! तुम (इवात्राः, वृत्रतुरा, राधोगूर्त्ता, अमृतस्य, पत्नीः, स्य) शीघ्रकार्यकारी, शत्रुहृदय मर्दनकारी, इष्ट कामनाके देने वाले, सोमके पालक हो (देवीः, ताः, इमम्, देवप्रात्र, नयत) हे सम्पूर्ण निग्राभ्यदेवता इसप्रकारके तुम इस यज्ञको देवताओंके प्रति प्राप्त करो (उपहृताः, सोमस्य, पियत) अनुज्ञा को प्राप्त हुए तुम सोमको पियो ॥ ३४ ॥

माभ्रेर्मा संविक्थ्या उर्जन्धत्स्व धिपणे वीद्वी
सती वीद्वियेथामूर्जन्धधायाम् । पाप्मा हतो
न सोमः ॥ ३५ ॥

इसमें मधुच्छदां ऋ० । भुरिगार्प्यनु० छं० । अर्द्धस्य थावा पृथिवी दे० । मंत्रार्थ-हे सोमसमूह तुम (माभ्रेः, मासंविक्थ्याः उर्जन्धत्स्व) आघातसे भय मत करना, कम्पित मत होना, रस को धारण करो (धिपणे वीद्वी सती वीद्वियेथाम्, उर्जन्धधायाम्) हे थावापृथिवी दृढ़ताको प्राप्त हुई इस उपांशु सवनके आघात और सोम सवनको दृढ़ करो, इस सोमके रसको वृद्धिकर बलमदान करो इस वजाघातसे यजमानके सम्पूर्ण (पाप्मा, हतः सोमः न) पाप नष्ट होते हैं और सोम नहीं हत होता किन्तु संस्कारयुक्त होता है।

प्रागप्रागुदंगधराफसर्वतस्त्या दिश आधावन्तु।

अग्निं निष्परं समरीषिंदाम् ॥ ३६ ॥

इसका मधु० छं० षड्० आर्षुष्णिक् छं० सोमदेवता है मंत्रार्थ-
 (भाक्, अपाक्, उक्, अधराक्, दिशः सर्वतः त्वा आधावन्तु)
 पूर्व पश्चिम उत्तर दक्षिणादि सम्पूर्ण दिशा सब ओर से तुम्हारे
 सन्मुख धावमान हों (हे अम्ब निप्पर अरीः सम्पिदाम्) हे माता
 अपने भागोंसे सोमको पूर्ण करो, सब मजा इस यज्ञ को जानें ३६
 त्वमङ्ग प्रशंसिषो देवश्च शंषिष्टमर्त्यम् । न
 त्वदन्यो भवन्नस्ति मङ्गितेन्द्रवरीमिते वचः ॥

इसका गौतम ऋषि-पठ्या वृहती यदा भुरिगार्प्यनु० छं० इन्द्र
 देवता । मंत्रार्थ-(अङ्ग, शंषिष्ट, मभवन्, इन्द्र, देव, त्वं मर्त्यम् प्रशं-
 सिषः) हे सर्वत्र प्राप्त, अतिशय बलवान् सुखकारी धनवान् पर-
 मैश्वर्यसम्पन्न परमात्मन् आप इस मनुष्य यज्ञमान को मर्शंसा
 देते हो (त्वत् अन्यः मङ्गिना न अस्ति) आपके सिवाय और
 कोई सुख देनेवाला नहीं है (ते वचः वरीमि) आपका, आपही
 सुखरूप हैं, यह वचन कहता हूँ ॥ ३७ ॥

इति शुक्लयजुर्वेदान्तर्गतं बानसनेपि संहिता का सातवाह पत्र अध्याय समाप्त ।

अथ सप्तमोऽध्यायः ।

छठे अध्यायमें यूपसंस्कारसे सोमाभिपत्र तक मंत्र कहे अब
 सातवें अध्यायमें ग्रहग्रहणके मंत्र कहेनाये हैं ।

॥ हरिःॐ ॥ वाचस्पतये पवस्व वृष्णां अशु-
 भ्याङ्गभस्तिपूतः । देवो देवेभ्यः पवस्व येषां
 भागोसि ॥ ? ॥

इस कण्टिकामें २ मंत्र हैं । सबका गौतम ऋषि है, इन्द्र ?
 का साम्नी वृ० २ आसुर्ध० और देवता प्राण है । मंत्रार्थ-हे
 सोम तुम (वृष्णः, अशुभ्याम्, गमस्तिपूतः, वाचस्पतये पवस्व)
 सम्पूर्ण कामनाके फलवर्षी, अशुद्रय तथा हमारे हाथ से पवित्र
 हुए तुम भागोंकी प्रीतिके निमित्त इस पात्रमें गमन करो, हे सोम
 (देवः, देवेभ्यः, पवस्व, येषाम्, भागः अस्ति) देवतारूप तम

देवताकी प्रीतिके निमित्त इस पात्रमें गमन करो, जिन देवताओं का भाग हो ॥ १ ॥

मधुमतीर्न इपस्कृधि यत्तं सोमादाभ्यन्नाम जा-
गृधि तस्मै ते सोम सोमाय स्वाहा स्वाहाऽग्नि-
न्तरिक्षमन्वेमि ॥ २ ॥

इस कं० में ३ मं० हैं । सबका गो० ऋ० । छन्द १ या० वृ०
आर्ष्यु० ३ आसु० ज० और देवता सबका लिङ्गोक्ता है । मंत्रार्थ-
हे सोम (नः, इपः, मधुमतीः कृधि) हमारे अन्न मधुर रसयुक्त
सुस्वादु करो, (सोम ते यत्, अदाभ्यम्, जागृधि, नाम, सोम,
तस्मै, ते, स्वाहा) हे सोम ! तुम्हारा जो हिंसा शून्य, जागरणशील
नाम है, (हे सोम तस्मै ते स्वाहा, स्वाहा उरु अन्तरिक्षम् अन्वेमि)
हे सोम उस तुम्हारे निमित्त यह अंशुद्वय फिर प्रदान करते हैं
उद्देश्य देवताकी प्रीतिके निमित्त यह भलीप्रकार आहुत होता है,
इस विस्तीर्ण अन्तरिक्षके मध्यमें गमन करता हूँ ।

स्वाङ्कृतोसि विश्वेभ्य इन्द्रियेभ्यो दिव्येभ्यः
पार्थिवेभ्यो ममस्त्वाष्टु स्वाहा त्वा सुभव
सूर्याय देवेभ्यस्त्वा मरीचिभ्यो देवाँश्चो
यस्मै त्वेहे तत्सत्यमुपरि पुता भङ्गेन हतोसौ
फद् प्राणाय त्वा व्यानाय त्वा ॥ ३ ॥

इस कं० में ५ मंत्र हैं । सबका गो० ऋ० । छं १ भू० मा० ज० २
या० वृ० ३ सा० मि०, ४, ५ दै० वृ० है और देवता १ उपांशु २
देवा ३ लिङ्गोक्ता ४ ग्रह ५ उपांशु हैं । मंत्रार्थ-हे प्राणरूप
उपांशुग्रह (विश्वेभ्यः, इन्द्रियेभ्यः, पार्थिवेभ्यः, दिव्येभ्यः,
स्वाङ्कृतः, असि) सम्पूर्ण इन्द्रियोसे सम्पूर्ण पार्थिव द्विपद चतु-
पद और दिव्य प्राणियोसे स्वयं मादुर्भूत हो (मनः, त्वा, अष्टु)
मन प्रजापति तुम्हारे प्रति आधिपत्य करे (सुभव, सूर्याय, त्वा,
स्वाहा) हे प्रशंसितजन्मन् सूर्यरूप प्रजापतिकी प्रीतिके निमित्त
तुमको आहुत करता हूँ यह आहुति सुन्दररूपसे गृहीतहो, पहिले

पात्र (मरीचिपेभ्यः, देवेभ्यः, त्वा) मरीचिपालक देवगणकी वृष्टिके निमित्त तुमको मार्जन करता हूँ (देव, अंशो, यस्मै, त्वा, ईडे, तत्, सत्यं, उपरि, मुता, भङ्गेन, हतः, असौ, कट्) हे दीप्यमान अंशुदेव जिसके अभिचार मारणादिकी कामनाके निमित्त तुमको मार्जना का साधन करता हूँ वह यह अमुकमेरा शत्रु सत्य ही अकस्मात् प्राप्त हुई महापीडासे निहत हुआ यह शत्रु विशीर्ण होजाय—हे उपांशुसवन (व्यानाय, त्वा) व्यान देवताकी प्रीतिके निमित्त तुमको इस स्थानमें स्थापन करता हूँ ॥ ३ ॥

उपयामगृहीतोऽस्यन्तर्यं च मघवन्पाहि सोमम् ।

उरुष्य राणु एषो यजस्व ॥ ४ ॥

इस मंत्रका गो-ऋ० । छ० प्राजा० त्रि० इन्द्रदेवता है । मंत्रार्थ हे अन्तर्यामि ग्रह सोमरस तुम (उपयामगृहीतः, असि, मयः वन्, अन्तः, यच्छ, सोमम् पाहि,) क्षुद्र कलश द्वारा गृहीत हो, हेन्द्र ! तुम इस गृहीत सोम रसको अन्तर्ग्रह पात्रमें ग्रहण करो सोमरसको शत्रु आदि से रक्षाकरो तथा (रायः, उरुष्य, इषः, आ, यजस्व,) पशुओं को रक्षाकरो, अन्नोको सब प्रकारसे दो ॥ ४ ॥

अन्तस्ते धावापृथिवी दधाम्पुन्तर्दधाम्पुर्व-
न्तरिक्षम् । मजूर्देवेभिरवैः परैश्चान्तर्यमि
मघवन्मादयस्व ॥ ५ ॥

इस मंत्रका गो० ऋ० । आर्षोप० छ० और मघवा देवता है । मंत्रार्थ-हे मघवन् (ते, धावापृथिवी, अन्तर्दधामि, उरु, अन्तरिक्षम् अन्तर्दधामि) धापके अनुग्रहसे स्वर्ग और पृथ्वी अन्तः स्थापन करताहूँ, विस्तीर्ण अन्तरिक्षको धावापृथिवीके मध्यमें स्थापन करताहूँ (मघवन् अवैः परैः देवैः सजुः अन्तर्यामे मादयस्व) हेन्द्र ! पृथ्वीके स्थानवाले द्युस्थाननिवासी देवताओं से समान प्रीतिवाले तुम अन्तर्यामि ग्रहमें अपने को वृष्टकरो ।

स्वाङ्कृतोऽसि विश्वेभ्य इन्द्रियेभ्यो दिव्येभ्यः

पाथिवेभ्यो मनस्त्वाप्सु स्वाहा । स्वा सुभव

सूर्याय देवेभ्यस्त्वा मरीचिपेभ्य उदानाय त्वा ॥ ६ ॥

इस कं० में ३ मं० हैं । सबका गो० ऋ० है । छं० १ मुरिग्मा० २ या० वृ० ३ दै० पं० और देवता १ अन्तर्यामी २ देव ३ ग्रह हैं ।
मन्त्रार्थ—प्रथम दूसरे मं० की व्याख्या इस अध्यायके ३ मंत्रमें है हे अन्तर्यामि ग्रह (उदानाय त्वा) उदानं देवताकी प्रीति के निमित्त तुम्हको इस स्थानमें स्थापन करता हूँ ॥ ६ ॥

आ वायो भूप शुचिपा उष नः सहस्रन्ते नियुतो विश्ववार । उपो ते अन्धो मयमयामि यस्य देव दधिपे पूर्वपेयं वायवे त्वा ॥ ७ ॥

इस मंत्रका वशिष्ठ ऋषि निचृदायी ज० छं० वायुदेवता ।
मन्त्रार्थ—(शुचिपाः, वायो, नः, उप, आभूप, विश्ववार, ते, सहस्रं नियुतः, मयम्, अन्धः, ते, उप, आयामि) हे अग्ने ! पवित्र पानकारी वायुदेवता तुम हमारे समीप आगमन करो, वृत्तिका करने वाला सोम लक्षण अन्न तुम्हारे समीपमें समर्पण करके भिजवाता हूँ (देव, यस्य, पूर्वपेयं, दधिपे) हे दीप्यमान वायो जिस सोमका प्रथम वपट्कार लक्षणवाला पूर्वपान तुम धारण किये हो उसीको इससमय तुम्हारे निकट उपस्थित करते हैं ॥ ७ ॥

इन्द्रवायु इमे सुता उप प्रयोभिरागतम् । इन्द्रो वासुशन्ति हि । उपयामगृहीतोसि वायवे इन्द्रवायुभ्यान्त्वैष ते योनिः सजोषोभ्यान्त्वा ॥ ८ ॥

इस कं० में २ मं० हैं सबका मधु० ऋ० । छं० १, आर्यागा० २ सुराडा० गा० और देवता १ इन्द्रवायु २ इन्द्र । मन्त्रार्थ—(इन्द्रवायु इमे, सुताः, मयोभिः, उप आगतम्, हि, इन्द्रवः, वाम्, उशन्ति) हे इन्द्रवायु ! तुम्हारे निमित्त यह सोम प्रस्तुत किये हैं, इस सोमरसरूप अन्नपानके निमित्त हमारे समीप आइये, जिसकारण कि यह सोमरस तुम्हारे प्रिय होने की इच्छा करते हैं, हे तृतीय ग्रह सोमरस तुम (वायवे, उपयामगृहीतः, आसि) वायु देवता के उद्देशसे उपयामपात्र द्वारा ग्रहण किये गये हो (इन्द्रवायुभ्यां

त्वा) युगचर इन्द्रवायु देवताके संतोषके निमित्त तुमको ग्रहण करता हूँ, इन्द्र वायु ग्रह (एषः, ते, योनिः, सजीषोभ्याम्, त्वा) यह तुम्हारा स्थान है, युगचर इन्द्र वायु देवताद्वयकी प्रीतिके निमित्त तुमको इस स्थानमें स्थापन करता हूँ ॥ ८ ॥

अथ वा मित्रावरुंगा सुतः सोमं ऋतावृधा ।

ममेदिह श्रुतं हवम् । उपयामगृहीतोसि मित्रा-

वरुणाभ्यान्त्वा ॥ ९ ॥

इस क०में २ मं० हैं । सबका गृहसमूह ऋ० है । छं० १ आर्षी गा० २ आसुरी गा० और देवता सबका मित्रावरुण है । मंत्रार्थ- (मित्रावरुणा, ऋतावृधा, चाम्, अथ, सुतः हव, ममेद हवम्, श्रुतम्) हे मित्रावरुण, हे सत्य, तुम्हारी प्रीतिके निमित्त यह सोमरस मस्तुत किया है इस यज्ञ में हमारे ही इस आह्वानको ध्वज करो हे चतुर्थग्रह सोमरस तुम (उपयामगृहीतः, आसि, मित्रावरुणाभ्याम्, त्वा) मित्रावरुण संज्ञक उपयामपात्रमें गृहीत हो मित्रावरुण संज्ञक देवताओंकी प्रीतिके निमित्त तुमको ग्रहण कराहूँ

राया वयं ससुवांसो मदेम हव्येन देवा यव-

सेन गावः । तान्धेनुर्मित्रावरुणा युवन्तो वि-

श्वाहा धत्तमनपस्फुरन्तीमेप ते धोनिर्ऋता-

युभ्यान्त्वा ॥ १० ॥

इस क०में २ मं० हैं । सबका त्रिसदस्यु ऋ० छं० १ आर्षी त्रि० २ याजुषी पं० और देवता १ मित्रावरुण २ गृह है । मंत्रार्थ-जिस गौके घरमें होने से (वयं, राया, ससुवांसः, मदेम, देवाः, हव्येन, गावः, यवसेन, मित्रावरुणा, युवन्तो, ताम्, धत्तपस्फुरन्तीम्, धेनुं, नः, विश्वाहा, धत्तम्) हम धनसे सम्पन्न होकर मसन्न होते हैं, देवगण हविषानेसे जैसे मसन्न होते हैं, गौ जैसे घासादि से मसन्न होती है, हे मित्रावरुण देवताओं तुम उस दूसरे पुरुष के निकट न जानेवाली धेनु को हमारे निमित्त सर्वदा प्रदान करो (एषः, ते, योनिः, ऋतायुभ्याम्, त्वा) हे ग्रह यह तुम्हारा स्थान

है, मित्रावरुण देवता ! ब्रह्म की संतुष्टिके निमित्त तुमको इस स्थानमें स्थापन करता हूँ ॥ १० ॥

या वाङ्मना मधुमत्पश्विना सूनृतावती तथा
यज्ञमिमिक्षतम् । उपयामगृहीतोस्पश्विभ्या-
न्त्वैष ते योनिर्माध्वीभ्यान्त्वा ॥ ११ ॥

इस कं० में १ मं० है । सबका मेधातियिक्रुपि है । छं० १ भुरिगा-
र्षीगा० २ याजुषी वि० और देवता १ अश्विनौ २ ग्रह । मंत्रार्थ
(अश्विना, वाम्, या, कशा, मधुमती, सूनृतावती, तथा, यज्ञम्,
मिमिक्षतम्) हे अश्विनीकुमारद्वय तुम्हारी जो प्रकाश करने
वाली वाणी ब्रह्मवती ब्राह्मण उपनिषद् प्रशंसा से युक्त प्रिय
और सत्यतासे युक्त है उस वाणीसे इस पद को सींचकर पूर्ण
करो । हे पंचमग्रह ! तुम अश्विनी देवता की गीति के निमित्त
इस (उपयामगृहीतः, अस्ति, एषः, ते, योनिः, माध्वीभ्यान्त्वा)
उपयाम पात्रमें ग्रहण कियेहुए हो हे अश्विग्रह ! यह तुम्हारा
स्थान है, मधुमय मंत्र ब्राह्मण पढ़नेवाले अश्विनीकुमार के निमित्त
तुमको ग्रहण करता हूँ ॥ ११ ॥

तमृत्नथा पूर्वथा विश्वधेमथा ज्येष्ठतामिम्ब-
र्हिपदंस्वर्धिमम् । मतीचिमं वृजनं दोहसे धु-
निमाशुक्षयन्तमनु यासु वर्द्धसे । उपयामगृही-
तोमि शण्डाय त्वैष ते योनिर्वीरताम्प्राण्यपमृष्टः

शण्डो देवास्त्वां शुक्रपाः प्रणयन्तघनाभृष्टास्ति ॥ १२ ॥

इस कं० में ५ मं० हैं । सबका वास्तार कारयप रूपि है । छं० १
निचृ० ज०, २ आर्च्युष्णि० ३ या० गा० ४ या० पं० ५ दै० पं०
और देवता १ विश्वेदेवा २ ग्रह ३ लिंगोक्ता ४ आभिचारकं
५ शुक्रपा ६ वेदिश्रोणि । मंत्रार्थ—हे इन्द्र ! तुम (यासु, अनुवर्द्धसे
तम्, ज्येष्ठतामिम्, बर्हिपदम्, स्वर्धिमम्, धुनिं, याशुम्, जयन्तम्,
वृजनम्, दोहसे) जिन यज्ञक्रियाओंमें पुनः पुनः सोमरस पान
करके तृदिको प्राप्त होते हो वृत्त होतेहो, उस उत्कृष्ट विस्तारवान्

सर्वज्येष्ठ यज्ञ में कुशासनके सेवी स्वर्गवेत्ता शत्रुओंको कम्पित करने वाले जेतव्य वस्तुओं को शीघ्र जीतनेवाले तुम बलपूर्वक यज्ञफल को यजमानके प्रति देते हो (प्रत्या, पूर्वया, विश्वया, इमया, ते) समस्त यज्ञके प्राचीन नियम की समान पूर्वपथाके अनुसार सब प्रकार इस समयके यजमानकी समान इस यज्ञका फल देते हो, ऐसे आपकी हम स्तुति करते हैं, हे पृष्ठग्रह ! शुक्र (उपयामगृहीतः, असि, शण्डाय, स्वा) तुम उपयामपानमें गृहीत हुए हो, शण्ड नामक जनके निवासके निमित्त तुमको ग्रहण करता हूँ (एपः, ते योनिः, वीरतां, पाहि) यह तुम्हारा स्थान है इस स्थानमें अब स्थान करके यजमानके वीरत्वकी रक्षा करो (शण्डः, अपमृष्टः, शुक्रयाः, देवाः, त्वा, मीषयन्तु) असुरनेता अपमानित हुआ हे ग्रह शुक्रनामक ग्रह में स्थित सोमपान करनेवाले देवता तुमको निरापद आहवनीय स्थानमें प्राप्त करें, हे उत्तर, वेदी श्रोणी तुम (अनाष्ट्रा, असि) अनुपहिंसित हो, अर्थात् तुम्हारे द्वारा इस ग्रहको क्षति नहीं पहुँचसकती ॥ १२ ॥

सुवीरो धीरान्प्रज्जनयन्परिह्यभिं रायस्पोपेण
यजमानम् । सञ्जग्मानो दिवा पृथिव्या शुक्रः
शुक्रशोचिष्ठा निरस्तः शण्डः शुक्रस्पाधिष्ठा-
नेमसि ॥ १३ ॥

इस कं० में ४ मं० हैं । सबका वत्सार काश्यप ऋ० छन्द
१ सा०प्रि० २ साम्बन्तु०, ३ देवी पं० ४ मा० ता० और दे० १, २
का शुक्र ३ अभिचारक ४ सकल । मंत्रार्थ—हे ग्रह तुम (सुवीरः,
वीरान्, प्रजनयन्, रायस्पोपेण, यजमानम्, अभि, परीहि) सुन्दर
वीरतासे युक्त हो इस यजमानके शूरतासे युक्त पुत्र भृत्यादिको
वत्पत्र करते हुए, अनेक प्रकारकी धन पुष्टिद्वारा यजमानके ऊपर
कृपाकर सब प्रकारसे प्राप्त करो (शुक्रः, शुक्रशोचिष्ठा, पृथिव्या,
दिवा, सञ्जग्मानः) यह शुक्रग्रह अपनी पवित्र कान्ति के साथ
पृथिवी और पुलोकसे संगति को प्राप्त होकर दीक्षिमान् होरहा

है (शण्डः, निरस्तः, शुक्रस्य, अधिष्ठानम्, असि) शण्डनामक
असुर दूर हुआ, हे यूपकाष्ठ खण्ड । तुम शुक्रग्रहके अधिष्ठान हो १ ३
अच्छिन्नस्य ते देव सोम सुवीर्यस्य रायस्यो-
पस्य ददितारः स्याम । सा प्रथमा संस्कृति-
र्विश्वचांग स प्रथमो वरुणो मित्रो अग्निः ॥१४॥

इस कं० में २ मं० हैं। सबका वत्सार काश्यप ऋ० छं० १ प्रा०
पं० १ विराडापीं मि० और देवता १ सोम २ इन्द्र है। मंत्रार्थ-
(सोमदेव, अच्छिन्नस्य, सुवीर्यस्य, ते, रायस्योपस्य, ददितारः,
स्याम) हे सोमदेवता खण्डराहित निरन्तर कल्याण प्रभाववाले
वली, आपके प्रसादसे हम धनपुष्टिके देनेवाले हों (सा, विश्व-
वारा, संस्कृतिः, प्रथमा, वरुणः, मित्रः, सः, अग्निः, मयमः) वह
सन्पूर्ण ऋत्विग्मनों से वरणीय यह संस्कार क्रिया, जिसकारण
कि इन्द्रके निमिषा कीजाती है, इससे यह मुख्य है और जगत्की
उत्पत्ति का कारण होने से सोमका, वरुण, मित्र और वह अग्नि-
देवता मुख्य भृत्य है ॥ १४ ॥

स प्रथमो बृहस्पतिश्चिकित्वाँस्तस्मा इन्द्राय सु-
तमाजुहोत स्वाहा । तृप्यन्तु होत्रा मध्यो याः

स्विष्टा याः सुप्रतीताः सुहृता यत्स्वाहायां हुग्नीत् ॥१५॥

इस कं० में २ मं० हैं । सबका वत्सार काश्यप ऋ० । छं०
१ प्रा० वृ० २ दै० वृ० और सबका होत्रा देवता है मंत्रार्थ—(सः,
चिकित्वा, बृहस्पतिः, मधमः, तस्मै, इन्द्राय, सुतम्, स्वाहा,
आजुहोत) वह अनुषम चेतनावान् महाबुद्धितम्पन्न बृहस्पति
मुख्यमंत्री है, उस इन्द्रके उद्देश से यह प्रस्तुत सोमरस आहुत
होता है यह आहुति भलीप्रकार स्वीकार हो, इस मकार स्वाहा-
कार कर हवन करो (होत्राः, तृप्यन्तु, याः, मध्वः, स्विष्टाः, याः, सु-
प्रतीताः, यत्, स्वाहा, सुहृताः, अग्निः, अयात्) इन्द्रोके अभिमानी
वे देवता तृप्त हों जो मधुस्वादवाले सोम को इष्टवाले भोग करने
वाले जो अत्यन्त प्रसन्न हैं, जिसकारणसे स्वाहाकार द्वारा होम

के निमित्त नियुक्त हुए हैं, शुक्रग्रह सोमसम्पन्न हुआ ॥ १५ ॥

अपं वेनश्वोदयत्पृश्निगर्भा ज्योतिर्जरायू रजसो
विमाने । इममपाथसंगमे सूर्यस्य शिशुन्न
विमां मतिर्भां रिहन्ति । उपयामग्रहीतोसि
मर्काय-त्वा ॥ १६ ॥

इस कं० में २ मं० हैं । सबका वत्सार का० ऋ० । षं०
२ निष्पृ० त्रि०, २, साम्नीगा० और देवता १, २ सोम है । मंत्रार्थ-
(ः अपं, ज्योतिर्जरायुः, वेनः, रजसः, पृश्निगर्भाः, अपोदयत्)
यह विद्युत् लक्षणवाली ज्योतिसे वैष्टित कान्तिमान् चंद्र जलके
निर्माण करने में जलों को भेरेणा करता है (विमाः, सूर्यस्य, अपां
संगमे, इमं, शिशुं, न, मतिर्भाः, रिहन्ति) बुद्धिमान् ब्राह्मण
सूर्य के जलकी सङ्गतिके समयमें इस सोम को विपपुत्रकी समान
बुद्धिपूर्वक वाणियों से स्तुति करते हैं हे सप्तग्रह तुम (उपयामग्र-
हीताः, असि, मर्काय, त्वा) उपयाम पात्रद्वारा ग्रहण कियेगये हो
मर्क असुरके निमित्त तुमको स्थापन करता हूँ ॥ १६ ॥

मनोनपेषु हवनेषु तिग्मं विपः शश्यां घनुथो
द्रवन्ता । आ यः शश्याभिस्तुविनृम्णो अस्या
श्रीणीतादिशुं गभरतायेप ते योनिः प्रजाः पा-
थर्पमृष्टो मर्को देवास्त्वा मन्थिपाः प्रणयुम्त्वनां
घृष्टासि ॥ १७ ॥

इस कं० में ४ मं० हैं । सबका वत्सार का० ऋ० । षं०
१ आ० पं० २ या० वृ० ३ या० पं० ४ या० गा० और देवता
१ सोम २ ग्रह ३ मन्थि ४ आभिषारक । मंत्रार्थ- (द्रवन्ता, विपः,
शश्या, मनोनपेषु, हवनेषु, तिग्मं, घनुथः, यः, तुविनृम्णः, गयस्तौ
अस्य, शश्याभिः, आदिशम्, अथीणीत) लघुहस्त, क्षिप्रकारी,
बुद्धिमान् कर्मद्वारा मनके उत्साहपूर्वक जिन सोमरसके हवनोंमें
मनकी समान तीक्ष्ण उत्साहसे विशेष मन लगाये रहे हैं जो बहुत
धनवाला ऋत्विक्, हाथोंमें स्थित इसको अङ्गुली समूह के द्वारा

सब ओरसे सक्तुओंसे मिश्रित करता है, हे मन्थिश्रह (ते, एषः, योनिः, प्रजाः, पाहि, मर्कः, अपमृष्टः) तेरा यह स्थान है, इस स्थानमें स्थित करते यजमान की प्रजाकी रक्षा करो, मर्क अतुर अपमार्जित हुआ हे मन्थीश्रह (मन्थिपाः, देवाः त्वा, प्रणयन्तु, अनाष्टृष्टा, असि) मन्थिश्रहके पान करनेवाले देवता तुझको यज्ञ स्थानमें प्राप्त करे हे वेदिधोणी अनुपाहंसित हो ॥ १७ ॥

सुप्रजाः प्रजाः प्रजनयन् परीह्याभि रायस्पोषेण
यजमानम् । सङ्गमानो दिवा पृथिव्या मन्थी
मन्थिशोचिपा निरस्तो मर्क मन्थिनोधिष्ठा-
नमसि ॥ १८ ॥

इस कं० में ४ मं० हैं । सबका वत्सार का० ऋ० । छं० ? सा० वि०, २ साम्न्यनु०, ३ दैवी पं०, ४ गजपत्या गा० और ?, २, मन्थि दै०, ३ आभिचारिकं, ४ शकलं । मंत्रार्थ—हे श्रह (सुप्रजाः, प्रजाः, प्रजनयन्, रायस्पोषेण, यजमानं, अभि परीहि) तुम सुप्रजा हो यजमानसम्वन्धिनी प्रजाको उत्पन्न करतेहुएधनकी पुष्टिके साथ यजमान के संमुख आगमन कीजिये (मन्थी, मन्थिशोचिपा, दिवा, पृथिव्या, सङ्गमानः) यह मन्थी नाम श्रह अपनी दीप्तिसे धुलोक और भूलोक के सहित संगतिको प्राप्त होकर यूपकी पालना करता है (मर्कः निरस्तः, मन्थिनः अधिष्ठाणम् असि) मर्क निरस्तहुआ दूर हुआ, हे यूपकाष्टखण्ड तुम मन्थीश्रहके अधिकरण हो ॥ १८ ॥

ये देवास्तो द्विवेकादश स्थ पृथिव्यामध्येकादश
स्थ । अप्साक्षतो महिनैकादश स्थ, त देवास्तो
यज्ञमिन्द्रुपह्वम् ॥ १९ ॥

इसका पदच्छेप ऋ० भुरिगार्पा पं० छं० विश्वेदेवा देवता है । मंत्रार्थ—(देवास्तः, ये, महिना, दिवि, एकादश, स्थ, पृथिव्यां, अधि, एकादश स्थ) हे देवताओ! जो तुम अपनी महिमा क ममावसे धुलोक में स्वारह हो तथा महाभाग्य होनेसे पृथिवी के

ऊपर ग्यारह हो (अष्टुक्षितः, एकादश स्य, देवासा, ते, इमम्, यज्ञम्, जुषध्वम् :) अंतरिक्ष में भी ग्यारह स्थित हो हे देवताओं इस यज्ञको सेवन करो ॥ १९ ॥

उपयामगृहीतोस्यागूयणोमि स्वाग्रयणः । प्रा-
हियज्ञम्पाहि यज्ञपतिं विष्णुस्त्वामिन्द्रियेण
पातु विष्णुन्त्वम्पाद्यभि सवन्नानि पाहि ॥२०॥

इसका परछेप ऋषि है, पं० निचृदार्पिण० छं० आग्रयण
देवता है । मंत्रार्थ—हे ग्रहः तुम (उपयामगृहीतः, असि, आग्रयणः
स्वाग्रयणः, असि, यज्ञं, पाहि, यज्ञपतिं, पाहि,) उपयाम पात्र
द्वारा गृहीत हो आग्रयण नामवाले धेष्टताके प्राप्त करनेवाले हो,
इस यज्ञकी रक्षा करो यज्ञपति यज्ञमानकी रक्षाकरो (विष्णुः,
इन्द्रियेण, त्वां, पातु, त्वं, विष्णुं, पाहि, सवन्नानि, आभि, पाहि)
यज्ञके अधिपति विष्णुदेव, अपनी सामर्थ्य से तुमको रक्षा करें
तू भी यज्ञदेवको रक्षाकर मातरादि तीन सवनको सब ओर से
रक्षा कर ॥ २० ॥

सोमः पवते सोमः पवतेस्यै ब्रह्मणेस्यै क्षत्रायास्यै
सुन्वते यज्ञमानाय पवते इप ऊर्जे पवतेऽद्भ्यः
ओपधीभ्यः पवते द्यावापृथिवीभ्याम्पवते सु-
भूतार्य पवते विश्वेभ्यस्तथा देवेभ्यः । एय ते
योनिर्विश्वेभ्यस्तथा देवेभ्यः ॥ २१ ॥

इस कं० में ३ मं० है । सबका परछेप ऋ० है । छं० १ ऋ०
ना० प०, २ दै० ज० ३ यासु० ज० और देवता विरेवेदेवा, १,
३, ग्रह । मंत्रार्थ—(सोमः, अस्यै, ब्रह्मणे, सोमः, अस्यै, क्षत्राय,
पवते, अस्यै, सुन्वते, यज्ञमानाय, पवते, अद्भ्यः, ओपधीभ्यः,
पवते,) यह सोम, इस ब्राह्मण जाति की मीति के निमित्त ग्रह-
प्राप्तमें क्षरित होता है, सोम इस क्षत्र जातिकी तुष्टिके निमित्त
ग्रहप्राप्तमें क्षरित होता है इस सोमाभिपव करनेवाले यज्ञमानके

निमित्त ग्रहपात्रमें क्षरित होता है, अर्द्धो वर्षाके निमित्त ओषधियों से क्षरित होता है (आवापुषिनीभ्याम्, पवते, सुभ्रुताय, पवते विश्वेभ्यः, देवेभ्यः, त्वा) दोनों लोक की सन्तुष्टताके निमित्त क्षरित होता है, लोकत्रय और समस्त धराचर की संतुष्टताके निमित्त क्षरित होता है, समस्तके ही आनन्द के निमित्त यह सोमग्रह पात्रमें क्षरित होता है, हे ग्रह (एषः, ते, योनिः, विश्वेभ्यः, देवेभ्यः, त्वा,) यह तुम्हारा स्थान है सम्पूर्ण देवताओं की प्रीति के निमित्त तुम्हें स्थापन करता हूँ ॥ ११ ॥

उपयामगृहीतोसीन्द्राय त्वा बृहद्वते वयस्वते
उक्ष्याव्यङ्गृहामि । यत्तं इन्द्र बृहद्वयस्तस्मै त्वा
विष्णवे त्वेष ते योनिरुक्थेभ्यस्त्वा देवेभ्यस्त्वा
देवाव्यङ्ग यज्ञस्पायुषे गृहामि ॥ २२ ॥

इक कं० में रे मं० हैं। सवका परुच्छेप ऋ०। अ० १ आर्षी पं-२ दै० ज० १ आर्षी गा० और सवका लिङ्गोक्ता देवता। मन्त्रार्थ-हे उक्षयग्रह ! (उक्ष्याव्यम्, त्वा, बृहद्वते, वयस्वते, इन्द्राय, गृहणामि) उक्षयके साहित्य देवताओंका वृत्तिकारक जानकर तुमको बृहत्साम सोमरूप अन्नवाले इन्द्र देवताकी प्रीति के निमित्त ग्रहण करता हूँ (इन्द्र, यत्, ते, इदत्, वयः, तस्मै, त्वा, विष्णवे, त्वा) हे परम भाग्यवान् इन्द्र जो तुम्हारा महान् सोमरूप अन्न है उसके पात्रके निमित्त तुम्हारी प्रार्थना करते हैं, हे सोम यज्ञके अधिष्ठात्री देवता विष्णुकी प्रीति के निमित्त तुम्हको ग्रहण करता हूँ हे उक्षयग्रह (एषः, ते, योनिः, विश्वेभ्यः, त्वा) यह तुम्हा स्थान है, उक्षयमियदेवताओं की प्रीति के निमित्त तुम्हको इस स्थान में स्थापन करता हूँ हे सोम (देवाव्यम्, देवेभ्यः, त्वा, यज्ञस्य, आयुषे, गृहणामि) मित्रावरुणादि देवताओंके प्रीतिकारक जानकर देवताओंकी सन्तुष्टिके अर्थ तुम्हको ग्रहण करता हूँ, यज्ञकी समाप्ति के फल पर्यन्त ग्रहण करता हूँ ॥ २२ ॥

मित्रावरुणाभ्यान्त्वा देवाव्यं यज्ञस्यायुषे गृह्णा-
 मीन्द्राय त्वा देवाव्यं यज्ञस्यायुषे गृह्णामीन्द्रा-
 ग्निभ्यान्त्वा देवाव्यं यज्ञस्यायुषे गृह्णामीन्द्रा-
 वरुणाभ्यान्त्वा देवाव्यं यज्ञस्यायुषे गृह्णामीन्द्रा
 बृहस्पतिभ्यान्त्वा देवाव्यं यज्ञस्यायुषे गृह्णा-
 मीन्द्राधिष्णुभ्यान्त्वा देवाव्यं यज्ञस्यायुषे गृ-
 ह्णामि ॥ २३ ॥

इस कं० में ६ मं० हैं । सबका परुच्छेप ऋ० । छं० । आर्ची
 गा०, २ आसुरी गा०, ३ प्राजापत्यानु० ४ आर्ची गा०
 ५ निच्युद् मा० ६ भुरिगु सामन्यनु० और सबका लिंगोक्त दे० ।
 मंत्रार्थ (देवाव्यम्, मित्रावरुणाभ्यां, यज्ञस्य, आयुषे, त्वा,
 देवाव्यम्, इन्द्राय, यज्ञस्य, आयुषे, त्वा,) देवगणों की वृत्ति
 कारक जानकर मित्रावरुण देवताकी प्रीतिके निमित्त यज्ञकी निर्विघ्न
 समाप्तिके निमित्त तुम्हको ग्रहण करनाहूँ देवगणों की वृत्ति
 कारक जानकर इन्द्रदेवता की प्रीतिके निमित्त यज्ञ समाप्तिके
 निमित्त तुम्हको ग्रहण करता हूँ (देवाव्यम्, इन्द्राग्निभ्याम्, यज्ञ
 स्यायुषे, त्वा, देवाव्यम्, इन्द्रावरुणाभ्याम्, यज्ञस्य, आयुषे, त्वा,
 देवाव्यं, इन्द्राबृहस्पतीभ्याम्, त्वा, यज्ञस्य, आयुषे) देवसमूहोंका
 वृत्तिकारक जान इन्द्र अग्निदेवताके निमित्त यज्ञकी समाप्तिके
 निमित्त तुम्हको ग्रहण करता हूँ, देवगणोंका वृत्तिकारक जानकर
 इन्द्रावरुण देवता की प्रीतिके निमित्त यज्ञकी निर्विघ्न समाप्तिके
 निमित्त तुम्हको ग्रहण करता हूँ, देवगणोंका वृत्तिकारक जानकर
 इन्द्र और बृहस्पति देवता की प्रीतिके निमित्त तुम्हको ग्रहण करता
 हूँ, यज्ञकी निर्विघ्न समाप्तिके निमित्त तुम्हको ग्रहण करता हूँ,
 (देवाव्यं, इन्द्राधिष्णुभ्याम्, यज्ञस्य, आयुषे, त्वा) देवताओंका
 वृत्तिकारक जानकर इन्द्र और विष्णुदेवताकी प्रीतिके निमित्त यज्ञ
 की निर्विघ्न समाप्तिके निमित्त तुम्हको तीसरे अंशको ग्रहण करता हूँ २३

मूर्धानंशिवो अरतिस्पृथिव्या वैश्वानरमृत आ-
जातमग्निम् । कविं स्रम्राजमतिथिञ्जना-
मासन्नापात्रञ्जनयन्त देवाः ॥ २४ ॥

इसका भरद्वाज ऋ० आर्षी त्रि० छं० वैश्वानर दे० । मंत्रार्थ-
(देवाः, दिवः, मूर्धानं, पृथिव्याः, अरतिम्, वैश्वानरम्, ऋते,
आजातम्, कविं, सम्राजम्, जनानां, अतिथिं, अग्निं, आपात्रं,
अजनयन्त) देवताओंने दुलोकके मस्तकस्वरूप सूर्यरूपसे प्रका-
शित पृथिवीके सीमास्वरूप जाठराग्निरूपसे समस्त नरलोक के
हितकारी यज्ञ में अरणीद्वयसे उत्पन्न, अविचल तथा दीप्तिमान्,
क्रान्तदर्शी, भक्तों के सम्मुख होनेवाले, नक्षत्रमण्डलीमें सम्राट्
यज मानादि समस्तजनोंके अतिथिवत्, इविसे आदरणीय इस-
क्षाग्निकी मुख्यपात्र चमस करके प्रकट किया ॥ २४ ॥

उपयामगृहीतोसि ध्रुवोसि ध्रुवाक्षितिध्रुवाणां-
न्ध्रुवतमोच्युतानामच्युतक्षित्तम एप ते योनि-
वैश्वानराय त्वा । ध्रुवन्ध्रुवेण मनसा वाचा
सोममवनयामि । अर्थात् इन्द्र इन्द्रिशां सपत्नाः
समनसस्करन्तु ॥ २५ ॥

इस कं० में ४ मं० हैं । सबका भरद्वाज ऋ० । छं० १ निचृ-
दार्प्यनु० २ या० त्रि० ३ निच्युद्दसाम्नीवृ० ४ निच्युदार्पीगा०
और दे० १, २, ३, ध्रुव, ४ इन्द्र है । मंत्रार्थ-हे सोम ! तुप
(उपयामगृहीतः, असि, ध्रुवक्षितः, ध्रुवाणां, ध्रुवतमः, अच्युतानां
अच्युतक्षित्तमः, ध्रुवः, अक्षि) उपयामपात्र में गृहीत हो स्थिर
निवासवाले समस्त गृह नक्षत्र मण्डलकी अपेक्षा अत्यन्त अचल
तथा च्युतिरहित पात्रमें निवास करनेवाले, ध्रुवनामसे प्रसिद्ध हो
ध्रुवदेवके प्रीति के निमित्त तुमको ग्रहण करता हूँ । हे ध्रुवग्रह !
(एपः, ते, योनिः, वैश्वानराय, त्वा, ध्रुवेण, मनसा, वाचा,
ध्रुवसोमं, अवनयामि) यह वेरा स्थान है, समस्त नरलोक के
हितकारी देवकी प्रीति के निमित्त तुमको इस स्थान में स्थापन

करता हूँ, स्थिर मन और बाणीसे इस ध्रुवग्रहमें स्थित सोमको होतृमचस पात्रान्तरमें सिंचन करता हूँ, (अथ, आ, इन्द्रः, इत् नः, विशः, असपत्नाः, समनसः, करव) इसके अनन्तर इन्द्र देवता ही हमारी प्रजाको शत्रुशून्य स्थिरमग्न करे ॥ २५ ॥

यस्ते दृप्स स्कन्दति यस्ते अथशुर्ग्रावच्युतो
धिपण्योरूपस्थात् । अथ्वर्योर्वा परि वा यः
पवित्रात्तन्ते जुहोमि मनसा वपट्कृतं स्वाहा
देवानामुत्क्रमणमसि ॥ २६ ॥

इस कं० में १ मं० है । सबका देवश्रवा ऋ० है । छं० १ भूरिगा० त्रि० २ दैव्यु०, ३ आणु० जाग० और देवता १, सोम २ अग्नि, ३ चत्वाल मंत्रार्थ—हे सोम (ते, यः, दृप्सः, स्कन्दति, यः ते, अंशुः, ग्रावच्युतः, धिपण्योः, उपस्थात्, वा, अथ्वरयोः, वा, यः, पवित्रात्, परितं, मनसा, वपट्कृतं, स्वाहा, जुहोमि) तुम्हारा, जो, किञ्चित् रस, पात्र में करते समय भूमि में पतित होता है, और जो तुम्हारा खण्ड अधिपत्रकाल में पत्थर द्वारा कण्ठन करते करते ग्रावच्युत होकर इधर उधर उड़ता है और जो तुम्हारा अंश रस अधिपवण फलक के मध्य से गिरता है या अथर्व्यु के व्यवहार समयमें जो कुछ नष्ट हुआ है, या जो पवित्रता से रिकल रसविन्दु भूमिमें पतित हुई है, हे सोम तुम्हारे यह सब अंश मनसे ग्रहण कर वपट्कारपूर्वक स्वाहाकारपूर्वक आहुति प्रदान करता हूँ हे चत्वाल तुम (देवानां, उत्क्रमणम्, असि) देवताओंके स्वर्गगमनके सोपान हो ॥ २६ ॥

प्राणाय मे वर्चोदा वर्चसे पवस्व व्यानार्य मे
वर्चोदा वर्चसे पवस्वोदानार्य मे वर्चोदा वर्चसे
पवस्व वाचे मे वर्चोदा वर्चसे पवस्व क्रतू द-
क्षाभ्याम्मे वर्चोदा वर्चसे पवस्व आत्राय मे
वर्चोदा वर्चसे पवस्व चक्षुभ्याम्मे वर्चोदम्री व-
र्चसे पवेधाम् ॥ २७ ॥

इस कं० में ७ मं० हैं । सबका देवथवा ऋ० छं० १ आसुर्यनु० २, आसुर्यनु० ३, आसुर्युष्णिक्, ४ साम्नी, गायत्री ५ आसुरी गा० ६ आसु० ७ आसुर्यु० । मंत्रार्थ—यह ग्रह यज्ञ के प्राण हैं इसकारण प्राणरूपसे स्तुति करते हैं, हे उपांशु ग्रह ! जिस कारण से कि तुम स्वभावसे (वर्चोदाः, मे, प्राणाय, वर्चसे, पवस्व) तेजके देनेवाले हो इसकारण मेरे हृदयमें स्थित प्राणवायु में तेज बढ़ानेके निमित्त प्रवृत्त होओ । हे उपांशु सवन ! तुम स्वभावसे ही (वर्चोदाः, मे, व्यानाय, वर्चसे, पवस्व) कान्ति देनेवाले हो, मेरे व्यानवायुसम्बन्धी कान्तिके बढ़ाने के निमित्त प्रवृत्त होओ, हे अन्तर्याम ग्रह जिसकारणसे कि तुम (वर्चोदाः, मे, उदानाय, वर्चसे) कान्ति देनेवाले हो मेरी उदानवायुसम्बन्धी कान्तिके बढ़ानेके निमित्त प्रवृत्त होओ, हे इन्द्रवायव ग्रह तुम स्वभावसे ही (वर्चोदाः, मे, वाचे, वर्चसे) कान्तिप्रद हो, मेरी वाग्यसम्बन्धी कान्तिके बढ़ानेके निमित्त प्रवृत्त होओ, हे मैत्रावरुण ग्रह तुम स्वभावसे (वर्चोदाः, मे, ऋतू, दक्षाभ्यां, वर्चसे पवस्व) कान्ति देनेवाले हो मेरे कामना और समृद्धितया कार्य निपुणता सम्बन्धी कान्तिके बढ़ाने के निमित्त प्रवृत्त होओ । हे आश्विन ग्रह तुम स्वभावसे ही (वर्चोदाः, मे, श्रोत्राय, वर्चसे, पवस्व) कान्ति देनेवाले हो मेरे श्रोत्रेन्द्रियकी कान्तिदानके निमित्त प्रवृत्त होओ हे शुक । और मंथिग्रह जिसकारण कि तुम (वर्चोदाः, मे, चक्षुर्भ्याम्, वर्चसे, पवेथाम्) स्वभावसे ही कान्तिप्रद हो मेरी नेत्रसम्बन्धी कान्तिके बढ़ानेके निमित्त प्रवृत्त होओ २७

आत्मने मे वर्चोदा वर्चसे पवस्वौजसे मे वर्चोदा
वर्चसे पवस्वार्युपे मे वर्चोदा वर्चसे पवस्व वि-
द्वर्षाभ्यां मे प्रजाभ्यां वर्चोदमौ वर्चसे पवेथाम् ॥ २८ ॥

इस कं० में ४ मन्त्र हैं । सबका देवश्रवा ऋ० है । छं० १, २, ३ का आसुर्यनु० ४ भुरिगसाम्न्यु० और देवता सबका लिंगोक्त है । मंत्रार्थ—हे आग्रयण ग्रह ! (वर्चोदा, मे, आत्मने,

पवस्व) तुम स्वभावसे ही कान्तिप्रद हो, मेरी आत्मसम्बन्धी कान्तिके देने को प्रवृत्त होओ हे सव्यग्रह ! (वर्षोदाः, मे, आजसे वर्षसे, पवस्व) तुम स्वभावसे ही कान्तिप्रद हो मेरे शरीरादिवल सम्बन्धी कान्तिकी वृद्धि करनेको प्रवृत्त होओ, हे ध्रुवग्रह ! (वर्षोदाः, मे, आयुषे, वर्षसे, पवस्व) स्वभावसे कान्ति देनेवाले हो मेरी आयुःसम्बन्धी कान्ति की वृद्धि करनेको प्रवृत्त होओ हे पूतभृत् ! आहवनीय ग्रह ! तुम स्वभावसे (वर्षोदसौ, मे, विश्वाभ्यः, प्रजाभ्यः वर्षसे, पवस्व) कान्तिप्रद हो, मेरी सम्पूर्ण प्रजाधर्मों को कान्ति देने को प्रवृत्त होओ ॥ २८ ॥

कौंसि कलमोसि कस्यांसि को नामांसि । यस्य
ते नामामन्महि यन्त्या सोमेनातीतृपाम भूर्भुवः
स्यः सुप्रजाः प्रजाभिः स्याधंसुवीरौ वीरैः सु-
पोपः पोपैः ॥ २९ ॥

इस कं० में २ मं० हैं । सवकां देवभुवा ऋ० है । छं० आर्ची पं० २ भुरिगसा० पं० और सवका प्रजापति देवता है । मंत्रार्थ- हे द्रोणकलश ! तुम (कः, अंसि, कलमः, अंसि, कस्य, आसि, कः, नामांसि, यस्य, ते, नाम, अमन्महि, यं, त्वा, सोमेन, अती- तृपाम) कौंग प्रजापति हो कौनसे अतिशय वा बहुतों के मध्यमें हो किस प्रजापति के हो, क्या नाम है, जिससे तेरे नामको हमजानें जिस तुमको जानकर सोमरस से वृत्त करचुके हैं, क्या तुम बड़ी हो, तुम हमको नाम बताकर कामनासे वृत्त करो (भूर्भुवः, स्वः, प्रजाभिः, सुप्रजाः, स्याम्) हे अग्नि ! वायु और सूर्य ; आपके प्रसादसे मैं प्रजाओंसे अच्छी प्रजावाला होऊँ (वीरैः, सुवीरैः, पोपैः, सुपोपः) वीरतायुक्त पुत्र पौत्रादि लाभ करके सुपुत्रवान्, विख्यात होऊँ, उत्कृष्ट धन संपत्तिसे प्रसिद्ध होकर अच्छी संपत्ति वाला विख्यात होऊँ ॥ २९ ॥

उपयामगृहीतोमि मर्धवे त्वोपयामगृहीतोमि
माधवाय त्वोपयामगृहीतोमि शक्राय त्वोप-

यामगृहीतोसि शुचये त्वोपयामगृहीतोसि न-
 भसे त्वोपयामगृहीतोसि नभस्याय त्वोपयाम-
 गृहीतोसिपे त्वोपयामगृहीतोस्यूर्जे त्वोपयामगृही-
 तोसि सहसे त्वोपयामगृहीतोसि सहस्याय त्वो-
 पयामगृहीतोसि तपसे त्वोपयामगृहीतोसि
 त्वस्याय त्वोपयामगृहीतोस्यध्वसस्पतये त्वा ॥३०॥

इस कं० में १२ मं० है, सबका देवश्रवा ऋषि है । छं० १,

२, ३, ४, ५, ६, ११ का साम्नी गा० ६, १०, १२, का आसु-
 र्यनु० ७, ८ का याजुषी पं०, १३, का आसुर्युष्णिक् और सबका
 देवता ऋतु है । मंत्रार्थ-हे मयम ऋतुग्रह (उपयामगृहीतः, आसि
 मधवे, त्वा,) तुम उपयाम पात्रमें गृहीत हुए हो मधु देवताकी प्रीति
 के निमित्त तुमको ग्रहण करता हूँ-हे द्वितीय ऋतुग्रह (उपयाम
 गृहीतः, आसि, माधवाय, त्वा) तुम उपयाम पात्रमें गृहीत हुए
 हो, वैशाख की सन्तुष्टि के निमित्त तुमको ग्रहण करता हूँ-हे
 तृतीय ऋतुग्रह ! (उपयामगृहीतः, आसि, शुक्राय, त्वा) तुम
 उपयाम पात्रमें गृहीत हुए हो ज्येष्ठके निमित्त तुमको ग्रहण करता हूँ
 हे ऋतुग्रह (उपयामगृहीतः, शुचये, त्वा) तुम उपयाम पात्रमें गृहीत
 हुए हो, आषाढ मासके निमित्त तुमको ग्रहण करता हूँ-हे पंचम ऋतु-
 ग्रह (उपयामगृहीतः, आसि, नभसे, त्वा) उपयाम पात्रमें गृहीत हो
 आश्विन मासके निमित्त ग्रहण करता हूँ-हे षष्ठ ऋतुग्रह ! तुम (उपयाम
 गृहीतः, आसि, नभस्याय, त्वा,) तुम उपयाम पात्रमें गृहीत हो भाद्र-
 सासके निमित्त तुमको ग्रहण करता हूँ-हे सप्तमग्रह (उपयामगृहीतः,
 आसि, इषे, त्वा) उपयाम पात्रमें गृहीत हो आश्विन मासके निमित्त
 तुमको ग्रहण करता हूँ-हे अष्टमग्रह (उपयामगृहीतः, ऊर्जे, त्वा,)
 तुम उपयाम पात्रमें गृहीत हो कार्तिकमासके निमित्त तुमको
 ग्रहण करता हूँ हे नवम ऋतुग्रह (उपयामगृहीतः, आसि, सहसे,
 त्वा) तुम उपयामपात्र द्वारा गृहीत हो मार्गशीर्ष के निमित्त
 तुमको ग्रहण करता हूँ हे दशम ग्रह (उपयामगृहीतः, आसि, सह-

स्याय, त्वा) तुम उपयाम पात्र द्वारा गृहीत हो पौषमासके निमित्त तुमको ग्रहण करताहूँ—हे एकादशग्रह (उपयाम गृहीतः, असि, तपसे, त्वा,) तुम उपयाम पात्रमें गृहीत हो माघ मासके निमित्त तुमको ग्रहण करताहूँ हे द्वादश ऋतुग्रह ! (उपयाम गृहीतः, असि, तपस्याय, त्वा) तुम उपयाम पात्रमें गृहीत हो फल्गुन मासके निमित्त तुमको ग्रहण करताहूँ हे त्रयोदश ग्रह उपयाम गृहीतः, असि, अथैहत्तरतये, त्वा) तुम उपयामपात्र द्वारा गृहीत हो पापके अधिपति मंगमासके निमित्त तुमको ग्रहण करताहूँ ॥ ३० ॥

इन्द्राग्नी आगतं धूम्रं तद्गुणितं भिर्भो वरेण्यम् ।

अस्य पातन्धियेषिता । उपयामगृहीतोऽसिन्द्रा-

ग्निभ्यान्त्वैप ते योनिरिन्द्राग्निभ्यान्त्वा ॥ ३१ ॥

इस कं० में २ मं० हैं । सबका विश्वामित्र ऋ० है । छं० १ निचृदा० गा० २ शार्पधनु० और देवता १ इन्द्राग्नी, २ ग्रह । मंत्रार्थ- (इन्द्राग्नी सुम्, गीर्भिः, नभः, वरेण्यम्, आगतम्, धिया, अस्य, पातम्) हे इन्द्राग्नी देवताओ तुम अभिषेकण ऋक् यजुःसाम के मंत्रोंसे आदित्य की समान प्रार्थनीय, सोमरस पानके निमित्त आओ, यजमान की बुद्धि से प्रार्थनीय होकर तुम इस सोमरसके स्वभाग को पान करो, (उपयामगृहीतः, असि, इन्द्राग्निभ्यान्त्वा) हे चौबीसवें ग्रह तुम उपयाम पात्रमें गृहीत हो इन्द्राग्नी देवता की प्रीतिके के निमित्त तुमको ग्रहण करताहूँ हे इन्द्राग्नी ग्रह (एषः, ते, योनिः, इन्द्राग्निभ्यां त्वा) यह तुम्हारा स्थान है इन्द्राग्नी देवताकी प्रीति के निमित्त तुमको इस स्थान में स्थापन करताहूँ ?

आ घ्रा ये अग्निमिन्द्रो स्तृणन्ति वह्निरानुपक् ।

धेपामिन्द्रो गुवा सखा । उपयामगृहीतोऽस्यग्नी-

न्द्राभ्यान्त्वैप ते योनिरग्नीन्द्राभ्यान्त्वा ॥ ३२ ॥

इस कं० में २ मंत्र हैं । सबका विशोक ऋषि है । छं० १ आर्षी गा० २ आर्च्युष्णिक् और दे० १ अग्नीन्द्र २ ग्रह है । मंत्रार्थ- (ये, आग्नेम्, आइन्वते, आनुपक्, वह्निः, स्तृणन्ति, धेपाम्,

युवा, इन्द्रः, सखा, अथा) जो यजमान अग्निको इष्टि आदि यज्ञों में मज्जलित करते हैं और क्रमसे कुशाओंको विद्यात हैं और जिनके सदा तरुण इन्द्रनारायण सखा हैं वह सदा निष्पाप हैं (उपयामगृहीतः, असि, अग्नीन्द्राभ्याम्, त्वा, एपः, ते, योनिः, अग्नीन्द्राभ्याम्, त्वा,) हे सोम उनके यज्ञमें तुम उपयामपात्र से गृहीत हो, अग्नि इन्द्रदेवताओंके लिये तुम्हें स्वीकार करता है, हे सोम यह तेरा स्थान है अग्नि इन्द्र देवताओंके निमित्त तुम्हें स्थापन करता है ॥ ३२ ॥

ओमांसश्चर्पणीधृतो विश्वेदेवासु आगत ।
दाशुवाँसो दाशुपः सुतम् । उपयामगृहीतोसि
विश्वेभ्यस्त्वा देवेभ्य एप ते योनिर्विश्वेभ्यस्त्वा
देवेभ्यः ॥ ३३ ॥

इस कं० में २ मंत्र हैं । सबका मधुच्छंदा ऋ० । छं० १ आर्षी गा० २ आर्ची वृ० और देवता १ विश्वेदे० २ अह । मंत्रार्थ—(विश्वेदेवासः, ओमांसः, चर्पणीधृतः, सुतम्, दाशुपः, दाशुवांसः, आगत) हे विश्वेदेवा ! तुम सब, हमारे सबकार से रक्षक हो तथा मनुष्यों को पुष्ट करनेवाले हो मनुष्य तुम्हारे मसाद से ही पुष्ट होते हैं अभिपुनसंस्कार किये सोम को देनेवाले यजमान को फल देनेवाले तुम सोमान् के निमित्त आओ हे पंचविंशगृह (उपयामगृहीतः, असि, विश्वेभ्यः, देवेभ्यः, त्वा,) तुम उपयामपात्र में गृहीत हो विश्वेदेवा देवताओंकी प्रीति के निमित्त तुमको ग्रहण करता हूँ हे वैश्वदेवगृह (एपः, ते, योनिः, विश्वेभ्यः, देवेभ्यः, त्वा) यह आपका स्थान है विश्वेदेवा देवताओंकी प्रीति के निमित्त तुमको इस स्थानमें स्थापन करता हूँ ३३

विश्वेदेवासु आगत शृणुता मं इमं हवम् ।

एदम्वर्हिर्निर्पीदत । उपयामगृहीतोसि विश्वेभ्य-

स्त्वा देवेभ्य एप ते योनिर्विश्वेभ्यस्त्वा देवेभ्यः ॥ ३४ ॥

इस कं० में २ मं० हैं । सबका गृःसमद ऋ० छं० ? आर्ची
गा० २ आर्ची वृ० और देवता ? विश्वेदेवा २ ग्रह मंत्रार्थ-(विश्वे-
देवासः, आगत, मे, इमं, हवं, आशृणुत) हे विश्वेदेव देवताओं !
हमारे इस यज्ञ में आओ मेरे आह्वानको सबकार से श्रवण करो
(इदम्, वहिः, आनिपीदत) इस विस्तीर्ण कुशापर स्थित होओ,
शेषं पूर्ववत् ॥ ३४ ॥

इन्द्रं मरुत्व इह पाहि सोमं यथा शार्याते अ-
पिवः सुतस्य । तव प्रणीती तव शूर शर्मन्ना-
विवासन्ति कवयः सुयज्ञाः । उपयामगृहीतो-
सिन्द्राय त्वा मरुत्वत एव ते योनिरिन्द्राय
त्वा मरुत्वते ॥ ३५ ॥

इस कं० में २ मं० हैं । सबका विश्वामित्र ऋ० । छं० ?
आर्ची त्रिष्टुप् १ आप्युष्टिष्णु और देवता, १ विश्वेदेवा, २ ग्रह
मंत्रार्थ-(मरुत्वः, इन्द्र, यथा, शार्याते, सुतस्य, अपिवः) मरुत
देवताओंवाले हे इन्द्र ! जिसप्रकारवधे परिश्रम करनेवाले शर्याति
यज्ञमें अभिपुत्र सोमकं अंशोंको तुमने पिपा था, इसी प्रकारसे
(इह, सोमं, पाहि, शूर, तव, प्रणीती, सुयज्ञाः, कवयः, तव, शर्मन्
आविवासन्ति) इस हमारे यज्ञ में सोमकी रक्षा करो और पियो
हे विक्रान्तवीर तुम्हारी सुनीति और अनुज्ञा से श्रेष्ठ यज्ञ करनेवाले
दूरदर्शी, तुम्हारे मुखमद स्थानमें चिरकालतक तुम्हारी परिचर्या
करते हैं, हे प्रथमग्रह ! (उपयामगृहीतः, असि, मरुत्वते, इन्द्राय
त्वा) तुम इस उपयामपात्र में गृहीत हो, मरुत देवताओंसे युक्त
इन्द्र देवता की प्रीतिके निमित्त तुमको गृहण करता हूँ । हे प्रथम
मरुत्वतीय ग्रह ! (एव, ते योनिः, मरुत्वते, इन्द्राय, त्वा) तुम
इस उपयामपात्रमें गृहीत हो मरुत देवताओंसे युक्त इन्द्रदेवताकी
प्रीतिके निमित्त तुमको इस स्थानमें स्थापन करता हूँ ॥ ३५ ॥

मरुत्वन्तं वृषभं, वाष्टधानमकवारिन्दिव्यं
शासमिन्द्रम् । विश्वासाहमवसे नृतनायोयं
सहोदामिह तथष्ट्वेमा उपयामगृहीतोसीन्द्राय
त्वा मरुत्वन्त एष ते योनिरिन्द्राय त्वा मरुत्व-
न्ते । उपयामगृहीतोसि मरुतान्त्यौजसे ॥ ३६ ॥

इस कं० में ३ मं० हैं । सबका विश्वामित्र ऋ० है । इं० १
विराडार्पी २ आर्ष्युष्णिक ३ साम्युष्णिक और देवता १ इन्द्र २
३ ग्रह है । मंत्रार्थ—(मरुत्वन्तं, वृषभं, वाष्टधानं, अकवारिम्,
दिव्यम्, शासं, विश्वासाहं, सहोदां, नृतनाय, अवसे, उग्रं, तं,
इन्द्रं, इह, आहुवेम) मरुद्गणोंसे युक्त उचित समय जल वर्षानि
वाने, ग्रीहि धान्वादिक बढ़ानेवाले, उत्कृष्ट पेरव्यवान्, दुलोक
में रहनेवाले, दुष्टों के शासक, आलस्यरहित, विश्व के पालक,
बल देनेवाले, नूतन यजमान का रक्षण करने के निमित्त निरन्तर
उद्यत वज्रवाले उस इन्द्रको इस यज्ञमें रक्षा के निमित्त आह्वान
करते हैं । हे द्वितीय ग्रह तुम (उपयामगृहीतः, असि, मरुत्वन्ते,
इन्द्राय, त्वा, एष, ते, योनिः, मरुत्वन्ते, इन्द्राय, त्वा, उपयाम-
गृहीतः, असि) उपयाम पात्रम गृहीतहो, शेष अर्थ पूर्ववत् । हे
तृतीय मरुत्वन्तीय ग्रह ! (मरुत्वन्तां, योजसे, त्वा) मरुत देव-
ताओं के बलसम्पादन के निमित्त तुमको इस ऋतुग्रह में ग्रहण
करता हूँ ॥ ३६ ॥

सजोपां इन्द्र सगणो मरुद्भिः सोमंन्पिय वृत्रहा
शूर विद्वान् । जहि शश्रूषपसृधोनुदस्वाथा-
भंपङ्कणु हि विश्वतो नः । उपयामगृहीतोसी-
न्द्राय त्वा मरुत्वन्त एष ते योनिरिन्द्राय त्वा
मरुत्वन्ते ॥ ३७ ॥

इस कं० में २ मं० हैं । सबका विश्वामित्र ऋ० । इं० १ नि-
चूडार्पी त्रि० २ माजापत्या त्रि०, और देवता १ इन्द्र २ ग्रह
मंत्रार्थ—(शूर, इन्द्र, सजोपः, सगणः, वृत्रहा, विद्वान्,

सोमं, पिव, शम्नु, जहि) हे विद्वान्ता इन्द्र तुम हमारे यज्ञको प्रीतिसे सेवन करो वृष के मारने वाले सबकुछ जानने वाले मरु दूगणों के परिवारसहित सोमको पानकरो शम्नुओंको मारो (मृषः, अपनुदस्व, अय, नः, विश्वतः, अभयम्, कृणुहि) संग्राहसे शम्नुओंको निवृत्त करो, शम्नुनाशके अनन्तर हमको सब प्रकार से अभय कीजिये (उपयामगृहीतः, इत्यादि पूर्ववत्) हेगृह इत्यादि च्यारूपा पूर्ववत् ॥ ३७ ॥

मरुत्वान् इन्द्र वृषभो रणाय पिव सोममनुष्वधम् मदाय । आसिष्वस्व जठरे मध्वं ऊर्मिन्त्यधराजासि प्रतिपत्सुतानाम् । उपयामगृहीतोसीन्द्राय त्वा मरुत्वत प्रप ते योनिरिन्द्राय त्वा मरुत्वते ॥ ३८ ॥

इस कं० में २ मं० हैं । सबका विश्वामित्र ऋ० । छं० १ निचूदार्पां त्रि०, २ माजापत्या त्रि० । देवता १, इन्द्र, २ ग्रह मंत्रार्थ—(इन्द्र, मरुत्वान्, वृषभः, अनुष्वधम्, सोमं, मदाय, रणाय, आपिव, मध्वः, ऊर्मिन्, जठरे, आसिष्व) हे इन्द्र मरुद्वर्णों से संयुक्त जलके वर्षानेवाले तुम स्वघापूर्वक पुरोडाश धान्यमन्य दाधि पय लक्षणधाले सोमरसको वृषि के निमित्त और दैत्योंसे युद्ध के निमित्त पान कीजिये, इस मधुररसकी कवलोलको उदर में आसिष्वन करो (त्वं, प्रतिपत्सुतानां, राजा असि) तुम प्रतिपद् प्रभृति तिथियोंमें अभिपुत्र हूप सोमके राजा हो, हे ग्रह ! तुम (उपयामगृहीतः) उपयाम पात्रमें गृहीत इत्यादि पूर्ववत् ३८

महार इन्द्रो नृवदार्षपिप्रा उत्तस्त्रिवर्हा अग्निः सहोभिः । अस्मद्रयग्यायुषे वीर्यायोरुः पृथुः सुकृतः कर्तृभिर्भूत् । उपयामगृहीतोसि महेंद्राय त्वेष ते योनिर्महेन्द्राय त्वा ॥ ३९ ॥

इस कं० में २ मंत्र हैं । सबका मरुदाज ऋ० है । छं० १ भुरि गा०, २ साम्नी त्रि० और देवता १ माहेन्द्र २ ग्रह है । मंत्रार्थ—

राजा जिस प्रकार मजावर्ग की अभिलाषा पूर्ण करता है, तद्वत् (आचषिमाः, द्विवर्हाः, संहोभिः, अमिनः, उव, अस्मद्द्रवक, महान्, इन्द्रः, वीर्याय, वावृधे, उरुः, पृथुः, कर्तृभिः, सुकृतः, अभूत्) मनुष्योंके अभीष्ट पूर्ण करनेवाले, मकृति विकृतिरूप सोमयाग के बढ़ानेवाले, बलों करके उपमारहित तथा हमारे प्रति अनुकूल महा प्रभावशाली इन्द्र वीरकर्मके निमित्त वृद्धिको प्राप्त होता है, तथा यज्ञसे विस्तोर्ण, बलसे विस्तृग इन्द्र यजमानों द्वारा सत्कारित हुआ हमारी बलवीर्य की वृद्धि करे । हे चतुर्य ग्रह ! तुम (उपयामगृहीतः, आसि, महेन्द्राय, स्वा) उपयाम पात्रमें गृहीत हो, महेन्द्र देवता की प्रीतिके निमित्त तुमको ग्रहण करता हूँ, हे माहेन्द्र ग्रह ! (एपः, ते, योनिः, महेन्द्राय, त्वा) यह तुम्हारा स्थान है महेन्द्र देवताकी प्रीति के निमित्त तुम्हको इस स्थान में स्थापन करता हूँ ॥ ३९ ॥

महार् इन्द्रो य ओजसा पर्जन्यो वृष्टिमार इव ।
स्तोमैर्वत्सस्य वावृधे । उपयामगृहीतोसि महेन्द्राय स्वैप ते योनिर्महेन्द्राय त्वा ॥ ४० ॥

इस कं० में २ मंत्र हैं । सबका वत्स ऋ० है । छं० ? आर्षी गा० २ विराटार्षी गा० । देवता १ महेन्द्र २ ग्रह है मंत्रार्थ-(यः महान्, इन्द्रः, ओजसा, वृष्टिमान्, पर्जन्य, इव, वत्सस्य, स्तोमैः, वावृधे) जो महा प्रभावशाली इन्द्र तेजसे महान् वर्षावाले मेघ के समान मनसे कीहुई स्तुतियोंसे वृद्धि को प्राप्त होता है, हे ग्रह (उपयामगृहीतः) तुम उपयाममें गृहीत हो । पूर्ववत् ॥ ४० ॥

उदुत्पञ्जातवेदसन्देव्यं वहन्ति केतवः दृशे त्रि-
श्वाय सूर्ये स्वार्हा ॥ ४१ ॥

इसका मन्त्र ऋ०, भुरिगार्षी गा० छं०, सूर्य देवता है ॥ मंत्रार्थ (केतवः, त्यम्, जातवेदसं, देवं, सूर्यम्, विश्वाय, दृशे, उ, उद्वहन्ति, स्वाहा) किरणसमूह, उस प्रासिद्ध, सब पदार्थोंको जानने वाले, प्रकाशात्मक, सूर्यदेव को, इस समस्त विश्व के, प्रकाश

करने के निमित्त, वितर्क के साथ, प्रतिनियत ऊर्ध्व बहन करती हैं अर्थात् स्वर्ग में पहुँचाती हैं इन्हीं देव के उद्देश्य से दियाहुआ यह हावि भलीप्रकार गृहीत हो ॥ ४१ ॥

चिन्नन्वेवानामुदगादनीकञ्चक्षुर्मित्रस्य वरुण-
स्याग्नेः आमा यावापृथिवी अन्तरिक्षस्य
आत्मा जगतस्तस्युपस्य स्वाहा ॥ ४२ ॥

इसका कुत्स ऋ०, भुरिता० मि० छं०, सूर्य दे० । मन्त्रार्थ—
(चिन्नं, देवानां, अनीकं, मित्रस्य, वरुणस्य, अग्नेः, चक्षुः, जगतः,
तस्युपः आत्मा, सूर्यः, उदगात्, यावापृथिवी, अन्तरिक्षं, आमाः,
स्वाहा) यह कैसा आश्चर्य है कि देवताओं के जीवनाधार ब्रह्मा
विष्णु महेश रूपधारक परमेश्वर के नेनवत् प्रकाशवान् जंगम
और स्थावर जगत्के अनार्यामी सूर्य उदय को प्राप्तहुए, भूलोक
से सुलोक पर्यन्त अन्तरिक्ष को अपने तेज से पूर्ण करवा है उन
सूर्यदेव के निमित्त दीहुई आहुति भलीप्रकार से स्वीकृत हो ॥ ४२ ॥

अग्ने नयं सुपथां णये अस्मान्विश्वानि देव
वयुनानि विद्वान् । युयोख्यस्मजुहुराणमेनो
भूयिष्ठान्ते नम उक्ति विधेम स्वाहा ॥ ४३ ॥

इस मंत्र की व्याख्या ५ अ० १६ वें मन्त्र में होगई ॥ ४३ ॥

अयन्तो अग्निर्वरियस्कृणोत्ययमृधः पुर एतु
प्रभिन्दन् । अयं वाजाञ्जयतु वाजसातावपथि
शशूञ्जयतु जह्नीपाणः स्वाहा ॥ ४४ ॥

इस मन्त्र की व्याख्या अ० १ मं० १७ में होगई ॥ ४४ ॥

रूपेण वो रूपमभ्यागान्तुथो वो विडववेदा वि-
भजतु । आतस्य पथा प्रेतं चन्द्रदाक्षिणा वि स्वः
पश्य व्युन्तरिक्षं यतस्व सदस्यैः ॥ ४५ ॥

इस कं० में ३ मन्त्र हैं । सबका आङ्गिरस ऋ० । छं० १ प-
जाप० ज०, २ याजुष्यनुष्टुप्, ३ देवी त्रि०, और सबका दक्षिणा
देवता है । मन्त्रार्थ—(चन्द्रदाक्षिणाः, रूपेण, वः, रूपं, अभ्यागां,
विडववेदाः, तुयः, विभजतु,) सुवर्ण दक्षिणावली हे गौशोः में,

यजमानकी मूर्त्ति से, तुम्हारे, रूप को, प्राप्त हुआ हूँ, सर्वज्ञ, प्रकृत तुमको यथायोग्य विभाग करके ऋत्विजों के निमित्त प्रदान करै (ऋत्तस्य, यथा, प्रेत) यज्ञ के, मार्ग से, गमन करो । हे दक्षिणारूप संपूर्ण गौश्रो ! आज हम तुमको प्राप्त करके (स्वः विपश्य, अन्तारिक्षं, वि) स्वर्ग के देवयान मार्गको देखते हैं, अन्तारिक्ष पितृयान मार्ग को देखता हूँ । हे ऋत्विग्गण ! तुम इसप्रकार (यतस्व, सदस्यैः) यत्न करो कि जिसप्रकार सभासदों को यथाभाग पूर्ण होकर भी कुछ गोदक्षिणा शेष रहनाया । ४५ ॥

ब्राह्मणमथ विदेयम्पितृमन्तम्पैतृमत्यमृपिमाप्य-
यथमुधातुदक्षिणम् । अस्मद्राता देवत्रा गच्छ
प्रदातारमाविशत ॥ ४६ ॥

इस कं० में २ मंत्र हैं । सक्का आङ्गिरस ऋषि है । छं० १ आर्ची वृ०, २ आर्चीगा० और देवता १ लिंगोक्ता, २ दक्षिणा देव है । मंत्रार्थ—मैं (अथ, पितृमन्तम्, पैतृमत्यं, ऋपिं, आप्यं, मुधातुदक्षिणं, ब्राह्मणं, विदेयम्) आज विरुपात विद्वान् यशस्वी पितावाले, जनमान्य पितामहवाले, मंत्रों की ध्यारूपा करनेवाले ऋषियों में विरुपात, जिसके निकट सम्पूर्ण सुवर्णदक्षिणा संचय कीजाय ऐसे सर्वकुलगुणसंपन्न ब्राह्मण को मैं प्राप्त करूँ । हे सम्पूर्ण दक्षिणा ! तुम (अस्मद्राताः, देवत्रा, गच्छत, दातारं, प्राविशत,) हमारे द्वारा दीहुई । देवताओं से अधिष्ठित ऋत्विग्गण के समीप यथाभाग उपस्थित होओ और देवताओं को श्रुतकर, इस यज्ञ का फल देने के लिये दाता यजमान में प्रवेश करो ॥ ४६ ॥

अग्नये त्वा मह्यं वरुणो ददातु सोमृतत्वमंशी-
यायुर्वात्र एधि मयो मह्यं प्रतिग्रहीत्रे । रुद्राय
त्वा मह्यं वरुणो ददातु सोऽमृतत्वमंशीय प्राणो
वात्र एधि मयो मह्यं प्रतिग्रहीत्रे । बृहस्पतये
त्वा मह्यं वरुणो ददातु सोमृतत्वमंशीय त्वग्वात्र

एधि मयो मह्यं प्रतिग्रहीत्रे यमायत्वा मह्यं
वरुणो ददातु सोमृतत्वमंशीय हयो द्रात्र एधि
वयो मह्यंप्रतिग्रहीते ॥ ४७ ॥

इस कं० में ४ मं० हैं । सप्तका आङ्गिरस ऋ० है । छं० १
आर्ची त्रि० १ भुरिगार्ची त्रि० ३ निचूदार्पी ज०, ४ भुरिगार्ची
त्रि० और देवता १ हिरण्यं, २ गौ ३ वज्र, ४ अश्व है । मंत्रार्थ-
हे सुवर्ण ! (वरुणः, अग्नये, मह्यं त्वा, ददातु) वरुण देवता
अग्निरूपको प्राप्त हुए मेरे निमित्त तुमको प्रदान करे, इसप्रकार
से ग्रहण किये हुए सुवर्ण से (सः, अमृतत्वं, अशीय, दात्रे, आयुः
एधि, प्रतिग्रहीत्रे, मह्यं, मयः) वह मैं आरोग्यता प्राप्त करूँ, हे
सुवर्ण तुम दाताकी परमायुक्ती वृद्धि करो, प्रतिग्रह करने वाले
मुझको सुखकी प्राप्ति हो दे गौः ! (वरुणः, रुद्राय, मह्यं, त्वा, ददातु
सः, अमृतत्वं, अशीय, दात्रे, प्राणः, एधि मह्यं प्रतिग्रहीत्रे वयः)
वरुण देवता रुद्ररूप मुझे तुमको प्रदान करता है, वह मैं आरो-
ग्यता को प्राप्त हूँ तुम दाता के बल प्राणकी वृद्धि करो मुझ प्रति-
ग्रहीता के अन्नपशुकी वृद्धि करनेवाले हो, हे वज्र ! (वरुणः,
वृहस्पतये, मह्यं, त्वा, ददातु, सः, अमृतत्वम्, अशीय, दात्रे, त्वक्
एधि, प्रतिग्रहीत्रे, मयः) वरुण देवता वृहस्पतिरूप मेरे निमित्त
तुमको देता है, वह मैं तुमको प्राप्त करके अमृतत्व को प्राप्त करूँ,
तुम दाता की त्वगिन्द्रियशक्तिकी वृद्धि करो, प्रतिग्रहीता मेरे सुख
की वृद्धि करो । हे अश्व ! (वरुणः, यमाय, मह्यं, त्वा, ददातु. सः
अमृतत्वं, अशीय, दात्रे, हयोः, एधि, प्रतिग्रहीत्रे, मह्यं, वयः) वरुण
देवता यमरूप धर्मरूप मेरे निमित्त तुमको देता है वह मैं तुमको
प्राप्तकर आरोग्यताको प्राप्त करूँ दाता के यहां घोड़ोंकी वृद्धिकरो
प्रतिग्रह करनेवाले मेरी पशुसम्पत्ति की वृद्धि करो ॥ ४७ ॥

कौट्टात्कस्मा अट्टात्कामोद्विात्कामायादात् ।

कामो द्वाता कामः प्रतिग्रहीता कामैतत्तै ॥ ४८ ॥

इसका आङ्गिरस ऋषि माजापत्या त्रिषुप् छं० कामो देवता ।

मन्त्रार्थ (कः, अदात्, कस्मै, अदात्, कामाय, अदात्, कामः, दाता, कामः, प्रतिग्रहीता, काम, एतत्, ते,) कौन महात्मा ने दान किया किसके निमित्त प्रदान किया । यज्ञफल कामना ही के निमित्त दान किया कामना ही देनेवाणी है, अभिलाषा ही प्रतिग्रह करनेवाली है, हे अभिलाष अभिलाषा करनेयोग्य यह समस्त वस्तु तुम्हारी ही है ॥ ४८ ॥

इति शुक्लपञ्चमोऽद्वान्तर्गत याजसनेपि संहिता का सात्रवाद
सप्तम अध्याय समाप्त.

॥ अथ अष्टमोऽध्यायः ॥

जिसमें उपांशुग्रहआदि प्रधान हैं ऐसे सप्तम अध्याय में दक्षिणादान तक मन्त्र कहे । अब आठवें अध्यायमें तीसरे सबन के आदित्य एह आदि सम्बन्धी मंत्र कहे जायेंगे ॥

उपयामगृहीतोऽस्पादित्येभ्यस्तथा । विष्णोऽउरु-
गायैप ते सोमस्तथैरक्षस्य मा त्वा दधन् ॥१॥

इस कं० में ३ मं० हैं । सबका आक्षिरस ऋ० है । छं० १ याजुष्यनु०, २ दैवीपं० ३ साम्नीवृ० और देवता १, २, सोम, ३ विष्णु है । मंत्रार्थ—हे सोम ! तुम (उपयामगृहीतः, आसि) उपयाम पात्र में गृहीत, हो । हे सोम ! (आदित्येभ्यः, त्वा) आदित्यगणों की प्रीति के निमित्त, तुमको ग्रहण करता हूँ (विष्णो, उरुगाय, एपः, सोम, रक्षस्व, मा, दधन्) हे बहुस्तुत्य यज्ञपुरुष हे वही स्तुतिको प्राप्त होने वाले यह सोम, तुम्हारे निमित्त अर्पित है उस सोमको रक्षा करो रक्षा करने में तुमको अक्षुरदल पीडा न, देय ॥ १ ॥

कदाचन स्तरीरसि नेन्द्रं सश्वसि द्वाशुपे । उ
पोपे भघवन्तु श्वयइन्तु ते दानन्देयस्य पृच्यत
आदित्येभ्यस्तथा ॥ २ ॥

इस कं० में २ मं० हैं । सबका आक्षिरस ऋ० है । छं० १

दार्षी ऋ०, २ विराट् ब्राह्मणनु० और देवता सबका सविता है ।
 मंत्रार्थ (सवितः, अथ, अम्मभ्यम्, वामं साधीः श्वः, उ, वामप,
 उ,) हे जगत् के उत्पन्न करनेवाले ! आज, हमारे निमित्त, व-
 रणीय यज्ञफल को, मेरणा करो, अगले दिन भी, यज्ञफल को
 दीनिये (दिवे, दिवे, वामम्, वामस्य, भूरे, क्षपस्य, हि, देव;
 अया, धिया, वामपाजः स्याम) प्रतिदिन यज्ञफल को दीनिये
 संभजनीय विस्तीर्ण स्वर्गलोकनिवास की, सिद्धि के निमित्त,
 जिस से, हे देव, हम इस थय्यायुक्त बुद्धि से यज्ञफल के
 भोगनेवाले हों ॥ ६ ॥

उपयामगृहीतोसि सावित्रोसि चनोधाश्चनोधा
 अंसि चनो मयि धेहि । जिन्व यज्ञजिन्व
 यज्ञपतिम्भगाय देवार्यं त्वा सवित्रे ॥ ७ ॥

इसका भरद्वाज ऋ०, विराट् ब्राह्मणनु०, सविता देवता
 है । मंत्रार्थ—हे सोम ! तुम (उपयामगृहीतः, असि, सावित्रः,
 असि, चनोधाः चनोधाः चनः, मयि धेहि) उपयाम पात्र में गृ-
 हीत हो, हे सोमग्रह तुम सवितादेवतासम्बन्धी हो, अन्न के
 धारण करनेवाले अधिकतर अन्न के धारण करनेवाले हो इस
 कारण अन्न मुझको दो (यज्ञं, जिन्व, यज्ञपतिं, जिन्व, भगाय,
 सवित्रे, देवार्यं, त्वा) यज्ञ को प्रीति करो यजमान को प्रीति करो
 पेश्वर्यादि गुणयुक्त, सब के उत्पादक सविता देवता के निमित्त
 तुमको ग्रहण करता हूँ ॥ ७ ॥

उपयामगृहीतोसि सुशर्मांसि सुप्रतिष्ठानो
 बृहदुक्षाय नमः । विश्वेभ्यस्त्वा देवेभ्यं ऽप ते-
 योनिर्विश्वेभ्यस्त्वा देवेभ्यं ॥ ८ ॥

इस कं० में २ मंत्र हैं । सबका भरद्वाज ऋ० है । कं० १ नि-
 च्छट प्राजाप० ज०, २ याजु० ज० और देवता १ विश्वेदेवा २ ग्रह
 है । मंत्रार्थ—हे महावैश्वदेव ग्रह ! (उपयामगृहीतः, असि, सुशर्म
 सुप्रतिष्ठानः, नमः असि) उपयामपात्र में गृहीत हो, श्रेष्ठ कल्याण

की खान भलेमकार पात्र में स्थित यह अन्न है (विश्वेभ्यः दे-
वेभ्यः त्वा) विश्वेदेवा देवताओं की प्रीति के निमित्त तुमको
उपयामपात्र में ग्रहण करता हूँ । हे महावैश्वदेव ग्रह ! (एषः,
ते, योनिः) यह तुम्हारा स्थान है (विश्वेभ्यः, देवेभ्यः त्वा)
विश्वेदेवा देवताओं की प्रीति के निमित्त तुम को इस स्थान में
स्थापन करता हूँ ॥ ८ ॥

उपयामगृहीतोसि बृहस्पतिसुतस्य देवसोम
इन्द्रोरिन्द्रियावतः पत्नीवतः ग्रहान् अश्रद्ध्या-
सम् । अहस्पस्तात् अहमवस्ताद्यदन्तरिक्षन्तर्धु मे
पिताभूत् अहसूर्यमुभयता ददर्शाहन्तेवानां-
स्परमं गुहा यत् ॥ ९ ॥

इस कं० में ३ मं० हैं । सबका भरद्वाज ऋ० है । छं० १ प्राप्ती
गा० २, ३, आर्च्युष्णिक् और देवता १ सोम २, ३ का मजापति
रूपात्मा है । मंत्रार्थ—(देवसोम, उपयामगृहीतः, असि, बृहस्पति,
सुतस्य, ते, इन्द्रोः, इन्द्रियावतः, पत्नीवतः, ग्रहान् अश्रद्ध्यासम्)
हे दीप्यमान देव सोम तुम उपयामपात्रमें गृहीत हो, इसकारण
यज्ञकर्मवाले यजमानसे अभिपुत्र, तुम्हारे सम्बन्धी रसयुक्त बरिय-
वान्, पत्नीसंयुक्त तुम्हारे अनुग्रहसे, अन्यान्य उपांशु मभृति ग्रहों
को पूर्ण करता हूँ । (अहं, परस्तात्, अहं, अधस्तात्, यत्, अन्त-
रिक्षं, तत्, उ, मे, पिता, अहं, उभयतः, सूर्यं, ददर्श) मैंही नीचे
भूलाकादि में स्थित हूँ, जो मध्यवर्ती लोग हैं वह ही मुझ देह
धारी का पितृवत् पालक होता है, मैं परमरूप हुआ ऊपर नीचे
स्थित होकर, सूर्य को देखता हूँ (देवानां, यत्, परमं, गुहा, अहं)
देवताओं का जो अत्यन्त गोप्य हृदय है सो मैं हूँ ॥ ९ ॥

अग्ना इह पत्नीवत्सज्जुर्देवेन त्यष्टां सोमं भिव-
स्थाहा । प्रजापतिर्वपांसि रेतोधा रेतो मायि
धेहि प्रजापतेस्ते वृष्णां रेतोधसो रेतोधामंशीय १०

इस कं० में २ मं० हैं । सबका भरद्वाज ऋ० । छं० १ भुरि-

तुम शुभ्र यजमानमें धन पुष्टिको धारण करो हम ऋत्विगादिको सुन्दर सामर्थ्य से युक्त ब्रह्मतेज दो । हे प्रथम अतिप्राण ग्रह ! तुम (उपयामगृहीतः, असि, वर्चसे, अग्ने, त्वा) उपयाम पात्रमें गृहीत हो कान्तिप्रद अग्नि देवताकी प्रीति के निमित्त तुमको ग्रहण करताहूँ । हे प्रथम अतिप्राणग्रहः (एषः ते, योनिः, वर्चस्विने, अग्नेये त्वा) यह तुम्हारा स्थान है तेजःप्रद अग्निदेवताकी प्रीति के निमित्त तुमको इस स्थानमें स्थापन करता हूँ (वर्चस्विन्, अग्ने, त्वं, देवेषु, वर्चस्वान्, असि, अहं, मनुष्येषु, वर्चस्वान्, भूयासम्) हे विशिष्ट तेजोयुक्त अग्निदेव तुम देवताओं में अति दीप्तिमान् हो इस कारण तुम्हारे मसादसे मैं मनुष्यों में कान्ति युक्त आतितेजस्वी होजाऊँ ॥ १८ ॥

उत्तिष्ठन्नोजसा सह पीत्वी शिमे अवेपयः ।
सोमामिन्द्र चमूसुतम् । उपयामगृहीतोसिन्द्राय
त्वौजस एष ते योनिरिन्द्राय त्वौजसे । इन्द्रो-
जिष्टौजिष्टस्त्वन्देवेष्वस्योजिष्टोहममनुष्येषु
भूयासम् ॥ १९ ॥

इस कं० में ४ मंत्र हैं । सरका कुरुस्तुति ऋ० । छ० ।
आर्षी गा०, १ आसुर्यनुष्टु० ३ याजुषीत्रि० ४ आर्च्युष्टिण्
और देवता १ इन्द्र, २, ३ सोम०, ४ इन्द्र है । मंत्रार्थ (इन्द्र,
ओजसा, सह, उत्तिष्ठन्, चमूसुतम्, सोमं, पीत्वी, शिमे, अवेपयः)
हे इन्द्र ! तुम अपने बलके साथ उठते हुए अधिपवण में अभि-
पुत हुए सोमको पान करके अपनी ठोड़ी और नासिकाको कम्पित
करो हे द्वितीय अतिप्राण ग्रह ! तुम (उपयामगृहीतः, असि,
ओजसे, इन्द्राय, त्वा) उपयाम पात्रमें गृहीत हो बलवान् इन्द्र
देवकी प्रीति के निमित्त तुमको ग्रहण करताहूँ—हे द्वितीय अति-
प्राण ग्रह ! (एषः, ते, योनिः, ओजसे, इन्द्राय, त्वा) यह
तुम्हारा स्थान है बलवान् इन्द्र देवताकी प्रीतिके निमित्त तुमको
आसादन करताहूँ (ओजिष्ठ, इन्द्र, त्वं, देवेषु, ओजिष्ठः, असि,

मनुष्येषु, अहं, अोजिष्ठः, भूयासम्,) हे बलवन्तम् । इन्द्र देव !
तुम सब देवताओं में बलवान् हो तुम्हारे प्रसाद से मनुष्यों में
मैं अति बालवान् होऊँ ॥ ३९ ॥

अदृशमस्य केतवो विरश्मयो जनाँ१अनुं आजं-
न्तो अग्नयौ यथा । उपयामगृहीतोसि सूर्याय
त्वा भ्राजायैष ते योनिः सूर्याय त्वा भ्राजाय ।
सूर्ये आजिष्ठे आजिष्ठस्त्वन्देवेषुसि आजि-
ष्ठोहम्मनुष्येषु भूयासम् ॥ ४० ॥

इस कं० में ४ मन्त्र हैं । सबका प्रस्कण्व ऋ० । छं० १
आर्षी गा०, २ आसुरी गा०, ३ साम्नीगा०, ४ आर्षीगा० और
देवता १ सूर्य, २, ३, सोम, ४ ग्रह है (अस्य, केतवः, रश्मयः,
जमान्, अनु, वि, अदृशम्, यथा, आजन्तः अग्नयः) इस सूर्य
की, भद्राके हेतु सम्पूर्णपदार्यका ज्ञान करानेवाली संपूर्ण किरणें
प्राणियों के अनुगत विशेष कर दीखती हैं जिसप्रकार प्रज्वलित
अग्नि सर्वत्र भासती है । हे तृतीय अतिग्राह्यग्रह । (उपयाम
गृहीतः, असि, भ्राजाय, सूर्याय, त्वा) उपयामपान में गृहीतहो
दीप्तिमान् सूर्य की भीति के निमित्त तुमको ग्रहण करताहूँ । हे
तृतीय अतिग्राह्यग्रह (एषः, ते, योनिः, भ्राजाय, सूर्याय, त्वा)
यह तुम्हारा स्थानहै दीप्तिमान् सूर्यदेवकी तुष्टिके निमित्त तुमको
इस स्थानमें आसादन करताहूँ (आजिष्ठ, सूर्य, त्वं, देवेषु,
आजिष्ठः, असि, मनुष्येषु, अहम्, आजिष्ठः, भूयासम्) हे
प्रदीप्त सूर्य तुम सब देवताओंमें अतिदीप्तिमान् हो तुम्हारे प्रसाद
से मनुष्यों में मैं अतिशय दीप्तिमान् होऊँ ॥ ४० ॥

उदृत्यं ज्ञातर्षेदसं देवं धहन्ति केतवः । दृशे
विश्वाय सूर्यम् । उपयामगृहीतोसि सूर्याय
त्वा भ्राजायैष ते योनिः सूर्याय त्वा भ्राजाय ॥ ४१ ॥

इस कं० में ३ मं० हैं । सबका प्रस्कण्व ऋ० । छं० १ मितृ-
दार्षी गा०, २ आसुरी गा०, ३ साम्नी गा० और देवता

सूर्य, २, सोम हैं । मंत्रार्थ- (केतवः, त्वं, जातदेसं, यं, देवं सूर्यम् विश्वाय, दशा, उद्वहन्ति) मन्त्राकी हेतु किरणों, उस, सबके देखनेवाले, जिस देव, सूर्यको समस्तजगत्की दृष्टिदेने के निमित्त उद्वहन करती हैं (उपयामष्टीतः) पूर्ववत् व्याख्या जाननी ॥४१॥

आजिष कलशाम्महा त्वा विशन्तिवन्द्यः पुन-
रूर्जा निर्वर्त्तस्व सा नः सहस्रन्धुस्वोरु धारा
पर्यस्यती पुनर्मा विशतादृषिः ॥ ४२ ॥

इसका कुम्भरुविन्दु ऋ० है । स्वराड् यास्युपिण्क् छ० । गौ देवता है । मंत्रार्थ (महि, कलशं, आजिष, इन्द्वः, त्वा, आ-
विशन्तु, सा, ऊर्जा, पुनः, निर्वर्त्तस्व, नः, सहस्रं, धुस्व) हे पूज-
नीय, गौ ! तुम इस द्रोण कलशको घूँयो, यह सोम के सार तुम्हारी
नासारन्ध्र में प्रवेश करें, वह तुम श्रेष्ठरस दुग्ध के साथ फिर
हमारे माते निहत्त हो, इसप्रकार से स्तुति को प्राप्त हुई तुम, हम
को सहस्र संख्या के धन से पूर्ण करो, (उरुधारा, पर्यस्यती, रायिः,
पुनः, मा, आविशतात्) बहुत दूध की धारावाली दुधारी गायें
सया, धन सम्पत्ति, फिर हमारे घरको, प्राप्त हो ॥ ४२ ॥

इडे रन्ते हव्ये काम्ये चन्द्रे ज्योतेदिते सरस्वति
महि विभ्रुति । एता ते अघ्न्ये नामानि देवेभ्यो
मा सुकृतम्भूतात् ॥ ४३ ॥

इसका कुरुविन्दु ऋ० । आर्षी पं० छं० और गौ देवता है ।
मंत्रार्थ (इडे, रन्ते, हव्ये, काम्ये, चन्द्रे, ज्योते, अदिते, सरस्वति,
महि, विभ्रुति, अघ्न्ये, ते, एता, नामानि, देवेभ्यः, सुकृतम्,
मा, भूतात्) हे सबसे स्तुति को पानेवाली, सबकी दृष्टि में
रमणीय, यह मैं सब मनुष्य जिसका आह्वान करते हैं, देव
मनुष्य जिसकी कामना करते हैं, जिसको देख आन्हाद होता है,
प्रकाशमान पूर्ण अवयववाली अदीन दुग्धवती महामान्य अनेक
प्रकार की स्तुतिवाली अघ्न्य मारने के अयोग्य हे धेनु तुम्हारे
यह अतिशय गुणयुक्त नाम हैं इन नामों से आन्धान कीहुई तम

देवताओं के निमित्त इस हमारे सुन्दर कर्म को और इस कर्म करनेवाले मुझको देवताओं से कपन करो देवता हमारे इस कार्य को जानें ॥ ४३ ॥

धि न इन्द्र मृधो जहि नीचा यच्छ पृतन्यतः ।
यो अस्मात् अभिदासत्यधरङ्गमया तमः उपयाम-
मगृहीतोऽसिन्द्राय त्वा विमृध एप ते योनि-
रिन्द्राय त्वा विमृधे ॥ ४४ ॥

इस कं० में ३ मं० है । सर्वका भरद्वाजशास ऋ० । छं० १ भुरिगनु०, २ आसुर्युपिणक्, ३ याजुपीज० और देवता १ इन्द्र, २ ३ ग्रह है । मंत्रार्थ—(इन्द्र, नाः, मृधः, विजहि, पृतन्यतः, नीचा, यच्छ, यः, अभिदासति, अधरं, तमः, आगमय) हे इन्द्र ! हमारे संग्राम में शत्रुओं को विशेषकर जीओ, संग्राम की इच्छा कर सेना संग्रह करनेवाले शत्रुओंको नीचोंकी समान निग्रह करो, जो हमको क्लेश देता है उसको निकृष्ट अन्धकाररूप नरक को प्राप्त करो । हे महाव्रतीय इन्द्र ग्रह ! तुम (उपयामगृहीतः, आसि, विमृधे इन्द्राय त्वा) उपयाम पात्रमें गृहीत हो विशिष्ट संग्राम वाले इन्द्र देवता की सन्तुष्टि के निमित्त तुमको ग्रहण करता हूँ हे महाव्रतीय इन्द्र ग्रह ! (एपः, ते, योनिः, विमृधे, इन्द्राय, त्वा) यह तुम्हारा स्याम है विशिष्ट संग्राम वाले इन्द्र देवताकी प्रीति के निमित्त तुमको आसादन करता हूँ ॥ ४४ ॥

वाचस्पति विश्वकर्माणमृतये मनोजुषं पाजे
अद्याहुवेम । स नो विश्वानि ह्वनानि लोप-
द्विश्वशम्भूरवसे साधुकर्मा । उपयामगृहीतो-
सिन्द्राय त्वा विश्वकर्मेण एपते योनिरिन्द्राय
त्वा विश्वकर्मेण ॥ ४५ ॥

इस कण्ठि० में १ मंत्र है । सर्वका शासऋ० । छं० १ का भुरि० नि०, २ का सा० उ०, ३ का सा० गा० देवता १ का इन्द्र, २ का ग्रह ३ का लिङ्गोक्त है । मंत्रार्थ—(अद्या, पाजे, वाचस्पः

सिद्ध, मनोजुषं, विश्वकर्माणं, ऊतये, हुवेम, सः, विश्वशम्भूः, साधुकर्मा नः, विश्वानि, ह्यनानि, श्रवसे, जापत्) आज हम महाप्रतीय अन्न के विषयमें घाणियोंके पालक मनकी समान बेग वाले सृष्टिकर्ता को रक्षाके निमित्त पुकारते हैं, वह संसारका कल्याणकर्ता, सुन्दर कर्म करने वाला हमारे सकल हवगों को रक्षा के निमित्त सेवन करे (उपयामगृहीतः, आसि, विश्वकर्मणे, इन्द्राय, त्वा) हे इन्द्रग्रह तुम उपयामपात्रमें गृहीत हो, विश्वकर्मा इन्द्रकी तुष्टि के निमित्त तुमको ग्रहण करताहूँ (एपः, ते, योनिः, विश्वकर्मणे, इन्द्राय, त्वा) यह तुम्हारा स्थान है, विश्वकर्मा इन्द्रके निमित्त तुमको आसादन करताहूँ ॥ ४५ ॥

विश्वकर्मन्हविषा वर्धनेन ज्ञातारमिन्द्रमकृणो-
रवध्यम् । तस्मै विश्वाः समनमन्त पूर्वीत्यसुग्रो
विह्वयो यथासत् । उपयामगृहीतोसीन्द्राय
त्वा विश्वकर्मण एप ते योनिरिन्द्राय त्वा वि-
श्वकर्मणे ॥ ४६ ॥

इस कं० में ३ मं० हैं । सबका शास ऋ० । छं० ? सुरिगा०
प्रि०, २ साम्न्युणिक् ३ साम्नी गा० और देवता ? इन्द्र, २
३ ग्रहहै । मंत्रार्थ (विश्वकर्मन्, वर्धनेन, हविषा, इन्द्रम्, ज्ञातारं,
अवध्यम्, अकृणोः, तस्मै, पूर्वीः, विश्वाः, समनमन्त, यथा, अयं
उग्रः, विह्वयः, असत्) हे विश्वकर्मन् परमात्मन् । वर्धमान
हविषप्रदान द्वारा वर्द्धन के वाक्यों से प्रीति करने वाले तुमने इन्द्र
को जगत् का रक्षक, जिसको कोई न मारसकै ऐसा किया, इस
प्रकार इन्द्रके निमित्त पूर्वकाल की प्रजा महर्षि आदि प्रणाम
करते हुए, जिस प्रकारसे यह इन्द्र वज्र उठाये अनेक कार्योंमें
आन्वहानयोग्य हुआहै इस कारण सब प्रणाम करतेहैं हे परमात्मन्
आपके हविषामर्घ्य से इन्द्रका यह प्रभाव है (उपयामगृहीतः,)
हे ग्रह ! तुम उपयाम पात्रमें गृहीत हो पूर्ववत् ॥ ४६ ॥

उपयामगृहीतोस्यग्नये त्वा गायत्रच्छन्दसंगृहा-

मीन्द्राय त्वा त्रिष्टुप्छन्दसंगृह्णामि विश्वेभ्यस्त्वा

द्वेभ्यो जगच्छन्दसंगृह्णाम्यनुष्टुप् तेभिर्गुरः ॥ ४७ ॥

इस कं० में ४ मं० हैं। सबका देवा ऋ० । छं० ? स्वराढार्ची गा०, २ सा० गा० ३ आ० गा०, ४ देवी जग० और सबका अदाभ्य देवता है । मंत्रार्थ—हे प्रथम अदाभ्य ग्रह सोम ! (उपयाम गृहीतः, आसि, गायत्रच्छन्दसं, त्वा, आनये, गृह्णामि) तुम उपयाम पात्रमें गृहीत, हो गायत्री छन्दके वरणीय तुमको अग्नि देवताकी प्रीति के निमित्त ग्रहण करताहूँ (त्रिष्टुप्छन्दसं, त्वा, इन्द्राय गृह्णामि) उपयाम पात्रमें गृहीत त्रिष्टुप्छन्द से वरणीय तुमको इन्द्र देवता की प्रीतिके निमित्त ग्रहण करताहूँ, हे तृतीय अदाभ्य ग्रह ! तुम उपयाम पात्रमें गृहीत हो (जगच्छन्दसं, त्वा, विश्वेभ्यः, द्वेभ्यः, गृह्णामि) जगतीछन्दसे वरणीय तुमको सम्पूर्ण विश्वेदेवा देवताओं की प्रीति के निमित्त ग्रहण करताहूँ । हे अदाभ्य नाम से गृहीत सोम ! (अनुष्टुप्, ते, अभिर्गुरः,) अनुष्टुप्छन्द तुम्हारी स्तुतिके निमित्त है ॥ ४७ ॥

वैशीनान्त्वा पत्मन्नाधूनोमि कुकूननानान्त्वा
पत्मन्नाधूनोमि भन्दनानान्त्वा पत्मन्नाधूनोमि
मदिन्तमानान्त्वा पत्मन्नाधूनोमि प्रधुन्तमा-
नान्त्वा पत्मन्नाधूनोमि शुक्रन्त्वा शुक्र आधू-
नोम्यन्हो रूपे सूर्यस्य रश्मिर्षु ॥ ४८ ॥

इस कं० में ६ मंत्र हैं । सबका देवा ऋ० । छं० ? याजुषीपं०, २ याजुषीज०, ३ याजु० त्रि०, ४, ९, याजु० ज०, ६ भुरिग्साप्ती वृ० है । मंत्रार्थ—हे सोम (वैशीमां, पत्मन्, त्वा, आधूनोमि, कुकूननानाम्, पत्मन्, त्वा, आधूनोमि, भन्दनानां, पत्मन्, त्वा, आधूनोमि) इधर उधर धावमान मेघों के उदर में वर्तमान जो जल के समूह हैं उन सबके वर्षने के निमित्त तुम्हको कम्पित करता हूँ—हे सोम ! शब्द करतेहुए जगत् के कल्याणकारी मेघों के उदर में जो जल है उसके वर्षण के निमित्त तुम्हको कम्पित करता हूँ, हे सोम ! हमको अत्यन्त मसन्न करनेवाले जो

मेघों के उदर में जल है उनके वर्षने के निमित्त तुझको कम्पित करता हूँ, हे सोम ! (मंदिन्तमानां, पत्मन्, त्वा, धूनोमि) अत्यन्त वृष्टिकारी जो मेघों के उदर में जल है उनके वर्षने के निमित्त तुझको कम्पित करता हूँ (मधुन्तमानां, पत्मन्, त्वा, आधूनोमि) अमृतस्वरूप जो मेघोदक है तिनके भूमिपर वर्षण के निमित्त तुझको कम्पित करता हूँ—हे सोम (शुक्रं, त्वा, शुक्रे, आधूनोमि, अन्हः, रूपे, सूर्यस्य, रश्मिषु) अक्लिष्टकर्मा शुद्ध तुझको शुद्ध अक्लिष्ट कर्मवाले निग्राह्य लक्षणवाले जल में कम्पित करता हूँ दिन के रूप सूर्य की किरणों से कम्पित करता हूँ ॥ ४८ ॥

कुकुभश्च रूपं वृषभस्य रोचते बृहच्छुक्रः शुक्रस्य पुरोगाः सोमः सोमस्य पुरोगाः । यत्तं सोमादाभ्यक्षां जागृवि तस्मै त्वा गृह्णामि तस्मै ते सोम सोमाय स्वाहा ॥ ४९ ॥

इस कं० में २ मन्त्र हैं । सबका देवा ऋ० । छं० १ निचुं-
दापीं ज०, २ याजुपी पं० है और देवता सबका सोम है ॥ मन्त्रार्थ—हे सोम ! (वृषभस्य, कुकुभं, रूपं, रोचते, बृहत् शुक्रः, शुक्रस्य, पुरोगाः, सोमः, सोमस्य, पुरोगाः) श्रेष्ठ वर्षणकारी तुम्हारा, कुकुद् महत् आदित्य लक्षण, रूप मदीप्त होता है, महान्, शुद्ध आदित्य, शुद्ध सोमका पुरोगामी है, सोमही सोम का पुरोगामी है (ते, आदाभ्यं, जागृवि, यत्, नाम, तस्मै, त्वा, गृह्णामि) तुम्हारा अनुपहसित जागरणशील जो नाम है उस तुमको ग्रहण करता हूँ (सोम, तस्मै, ते, सोमाय, स्वाहा) हे सोम ! उस आप सोमरूप के निमित्त श्रेष्ठ होम हो ॥ ४९ ॥

अशिवत्वन्देव सोमाग्नेः मिथम्पाथोपीहि वशी
त्वन्देव सोमेन्द्रस्य मिथम्पाथोपीहस्मत्सखा

त्वन्देव सोम चिद्वेवान्देवानां मिथम्पाथोपीहि । ६० ।

इस कं० में १ है । सबका देवा ऋषि है । छं० १ आसुर्युत्पिण्क,

२ आसुरी गा०, ३ आर्च्युष्णिक् और देवता सवका सोम है ।
 मंत्रार्थ—(देव, सोम, उशिक, त्वं, अग्नेः, प्रियम्, पायः, अपीहि)
 हे सोम देवता ! तुमको पानेकी सब कामना करते हैं इस कारण
 तुम अग्निके प्रियखाद्य भावको प्राप्त होओ (देव, सोम, बशी,
 त्वं, इन्द्रस्य, प्रियं, पायः, अपीहि) देदीप्यमान सोम ! कान्ति-
 मान् तुम इन्द्रके प्रिय अन्नको प्राप्तहोओ (देव, सोम, अस्मत्,
 सखा, त्वं, विश्वेषां, देवानां, प्रियं, पायः, अपीहि) हे देवसोम
 हमारेबन्धु तुम सम्पूर्ण विश्वे देवाओंके प्रिय अन्नको प्राप्तहोओ ५०

इह रतिरिह रमध्वमिह धृतिरिह स्वधृतिः

स्वाहा । उपसृजन् धरुणंमात्रे धरुणो मात-

रुन्धयन् । रायस्पोषंस्मासु दीधरुत्स्वाहा ॥ ५१ ॥

इस कं० में २ मंत्र हैं । सवका देवाऋषि है । छं० १. प्राजाप-
 त्या वृ०, २ भुरिगार्च्युष्णिक् और देवता १ पशु, २ अग्नि है ।
 मंत्रार्थ—हे गोविन्द तुम्हारी (रतिः, इह, रमध्वम्, इह, धृतिः,
 स्वधृतिः, स्वाहा,) रति इस यजमानमें हो, इस यजमानमें तुम
 रमण करो इस यजमानमें तुम्हारा संतोषहो इसी के स्थान में
 स्वकीयों का संतोष हो यह आहुति भली प्रकार गृहीत हो
 (धरुणः, मात्रे, धरुणम्, उपसृजन्, मातरं, धयन्, अस्मासु रायः,
 पोषं, दीधरुत्, स्वाहा) धारण करनेवाला अग्नि पृथ्वीके धारण
 करनेवाले अग्निको समीपमें प्राप्त करताहुआ पृथ्वीको पीता
 हुआ हमको धन पशु पुत्र सुवर्गादि की पुष्टि प्रदान करे यह
 आहुति भलीप्रकार स्वीकृत हो ॥ ५१ ॥

सत्रस्य ऋद्धिरस्यगन्मज्योतिरमृता अभूम ।

दिवं पृथिव्या अद्धारुहामाविदाम देवान्स्वर्ग्योतिः ॥

इसका देवाऋषि, भुरिगार्ची वृ० छं० सोम देवता है । मंत्रार्थ
 उत्तर हविर्दान ! तुम (सत्रस्य, ऋद्धिः, असि, ज्योतिः, अगन्म,
 अमृता, अभूम, पृथिव्याः दिवम्, अध्यारुहाम, देवान्, अविदाम,
 ज्योतिः, स्वः) यज्ञ की समृद्धिरूप हो तुम्हारे मसादसे ही हम

यजमान आदित्य लक्षणवाली ज्योति का प्राप्त होकर भरणधर्म से रहित होने की आशा करते हैं, पृथ्वी से पुलोक को आरूढ़ हुए देवगण इन्द्रादि जानें, ज्योतिरूप स्वर्ग के देवोंने जानने की आशा करते हैं ॥ ५२ ॥

शुभन्तमिन्द्रापर्वता पुरोयुधा यो नः पृतन्या-
दपतन्तमिद्धंतं वज्रेण तन्तमिद्धंतम् । दूरे च-
स्तापं चत्सद्गहनं यदि नक्षत् अस्माकं शत्रून्प-
रिशूर विश्वतो दूर्मा दर्पाष्ट विश्वतः । ऋधुवः
स्वः सुपुत्राः प्रजाभिः स्याम सुवीरा वीरैः
सुपोषाः पोषैः ॥ ५३ ॥

इस कं० में ३ मं० हैं । सबका पक्षेप ऋ० । छं० १ आर्ष्यनु०,
२ विराट्दर्पां वृ०, ३ विरा० मा० पं० और देवता १ इन्द्र पर्वत,
२ इन्द्र, ३ विराट् पु० । मन्त्रार्थ—(पुरोयुधा, इन्द्रापर्वता, युवं, तं,
तं, तम्, इत्, अपहतं, वज्रेण, तन्तम्, इत्, हतं, यः, नः, पृतन्यात्,
शूर, यत्, गहनं, दूरे, चत्ताप, चत्सत्, इनक्षत्) आगे युद्ध करने
वाले, शत्रुओं के सम्मुख युद्ध करनेवाले इन्द्र और पर्वत, तुम
दोनों, उस उस शत्रुको और विशेषकर ही उस शत्रुका विनाश
करो, वज्र नामक अपने तीक्ष्ण आयुध से, उसी शत्रुका विशेष
करके, विनाश करो, जो शत्रु, हमसे, सेना द्वारा युद्ध करे, हे शूर
हे इन्द्र ! तुम्हारा वज्र, जब अत्यन्त गम्भीर वन में, दूर वर्तमान
दूरगये शत्रुके निमित्त, कामना करे जब उस दूर गए हुएको
प्राप्त करले (दर्मा, अस्माकं, विश्वतः, शत्रून्, परिदर्पाष्ट) विदा-
रण करने वाला वज्र, हमारे, सब ओर स्थित, सम्पूर्ण शत्रुओं
को, सब ओर से विदीर्ण करो (ऋधुवः, स्वः प्रजाभिः, सुपुत्रा,
वीरैः, सुवीरा, पोषैः, सुपोषाः, स्याम) हे अग्नि वायु सूर्यादि
आपके मसाद से हम, प्रजाओं द्वारा अच्छी प्रजावाले वीर
पुत्रोंसे, सुपुत्रवान्, उत्कृष्टसम्पत्ति लाभ करके तुम्हारे मसाद से
सुसम्पत्तिवाश्, विख्यातहो ॥ ५३ ॥

परमेष्ठुयभिधीतः मजापतिर्वाचि व्याहृताया-
मन्धो अर्च्येतः सविता सन्या विश्वकर्मा दी-
क्षायां पूषा सोमक्रयण्याम् ॥ १४ ॥

इस कं० में ६ मंत्र हैं । सर्वका वशिष्ठ ऋ० है । छं० १, ७, ९,
दैवीजगती २ याजुषी पं०, ३, ४ वैवीपं० है । देवता सर्वका लि-
ङ्गोक्त है । मंत्रार्थ—जिससमय यजमान सोमयाग करने को मंत्र
हो मन मनमें (अभिधीतः, परमेष्ठी, वाचि, व्याहृतायां, मजापतिः,
अर्च्यः, इतः, अन्धः) सोम चिन्ता कियाहुआ, परमेष्ठी होता है,
वाणी के, उच्चारण करने में, सोम मजापति नामक होता है ।
जिस काल में यजमान के अभिमुख, प्राप्तहुआ तब, अन्ध नाम
वाला होता है । सोम के (सन्या, सविता, दीक्षायां, विश्वकर्मा,
सोमक्रयण्याम्, पूषा) यथाभाग रक्षित होनेपर सविता नाम
होता है, दीक्षा में, सोमका, विश्वकर्मा नाम होता है, सोमक्र-
यणी गौ को लाने में सोम, पूषा नामवाला होता है ॥ १४ ॥

इन्द्रश्च मरुतश्च क्रयायोपोत्थितो सुरः पण्य-
मानो मित्रः क्रीतो विष्णुः शिपिविष्ट ऊरावा-
सन्नो विष्णुर्नरन्धिपः पौह्यमाणः ॥ ५१ ॥

इस कं० में १ मंत्र हैं । सर्वका वशिष्ठ ऋ० है । छं० १ आ-
सुर्यनुं०, २ वैवीज०, ३ वैवी वृ०, ४ याजुषी त्रिष्टुप्, ५ याजुषी
पं० है और सर्वका देवता लिंगोक्त है । मन्त्रार्थ(क्रयाय, उपो-
त्थितः, इन्द्रः, च, मरुतः च) सोम के क्रयार्थ उपस्थित होने में
सोम इन्द्र, और, मरुत नामवाला भी होता है (पण्यमानः,
असुरः, क्रीतः, मित्रः, उरौ, आसन्नः, शिपिविष्टः, विष्णुः, पौ-
ह्यमाणः, नरन्धिपः, विष्णुः) क्रय करने के समय सोम, असुर
संज्ञक है, मोल लियाहुआ सोम, मित्र संज्ञक होता है, यजमान
की गोदी में स्थित सोम, प्राणियों में मविष्ट विष्णु नामवाला
होता है, शकट में वहन करतेसमय सोम, जगत्संहर्षी वा
जगत्पालक, विष्णु नामवाला होता है ॥ ५१ ॥

विष्णुवरुणा, अगन्)जिन विष्णु और वरुणके, प्रभावसे, लोकठहरे
हैं, जो विष्णुवरुण, अपने बलोंसे, अत्यन्तवीर, अत्यन्त बलवान्
हैं, जो अपने बलोंसे अप्रतिम हैं, लोकत्रयका आधिपत्य करते हैं,
उन यज्ञमें प्रथमही आवाहन किए, विष्णु और वरुणके प्रति,
यह सोम गया ॥ ५९ ॥

देवान्दिवमग्न्यज्ञस्ततो मा द्रविणमष्टु मनुष्या
नन्तरिक्षमग्न्यज्ञस्ततो मा द्रविणमष्टु पितॄन्
पृथिवीमग्न्यज्ञस्ततो मा द्रविणमष्टु यद्वचं
लोकमग्न्यज्ञस्ततो मे भद्रमभूत् ॥ ६० ॥

इसका वासिष्ठ ऋषि अत्यष्टि छ० और यज्ञदेवताहै । मंत्रार्थ
(यज्ञः, दिवम्, देवान्, अगन्, ततः, द्रविणं, मा, अष्टु) यह,
यज्ञ, दुलोक में, देवताओंको पहुंचा उस स्वर्ग में स्थित यज्ञ से
विशिष्ट भोगका साधन धनरूप यज्ञका फल मुझको प्राप्तहो (यज्ञः,
मनुष्याम्, अन्तरिक्षं, अगन् ततः द्रविणं, मा, अष्टु) स्वर्गसे
उतरेत समय यह यज्ञ मनुष्यलोक में आता हुआ वृष्टिरूपसे
अन्तरिक्ष लोकमें प्राप्तहुआ, वहां स्थित यज्ञके फल से अनेक प्रकार
के धनकी प्राप्ति मुझको हो, (यज्ञः, पितॄन्, पृथ्वीं, अगन्, ततः,
द्रविणं, मा अष्टु,) यह यज्ञ धूमादि मार्गसे पितरों के प्राप्तहो
कर, भूलोकको, आया उसस्थानमें स्थित यज्ञके फलसे, धनादि
मुझको प्राप्तहो (यज्ञः, यं, कंच, लोकं, अगन्, ततः, मे भद्रं
अभूत्) यह यज्ञ, जिस, किसी भी, लोकको, गया हो, इसके
फलसे, मेरा, कल्याण हो ॥ ६० ॥

चतुस्त्रिंशत्तन्तवो ये विततिरे य इमं यज्ञं
स्वधया ददन्ते । तेषां चिच्छन्नं सस्येत ह धामि
स्वाहां घृमो अप्येतु देवान् ॥ ६१ ॥

इसका वासिष्ठ ऋषि वा० अष्टिण् छ० और धर्म देवताहै ।
मंत्रार्थ (ये, चतुस्त्रिंशत्, तन्तवः, इमं, यज्ञं, विततिरे, ये, स्वधया,

ददन्ते,तेषां, छिन्नं, उ एतद्, सन्दधामि,स्नाहा) जो, चौगसि यज्ञ का विस्तार करनेवाले प्रजापति आदि देवता, इस यज्ञको विस्तार देतेहैं जो, अन्नादि द्वारा पुष्ट करते हैं उन यज्ञके विस्तार करने वाले देवताओंका जो, अंश छिन्न हुआ है, उसको इस धर्मपात्र में संग्रह करताहूँ यह आहुति भली प्रकार गृहीत हो, इस घृतसे महावीर संहितहो (धर्मः, देवान्, अण्येतु) महावीर देवताओं को प्राप्त हो ॥ ६१ ॥

यज्ञस्य दोहो विततः पुरुत्रासो अष्टधा दिवं-
मन्वाततान । स यज्ञं धुक्व महि मे प्रजायाथ
राघसपोषं विश्वमायुरशीय स्वाहा ॥ ६२ ॥

इसका वसिष्ठ ऋषि स्वराट्वापी त्रि० छ० और यज्ञ देवताहै मंत्रार्थ—(यज्ञस्य, दोहः, सः पुरुत्रा, विततः, अष्टधा, दिवं, अन्वा-
ततान) यज्ञका जो, आहुतिपरिणाम हुआ, वह बहुत प्रकार से विस्तारको प्राप्त होताहुआ आठों दिशाओंमें फैलताहुआ दुलोक में व्याप्तहुआ है (सः, यज्ञः, मे, प्रजायां, महि, धुक्व, राघः, पोषं, विश्वं, आयुः, अशीय, स्वाहा) वह यज्ञ, मुझको सन्ततिमें, महिमाको मदानकरै, धनकी पुष्टि, सम्पूर्ण अवस्थाएँ आयु को पाऊँ यह आहुति भली प्रकार गृहीत हो ॥ ६२ ॥

आपवस्व हिरण्यवत्श्ववत्सोम वीरवत् वाज-
लोमन्तमाभर स्वाहा ॥ ६३ ॥

इसका कश्यप ऋषि, स्वराट्वापी गा० छ० और सोम देवताहै मंत्रार्थ (सोम, आपवस्व, हिरण्यवत्, अश्ववत्, वीरवत्, गोमन्तम्, वाजं, आभर, स्वाहा) हे सोम ! तू, आकर इस यूपस्तम्भको पवित्र करो, सुवर्णयुक्त, अश्वयुक्त, वीरयुक्त, होकर, धेनुयुक्त अन्न, हमको सब प्रकार से मदान करो, यह आहुति भली प्रकार गृहीत हो ॥ ६३ ॥

इति शुक्ल यजुर्वेदान्तर्गतं वाजसनेयिर्मेहिता का सातुवाद

अथ नवमोऽध्यायः ।

जिसमें अग्निष्टोम और मासंगिक मंत्र हैं ऐसे अष्टम अध्याय में आदित्य ग्रहादि सम्बन्धी मंत्र कहे । अथ नवम अध्याय में चौतीसवीं कण्डिका तक वाजपेय यज्ञ के मंत्र कहते हैं ॥

॥ हरिः ॐ ॥ देव सवितः प्रसुव यज्ञप्रसुव
यज्ञपतिम्भगाय । दिव्यो गन्धर्वः केतपूः

केतन्नः पुनातु वाचस्पतिर्वाजन्नः स्वदतु स्वाहा ॥ १ ॥

इसका वृहस्पति ऋ०, स्वराटार्पी ऋ० छ० और सविता देवता है । मंत्रार्थ—(देव, सवितः, यज्ञं, प्रसुव, यज्ञपतिं, भगाय, प्रसुव) हे दीप्यमान सब के मेरक परमात्मन् ! वाजपेय यज्ञ को, प्रवृत्त करो, यजमान को, अनुष्ठानरूप ऐश्वर्य के निमित्त, प्रेरणा करो, (दिव्यः, केतपूः, गन्धर्वः, नः, केतं, पुनातु) दीप्यमान, अन्न के पवित्र करनेवाले, रश्मियों के धारण करनेवाले सूर्यमण्डल में वर्तमान नारायण, हमारे, अन्न को, पवित्र करें (वाचस्पतिः, नः, वाजं, स्वदतु, स्वाहा) वाक्यके अधिपति प्रजापति, हमारे, हवि रूप अन्नको, आस्वादन करें, यह आहुति भलीभाँति गृहीत हो ॥ १ ॥

ध्रुवसदन्त्वा नृपदम्भनःसदमुष्यामगृहीतोसी-
न्द्राय त्वा जुष्टंङ्गृह्णाम्येप ते योनिरिन्द्राय
त्वा जुष्टं तमम् । अप्सुपदन्त्वा घृतसदं व्योम-
सदमुष्यामगृहीतोसीन्द्राय त्वा जुष्टंङ्गृहा-
म्येप ते योनिरिन्द्राय त्वा जुष्टं तमम् । पृथिवी-
सदन्त्वान्तरिक्षसदंदिशिसदं देवसदन्ताकस-
दमुष्यामगृहीतोसीन्द्राय त्वा जुष्टंङ्गृह्णाम्येप
ते योनिरिन्द्राय त्वा जुष्टं तमम् ॥ २ ॥

इस कं० में ९ मंत्र हैं । सवका वृहस्पति ऋ० । छ० १. वाजुपी,
२, ५, ८, सामान्यनु० ३, ४, ६, ९, आसुर्यनु० ७ निवृ० गा० और
देवता सवका इन्द्र है । मंत्रार्थ हे प्रथम अह ! तुम इन्द्र देवताकी

भौतिके निमित्त (उपयामगृहीतः, असि, ध्रुवसदं, नृपदं, मनः, सदं, त्वा, इन्द्राय, जुष्टं त्वा गृह्णामि, एपः, ते, योनिः, इन्द्राय जुष्टतमम्, त्वा) उपयाम पात्रमें गृहीत हो, स्थिर इस लोकमें स्थित मनुष्यों में स्थित मनमें स्थित, तुमको, इन्द्र देवताके, प्रिय तुमको, ग्रहण करताहूँ, यह तुम्हारा, स्थान है, इन्द्र देवताके अत्यन्त प्रिय तुमको इस स्थानमें स्थापन करताहूँ । हे द्वितीयग्रह ! तुम (उपयामगृहीतः, असि, अप्सुपदम्, घृतसदम्, व्योमसदम्, त्वा इन्द्राय, जुष्टं, त्वा, गृह्णामि, एपः, ते, योनिः, इन्द्राय, जुष्टतमम्, त्वा) उपयाम पात्रमें गृहीत हो जलमें स्थित, घृतमें स्थित, आकाशमें स्थित तुमको, इन्द्र देवताके, प्रिय, तुमको, ग्रहण करताहूँ, यह तुम्हारा, स्थान है, इन्द्र देवताके अत्यन्त प्रिय, तुमको, इस स्थानमें स्थापन करताहूँ । हे तृतीय ग्रह ! तुम (उपयामगृहीतः, असि, पृथिवीसदम्, अन्तरिक्षसदं, दिविसदं, देवसदम्, नाकसं, इन्द्राय, जुष्टं, त्वा, गृह्णामि, एपः, ते, योनिः, इन्द्राय, जुष्टतमं, त्वा) उपयाम पात्रमें गृहीत हो, पृथिवीमें स्थित अन्तरिक्षमें स्थित, अलोक में स्थित देवताओंमें स्थित दुःख रहित देवस्थानमें स्थित तुमको इन्द्रके प्रिय तुमको ग्रहण करताहूँ, यह तुम्हारा स्थान है, इन्द्रके, अत्यन्त प्रिय, तुमको इस स्थानमें स्थापन करताहूँ । २ ॥

अपाथं रसमुद्वेषस्यं सूर्ये सन्तं समाहितम् ।

अपाथं रसस्य घो रसस्तं घो गृह्णाम्युत्तम-

सुपयामगृहीतोसिन्द्राय त्वा जुष्टं गृह्णाम्येप

ते योनिरिन्द्राय त्वा जुष्टतमम् ॥ ३ ॥

इसका बृहस्पति ऋ०, निचूदा० अ० छ० और रस देवता है । हे चतुर्थ ग्रह ! (सूर्ये, समाहिते, सन्तं, उद्वेषं, रसं, अपां, रसस्य, यः, रसा, तं, उत्तमं, वः, गृह्णामि) सूर्य में, स्थापित, विद्यमान, ससप्त अन्न के उत्पादक, जलों के, सार का, जो, सार है, हे देवताओं, उस, श्रेष्ठ उत्कृष्ट मजापति को, ग्रहण । करता हूँ शेष

पूर्वमन्त्र के समान है ॥ ३ ॥

ग्रहां ऊर्जाहुतयो व्यन्तो विप्राय मतिम् ।
तेषां विशिप्रियाणां बोहमिषमूर्ज्जुं सभग्रभ-
मुपयामेहीतोसीन्द्राय त्वा जुष्टं गृह्णाम्येव ते
योनिरिन्द्राय त्वा जुष्टं तमम् सम्पृचौ स्थः सम्मा
भद्रेण पृष्टं विपृचौ स्थो विमा पाप्मना पृष्टं क्तम् ॥४॥

इस कं० में ५ मं० हैं । सबका ग्रहसाते ऋ० है । छं० १
निघृदापर्षनु०, २, ३, आसु० अनु० ४, ५, विराडामुर्षनु०
और देवता १, २, ४, ५, का ग्रह ३ इन्द्र है । मंत्रार्थ (ग्रहाः, ऊर्जा-
हुतयः, विप्राय, मति, व्यन्तः, तेषां, विशिप्रियाणां, वः इषम्,
ऊर्ज्ज, अहं, सभग्रभम् गृह्णामि) है सम्पूर्णग्रहो ! अन्तरसका
आव्हान करनेवाले तुम, बुद्धिमान् यजमान के निमित्त, विशिष्ट
बुद्धि को प्राप्त करानेवाले हो, उन, यजमानों के भिय, तुम्हारे,
सम्बन्धी अन्न, रस को, मैं सम्यक् प्रकार से ग्रहण करता हूँ । हे
पञ्चम ग्रह ! (उपयामगृहीताः, असि, इन्द्राय, जुष्टं त्वा, एषः,
ते, योनिः, इन्द्राय, जुष्टं तमं, त्वा) तुम उपयामपात्रमें गृहीत,
होइन्द्र देवताके, प्रिय, तुमको ग्रहण करताहूँ—हे पञ्चम ग्रह
यह तुम्हारा स्थान है, इन्द्र देवताके, अतिप्रिय जानकर तुमको
इस स्थानमें स्थापन करताहूँ । हे सोम सुराग्रह जो कि तुम दोनों
(सम्पृचौ, स्थः मा, भद्रेण, सम्पृक्तम्) मिले हुए हो, सो तुम
दोनों, मुझको, कल्याण से, संयुक्त, करो, हे सोम सुराग्रह
तुम दोनों (विपृचौ स्थः,) वियुक्त, हो, (मापाप्मा विपृक्तम्)
मुझको पापाचरणसे पृथक् करो ॥ ४ ॥

इन्द्रस्य षड्भिरि वाजसास्त्वप्रायं वाजं सेत् ।

वाजस्यनु प्रसवे मातरं महीमदितिनाम च चंसा

करामहे । यस्यामिदं विश्वभुवनमाविवेश

तस्यान्नो देवः संविता धर्म साधिपत् ॥ ५ ॥

इस कं० में २ मं० हैं । सबका ग्रहसाते ऋ० । छं० १ आसु०

गाँ० २ विराडिति ज० और देवता १ का रथ २ कृषिबी सपिता हैं
 मंत्रार्थ—हे रथ । तुम (वाजसाः, इन्द्रस्य, वज्रः, आसि, अयं, त्वयां,
 वाजं, सेत्) अन्न देनेवाले हो, इन्द्रके वज्रहो यह वज्रमान तुम्हारी
 वज्रतुल्य सहायता से अन्नको प्राप्त हो । (वाजस्य, वसवे, नु,
 मातरं, आदिति, महीं, नाम, वचसा, करामहे) अन्न के अनुष्ठा
 में वर्धमान हम जिस माता, जगत् की निर्माण करनेवाली अदीन
 पूजनीय गसिद्ध भूमिको वेदवाक्यों द्वारा अनुष्ठा करते हैं (यस्यां
 इदं, विश्वं, भुवनं, आविवेश, देवः, सपिता, तस्यां, त, वर्म,
 साविपत्) जिसमें यह सम्पूर्ण संसार पविष्ट है, प्रकाशात्मक सब
 के भेरक परमात्मा तिस भूमिमें हमारी हृद्धारणाकी भेरणा करे ६

अप्स्वन्तरमृतमप्सु भेषजमपामुत प्रशस्ति-

ज्वश्वभाभयतं वाजिनः । देवीरापो पो घञ्जर्भिः

प्रतृप्तिः ककुन्मान्वावाजसास्तेनायं वाजं धिसेत् ॥१॥

इस क० में २ मंत्र हैं । सबका वृहस्पति ऋ०, छं० १ विरा-
 डाप्यु० २ निचू० पा०पं० है और देवता १ अश्व, २ आप है ।
 मंत्रार्थ—(अप्सु, अन्नः, अमृतं, उत्, अप्सु, भेषजं, अश्वा, वाजिनः,
 भवत्, अपां, प्रशस्तिषु) मन्त्रोंके मध्यमें अमृत स्थित है और जलों
 के मध्यमें आरोग्य और पुष्टिकारक औषधि स्थित है, हे अश्वो
 इत्त प्रकार से अमृत भेषज युक्त जलोंमें वेगवान् होओ, तथा
 जलोंके प्रशस्त भागोंमें स्नानके निमित्त भेषज करो । (देवीः,
 आपः, वः, यः, प्रतृप्तिः, ककुन्मान्, वाजसाः, जर्भिः, तेन, अयम्
 वाजम्, सेत्) हे दीप्यमान जलो ! तुम्हारी जो शीघ्र चलने वाली
 ककुद्के समान ऊँची अन्नकी देनेवाली, तरंगें हैं उनसे सिक्तहुआ
 यह अश्व, यजमानके इच्छितानुरूप अन्नको देने में समर्थ हो ॥१॥

वातो वामनो वा गन्धर्वाः मसाधिंशतिः । ते

अग्ने श्वयुञ्जन्ते अस्मिञ्ज्वमादुः ॥७॥

इसका वृहस्पति ऋ०, भुरिगाप्यु० छं० अश्व देवता है । मंत्रार्थ
 (वातः, वा, मनः, वा, सप्तविंशतिः, गन्धर्वाः, ते, अग्ने, अश्वः

अयुञ्जन्, ते, अस्मिन्, जवं, आदधुः) वायुं या मन या सत्ताईस
गंधर्व भूमिके धारण करेवाले नक्षत्र वे सब वातादि के प्रथम
अश्वको रथमें युक्त करते हुए वेही इस अश्वमें अपने २ वेगके
अंशको धारण करते हुए ॥ ७ ॥

वातरंधा भव वाजिन्युज्यमान इन्द्रस्येव
दक्षिणः प्रियैधि । युञ्जन्तु त्वा मरुतो विश्व-
वेदस आ ते त्वष्टा पत्सु जवन्दधातु ॥ ८ ॥

इसका बृहस्पति ऋ०, भुरिगार्पा मि० छं०, अश्व देवता है ।
मंत्रार्थ—(वाजिन, युज्यमानः, वातरंधाः, भव, दक्षिणः, इन्द्रस्य,
इव, प्रिया, पधि, विश्ववेदसः, मरुतः, त्वा, युञ्जन्तु, त्वष्टा, ते,
पत्सु, जवं, आदधातु) हे वेगवान् अश्व ! जुतेहुए तुम वायुके
समान वेगवान् हूजिये, दक्षिण भागमें स्थित हुए इन्द्रके अश्वकी
समान शोभासे युक्त होओ, सर्वज्ञ मरुत देवता, तुमको रथ में
नियुक्त करे त्वष्टा देवता तुम्हारे चरणों में वेगको स्थापनकरे ८

जुवो यस्तैवाजिन्निहितो गुहा यः श्येने परीतो
अचरच्च वाते । तेन नो वाजिन् बलवान् बलेन
वाज्जिच्च भव समने च पारयिष्णुः । वाजिनो
वाज्जितो वाजं धेस्रिष्यन्तो बृहस्पतेर्भागा-
मवजिघ्रत ॥ ९ ॥

इस कं० में २ मं० हैं । सबका वृ० ऋ० है । छं० १ आ० ज०,
२ आर्पा गायत्री और सबका देवता अश्व है । मंत्रार्थ—(वाजिन,
यः, ते, जवः, गुहानिहितः, यः, श्येने, परीतः, च, वाते अचरत्,
वाजिन, तेन, बलेन, बलवान्, नः, वाज्जित, च, समने, पारयिष्णुः)
हे अश्व ! जो तेरा वेग हृदयमें स्थापित है, जो श्येन पक्षीमें तुम्हारा
दिया वेग है, और वातमें जो वेग स्थित है । हे अश्व उस बल
करके बलवान् होतेहुए हमारे निमित्त अन्नके जीतनेवाले होओ
और संग्राम में शत्रुके सेनानिवेश का परामर्श करके हमारे निमित्त
प्रचुर अन्न जीतो (वाज्जित, वाजं, धेस्रिष्यन्तः, वाजिनः, बृह-

स्वतेः, भांगं, अवलिप्रत) अन्नके जीतनेवाले अन्नके प्रति जाते हुए हे अर्थो ! वृहस्पति के भाग चरुको सूँघो ॥ ९ ॥

देवस्यांहथ सवितुः सवे सत्यसवसो वृहस्पते-
रुत्तमन्नाकं रुहेयम् । देवस्यांहथ सवितुः सवे
सत्यसवस इन्द्रस्योत्तमन्नाकं रुहेयम् । देव-
स्यांहथ सवितुः सवे सत्यसवसो वृहस्पते-
रुत्तमन्नाकं रुहेयम् । देवस्यांहथ सवितुः सवे सत्य-
सवस इन्द्रस्योत्तमन्नाकं रुहेयम् ॥ १० ॥

इस कं० में ४ मं० हैं । सबका घृह० ऋ० छंद—१ त्रिचू०
ट, २ साम्निज०, ३ आर्ची वृ०, ४ भुरिसा० ज० और सबका
लिङ्गोक्त देवता है । मंत्रार्थ—(सत्यसवसः, सवितुः, देवस्य, सवे,
अहं, वृहस्पतेः, उत्तमम्, नाकं, रुहेयम्) सत्यप्रेरक सविता देव
की, अनुष्ठामें वर्तमान में वृहस्पति सम्बन्धी श्रेष्ठ स्वर्गमें आरोहण
कर्म । सत्यसवसः, सवितुः, देवस्य, इन्द्रस्य, उत्तमं, नाकं, रुहेयम्)
अनुल्लंघनीय प्रेरणावाले सवितादेवकी अनुष्ठामें वर्तमान में
इन्द्रसम्बन्धी उत्कृष्ट स्वर्ग कामनासे चक्र पर आरोहण करता हूँ ।
(सत्यसवसः, सवितुः, देवस्य, सवे, अहं, इन्द्रस्य,
उत्तमं, नाकं, अरुहम्) अनुल्लंघनीय प्रेरणावाले सविता देवकी प्रेरणा-
वश में वृहस्पति के उत्कृष्ट स्वर्गकी कामनासे इस रथचक्र पर
आरूढ हुआ (सत्यसवसः, सवितुः, देवस्य, सवे, अहं, इन्द्रस्य,
उत्तमं, नाकं, अरुहम्) अनुल्लंघनीय सविता देवताकी आष्ठामें
वर्तमान में इन्द्रके उत्कृष्ट स्वर्ग लाभकी कामना से इस चक्र में
बढ़ा हूँ ॥ १० ॥

वृहस्पते वाजंजय वृहस्पतये वाचं वदत वृह-
स्पति वाजंजापयत । इन्द्र वाजंजयेन्द्राय
वाचं वदतेन्द्रं वाजंजापयत ॥ ११ ॥

इस कं० में २ मं० हैं । सबका वृहस्पति अ० छं०—१ प्राजा०
श्रि० २ माजा० वृ० और देवता—१ वृह०, २ इन्द्र है । मंत्रार्थ—हे

दुन्दुभियो ! तुम (वृहस्पतये, वाचं, वदत, वृहस्पते, वाजं, जये, वृहस्पति, वाजम्, जापयत) वृहस्पतिके निमित्त इस प्रकार वचन को कही हे वृहस्पते ! तुम अन्नको जयकरो हे दुन्दुभियो ! तुम वृहस्पति को अन्न जय कराओ। हे दुन्दुभियो तुम (इन्द्राय, वाचं, वदत, इन्द्र, वाजं, जय, इन्द्रं, वाजं, जापयत) इन्द्रके निमित्त इस प्रकार वाणीको कही हे इन्द्र अन्नको जीतो तुम मी इन्द्रको अन्न जय कराओ ॥ ११ ॥

एषा वः सा सत्या संवागभूयया वृहस्पतिं
वाजमजीजपताजीजपत वृहस्पतिं वाजं वन-
स्पतयो विमुच्यद्ध्वम् । एषा वः सा सत्या सं
वागभूययेन्द्रं वाजमजीजपताजीजपतेन्द्रं वाजं
वनस्पतयो विमुच्यद्ध्वम् ॥ १२ ॥

इस कं० में २ मं० हैं । सबका घृह० ऋ० छं० १ ब्राह्मण०
२ ब्राह्मी० गाथी और देवता-सबका दुन्दुभि है । मंत्रार्थ-हे
दुन्दुभियो ! (वः, एषा, सा, वाक्, सत्या, समभूत्, यया, वृह-
स्पति, वाजं, अजीजपत, वृहस्पति, वाजं, अजीजपत, वनस्पतयः
विमुचिस्त्वम्) तुम्हारी यह वह वाणी सत्य हुई, जिससे वृहस्पति
को अन्न जय कराया, हे वनस्पति काष्ठनिमित्त दुन्दुभियो अब
कृतकृत्य होकर अनुमति दो, वृहस्पति का रय थावमान हो । हे
दुन्दुभियो ! (वः, एषा, सा, वाक्, सत्या, समभूत्) तुम्हारा
दियसहुआ वह आशीर्वादरूप वचन सत्य हुआ (यया, इन्द्रं, वाजं
अजीजपत) जिससे इन्द्रको अन्न जय कराया (इन्द्रं, वाजम्,
अजीजपत, वनस्पतयः, विमुच्यद्ध्वम्) इन्द्रको अन्नजय कराया,
हे काष्ठनिमित्त वनस्पतियो अब कृतकृत्य होकर अनुमति दो यज-
मान का रय थावमान हो ॥ १२ ॥

देषस्याहथे संवितुः सवेसत्यम्रेसवसो वृहस्पते-
र्वाजजितो वाजंजेपम् । वाजिनो वाजजितो-
द्ध्वतस्कभुवन्तो योजना मिमांसुः काष्ठाङ्गच्छत ॥ ३ ॥

इस कं० में २ मंत्र हैं । सर्वका वृह० ऋ० है । छं०—
 १ आर्षी वृ०, २ साम्नी जग० और देवता १ लिङ्गोक्त, २ अश्व
 है । मंत्रार्थ—सत्यसवसः, सवितुः, देवस्य, सवे, अहं, वाजजिताः,
 वृहस्पतेः, वाजं, जेपम्) सत्य आह्लावाले सब के भेरक सविता
 देव के धनुशा में वर्धमान में, अन्न जीतनेवाले वृहस्पति सम्बंधी
 अन्न को जय कर्षे (वाजिनः, वाजजिताः, अध्वनः, रुभ्नुवन्तः,
 योजनाः, मिमानाः, काष्ठाम्, गच्छत) हे घोड़ों ! अन्नके जीतने
 वाले तुम, मार्गों को धुभित करते, योजनों को आति शीघ्रता से
 गमन करतेहुए अठारह निमेष में प्राप्त होते हो ॥ १३ ॥

एषस्य वाजी क्षिपणित्तरण्यति श्रीवायां वृद्धो
 अपि कक्ष आसति । क्रतुन्दधिका अनु सध
 सगिप्यदत्पथामद्वाथेस्पन्वायनीफणत्स्वाहा ॥ १४ ॥

इसका दधिक्रावा ऋ० है । आर्षीज० छं०, अश्व देवता है ।
 मंत्रार्थ—(एपः, वाजी, यः, श्रीवायां, कक्षे, आसति, अपि, वद्धः,
 सः, दधिकाः, क्रतुं, अनु, संसगिप्यदत्) यह घोड़ा जो श्रीवामें
 कक्ष में मुल में बँधाहुआ है, वह यह अश्वधार को लेकर मार्ग
 अवरोधक पापाण गर्त कण्टकादिका भी धाक्रमण करनेवाला
 रथी के आभिमाय को जानकर उसके अनुसार सम्यक् अनुसन्धान
 करताहुआ (पथां, अङ्गांसि, धन्वापतीफणत्, क्षिपणिसु, तुर-
 ययति, स्वाहा) मार्गों के ऊँचे नीचे चिन्हों को, आति शीघ्रगति
 से सम करता, चायुरु के आघातकी अपेक्षा न करके भी किंचित्
 इंगित से, शीघ्र धावमान होता है, यह आहुति भली प्रकार
 शहीत हो ॥ १४ ॥

उगस्मास्य द्रवतस्तुरण्यतः पूर्णन्न चेरनुं वाति
 प्रगर्दिनः । रयेनस्पेचध्रजतो अहसम्परि दधि-
 काव्णःसुहोर्जातरिध्रतुः स्वाहा ॥ १५ ॥

इसका दधिक्रावण ऋ०, आर्षीज० छं०, अश्व देवता है ।
 मंत्रार्थ (अस्य, दधिक्रावणः, द्रवतः, तुरण्यतः, प्रगर्दिनः, रयेनस्पे-

इव, ध्रजताः, ऊर्जा, सह, तरिन्नः, उतस्म, अशुसं, परि, अनुवाति, नः, वेः, पर्णम्) इस, आदिपापाणर्त कण्टकादि का अतिक्रमण करेहुए गमन करनेवाले शीघ्रता से, अबाधे को प्राप्त होनेवाले श्येन पक्षी की समान वेग से गमन करते बल के साथ, आतिशय मार्ग को लांघते, भी, इस अश्व के शृंगार चिन्ह वस्त्र चामरादि, संपूर्ण देह में वर्तमान होते, जातेहुए में लासित होते हैं, जिस प्रकार, पत्नी के, पंख दिखाई देते हैं ॥ १५ ॥

शन्नो भवन्तु वाजिनो हवेपु हेवतांता मितद्रवः

स्वर्काः । जम्भयन्तोहि वृकथे रक्षांसि सने-

ग्यस्मद्युयचन्नमीवाः ॥ १६ ॥

इसका वसिष्ठ ऋ० भुरिगार्पी पं० छं० अश्व देवता है मंत्रार्थ— (देवताता, हवेपु, मितद्रवः, स्वर्काः, अहि, वृकं, रक्षांसि, जम्भ, यन्तः, वाजिनः, नः, शं, भवन्तु, अस्मत्, सनेमि, अमीवाः, पुयु-घन्) देवताओं के कार्यके निमित्त यज्ञ में आहान करनेपर परिमित धावमान होनेवाले, श्रेष्ठ प्रकारवाले सर्प भेड़िये राक्षसोंको नारा करतेहुए घोड़े हमारे कल्याणको करनेवाले हों, हमसे सब प्रकार की दीर्घकाल की व्याधियों को पृथक् करें ॥ १६ ॥

ते नो अर्धन्तो हवनयुतो हवे विरवे शृण्वन्तु

वाजिनो मितद्रवः महमृसामेधसांता सनिप्यवो

महो ये धनंथे समिधेषु जभिरै ॥ १७ ॥

इसका नामा नेदिष्ट ऋ०, आर्षी ज०, छं० अश्व देवता है । मंत्रार्थ—(ते, विश्वे, मितद्रवः, हवनयुतः, अर्धन्तः, सहस्रसाः, मेध साता, सनिप्यवः, वाजिनः, नः, हवम्, शृण्वन्तु, ये, समिधेषु, महः, धनं, जभिरै) वे सम्पूर्ण यजमानके चित्तके अनुसार मितगामी, हमारे आहानको सुनने वाले, कुटिल गति वाले, अनेक जनोंको वृत्त करनेवाले, यज्ञशालाके पूरक घोड़े हमारे आहानोंको श्रवण करें, जो संग्रामों में बड़े धनको ले आते हैं ॥ १७ ॥

वाजे वाजे घत वाजिनो नो धनेषु विप्रा अमृता

कृतज्ञाः अस्प मध्वः पिबत मादपध्वन्तुसा
यात पृथिविर्देवयानैः ॥ १८ ॥

इसका वशिष्ठ ऋ०, निचूदार्पी त्रि० छं०, अश्व देवता है ।
मंत्रार्थ—(वाजिनः, विमाः, अमृताः, अतज्ञाः वाजे, वाजे, धनेपु,
नः, अश्वत, अस्य, मध्वः, पिबत, मादपध्वम्, देवयानैः, पृथिविः,
यात) हे अश्वों ! तुम बुद्धिमान्, दीर्घजीवी, सत्य, सम्पूर्ण
अन्न और, धनों में, हमारी, पालना करो, इस घासमान होने से
पहिले, नौशर सूँघेहुए मधुर लक्षण हवि को, पान करके, वृत्त
होजाओ और वृत्त होकर, देवयान में अधिष्ठित मार्गों से,
गमन करो ॥ १८ ॥

आमा वाजस्य प्रसृषो जागम्यादेमे घावां पृथिवी
विश्वरूपे । आ मागन्ताम्पितरा मातरा चामा
सोमो अमृतत्वेन गम्यात् । वाजिनो वाज-
जितो वाजधे समृवाधेसो बृहस्पतेर्भागमर्ब-
जिघ्रत निमृजानाः ॥ १९ ॥

इस क० में २ मन्त्र हैं । सबका वशिष्ठ ऋ० है । छं० १ नि-
चूदार्पी त्रि०, २ माजापत्या त्रि०, और देवता—१ मजापति,
२ अश्व है । मन्त्रार्थ—(वाजस्य, प्रसृषः, मा, आगम्यात्, इमे,
विश्वरूपे, घावां पृथिव्यौ, आ, पितरामातरा, मा, आगन्ताम्,
स, सोमः, अमृतत्वेन, मा, आगम्यात्) अन्न की उत्पत्ति हमारे
घर में आगमन करे, यह, सर्वरूपपात्मक स्वर्ग और पृथ्वी सब
भकार, हमारे माता पितारूप हमारे रक्षण और प्रतिपालन को
आधेँ और सोम अमृतभाव से हमारे मति मातृहो (वाजिनः,
वाजजितः, वाजं, समृवाधेसः, निमृजानाः, बृहस्पतेः, भागं,
अवाजिघ्रत) हे अश्वों ! अन्नके जीतने वाले अन्न के जीतने को
प्रतिक्षण गमन करेवाले इस चरु वा यजमान को शोधन करते
हुए बृहस्पति सम्बन्धी हमारे भागको छँचो ॥ १९ ॥

आपये स्वाहा स्वापये स्वाहा पिजाय स्वाहा

ऋतये स्वाहा वसवे स्वाहा हृषतये स्वाहान्द्रे
 मुग्धाय स्वाहा सुग्धाय वैनथशिनाय स्वाहा
 विनथशिनं भान्त्यायनाय स्वाहान्त्याय भौ-
 वनाय स्वाहा भुवनस्य पतये स्वाहाधिपतये
 स्वाहा ॥ २० ॥

इस कं में १२ मं० हैं । सबका वशिष्ठ ऋ० है । छं० १, २
 ४, ५ देवीपं० १ या० गा० ६, ७, १२ याजुष्युणिक्रु० याजुपीपं०
 ९ याजुपी त्रि० १०, ११ याजुपी बृहती है । और सबका मजापति
 देवता है । मंत्रार्थ—(आपये, स्वाहा, स्वापये, स्वाहा, अपिजाय, स्वाहा,
 ऋतये स्वाहा, वसवे स्वाहा, अहर्षतये, स्वाहा, सुग्धाय अन्हे स्वाहा,
 वैनथशिनाय, मुग्धाय स्वाहा) व्यापक, सम्बत्सर, कालात्मक
 आदित्य मजापति देवता के मीति के निमित्त यह आहुति दी जाती
 है यह भली प्रकार गृहीत हो, सर्वव्यापी मजापति के निमित्त,
 आहुति पुनः पुनः प्रगट होनेवाले के निमित्त आहु० संकल्प भोगादि
 विषय के निमित्त आहु० नगत्के स्थिति कारण के निमित्त आहु०
 दिवसके निमित्त आहु० विनाशशील सुग्धनामकके निमित्त श्रेष्ठ
 होम० । भान्त्यायनाय, विन थ शिने स्वाहा, भौवनाय, अन्त्याय,
 स्वाहा, भुवनस्य, पतये, स्वाहा, अधिपतये, स्वाहा) सीमावान्
 विनाश शील नामकके निमित्त श्रेष्ठ हो०, त्रिभुवनकी सीमावान्
 के निमित्त, आहुति सम्पूर्ण भुवनके पति के निमित्त आहुति,
 समस्त प्राणि वर्गकी उत्पत्ति स्थित विनाशमें समर्थ के निमित्त
 यह आहुति भली प्रकार दी जाती है सम्यक् स्वीकार हो ॥ १० ॥

आयुर्व्यज्ञेन कल्पताम्नाणो यज्ञेन कल्पताश्चतु-
 र्यज्ञेन कल्पताथ श्रोत्रे यज्ञेन कल्पताम्पृष्ठं यज्ञेन
 कल्पतां यज्ञो यज्ञेन कल्पताम् । भुजापतेः पूजा

अंभूमः स्वर्देवा अगन्नामृतां अंभूम ॥ २१ ॥

इस कं० में ९ मं० हैं । सबका वशिष्ठ ऋ० है । छं० १ से
 ९ का मजा० गा०, ७ याजु० वृ० ८ देवी त्रि० ९ या० गा०

और देवता १-६ का प्रजापति ७ यजमान ८ यज्ञ०, ९ यज्ञ है ।
 मंत्रार्थ (यज्ञेन, आयुः, कल्पताम्, यज्ञेन, माणः, कल्पताम्, यज्ञेन,
 चक्षुः, कल्पताम्, यज्ञेन, श्रोत्रं, कल्पताम्, यज्ञेन, पृष्ठं, कल्पतां,
 यज्ञेन, यज्ञं, कल्पताम्) इस वाजपेय यज्ञके फलसे हमारी, आयुः,
 वृद्धिको प्राप्तहो, इस वाजपेय यज्ञके फलसे पांचोप्राण वृद्धिवल
 को प्राप्तहो, इस यज्ञके फलसे चक्षुरिन्द्रिय, सामर्थ्य को प्राप्तहो
 इस यज्ञके फलसे श्रोत्र इन्द्रिय का बलवृद्धि को प्राप्तहो, इस
 वाजपेय यज्ञके फलसे हमारा पृष्ठबल, वृद्धिको प्राप्तहो, इस
 वाजपेय यज्ञके फलसे, यज्ञके अधिष्ठातृ देवता विष्णु तथा यज्ञ
 करनेकी क्षमता, वृद्धिको प्राप्तहो । हम (प्रजापतेः, प्रजा, अभूमः)
 प्रजापति की सन्तति, हुए । हे ऋत्विगण (स्वः, आत्म, अमृता;
 अभूम) हमने स्वर्गलाभ, प्राप्त कियाहै हम दीर्घायु अमर चिर-
 कीर्तिवाले हुए ॥ २१ ॥

अस्मे वाँ अस्तिवन्दिषमस्मे नृम्यासुत क्रतुरस्मे
 वर्चाँसि सन्तु वः । नमो मात्रे पृथिव्यै नमो
 मात्रे पृथिव्या इयन्ते राह्यन्तासि घमं नो
 ध्रुवोसि धरुणाः । कृष्यै त्वा क्षेमाय त्वा रय्यै
 त्वा पोषाय त्वा ॥ २२ ॥

इस कं० में ४ मं० हैं । सबका वसिष्ठक० है । छं०-१ निचृ-
 दार्षी गा०, २ साम्युपिणक, ३ देवी वृक्षी, ४ निचृदार्षी वृ० है
 है और देवता—१ दिशा, २ पृथिवी, ३ आसन्दी, ४ यजमान है ।
 मंत्रार्थ—हे दिक् चतुष्टय (वः, इन्द्रियं, अस्मे, अस्तु, नृम्यां, अस्मे,
 उत, वः, क्रतुः, वर्चाँसि, अस्मे, सन्तु) तुम्हारे सम्बन्धी, चीर्षि
 हमारे विषय में हों, तुम्हारा सम्बन्धी घन हमको प्राप्तहो, और
 तुम सम्बन्धी, यज्ञ कर्म, तथा तुम्हारे सम्बन्धी तेज हमारे विषय
 हों अर्थात् इस जगत् में हम सब से अग्रगण्य हों । (मात्रे,
 पृथिव्यै नमः नमो मात्रे) मातारूप, पृथिवी के निमित्त, नम-
 स्कार है, पृथिवी माताको नमस्कार है । हे आसन्दी (इयं ते

राष्ट्रं) यह तुम्हारा राज्य है। हे यजमान ! तुम (यन्ता, अग्नि, यमनः, ध्रुवः, धरुणः, अग्नि, कृष्यै, त्वा, जेमाय, त्वा, रथ्यै, त्वा, पोपाय, त्वा) सबके नियमन करने वाले, हो, स्वयं संयमन करता स्थिर धारक हो कृषिकार्य की उत्पत्ति निमित्त, तुमको, राज्यकी शान्ति पूर्णताके निमित्त, तुमकी, धन सम्पत्तिके वर्धनार्थ, तुमको प्रजा पालनके निमित्त, तुमको, इस स्थानमें उपवेशन कराते हैं २२

वाजस्येमांग्रस्रवः सुपुबे सोमथराजानमोप-

धीष्वप्सु । ताऽअस्मभ्यम्मधुमतीर्भवन्तु वयं

राष्ट्रे जागृयाम पुरोहिताः स्वाहा ॥ २३ ॥

इसका वसिष्ठ ऋ०, सुराढार्पी त्रि० छं०, प्रजापति देवता है।
मंत्रार्थ—(वाजस्य, प्रसवः, अग्ने, औपधीषु, अप्सु, इमं, सोमं, राजानं, सुपुबे) अन्नके, उत्पन्न करने वाले प्रजापतिने, सबसे मयम आदि सृष्टिमें, औपधी, और जलोंके मध्यमें, इस सोम-चल्ली रूप दीक्षिमान् पदार्थ को उत्पन्न किया है (ताः, अस्मभ्यं, मधुमतीः, भवन्तु, पुरोहिताः, वयं, राष्ट्रं, जागृयाम) वे सोम उत्पादक, औपधीजल, हमारे निमित्त, रसवाली माधुर्यसे युक्त हों, याग अनुष्ठानादि में प्रयोग, हम उनसे अभिषिक्त होकर, अपने राज्यमें सर्व साधारणके हितकारी होकर, अप्रमत्त होकर कालयापन करें ॥ २३ ॥

वाजस्येमांग्रस्रवः शिश्रिये दिवमिमा च
विश्वभुवनानि सम्राट् । अदित्सन्तन्दापयति

प्रजानत्स नौरपिथ सर्ववीरं निरपच्छतु स्वाहा ॥ २४ ॥

इसका वसिष्ठ ऋ०, आर्पीजगती छं० प्रजापति देवता है। मंत्रार्थ (वाजस्य, प्रसवः, इमां, दिवं, इमा, विश्वा, भुवनानि, शिश्रिये) इस समस्त अन्नके, उत्पन्न करने वाले परमात्माने, इस पृथ्वीको इन सम्पूर्ण भुवनको सृजन किया है (सः, सम्राट्, अदित्सन्तम्, प्रजानन् दापयति, नः, सर्ववीरम्, रपि, निरपच्छतु, स्वाहा) वह सबका अधिपति हविर्देने की अनिच्छा वाले मुक्त

को जानता हुआ मेरी वृद्धिमें प्रेरणा कर मुझसे आहुति दिवाता है हमारे निमित्त सब पुत्रभृत्यादिसे युक्त धनको हमें प्रदान करे, यह आहुति भली प्रकार गृहीत हो ॥ २४ ॥

वाजस्पृ नुं प्रमथ आधमृवे मा च विश्वा-
भुवनानि सर्वतः । सनेमि राजा परियाति-
विद्वान्प्रजास्पुष्टिं वर्द्धयमानो अस्मे स्वाहा ॥ २५ ॥

इसका वशिष्ट ऋ० सुराडार्पी त्रि० छं० और मजापति देवता है । मंत्रार्थ—(जु. वाजस्य, प्रसवः, इमा, विश्वाभुवनानि, सर्वतः, आवभुव, च, सनेमि, विद्वान्, राजा, अस्मे, मजां, पुष्टिं, वर्द्धयमानः स्वाहा) कैसे विस्मयकी बात है, अन्नके मृत्तनेवाले मजापति ने इन सम्पूर्ण भुवनोंको सब ओर से ब्रह्मा से स्तम्भ पर्यन्त उत्पन्न किया है और पुरातन सब कुछ जानने वाला दीप्तिमान् हमारे निमित्त सन्तति धन पुष्टिको वृद्धिको प्राप्त होता हुआ है, उसके निमित्त यह आहुति दी जाती है ॥ २५ ॥

सोमधराजानमथसेग्निमन्वारभामहे । आदि-

त्यान्विष्णुधे सूर्ये ब्रह्माणे च बृहस्पतिं स्वाहा ॥ २६ ॥

इसका तापस० ऋ०, आर्ष्यनुष्टुप् छं०, सोमाद्य देवता हैं । मंत्रार्थ—जो सम्पूर्ण अन्न के उत्पादक हैं जिन मजापति ने हमारे, (अबसे, राजानं, सोमं, अग्निं, आदित्यान्, सूर्यं, बृहस्पतिं, च अन्वारभामहे, स्वाहा) प्रतिपालनार्थ राजा सोम को वैश्वानर अग्नि को वारह आदित्यों को ब्रह्मा को बृहस्पति को भी नियुक्त किया है, आव्दान करते हैं, उसके उद्देश्य से दी हुई आहुति सम्यक् गृहीत हो ॥ २६ ॥

अर्ष्यमण्बृहस्पतिमिन्द्रन्दानां च चोदय । वाचं

विष्णुधे सरस्वतीधे सवितारं च वाजिनधे स्वाहा २७

इसका तापस ऋ० । स्वराडार्ष्यनुष्टुप् छं०, अर्ष्यमाद्या देवता है । मंत्रार्थ—हे परमात्मन ! तुम (अर्ष्यमणं, बृहस्पतिं, इन्द्रं, वाचं, सरस्वतीं, विष्णुं, वाजिनम्, दाताय, चोदय, स्वाहा)

अर्थमां देवता को वृहस्पति को इन्द्र को वाणी की अधिष्ठात्री सरस्वती को सबके प्रसवकर्ता सूर्य को जो कि यह सब देवता धन के देनेवाले तुमने सृजे हैं इनको धनप्रदान के निमित्त भेरणा करो, यह आहुति भलीप्रकार गृहीत हो जो तुम्हारी प्रीति के उद्देश्य से देते हैं ॥ २७ ॥

अग्ने अच्छापदेहनः प्रार्ति नः सुमना भव । प्र नो
यच्छ सहस्रजित्वथ हि धनदा आग्नि स्वाहा ॥ २८ ॥

इसका तापस ऋ०, भुरिगार्प्यनुष्टुप् छं०, अग्नि देवता है ।
मंत्रार्थ—(हे अग्ने, इह, नः, अच्छावद, नः, सुमनाः, भव, सहस्रजित्, हि, त्वं, धनदाः, असि, नः, मयच्छ, स्वाहा) हे अग्नि में अधिष्ठित देव ! इस यज्ञ में, हमारे हित को सम्मुख आकर कहो हमारे प्रति करुणार्द्रचित्त हो, हे सबके जीतनेवाले, जिस कारण से तुम स्वभाव से धन के देनेवाले हो, इसकारण हम को धन दीजिये तुम्हीं एकमात्र प्रार्थना पूर्ण करने में समर्थ हो, इसकारण इस आहुति से हमारी प्रार्थना स्वीकार करो, यह आहुति भलीप्रकार गृहीत हो ॥ २८ ॥

प्र नो यच्छत्वर्ष्यमां प्रपूषा प्रवृहस्पतेः ।

प्र चाग्नेयी ददातु नः स्वाहा ॥ २९ ॥

इसका तापस ऋ०, भुरिगार्पी गा० छं०, वागादय देवता है ।
मंत्रार्थ—हे परमात्मन् ! आपके मसाद से (अर्थमा, नः, मयच्छत्, पूषा, प्र, वृहस्पतिः, प्र, देवीवाक्, नः, ददातु) अर्थमा देवता हमारे निमित्त अभीष्ट प्रदान करै, पूषा देवता अभीष्ट प्रदान करै, वृहस्पति अभीष्ट प्रदान करै, सरस्वती वाणी की अधिष्ठात्री हमारे निमित्त अभीष्ट प्रदान करै ॥ २९ ॥

देवस्य स्वा सवितुः प्रसवेरिव नोर्वाहुभ्यां पूष्णो
हस्ताभ्याम् । सरस्वत्यै वाचो यन्तुर्यन्त्रिये

दधामि वृहस्पतेः ष्ठा साम्राज्येनाभिपिञ्चाम्यसौ ३०
इसका तापस ऋ०, गार्पी जग० छं०, सम्राट् देवता है ।

मंत्रार्थ—(सवितुः, देवस्य, प्रसवे, त्वा, आश्विनोः, बाहुभ्यां, पूष्णः, हस्ताभ्यां, वृहस्पतेः, साम्राज्येन, अभिषेचामि) सविता देवता की प्रणवावश होकर तुम्हको अश्वनीद्वयकी भुजयुगल पूषा देवताके हाथोंसे वृहस्पतिके साम्राज्यभावसे अभिषेक करता हूँ, हे यजमान ! (त्वा, सरस्वत्यै, यन्त्रिये, दधामि, वाचा, यन्तु, असौ) तुम्हको सरस्वतीके पेश्वर्य में स्थापन करता हूँ, तुम्हको वाणी वागधिष्ठात्री देवी सरस्वती नियमन करे, अयुक्त नाम यजमानको अभिषेक करता हूँ यहाँ यजमानका नाम उच्चारण करे ३०

अग्निरेकाक्षरेण प्राणमुदजयत्तमुज्जेपमश्विनौ

द्व्यक्षरेण द्विपदो मनुष्यानुदजयत्तान्तानुज्जेपं

विष्णुस्त्र्यक्षरेण त्रींल्लोकानुदजयत्तानुज्जेपथ

सोमश्चतुरक्षरेण चतुष्पदः पशूनुदजयत्तानुज्जेपम् ३१

इस कं० में ४ मं० हैं । सबका तापस ऋ० है । छं० १, २, निवृद्धार्षी गा० वा साम्नी वृ० १ ४ साम्नी त्रि० और सबका दे० लिङ्गीका है । मंत्रार्थ—(अग्निः, एकाक्षरेण, प्राणं, उदजयत्, तं, उज्जेपं, अश्विनौ, द्व्यक्षरेण, द्विपदः, मनुष्यान्, उदजयताम्, तान्, उज्जेपं) अग्नि देवताने एकाक्षरके प्रभावसे उत्कृष्टरूपप्राण को जय किया है मैं भी उस प्राण को एकाक्षरके प्रभावसे जय करूँ, अश्विनीकुमारने दो अक्षरवाले छन्दके प्रभावसे दो पदवाले मनुष्यों को उत्कृष्ट रूपसे जय किया है, मैं भी दो अक्षरके प्रभावसे उन मनुष्योंको अभय कर सकूँ । (विष्णुः, त्र्यक्षरेण, त्रीन्, लोकान्, मुदजयत्, तान्, उज्जेपम्, सोमः, चतुरक्षरेण, चतुष्पदः, पशून्, उदजयत्, तान्, उज्जेपम्) विष्णुदेव ने तीन अक्षरके छन्दसे तीन लोकोंको जय किया, मैं भी उनके प्रभावसे उन तीन लोकोंको जय करूँ, सोम देवता ने चतुरक्षर मंत्र के प्रभावसे पादचतुष्टयात्मक पशुओंको जय किया है, मैं भी उसके प्रभावसे उनको जय करूँ ॥ ३१ ॥

पूषा पञ्चाक्षरेण पञ्च दिश उदजयत्ता उज्जेः

पथं सविता षडक्षरेण षडृतूनुदजयत्ता उज्जैष-
मरुतः सप्ताक्षरेण सप्तग्राम्यान्पशुनुदजयथ
स्तानुजैषमृहस्पतिरष्टाक्षरेण गायत्रीमुदजय-
त्तामुज्जैषम् ॥ ३२ ॥

इस कं० मे ४ मंत्र हैं। सबका तापस ऋ० है। छं०-१, १
नितृत्साम्नी पं०, ३ साम्नी त्रि०, ४ साम्नी पं०, और सबका
लिङ्गोक्ता है। मंत्रार्थ (पूषा, पंचाक्षरेण, षड् दिशः, उदजयत्,
ताः, उज्जैषं) पूषा देवता ने पंचाक्षर छंद के प्रभाव से, पांचादिशा
(एक ऊपर की,) उत्कृष्टरूप से जय की उसी के प्रभाव से मैं, उन
दिशाओं को जय करूँ (सविता, षडक्षरेण, षट् ऋतून, उदजयत्,
तान्, उज्जैषं) सविता देवता ने षडक्षर छन्द के प्रभाव से, छः
ऋतुओं को उत्कृष्टरूप से जय किया, उसी के प्रभाव से उन छः
ऋतुओं को मैं जय करूँ (मरुतः, सप्ताक्षरेण, सप्तग्राम्यान, उद-
जयत्, तान्, उज्जैषम्, मृहस्पतिः, अष्टाक्षरेण, गायत्री, उदजयत्,
तां, उज्जैषम्) मरुत देवता ने सप्ताक्षर मंत्र के प्रभाव से, सात
ग्राम्य गवादि पशुओं को जय किया, मैं भी उनको जीतूँ। मृह-
स्पति ने अष्टाक्षर मंत्र के प्रभाव से, गायत्री छन्द के अभिमानी
देवता को वशीभूत किया मैं भी उसके प्रभाव से, उसको वशी-
भूत कर सकूँ ॥ ३२ ॥

मित्रो नवाक्षरेण त्रिवृतं स्तोममुदजयत्तामुज्जै-
षं वरुणो दशाक्षरेण विराजमुदजयत्तामुज्जै-
षमिन्द्र एकादशाक्षरेण त्रिद्विभमुदजयत्ता-
मुज्जैषं विश्वेदेवा द्वादशाक्षरेण जगतीमुद-
जयत्तामुज्जैषम् ॥ ३३ ॥

इस कं० मे ४ मं० हैं। सबका तापस ऋ० है। छं०-१, मा०
वृ० २ नितृ० सा० वृ०, ३ सा० पं०, ४ आर्ष्यु० और सबका
देवता लिङ्गोक्त है। मंत्रार्थ (मित्रः, नवाक्षरेण, त्रिवृतं, उदजयत्,
तम्, उज्जैषम्, वरुणः, दशाक्षरेण, विराजं, उदजयत्, तम्,

उज्जेपम्) मित्र देवताके मन्त्राक्षर छन्दसे निवृत्त स्तोमको, जय किया इसी प्रकार मैं भी उसको जयकर्म करण देवते दशाक्षर छन्दसे दशाक्षरा विराट के अभिमानी देवता को जयकिया मैं भी इसी प्रकार उसको जयकर्म (इन्द्रः, एकादशाक्षरेण, त्रिष्टुप्, उदजयत्, तां, उज्जेपम्) इन्द्रेते एकादश अक्षरसे एकादशाक्षर त्रिष्टुप्छन्दके अभिमानी देवता को जयकिया उसको मैं जयकर्म (विश्वेदेवाः, द्वादशाक्षरेण, जगतीम्, उदजयत्, तां, उज्जेपम्) विश्वेदेवाग्ने वारह अक्षर से जगती छन्दके अभिमानी देवता को जयकिया है मैं भी उसको वशीभूत करसकूं ॥ ३३ ॥

वसवस्रपोदशाक्षरेण त्रयोदशोस्तोममुदजयत्
स्तमुज्जेपत् रुद्राश्चतुर्दशाक्षरेण चतुर्दशोस्तो-
ममुदजयत् स्तमुज्जेपमादित्याः पंचदशाक्षरेण
पंचदशोस्तोममुदजयत् तमुज्जेपमृजापतिः सप्त-
सदशाक्षरेण सप्तदशोस्तोममुदजयत् तमुज्जेपम् ॥ ३४ ॥

इस कं० ९ मं० हैं । सबका तापस ऋषि है । छं०-१, ३; आर्च्यनु० २ भूरि० त्रि०, ४ साम्नी त्रि० ५, भूरिगार्गी गा०, और देवता सबका लिङ्गात्का है । मंत्रार्थ (वसवः, त्रयोदशाक्षरेण, त्रयोदशम् स्तोमं, उदजयत्, तां, उज्जेपम्) वसुओंके तेरह अक्षर वाले छन्दसे त्रयोदशस्तोम को उत्कृष्ट रूपसे वशीभूत किया उसीको मैं जयकर्म (रुद्राः, चतुर्दशाक्षरेण, चतुर्दशं, स्तोमं, उदजयत् तम् उज्जेपम्) रुद्रों ने चौदह अक्षर छन्दसे चौदहवें स्तोम को उत्कृष्ट रूपसे जयकिया उसको मैं जयकर्म (आदित्याः, पंचदशाक्षरेण, पंचदशं, स्तोमं, उदजयत्, तां, उज्जेपम्) आदित्योंके पंचदश अक्षरके छन्दसे पन्द्रहवें स्तोमको, उत्कृष्ट रूपसे जयकिया उसको मैं सम्यक्प्रकार से जयकर्म (मृजापतिः, सप्तदशाक्षरेण, सप्तदशो स्तोमं, उदजयत्, तां, उज्जेपम्) मृजापति ने सप्तदशाक्षर छन्दसे सप्तदशाक्षर स्तोमको जयकिया उसको मैं वशीभूत कर्म ॥ ३४ ॥

एष ते निर्ऋते भ्रागस्तञ्जुपस्य स्वाहाग्निनेत्रे-
 भ्यो देवेभ्यः पुरःसद्भ्यः स्वाहा यमनेत्रेभ्यो
 देवेभ्यो दक्षिणासद्भ्यः स्वाहा विश्वदेवनेत्रेभ्यो
 देवेभ्यः पश्चात्सद्भ्यः स्वाहा मित्रावरुणनेत्रेभ्यो
 वामरुन्नेत्रेभ्यो वा देवेभ्य उत्तरासद्भ्यः स्वाहा
 सोमनेत्रेभ्यो देवेभ्य उपरिसद्भ्यो दुवस्वद्भ्यः
 स्वाहा ॥ ३५ ॥

इस कं० में ६ मं० हैं । सबका वरुण ऋ० है । छ० १, २, साम्नुपिणक् ३ आ० गा० ४ साम्नुनु० ५ भुरिगा० गा० ६ भुरिक् सा० वृ० और सबका देवता वरुण है । मंत्रार्थ—(निर्ऋते, एषः, ते, भागः, तं, जुपस्य, स्वाहा) हे पृथिवी ! यह तुम्हारा भाग है, इसको प्रीतिपूर्वक सेवन करो, यह आहुति भलीप्रकार गृहीत हो (अग्निनेत्रेभ्यः, पुरःसद्भ्यः, देवेभ्यः स्वाहा) जिसका अग्नि नेता है, पूर्व दिशामें वसनेवाले देवताओंकी प्रीतिके निमित्त यह आहुति दीजाती है, भलीप्रकार गृहीत हो । (यमनेत्रेभ्यः, दक्षिणासद्भ्यः, स्वाहा) यम जिनका नेता है, उत दक्षिणदिशा वाशी देवताओंकी प्रीतिके निमित्त यह आहुति देते हैं, भलीप्रकार गृहीत हो, (विश्वदेवनेत्रेभ्यः, पश्चात्सद्भ्यः, देवेभ्यः, स्वाहा) विश्वदेवा जिनके नेता हैं उन पश्चिम दिशा में निवास करनेवाले देवताओंकी प्रीतिके निमित्त यह आहुति दीजाती है भलीप्रकार गृहीत हो (वा, मित्रावरुण नेत्रेभ्यः, वामरुन्नेत्रेभ्यः, उत्तरासद्भ्यः देवेभ्यः स्वाहा) या जिनके नेता मित्रावरुण हैं, या जिनके नेता मरुत्व देवता हैं, उत्तर दिशा में निवास करनेवाले देवताओंकी प्रीतिके निमित्त, यह आहुति भलीप्रकार गृहीत हो, (सोमनेत्रेभ्यः, दुवस्वद्भ्यः, उपरिसद्भ्यः, देवेभ्यः, स्वाहा) जिनका नेता सोम है ऐसे परिचर्यावाले, ऊपरभाग अन्तरिक्ष, देवताओंकी प्रीतिके निमित्त यह आहुति दीजाती है सम्यक् गृहीत हो ३५
 ये देवा अग्निनेत्राः पुरःसद्भ्यः स्वाहा ये

देवा यमनेत्रा दक्षिणासदस्तेभ्यः स्वाहा ये देवा
 विश्वदेवनेत्राः - पश्चात्सदस्तेभ्यः - स्वाहा ये
 देवा मित्रावरुणनेत्रा वा मरुत्नेत्रा वोचरासदस्ते-
 भ्यः स्वाहा ये देवाः सोमनेत्राः उपरिसदो
 दुवस्वन्तस्तेभ्यः स्वाहा ॥ १६ ॥

इस कं० में ५ मंत्र हैं । सवका वरुण ऋ०, आसुरी, गायत्री,
 प्राजापत्यानुष्टुप् भुरिप्राजापत्यानुष्टुप् आर्च्यनुष्टुप् प्राजापत्या
 वृ० छं० है । सवका देवा दे० है । मंत्रार्थ (ये, देवाः, अग्निनेत्राः,
 पुरःसदाः, तेभ्यः, स्वाहा) जो देवता अग्निनेत्रा संयुक्त हैं, पूर्व
 में निवास करते हैं, उन देवताओंके निमित्त यह आहुति दीजाती
 है (ये, देवाः, यमनेत्राः, दक्षिणासदाः, तेभ्यः, स्वाहा) यमजितका
 नेता वे देवता दक्षिण दिशानिवासी हैं । उनके निमित्त यह
 आहुति० (ये, देवाः, विश्वदेवनेत्राः पश्चात्सदाः, तेभ्यः, स्वाहा)
 जो दयता विश्वदेवा नेताशले पश्चिमनिवासी हैं, उनके निमित्त
 यह आहुति दीजाती है (ये, देवाः, मित्रावरुणनेत्राः, वा, मरुत्नेत्राः
 वा, उचरासदाः, तेभ्यः, स्वाहा) जो देवता मित्रावरुण नेतावाके
 अपवा मरुत् नेतावाले और उत्तर दिशा निवासी हैं, उनके निमित्त
 आहुति दीजाती है (ये, देवाः, सोमनेत्राः, दुवस्वन्तः, उपरिसदाः
 तेभ्यः, स्वाहा) जो देवता सोमके नेतावाके, हवि के स्वीकार
 करनेवाले तुलोकवासी हैं, उनके निमित्त श्रेष्ठ आहुति प्राप्त हो १६

अग्ने सहस्रं पृतना अभिमातीरपास्य । दुष्ट-

रुस्तरन्नरातीर्थीघा यज्ञवाहसि ॥ १७ ॥

इसका देवश्रवा देववाक ऋ० भुरिगार्प्यनुष्टुप् छं० अग्निदेवता
 है । मंत्रार्थ—(अग्ने, पृतनाः, सहस्रं, अभिमातीः, अपास्य, दुष्टरः,
 अरातीः, तरन्, यज्ञवाहसि, वर्चाः, धीह) हे अग्निदेव ! तुम शत्रु
 सेनाओंको पराभव करो, शत्रुओं को विदारित करो, हे दुर्निवार
 तुम शत्रुओंको तिरस्कार करतेहुए यज्ञनिर्वाहकारी इस यज्ञमात्र
 को अन्नप्रदान करो ॥ १७ ॥

देवस्य त्वां सधितुः प्रसवेद्विनोर्बाहुभ्यां पूष्णो
हस्ताभ्याम् । उपाशो वीर्येण जुहोमि हतः
रक्षः स्वाहा रक्षसान्त्या वधायाधधिष्मन् रक्षो-
धधिष्मामुमसी हतः ॥ ३८ ॥

इस कं० में ३ मं० हैं । सबका देवता अ० है । छं० १ निवृ०
गा० २ याजुष्युष्णिक् ३ साम्युष्णिक् और देवता सबका रक्षोघ्न
है। मंत्रार्थ—मिस देवता ने इस संमंसा जगत् को निज २ कर्म करने
में भरित किया है उस (सधितुः, देवस्य, प्रसवे, अद्विनोः बाहुभ्यां
पूष्णः, हस्ताभ्यां, त्वां, उपाशोः, वीर्येण, जुहोमि, रक्षः, हतः,
स्वाहा) सविता देवकी आज्ञामें वर्तमान अग्निनीकुमारके बाहु
युगुलसे पूषा देवताके दोनों हाथों से तुम्हको उपाशुनाम मयम
ग्रहके पराक्रमसे आहुति मदान करता हूँ राजसकुल इस आहुति
के प्रभावसे निहत हुआ, यह आहुति मलीमकार गृहीत हो, हे श्वः,
(रक्षसां, वधाय, त्वां) राजसों के वध के निमित्त तुमको मक्षेप
करता हूँ (रक्षः, अधधिष्मन्, अमुं, अधधिष्मन्, असी, हतः) राजस
कुलको विनष्ट किया, अमुक शत्रुको [इस स्थलमें जो प्रधान शत्रु
है उसका नामलेय] मारा, यह शत्रु मारा गया ॥ ३८ ॥

सविता त्वां सुवानां सुवतामग्निगृहपती-
नां सोमो वनस्पतीनाम् । वृहस्पतिर्वाधे इन्द्रो
ज्यैष्ठ्याय रुद्रः पशुभ्यो मित्रः सत्यो वरुणो
धर्मपतीनाम् ॥ ३९ ॥

इसका देवता अ० । अतिजगती छं० यजमान देवता है ।
मंत्रार्थ—हे यजमान ! (सविता, सुवानां, त्वां, सुवताम्, अग्निः
गृहपतीनाम्, सोमः, वनस्पतीनाम्, वृहस्पतिः, वाधे, इन्द्रो ज्यैष्ठ्याय
रुद्रः, पशुभ्यः, मित्रः, सत्यः, वरुणः, धर्मपतीनाम्) जगत् का
नियन्ता परमात्मा आज्ञाओं के आधिपत्य, तुम्हको प्रेरण करे ।
अग्निदेवता गृहस्य गणके उपास्यदेव गृहस्थोंके आधिपत्यमें तुम्ह
को प्रेरण करे । वनस्पतिप्रधान सोम देवता तुम्हको वनस्पति

विषय के आधिपत्य प्रदान करे । वाक्यमकारक वृहस्पति, देवता वाग्विषयक आधिपत्य में इन्द्रदेवता ज्येष्ठ आधिपत्यमें पशुगण के जीवोंके रक्षक रुद्र देवता पशुदल के आधिपत्य में सत्यस्वरूप मित्रदेवता सप्तव्यवहारके आधिपत्य में धर्मरक्षक वरुणदेवता तुम्हारे धर्म के आधिपत्य में भेरीणा करे ॥ ३९ ॥

इमन्देवा असपत्न्य सुवन्द महते सत्राय महते
ज्येष्ठाय महते जानराज्यायेन्द्रस्येन्द्रियार्य ।
इमममुष्य पुत्रममुष्य पुत्रमस्ये विशे एष सोमी
राजा सोमोस्माकम्राज्याणान्थेराजा ॥ ४० ॥

इसका देवतात ऋ० है । अत्पिष्ट छे० है और यज्ञमान देवता है । मंत्रार्थ- (देवाः, अमुष्य, पुत्रं, अमुष्यै, पुत्रं, इमं, महते, सत्राय, महते, ज्येष्ठाय, महते, जानराज्याय, इन्द्रस्य, वीर्यार्य, असपत्न्य सुवध्वम्, इमम्, अस्यै, विशे, अमी, वः, एषः, राजा, सोमः) हे सुहृदिविदेवगण ! तुम्हें अमुक महाशयके पुत्र [यहाँ यज्ञमानके पिता का नाम लेना] अमुकी देवी के पुत्र [यहाँ यज्ञमान की माताका नाम लेना] इस यज्ञमानको महत् सत्रधर्म के निमित्त महत् ज्येष्ठता के निमित्त, महान् जनोके आधिपत्यमें आत्मा के ज्ञानमें सामर्थ्यके निमित्त, शत्रुशून्य करके भरण करो अपने प्रसाद से इस यज्ञमानको इस अमुक जातिकी राजा करो, हे अमुकजाति प्रजागण ! तुम्हारा यह अमुकनाम राजा हो और हम प्राह्वणों का राजा सोम चन्द्रमा हो ॥ ४० ॥

इति शुक्ल यजुर्वेदान्तामृत वाजसनेयि संहिता का सातवादा नवम

अध्याय समाप्त ।

अथ दशमोऽध्यायः



० निस में वाजपेय यज्ञ और राजसूयसम्बन्धी कर्म प्रधान है ऐसे नवम अध्याय में राजसूयान्त मंत्र कहे । अब दशम अध्याय में अभिषेकार्थ जलदानादि राजसूयके शेष कर्म और चरक सौत्रामणि यज्ञमंत्र कहेजायेंगे—

॥ हरिः उ० ॥ अपो देवा मधुमतीरगृभ्णान्-
जैस्वती राजस्वश्चितानाः । याभिर्मित्रावरुणा-
वृष्यपिञ्चन् याभिरिन्द्रमनयन्मत्परातीः ॥ १ ॥

इसका अर्थ ऋ०, निचृदापी मि- छं० है, आप देवता है ।
मंत्रार्थ- (देवाः मधुमतीः ऊर्जस्वतीः, राजस्वः, चितानाः, अपः,
अगृभ्णान्, याभिः, मित्रावरुणा, अम्यपिञ्चन् याभिः अरातीः,
अति, इन्द्रम्, मनयन्) इन्द्रादि देवताओंने मधुरस्वाद से युक्त
विशिष्ट अन्नसयुक्त राज्याभिषेक करनेवाले, चेत्यमान ज्ञानके
सम्पादन करनेवाले जलोंको ग्रहण कियाजित जलोंसे, मित्रावरुण
देवताओंने शत्रुओं को तिरस्कार कर इन्द्रको राज्याभिषेक किया
उनजलों को ग्रहण करते हैं ॥ १ ॥

वृष्णं ऊर्मिरसि राष्ट्रदा राष्ट्रमे देहि स्वाहा

वृष्णं ऊर्मिरसि राष्ट्रदा राष्ट्रममुष्मै देहि ।

वृषसेनोसि राष्ट्रदा राष्ट्रमे देहि स्वाहा

वृषसेनोसि राष्ट्रदा राष्ट्रममुष्मै देहि ॥ २ ॥

इस कं० में ४ मं० हैं । सबका अर्थ ऋ० है । छं०-१, २ प्रा-
जापत्यानु०, ३, ४, और देवता सबका लिंगोक्त है । मंत्रार्थ-
हे कल्लोल ! तुम (वृष्णः, ऊर्मिः, असि, राष्ट्रदाः, राष्ट्रं, मे,
देहि, स्वाहा) सेचनकरनेवाले मनुष्यसम्बन्धी तरंग हो स्वभाव
से ही राष्ट्र देनेवाली हो राज्यको मेरे निमित्त दो तुम्हारी प्रीय-
माण यह आहुति भलीप्रकार गृहीत हो । हे कल्लोल ! तुम (वृष्णः,
रा०, ऊर्मिः, असि, अमुष्मै, रा० देहि) सेचनसम्बन्धी नर,
स्वभासे रा०दाता तरंग हो अमुक यजमानको [इस स्थल में यज-
मानका नामले] राज्यमदान करो । हे वृषसेन ! तुम (वृषसेनः
रा०दाः, असि, राष्ट्रं मे देहि, स्वाहा) सेचन समर्प्य जलराशि रा०
दाता हो मुझे रा० मदान करो; यह आहुति गृहीत हो (वृषसेनः
रा०दाः, असि, राष्ट्रं, अमुष्मै, देहि) हे वृषसेन ! तुम रा० दाता
हो, रा० अमुक यजमान को मदान करो ॥ २ ॥

अर्पेत स्य राष्ट्रदा राष्ट्रम्मे दत्त स्वाहा अर्पेत स्य
 राष्ट्रदा राष्ट्रमुष्मे दत्तौजस्वती स्य राष्ट्रदा
 राष्ट्रम्मे दत्त स्वाहौजस्वती स्य राष्ट्रदा राष्ट्र-
 मुष्मे दत्तार्षः परिव्राहिणी स्य राष्ट्रदा राष्ट्रम्मे
 दत्त स्वाहार्षः परिव्राहिणी स्य राष्ट्रदा राष्ट्र-
 मुष्मे दत्तापाम्पतिरसि राष्ट्रदा राष्ट्रम्मे देहि
 स्वाहापाम्पतिरसि राष्ट्रदा राष्ट्रमुष्मे देहा-
 पाङ्गर्भोसि राष्ट्रदा राष्ट्रम्मे देहि स्वाहापाङ्गर्भो
 राष्ट्रदा राष्ट्रमुष्मे देहि ॥ ३ ॥

इस कं० में १० मं० हैं। सबका बहण ऋ० है। जं०, १, २
 साम्न्युष्णक ३, ४, ९, आ० गा० ५, ६, १० साम्नीष्टु० ७, ८
 साम्न्यनुष्ण और देवता सबका लिङ्गोक्त है। मंत्रार्थ—(अर्पेतः,
 रा०दाः, स्य, राष्ट्रं, मे, दत्त, स्वाहा) मदीं आदि के मवाह में
 स्थित जलों ! तुम स्वभावसे ही रा० के देनेवाले हो, रा० को
 मुझे यजमानके निमित्त प्रदान करो। तुम्हारे प्रीति के निमित्त
 दीहुई यह आहुति भलीप्रकार स्वीकार हो, (अर्पेतः, रा०दाः,
 स्य, अमुष्मे, राष्ट्रं, दत्त) हे जलों ! तुम स्वभावसे रा० देनेवाले
 हो मुझे रा० प्रदान करो (औजस्वतीः, रा०दाः, स्य, मे, राष्ट्रं
 दत्त, स्वाहा) हे जलयुक्त जलों तुम ! तुम स्वभावसे रा० देने
 वाले हो, रा० को इस यजमानके निमित्त प्रदान करो। (परि-
 व्राहिणीः, आपः, रा०दाः, स्य, मे, राष्ट्रं, दत्त, स्वाहा) हे परिव्राही
 जलों ! तुम स्वभावसे रा० देनेवाले हो, रा० को इस यजमानके
 निमित्त प्रदान करो, यह आहुति भलीप्रकार गृहीत हो (परि-
 व्राहिणीः, आपः, रा०दाः, स्य, रा०, अमुष्मे, दत्त) हे परिव्राही
 जलों तुम स्वभावसे जलदेनेवाले हो, रा० अमुक यजमानको प्रदान
 करो। (अपांपतिः, रा० दाः, असि, रा० मे, दत्त, स्वाहा) हे
 सागर के जलों तुम रा०दाता हो, रा० को मेरे निमित्त
 करो। यह आहुति भलीप्रकार गृहीत हो (अपांपतिः,

असि, राष्ट्रं, अमुष्मै, दत्त) अर्पापति तुम स्वभावसे राज्यदाता हो, रा० अमुक यजमान के निमित्त प्रदान करो (अर्पांगर्भः, रा० दाः, असि, मे, राष्ट्रं, देहि, स्वाहा) भेवरके जलो ! तुम स्वभाव से रा०के देनेवाले हो मुझे रा० दो, यह आह्वाने तुम्हारी भीति के निमित्त दीजाती है (अर्पांगर्भः, रा०दाः, असि, रा० अमुष्मै देहि) हे अर्पांगर्भ जलो ! स्वभावसे रा० देनेवाले हो, रा० अमुक यजमानके निमित्त प्रदान करो ॥ ३ ॥

सूर्यत्वचस स्थ राष्ट्रदा राष्ट्रम्मे दत्त स्वाहा
 सूर्यत्वचस स्थ राष्ट्रदा राष्ट्रममुष्मै दत्त सूर्य-
 वर्चस स्थ राष्ट्रदा राष्ट्रम्मे दत्त स्वाहा सूर्य-
 वर्चस स्थ राष्ट्रदा राष्ट्रममुष्मै दत्त मान्दा स्थ
 राष्ट्रदा राष्ट्रम्मे दत्त स्वाहा मान्दा स्थ राष्ट्रदा
 राष्ट्रममुष्मै दत्त व्रजक्षित स्थ राष्ट्रदा राष्ट्रम्मे
 दत्त स्वाहा व्रजक्षित स्थ राष्ट्रदा राष्ट्रममुष्मै
 दत्त वाशा स्थ राष्ट्रदा राष्ट्रम्मे दत्त स्वाहा
 वाशा स्थ राष्ट्रदा राष्ट्रममुष्मै दत्त शविष्ठा
 स्थ राष्ट्रदा राष्ट्रम्मे दत्त स्वाहा शविष्ठा स्थ
 राष्ट्रदा राष्ट्रममुष्मै दत्त शकरी स्थ राष्ट्रदा
 राष्ट्रम्मे दत्त स्वाहा शकरी स्थ राष्ट्रदा राष्ट्र-
 ममुष्मै दत्त जनभृत स्थ राष्ट्रदा राष्ट्रम्मे दत्त
 स्वाहा जनभृत स्थ राष्ट्रदा राष्ट्रममुष्मै दत्त
 विश्वभृत स्थ राष्ट्रदा राष्ट्रम्मे दत्त स्वाहा
 विश्वभृत स्थ राष्ट्रदा राष्ट्रममुष्मै दत्तापः
 स्थराज स्थ राष्ट्रदा राष्ट्रममुष्मै दत्त । सधुमती-
 सधुमतीभिः पृच्यन्तामहि क्षत्रह्वत्रियाय
 वन्वाना अनाष्टाः सीदत सुहौजसो महि ।
 सुव्रह् क्षत्रियाय दधतीः ॥ ४ ॥

इस क० में २१ मं० हैं । सका वरुण ऋ० है छं० १, २,

१, ४ साम्ब्यनु० ५, ६, ९, १०, आसुर्यनु० ७, ८, १५, १६
 १७, १८ आसि० गा० ११, १२ आसुर्युणिक्, १३, १४, १९
 २० निवृदा० ११ साम्बी त्रि० और संयका लिङ्गोक्त देवता है।
 मन्त्रार्थ—(सूर्यत्वचसः, स्य, रा०दाः, रा० मे दत्ता, स्वाहा) हे
 जलो तुम सूर्यत्वच हो स्वभावसे ही रा० देनेवाले हो, रा० मेरे
 निमित्त प्रदान करो, यह आहुति भलीप्रकार गृहीत हो (सूर्यत्व-
 चसः, स्य, रा०दाः, अमुष्मै, राष्ट्रं दत्ता) हे सूर्यत्वक् रूप जलो !
 स्वभावसे ही रा० देनेवाले तुम अमुक यजमानके निमित्त रा०
 प्रदान करो । हे जलो ! (सूर्यवर्चसः, स्य, रा०दाः, मे, रा० दत्ता
 स्वाहा) सूर्य की कान्तिमें स्थित हो, स्वभावसे रा० देनेवाले हो
 मुझे रा० प्रदान करो यह आहुति भलीप्रकार गृहीत हो (सूर्य-
 वर्चसः, स्य रा०दाः, अमुष्मै, राष्ट्रं, दत्ता) हे सूर्यवर्चस जलो !
 तुम सूर्यकी वर्चस में स्थित हो स्वभावसे रा० देनेवाले हो अमुक
 यजमानके निमित्त रा० प्रदान करो । हे मान्दजलो तुम (रा०दाः
 रा० मे, दत्ता, स्वाहा) स्वभावसे ही रा० देनेवाले हो रा० मेरे
 निमित्त प्रदान करो । यह आहुति भलीप्रकार गृहीत हो (मान्दाः
 स्य रा०दाः, रा० अमुष्मै दत्ता) हे मान्द ! तुम स्वभावसे ही
 राज्यपद हो, रा० अमुक यजमान के निमित्त दो, हे जलो तुम
 (व्रजक्षितः, स्य, रा०दाः मे, रा०, दत्ता, स्वाहा) तुम व्रजक्षित
 रूपस्थित हो, स्वभावसे ही रा० देने वाले हमारे यजमान के
 निमित्त रा० प्रदान करो, यह आहुति भली प्रकार गृहीत हो ।
 हे जलो तुम (व्रजक्षितः, स्य, रा०, अमुष्मै, रा०, दत्ता) व्रज-
 क्षित हो, स्वभाव से राज्य देनेवाले, इस यजमान के निमित्त
 राज्य दो, हे जलो तुम (वाशाः, स्य, रा० अमुष्मै, रा०, दत्ता)
 वाशामें स्थित जलो स्वभावसे राज्य देनेवाले इस यजमान को
 रा० दो । हे जलो (शविष्ठाः, स्य, रा०, मे, राष्ट्रं, दत्ता, स्वाहा)
 मधुर रूप तुम त्रिदोषशमन कारण से बल देनेवाले स्वभावसे रा०
 देनेवाले मुझे रा० प्रदान करो । यह आहुति भलीप्रकार प्राप्त हो

(शविष्ठाः, स्य, रा०दाः०, अमुष्मै, रा० दत्ता) हे शविष्ठ ! तुम स्वभाव से ही राज्य देनेवाले अमुक यजमान को रा० दो । हे जलो तुम (शक्वरीः, स्य, रा०दाः, मे, रा०, दत्ता, स्वाहा) बाह दोहादि से जगत् का उद्धार करनेवाली गोसम्बन्धी हो स्वभाव से राज्यदाता हो मुझे राज्य दो यह आहुति भलीप्रकार गृहीत हो । (शक्वरीः, स्य, रा०दाः, अमुष्मै, रा०म्, दत्ता,) शक्वरी जलो तुम रा० देनेवाले इस यजमान के निमित्त रा० दो, । हे जलो तुम (जनभृतः, स्य, रा०दाः, रा०म्, मे, दत्ता, स्वाहा) बालभाव में मनुष्यों को पुष्ट करनेवाले हो स्वभावसे ही राज्यके देनेवाले हो राज्य मेरे निमित्त दो यह आहुति भलीप्रकार गृहीत हो । (जनभृतः, स्य, रा०दाः, अमुष्मै, रा०म्, दत्ता) हे जनभृत् जल तुम स्वाभाव से ही रा० देनेवाले हो इस अमुक यजमान के निमित्त रा० प्रदान करो, । हे जलो तुम (विश्वभृतः, स्य, रा०दाः, मे, रा०म्, दत्ता, स्वाहा) मनुष्योंसे देवताओं पर्यन्त घृत द्वारा जगत् को धारण करनेवाले हो स्वभावसे राज्य देनेवाले हो मेरे निमित्त रा० को प्रदान करो यह आहुति भलीप्रकार गृहीत हो । हे घृतरूप जलो (विश्वभृतः, स्य, अमुष्मै रा०म्, दत्ता) तुम विश्वभृत् अमुक यजमानके निमित्त रा० प्रदान करो । (आपः, स्वराजः, स्य, रा०दाः, रा०, अमुष्मै, दत्ता) हे भरीचिरूप जलो ! तुम अपने प्रकाशमें अनन्याश्रित हो, स्वभावसे राज्य के देनेवाले हो राज्य अमुक यजमान को दो, (मधुमतीः, मधुमतीभिः, महि, क्षत्रं, क्षत्रियाय, वन्वाताः, पृच्यन्ताम्) हे मधुर रसयुक्त सम्पूर्ण जलो ! उस सब मधुररस जलोंके सहित बड़े बड़वाले को राजा यजमानके निमित्त सम्पादन करते हुए अपने रसोंसे सींचो, सम्पर्क करो । हे जलो ! तुम (अनाधृष्टाः, महौजसः, महि, क्षत्रम्, क्षत्रियाय, दधतीः, सीदत) अमुरों से अनाधृष्ट पराभव न पानेवाले, बलके सहित बड़े बलको इस क्षत्रिय राजा में स्थापन करते हुए, इस स्थानमें अवस्थान करो ॥ ४ ॥

सोमस्य त्विषिरभि तवैव मे त्विषिर्भूयात् ।
 अग्नये स्वाहाः सोमाय स्वाहा सत्रिणे स्वाहा-
 सरस्वत्यै स्वाहा पूष्णे स्वाहा बृहस्पतये स्वाहे-
 हेन्द्राय स्वाहा घोषाय स्वाहा श्लोकाय स्वाहा ॐ
 शाय स्वाहा भगाय स्वाहायिष्णे स्वाहा ॥ ५ ॥

इस क० में १३ मं० हैं । सबका बरुण ऋ० है ॐ । आसु०
 गा० १, ३, ४, ८, ९, १०, ११, १२, १३, देवी पं० १ देवी
 त्रि० ६ देवी वृ०, ७ दे० ज०, और देवता १ चर्म, अन्य सबका
 लिङ्गोक्त है । मंत्रार्थ-हे चर्म ! तुम (सोमस्य, त्विषिः, अस्ति,
 तव, त्विषिः, मे, भूयात्) सोमदेवकी कान्तिरूप हो, आपकी
 कान्ति मुझमें होनाय (अग्नये, स्वाहा; सोमाय, स्वाहा, सत्रिणे
 स्वाहा, सरस्वत्यै, स्वाहा, पूष्णे स्वाहा, बृहस्पतये, स्वाहा) अग्नि
 देवता की प्रीति के निमित्त यह आहुति दीजाती है, भलीप्रकार
 गृहीत हो, प्रेरक सोमदेवता के निमित्त आहुति० सविता देवता
 के निमित्त श्रेष्ठ आहुति० प्रवाहरूप सरस्वतीके निमित्त आहुति०
 पोषक पूषादेवता के निमित्त यह आहुति०, बृहस्पति के निमित्त
 यह आहुति दीजाती है स्वीकार हो । (इन्द्राय, स्वाहा, घोषाय,
 स्वाहा, श्लोकाय स्वाहा, अंशाय, स्वाहा, भगाय, स्वाहा, अर्थश्लो
 स्वाहा) इन्द्र देवताकी प्रीति के निमित्त यह आहुति० शब्द करने
 वाले देवता के निमित्त यह आहुति० जनोंसे कीर्ति परस्पर आ-
 न्दोलन रूपके निमित्त यह आहुति० पुण्य पापके विभाग करने
 वाले के निमित्त यह आहुति० पेश्वर्य के निमित्त यह आहुति०
 विश्व को व्याप्त करनेवाले अर्थमा देवताके निमित्त यह आहुति
 दीजाती है ॥ ५ ॥

पवित्रे स्थो वैष्णव्यौ सवितुर्वैः प्रसव वृत्पुना-
 म्यच्छिद्रेण पवित्रेण सूर्यस्य रुश्मिभिः ।
 अनिभृष्टमासि घ्राचो वन्युस्तपोजाः सोमस्य
 दात्रमासि स्वाहा राजस्वः ॥ ६ ॥

इस कं० में ३ मं० हैं । सबका वरुण ऋ० है । छं० १. देवी
ज० २ प्राजा० पं० ३ भुरिगप्राजापत्या पं० और देवता १ पवित्रे
२ आप ३ आप है । मंत्रार्थ—(पवित्रे, वैष्णव्यौ, स्थः) हे पवित्र
कुशद्वय, तुम यज्ञकार्य में नियुक्त हो, (सवितुः, मसवे, अचिद्ध्रेण
पवित्रेण, सूर्यस्य, रश्मिभिः, वः, उत्पुतामि) जगत्के एकमात्र
नियन्ता इस परम-देवता के नियोग से नियुक्त होकर विद्विशून्य,
पवित्रद्वारा सूर्यकी किरणों से तुमको उत्पन्न सिंचन करता हूँ ।
हे जलों ! तुम (अनिभृष्टम्, वाचः, वधुः) राक्षसों से अपराभूत
वाक्यके प्रकृतबन्धु हो (तपोजाः, सोमस्य, दात्रम्, अस्ति, स्वाहा
राजस्वः) तेजसे समुत्पन्न सोमके उत्पादक हो, तथा स्वाहाकारसे
पवित्र हुए, इस यजमानको राजश्री सम्पादन करो ॥ ६ ॥

सधमादो धुम्निनीराप एता अनाधृष्टा अपस्यो
वसानाः । पस्त्यासु चक्रे वरुणः सधस्यंमपाथे
शिशुर्मन्तृतमास्यन्तः ॥ ७ ॥

इसका वरुण ऋ०, विरा० त्रि० छं० और वरुण देवता है ।
मंत्रार्थ—(एताः सधमादः, धुम्निनीः, अनाधृष्टाः, अपस्यः वसानाः
आपः, पस्त्यासु, मातृतमासु, अन्तः, अपांशिशुः, वरुणः, सधस्यं,
चक्रे) जो यह एकत्र चार पात्रमें स्थित, प्रसन्न होनेवाले वीर्यवान्,
अपराभूत पात्रोंका आच्छादन करनेवाले यह जल इस समय अभि-
पेक कार्यमें नियुक्त हुए हैं, इसप्रकार सबके धारण करने में गृह
रूप जगन्निर्माता मातृरूप इन जल देवियोंके भीतर में जलों के
शिशु वरुण यजमानने सादर स्थिति की है ॥ ७ ॥

सधस्योल्बमासि सधस्यं जराध्वंसि सधस्य योनिं
रसि सधस्य नाभिरक्षीन्द्रस्य वाग्निघ्नमसि
मिध्रस्यांसि वरुणस्यासि त्वयायं वुत्रं धधेत् ।
दृवांसि रुजांसि धुमांसि प्रातैनम्प्राध्वंम्प्रातैनं-
म्यल्यध्वंम्प्रातैनंन्तिर्ध्वंन्दिग्भ्यः पात ॥ ८ ॥

इस कं० में ११ मं० हैं । सबका वरुण ऋ० है । छं० १

याजुषी गा० २, ३, ४, याजुष्युष्णिक् ५ प्रा० गा० ६ दैवी वृ०
 ७ दैवी पं० ८, ९, १० दैव्यनु० ११ आर्च्युष्णिक् और देवता
 १ तार्ष्य २, ३, ४ पाण्डवादय ५, धनु ६, धनुःको० ७ वामको
 ८, ९, १० इषु ११, इषव देवता है। मंत्रार्थ—हे तार्ष्य वधु तुम !
 (क्षत्रस्य, ध्रुवम्, असि) क्षत्रधर्मावलम्बी इस यजमानकी गर्भा
 धार भूत जलरूप हो द्वे पाण्डुरक्तकम्बला ! तुम (क्षत्रस्य, जरायुः)
 क्षत्रिय यजमान की गर्भवेष्टन चर्मरूप हो। हे अधिवास ! तुम
 (क्षत्रस्य, योनिः, असि) क्षत्रधर्मावलम्बी यजमानकी योनिरूप
 हो। हे वद्वीप ! तुम (क्षत्रस्य, नाभिः, असि) क्षत्रधर्मावलम्बी
 यजमानकी गर्भबन्धनस्यान हो। हे धनुप ! तुम (इन्द्रस्य, वार्ष्णेन
 असि) इस इन्द्ररूप यजमानके वृत्रनाशक धनुःसम्बन्धी हो। हे
 दक्षिणकोटि ! तू (मित्रस्य, असि, वरुणस्य, असि) मित्र सम्ब-
 न्धिनी है। हे वामकोटि ! तू वरुण सम्बन्धिनी है। हे धनुप !
 (अयं, त्वया, वृषं, वधेत्) यह यजमान तुम्हारे द्वारा सम्पूर्ण
 शत्रुओं का नाश करे। हे वाणो ! तुम (वृवा, असि) शत्रुओं
 के विदीर्ण करनेवाले हो। हे वाणो ! तुम (रुजा, असि) शत्रु-
 ओंके भंग करनेवाले हो। हे वाणो ! तुम (क्षमा, असि) शत्रुओं
 के कम्पित करनेवाले हो। हे वाणो ! तुम (एनम्, प्राञ्चम, पात)
 इस यजमानको पूर्व दिशाकी ओरसे रक्षा करो। हे वाणो ! तुम
 (एनं, मत्स्यं, पात) इस यजमानको पश्चिम ओरसे रक्षाकरो।
 हे वाणो ! तुम (एनं, तिर्यञ्चं, पात, दिग्भ्यः, पात) इस यजमान
 को उत्तर दक्षिण की ओरसे रक्षा करो, बहुत क्या सम्पूर्ण दिशाओं
 से रक्षा करो ॥ ८ ॥

आविर्मर्ष्या आवित्तो अग्निर्गृहपतिरावित्तु

इन्द्रो वृद्धश्रवा आवित्तो मित्रावरुणौ धृत-

व्रतावावित्तः पूषा विश्ववेदा आवित्ते वाचा-

पृथिवी विश्वशम्भुवावावित्तादितिरुरुशर्मा ॥ ९ ॥

इसक० मं० ७ मंत्र है। सयका वरुण श्र० है। छं० १ दै० वृ०

२, ३, ५, ७, या० वृ० ४, आसु० वृ० १ आसु० और देवता
 १ मजा०, २, ३, ५, ७ लिङ्गोक्त ४, ६ लिङ्गोक्त है । मंत्रार्थ-
 (मर्त्याः, आभिः, गृहपतिः, अग्निः, आयत्तः, धृतव्रतौ, मित्रा-
 बरुणौ, आविष्ठौ, विश्ववेदाः, पूषा, आविष्ठाः) भूमण्डलवासी
 मनुष्यमण्डली इस यजमान को जाने, गृहपालक अग्नि, इस
 यजमानको जाने, विख्यातकीर्ति इन्द्र इस यजमानको जाने, नियम
 में तत्पर मित्रावरुण सूर्यचन्द्र इसको जानें, सब क्रुद्ध जाननेवाले
 पूषा देवता, इसको जाने । (विश्वशम्भुर्वा, धावापृथिवी, आ-
 विष्ठा, उरुशर्मा, अदितिः, आविष्ठा) संसारके कल्याण की विधात्री
 पृथ्वी और दुलोक के अभिमानी देवता जाने, बड़े सुविस्तीर्ण,
 सुख के आधयरूप देवमाता फाल इसको जाने ॥ ९ ॥

अथेष्टा दन्द्रशुकाः प्राचीमारोह गायत्री त्वावतु
 रथन्तरथ सामं त्रिवृत् स्तोमो वसन्त ऋतुर्ब्रह्म
 द्रविणम् ॥ १० ॥

इस कं० में २ मं० हैं । सबका बरुण ऋ० है । वृ० १ दै०
 ज० २ निचृदा० पं० और देवता १ मृ० ना० २ यजमान है, मंत्रार्थ-
 (दन्द्रशुकाः, अथेष्टाः) काटने के स्वभाववाले मृत्यु के कारण
 सर्पादि विमष्ट हुए । हे यजमान ! तुम (प्राची, आरोह) पूर्वदिशा
 को आरोहण करो, (गायत्री, त्वा, अवतु) गायत्री छन्द तुमको
 रक्षा करे सोमों के मध्यमें (रथन्तरथसाम, त्रिवृत्स्तोमः, वसन्त
 ऋतुः, ब्रह्म, द्रविणम्) रथन्तर साम स्तोमके मध्यमें त्रिवृत्स्तोम
 ऋतुओंमें वसन्त ऋतु परमात्मा का ऐश्वर्य तुम्हारी रक्षा करे १०

दक्षिणामारोह त्रिष्टुप्त्वावतु बृहत्सामं पञ्च-
 दश स्तोमो ग्रीष्म ऋतुः क्षत्रं द्रविणम् ॥ ११ ॥

इसका बरुण ऋ० आ० पं० वृ० यजमान देवता है । मंत्रार्थ-हे
 यजमान । तुम (दक्षिणा, आरोह) दक्षिण दिशाको आक्रमण
 करो (त्रिष्टुप् बृहत्साम पंचदशस्तोम, ग्रीष्मऋतुः, क्षत्रं, द्रविणं,
 त्वा, अवतु) त्रिष्टुप्छन्द बृहत्साम पंचदशस्तोम ग्रीष्मऋतु

सत्रियजाति सम्वन्धी ऐश्वर्यं तुभक्तौ रक्षाकरे ॥ ११ ॥

प्रतीचीमारोहं जगती त्वावतु वैरूपसामं
सप्तदशस्तोमो वर्षा ऋतुर्विद् द्रविणम् ॥ १२ ॥

इसका वरुण ऋ०, निचूदार्घ्यनुष्णं छं० यजमान देवता है ।
मन्त्रार्थ—हे यजमान तुम (प्रतीचीं, आरोह, जगती, वैरूपं साम,
सप्तदशस्तोमः, वर्षाऋतुः, विद्, द्रविणं, त्वा, अवतु) पश्चिमदिशा
को आक्रमण करो, जगती छन्द, वैरूपसाम, वर्षाऋतु, वैश्य स-
म्वन्धी ऐश्वर्य, तुम्हारी रक्षाकरे ॥ १२ ॥

उदीचीमारोहानुष्णत्वावतु वैराजसामकविं
शस्तोमः शरदतुः फलन्द्रविणम् ॥ १३ ॥

इस कं० में २ मं० हैं । सबका वरुण ऋ० है । छं० १ निचू-
दप्राप्त्युष्णिक १ मा० गा० और देवता १ यजमान २ असुर है
मन्त्रार्थ—हे यजमान तुम (उदीचीम्, आरोह, अनुष्ण, वैराजसाम,
एकविंशस्तोमः, शरदतुः, फलं, द्रविणं, त्वा, अवतु)
उत्तर दिशाको आक्रमण करो, अनुष्णछन्द, उत्पन्न वैराजसाम
एकविंश स्तोम, शरदतु, यज्ञफलरूप ऐश्वर्यं तुमको रक्षाकरे १३

ऊर्ध्वमारोहं पंक्तिस्त्वावतु शाक्वरैवते
सामनी त्रिणवत्रयस्त्रिंशौ स्तोमो हेमन्त-

शिशिरावृत्तं चर्चोर्द्रविणमप्रत्यस्तन्नमुचेः शिरः १४

इसका वरुण ऋ० है । धुरिणं जगती छं० और यजमान देवता
है । मन्त्रार्थ—हे यजमान तुम (ऊर्ध्वम्, आरोह, पंक्तिः, शाक्वर
रैवते, सामनी, त्रिणवत्रयस्त्रिंशौ, स्तोमो, हेमन्तशिशिरौ, ऋतु,
चर्चोर्द्रविणं, त्वा, अवतु) ऊपर भागको आक्रमण करो पंक्तिछन्द,
शाक्वरसाम और रैवत, साम, त्रिनव और त्रयस्त्रिंश, स्तोम,
हेमन्त और शिशिर, दोनों ऋतु, तेजोभिमानी देवका ऐश्वर्य
तुम्हारी रक्षा करे (तमुचेः, शिरः, प्रत्यस्तम्) तमुचि असुरका
शिर दूर फेकागया ॥ १४ ॥

सोमस्य त्विषिरसि तथैव मे त्विषिभूयात्

अनुरीयमाणाः, अधराकू, आवृष्टप्रन) स्वयं ही विश्वको सींचने वाले गमनशील, स्तुतियोंको प्राप्त होनेवाले वर्षा करमेवाले पर्वतके पृष्ठसे आदित्य मण्डलकी ओर गमन करते हैं । वे आहुतिके परिणामभूत जल ऊपर मास हुए अन्तरिक्षमें होनेवाले, मेघोंको अनुसरण करतेहुए नीचे भूमिको मास होते हैं ॥ १९ ॥

प्रजापते नत्वदेतान्यन्यो विश्वा रूपाणि परिता-
 बभूव पत्कामास्ते जुहुमस्तन्नो अस्तु अयं अमुष्य-
 पितासावस्य पितावपथ स्वाम पतयो रयीणा-
 थस्वाहा । रुद्र यत्तै क्रिवि परन्नामतस्मिन्हु
 तभस्यमेष्टमसि स्वाहा ॥ २० ॥

इस कं० में ३ मं० हैं । स्वका देववात श्रु० है । कं० १ तिष्ठ०
 २ सांयी गा० ३ साम्नी भि० है और देवता १ प्रजापति २ आशीः
 ३ रुद्र है । मंत्रार्थ-हे प्रजापते (त्वत्, अन्यः, एतानि, विश्वा,
 रूपाणि, न, परिता, बभूव) हे परमात्मन्, आपसे और कोई
 भी इन सम्पूर्ण प्रजापालनादि कार्य तथा नाना जातीय वर्तमान
 भूत, भविष्यत्, कालमें के माणियोंके सृजन पालन संहारमें नहीं
 समर्थ है इसकारण तुम्हीं हमारी प्रार्थना पूर्ण करने में समर्थ हो
 (यत्कामाः, ते, जुहुमः, तज्, नः, अस्तु, अयं, अमुष्य, पिता,
 असौ, अस्य, वयं, रयीणां, पतयः, स्वाम, स्वाहा) जिस कामना
 से आपके निमिष दहन करतेहैं, वह कामना हमारी पूर्ण हो, यह
 अमुक का पिता है, यह इसका पिता चिरस्थायी रहे, हम अपरिमित
 ऐश्वर्य के स्वामी हों, वह आहुति भलीप्रकार गृहीत हो, (रुद्र,
 यत्, ते, क्रिवि, परं, नाम, तस्मिन्, हुतं, अस्ति, अमेष्टं, आसि,
 स्वाहा) हे रुद्रदेव । जो तुम्हारा भयपकारी, दुष्टनाशक, उत्कष्ट
 नाम है, हे देव उस रुद्रनाममें तुम हुत होओ, तुम हमारे घरमें
 आहुत होती हो, इस कारण सबप्रकार हमारी उपकारी होओ,
 यह आहुति भलीप्रकार गृहीत हो ॥ २० ॥

इन्द्रस्य धज्जोसि मित्रावरुणयोस्त्वा प्रशास्त्रोः

प्रशिषा युनज्मि । अर्घ्यधायै त्वा स्वधायै त्वा
रिष्टो अर्जुनो ब्रह्ताम्प्रसवेन जवापाम्
मनसा समिन्द्रियेण ॥ ११ ॥

इस कं० में ५ मं० हैं । सत्रका देवघात ऋ०, छं० १ देवी
त्रि० २ साम्न्य० १ साम्न्युष्णिक् ४ या० वृ० ५ दै० त्रि और
देवता १, २, १, रथ, ४ धुर्य, ५ यजमान है । मंत्रार्थ-हे रथ ।
तुम (इन्द्रस्य, वज्रः, असि) इन्द्रके वज्रकी समानशक्तिदुश्चेष्ट
काष्ठसे निर्मित हो । (मशास्त्रीः, मित्रावरुणयोः, प्रशिषा, त्वा,
युनज्मि) शासनकारी मित्रावरुण देवताके प्रशासनसे तुमको इस
रथ में युक्त करता हूं । (अरिष्टा, अर्जुनः, अर्घ्यधायै, त्वा, स्वधायै
त्वा) अनुपार्हिसित, अर्जुनतुल्य इन्द्र, देशका भय दूर करने के
निमित्त अचलताके निमित्त, तुझमें तथा देशमें सुभिन्न सम्पादन
करने के निमित्त तुमपर आरोहण करता हूं । हे रथधुरबाहक
शरव ! (मरुतां, प्रसेवन, जय) मरुद्गणों की आंहासे वेगवान्
होकर शत्रुओंको जीतो हमने जो कार्य आरम्भ किया है उसको (मन-
सा, अपाम्) मनके अनुसार सम्पन्न किया । हम (इन्द्रियेण, सम्)
वीर्यसे संगत हुए ॥ ११ ॥

मा तं इन्द्र ते व्रयन्तुराघाडयुक्तासो अब्रह्मता-
विदंताम् । तिष्ठारथमधि यं वज्रहस्ताश्वमी-
न्देव यमसेश्वरान् ॥ १२ ॥

इसका संवरण ऋ० निचृ० त्रि० छं० और इन्द्र देवता है
मंत्रार्थ-(तुराघाट्, वज्रहस्ता, इन्द्र, देव, यं, रथं, अधितीष्ठ, स्व-
श्वान्, ररमीन्, आयमसे, ते, वयं, ते, अयुक्ताः, मा, विदंताम्
अब्रह्मता) शीघ्र शत्रुओंका तिरस्कार करने में लघुहस्त हाथमें
वज्रधारण करनेवाले हे ऐश्वर्ययुक्त, हे दीप्यमान ! तुम जिस रथ
में स्थित होकर अच्छे सुशिक्षित घोड़ोंकी लगामों को धामते हो
हम तुम्हारे तिस रथसे भिन्न हुए हानि को प्राप्त न करें, प्रहस
नहीं है इसप्रकार ब्रह्मभावसे अन्य वस्तु न जानै ॥ १२ ॥

अग्नये गृहपतये । स्वाहा सोमाय वनस्पतये
 स्वाहा मरुतामोजसे स्वाहा इन्द्रस्येन्द्रियाय स्वाहा
 पृथिवि मातृर्मागाहिँसीर्मा अहन्त्वाम् ॥ २३ ॥

इस क० में ५ म० हैं । सरका संवरण ऋ० । इं० १, २,
 याजुषी ५० १, ४, याजुष्य० ५ आसु० और देवताः सबका लि
 श्लोक्त है । मंत्रार्थ—(गृहपतये, अग्नये, स्वाहा, वनस्पतये सोमाय
 स्वाहा, मरुता, ओजसे स्वाहा, इन्द्रस्य, इन्द्रियाय, स्वाहा) गृह
 पालक अग्निदेवताके निमित्त श्रेष्ठ आहुति हो, वनस्पति रूपी,
 सोमकी प्रीति के निमित्त श्रेष्ठ होम हो, मरुद्गणों के वज्र के
 निमित्त हवि देतेहैं, इन्द्रके वीर्यके निमित्त हवि देतेहैं । (मातृ ,
 पृथिवि, मा माँहिँसी, अह त्वा, माउ) ह जगत् की निर्माता
 पृथ्वी ! तुम मुझको मताहिँसा करो मैं तुमको वनेश न दू ॥२३॥

इत्थ सः शुचिपदसुरन्तरिक्षसद्गोतां वेदिपदनि-
 धिर्दुरोणसत् । नृपद्वरसदृत्सर्व्व्योमसद्वजा
 गोजा ऋतुजा अद्रिजा ऋतम्बृहत् ॥ २४ ॥

इसका वामदेव ऋ० । अति ज० । इं० और सूर्य देवता है ।
 मंत्रार्थ—(शुचिपद, इत्थ, अन्तरिक्षसत्, वसु, वेदिपत्, होता,
 दुरोणसत्, अतिथि, नृपत्, वरसत्, ऋतसत्, व्योमसत्, उ,
 अठना, गोजाः, ऋतुजा, अद्रिजा, ऋतम्, बृहत्) पवित्रस्थान
 दीप्ति में आदित्यरूप से स्थित अहकारका दूर करनेवाला आत्मा
 वायुरूपसे अन्तरिक्षमें स्थित मनुष्योंका प्रवर्त्तक अग्निरूपसे वेदी
 में स्थित होकर देवताओं का आह्वान करनेवाला आहवनीय रूप
 से यज्ञमें स्थित सबका पूजनीय मनुष्यों में प्राणभाव से स्थित,
 उत्कृष्ट स्थानों क्षेत्रों में स्थित, यज्ञ में स्थित आकाश में मण्डल
 रूपसे स्थित इसप्रकार सर्व स्थितिसे प्रार्थना करके सबके उत्पत्ति
 द्वारसे प्रार्थना करते हैं, और जो मत्स्यादिरूप से जलोंमें होता
 चतुर्विध मूतप्राण रूपसे भूमिमें होनेवाला, सत्यमें होनेवाले पा-
 षमाण अग्निरूपसे होनेवाले, मेघमें जलरूपसे होनेवाले, सर्वागत

अपर्यन्त परब्रह्मरूप परमात्मा का स्मरणकर रयसे उतरता हूँ २४
 ह्यदृष्ट्यायुरस्यायुर्ममिधि धेहि। युद्धमि वचामि
 वर्चो मयि धेह्युर्गस्युर्जन्ममधि धेहि। इन्द्रस्य वा
 वीर्यकृतो वाह अभ्युपासहरामि ॥ २९ ॥

इस कं० में ३ मंत्र हैं। सबका वामदेव ऋ० छं० १ साम्नी
 ज० २ माजा० गा० ३, नि० मा०, नु० और देवता १ हिरण्य,
 २ शाखा ३ वाहु है। मंत्रार्थ—हे शतमान ! तुम (इयत्, असि
 आयुः, असि, मपि, आयुः, धेहि) सौ रत्तीके इतने परिमाणवाले
 हो। जीवन हो, सुवर्णदानसे दीर्घायु होती है, मुझमें जीव धारण
 करो। हे शतमान ! तुम (युद्ध, असि, वर्चः, असि, मे, वर्चः,
 वीर्यकृतो वाह) दानसे पदरंग से तेजकी

धारण कराओ। हे उद-
 धेहि, वीर्यकृतः, इन्द्रस्य,
 वाह, वां, अभ्युपासहरामि), अन्नष्टि के कारण हो, शकट में
 होकर अन्न आता है अन्न को मुझ में स्थापन करो, वीर्य के करने
 वाली परमपेश्वर्यवान यजमानकी, हे दोनो भुजाओं। मैं, तुम
 दोनों को, मित्रावाहणी पंचस्था के प्रति नीची करता हूँ ॥ २५ ॥

स्योनासि सुपदासि क्षत्रस्य योनिरसि । स्यो-
 नामासीद सुपदामासीद क्षत्रस्य योनिमासीद ॥ २६ ॥

इस कं० में ३ मंत्र हैं। सबका वामदेव ऋ० है, छं० १, २
 देवीज०, ३ भुरिगार्घी गा०, और देवता १, २ आसन्दिबन्धे,
 ३ यजमान है। मंत्रार्थ—हे द्यूवां आसन्दि ! तुम (स्योना,
 असि, सुखदा, असि) सुखरूप हो तथा सुखसे बैठनेयोग्य हो।
 हे अधोवास। तुम (क्षत्रस्य, योनिः, असि) क्षत्रधर्माश्रित इस
 यजमान के आधार के उपयुक्त स्थान हो। हे यजमान ! (स्योनां
 आसीद, सुखदाः आसीद, क्षत्रस्य, योनिः, आसीद) सुख की
 करनेवाली आसन्दी में आरोक्षण कर सुख से उपवेशन के योग्य
 में बैठो, यह अधिवास और आसन्दी तुम्हारी समाप्त राजपुरुष

के उपवेशन योग्य आधार है, इसपर बैठो ॥ २६ ॥

निपसाद धृतव्रतो वरुणं पस्त्यास्वा । साम्रा-

ज्याय मुकृतुः ॥ २७ ॥

इसका शूनःशेष ऋ० है । वर्द्धमाना गा० छं० वरुण देवता है । मंत्रार्थ—(धृतव्रतः, मुकृतुः, वरुणः, साम्राज्याय, पस्त्यासु, अनिपसाद) यहलक्षण व्रत के धारण करनेवाले श्रेष्ठ संकल्प अनिष्टके निवारण करनेवाले इस यज्ञमाननेसम्राट्माव के निमित्त मजाओंमें आधिपत्यरूपसे स्थिति की ॥ २७ ॥

अभिभूरस्येतास्ते पञ्च दिशः कल्पन्तां ब्रह्म-
स्त्वम्ब्रह्मासि सवितासि सत्यप्रसवो वरुणोसि
सत्यौजा इन्द्रोसि विशौजा रुद्रोसि सुशेवः ।
बहुकार श्रेयस्करभूर्यस्करेन्द्रस्य वज्रोसि तेन
मे रद्व्य ॥ २८ ॥

इस कं० में ८ मं० हैं । सबका शूनःशेष ऋषि है । छं० १ साम्युष्णिक् २ याजुषी गा० ३ या० वृ० ४ याजुष्पुष्णिक्, ५ ६ या० गा० ७ याजु० ज० ८ याजु० नि० और देवता १ अक्षा यज्ञ० २, ४, ५, ६ ब्रह्म दे० ७ लिङ्गो० ८ स्फ्य है । मंत्रार्थ— हे यज्ञमान ! तुम (अभिभूः, असि, पताः, पञ्चदिशः, ते कल्पन्ताम्) इन पाँच के द्वारा सकल जगत् के परामव करनेवाले हो, यह पाँच पूर्व, पश्चिम, उत्तर, दक्षिण और ऊर्ध्व दिशा इसके द्वारा तुम्हारे हस्तगत प्राप्त हों । (ब्रह्मन्, ब्रह्मा, असि, ब्रह्मा सत्यप्रसवः, सविता, असि) हे ब्रह्मन् ! तुम ब्रह्माकी महिमावाले हो, हे यज्ञमान ! तुम महा महिमावाले अनुलंघ्य उपदेश देने में समर्थ मजावर्ग के निपन्ता होने से सविता हो, (ब्रह्मा, त्वं, ब्रह्मा, असि, सत्यौजाः, वरुणः, असि) हे यज्ञमान ! महा महिमावाले तुम अमोघवीर्य मजावर्ग के अनिष्ट निवारण करने से वरुण हो, (ब्रह्मन्, विशौजाः, इन्द्रः, असि, ब्रह्मन्, सुशेवः रुद्रः, असि, ब्रह्मन्, ब्रह्मा, असि) हे महिमावाले, यज्ञमान ! तुम

ऐश्वर्यवान् देशकी शान्ति की रक्षा करने से इन्द्र हो, हे महा-
महिमा वाले यजमान ! तुम आश्रित जनोके सुख देनेवाले पुनः
देवनीय तथा शत्रुगणों की स्त्रियोंके रुलानेवाले रुद्र हो, हे
यजमान तुम ब्रह्मा अर्थात् महा महिमावाले हो, इसकारण ब्रह्मा
हो । (बहुकार, श्रेयस्कर, भूयस्कर) हे सम्पूर्ण कार्यमें निपुण
मत्स्येक श्रेष्ठकार्यप्रवर्तक बहुत कार्यकारी, इस स्थानमें आगमन
करो । हे सूर्य ! तुम (इन्द्रस्य, वज्रः, असि, तेन, मे, स्थ्य)
इन्द्र का वज्र हो, इसकारण मेरे यजमान के बराबरी होकर,
कार्य साधन करो ॥ २८ ॥

अग्निः पृथुर्द्धर्मणस्पतिर्जुषाणो अग्निः-पृथु-
र्द्धर्मणस्पतिराज्यस्य वेतु स्वाहा स्वाहाकृताः
सूर्यस्य रश्मिभिर्द्यतध्वं सजातानां मध्य-
मेष्ठयाय ॥ २९ ॥

इस कं० में २ मंत्र हैं । सक्का शुनःशेष ऋ० । छं० १ मा०
त्रि०, २ साम्नी त्रि० और दे०-१ अग्नि, २ अक्ष है । मंत्रार्थ-
(अग्निः, पृथुः, धर्मणः, पतिः, जुषाणः, पृथुः धर्मणः, पतिः,
अग्निः आज्यस्य वेतु, स्वाहा) महान अग्निदेवता, देवताओं में
प्रथम होने से विशाल, जगत् के धारण करनेवाले धर्मका स्वामी
प्रीयमाण इवि का सेवन करनेवाला, जो देखते २ अति प्रवृद्ध
होता है जो गृहस्थियों के गृहधर्म का प्रधान साक्षी है वह अति
विपुल धर्मस्वरूप, अग्निदेवता हमारी दी हुई घृत की इवि मीति
पूर्वक भक्षण करे; यह आहुति भलीभकार गृहीत हो । हे अक्षगण !
(स्वाहाकृताः, सूर्यस्य, रश्मिभिः, सजातानां, मध्यमेष्ठयाय,
यतध्वम्) आहुति प्रदानपूर्वक गृहीत तुम, अतिप्रचण्ड सूर्य की
किरणों से सम्मिलित हुए स्पर्धा करो, समानजन्म क्षत्रिय भाइयों
के मध्य में सब से श्रेष्ठ करने को यत्न करो ॥ २९ ॥

सवित्रा प्रसवित्रा सरस्वत्या वाचा त्वष्टा

इषैः पूषणा पूशुभिरिन्द्रेणास्मे वृहस्पतिना

ब्रह्मणा वरुणेनौजसाग्निना तेजसा सोमेन

राज्ञा विष्णुना दशम्या देवतया प्रसृतः प्रसर्पामि ३०

इसका शुभशर ऋ० निचृदत्पष्टिं० सविताया देवता है, मंत्रार्थ- (मसवित्रा, सवित्रा, यावा, सरस्वत्या, रूपैः, त्वष्टा, पशुभिः, पूष्णा, अस्मे, इन्द्रेण, ब्रह्मणा, वृहस्पतिना, ओजसा, वरुणेन, तेजसा, अग्निना, राज्ञा, चन्द्रेण, दशम्या, देवतया, विष्णुना, प्रसृतः, प्रसर्पामि) समस्त जीवोंके प्रेरणा करनेवाले सविता सूर्य, वांक्रूपा सरस्वती, रूपके अधिष्ठात्री त्वष्टा देवता पशुओंसे उपलक्षित पूषा देवता स्वयं, इन्द्र, देवयाग में ब्रह्मत्वको प्राप्तहुए वृहस्पति वड़े तेजसेयुक्त वरुण तेजसेयुक्त अग्नि औपधि ब्रह्मणोंके अधिपः दीप्यमान चन्द्रमा दशसंख्याके पूर्ण करनेवाले यज्ञके अधिष्ठात्री देव परमात्मा, नारायण के द्वारा, अनुष्ठा कियाहुआ, मैं प्रसर्पण करता हूँ ॥ ३० ॥

अशिवभ्यां पच्यस्व सरस्वत्यै पच्यस्वेन्द्राय

सुव्राण्ये पच्यस्व वायुः पूतः पवित्रेण मत्यद्

सोमो अतिसुतः इन्द्रस्य युज्यः सखा ॥ ३१ ॥

इसके ० में ४ मंत्र हैं। ऋ० १ अश्विना वृ० २, ३, ४, शुभः शेष ऋ० है। छं० १ या० गा० २ याजुष्यु० ३ या० वृ० ४ निचृदा गा० छं० देवता १, २, ३, लिङ्गोक्त ४ सोम है। मंत्रार्थ- हे सुरोंके योग्य-वीहि! (अश्विभ्यां, पच्यस्व, सरस्वत्यै, पच्यस्व सुव्राण्ये, इन्द्राय, पच्यस्व) अश्विनीकुमार-देवताओं की प्रीति के निमित्त, सरूपसे परिणत हो; सरस्वती देवी की प्रीतिके निमित्त पचकर रूपान्तर को परिणत हो, भलीभकार रक्षा करने वाले इन्द्र देवता की प्रीति के निमित्त पाकको प्राप्त हो (इन्द्रस्य युज्यः, सखा, पवित्रेण; पूतः, वायुः, सोमः, मत्यद्, अतिसुतः) इन्द्र का योग मित्रभूत, पवित्रद्वारा शुद्ध किया, तथा वायु द्वारा पवित्र हुआ, सोम इस पवित्रद्वारा अधोमुख स्तरित होता हुआ, अतिक्रमण करगया ॥ ३१ ॥

कुविद्भ्यः यवमन्तो यवञ्चिद्यथा दान्त्पनुपूर्व
 विपूर्व । इहेहेपाङ्कणुहि भोजनानि ये वहिषो
 नम उक्ति यजन्ति । उपयामगृहीतोऽश्विभ्यां-
 न्त्वा सरस्वत्यै त्वेन्द्राय त्वा सुत्राम्णे ॥ ३२ ॥

इसका काशीवत सुकीर्ति श्रु०, निचूद्ब्राह्मी त्रि० व्दे०, सोमदेवता है । मंत्रार्थ-हे सोम (यथा, इह, यवमन्तं, कुपित, यवं, चित्, अ-
 नुपूर्वम्, विषूय, अद्भ्यः, दान्ति) जिसप्रकार-इस लोक में बहुत यव
 से सम्पन्न एकमात्र किसान, बहुतसे यवसे पूर्ण शस्य को; विषार
 करके क्रम से पृथक् करके शीघ्रः कर्तन करते हैं, इसीप्रकार अति
 अल्पमात्र तुम देवगणों के प्रिय हो (एपां, भोजनानि, इह, कृणुहि,
 ये, वहिषि, नमः, उक्ति, यजन्ति) इन यजमन्तों के सम्बन्धी,
 विविध प्रकार के भोजन, इस यजमान में सम्पादन करो, जो
 कुशासन पर बैठे हुए अतिव्रतगण, हविलक्षणवाले अन्न को लेकर
 याज्ञ्य का नाम लेकर याग करते हैं । हे सोम ! तुम (उपयाम-
 गृहीतः, अस्ति) उपयामपात्र में गृहीत हो (अश्विभ्यां, त्वा)
 अश्विनीकुमार की प्रीति के निमित्त, तुमको ग्रहण करता हूँ । हे
 सोम ! तुम उपयामपात्र में गृहीत हो (सरस्वत्यै, त्वा) सर-
 स्वती देवता की प्रीति के निमित्त तुमको ग्रहण करता हूँ । हे
 सोम ! तुम उपयामपात्र में गृहीत हो (सुत्राम्णे, इन्द्राय, त्वा)
 पालक इन्द्रदेवता की प्रीति के निमित्त तुमको ग्रहण करता हूँ ॥ ३२

युवम् सुराममश्विना नमुचावासुरे सचा ।

विपिपाना शुभस्पती इन्द्रमस्वावतम् ॥ ३३ ॥

इसका काशीवत सुकीर्ति श्रु०, निचूद्ब्राह्मी त्रि० व्दे०, अश्वि
 सरस्वतीन्द्रा देवता है । मंत्रार्थ (अश्विनां, नमुचौ, आसुरे,
 सुरामम्, सचा, विपिपाना, शुभः, पती, युवम्, कर्मसु, इन्द्रं, आ-
 वतम्) हे सर्वजनहितकारी अश्विनीकुमार ! नमुचिसंज्ञक दैत्य
 में स्थित अधिक रमणीय सोम को, साथ विविधप्रकार से
 पीते हुए शुभकर्म के पालक तुमने उन उन कार्यों में इन्द्र का

पालन किया ॥ ३३ ॥

पुत्रमिव पितरांश्चिन्नोभेन्द्रावधुः काव्यैर्दृष्टं-

संनाभिः। यत्सुराम् व्यपिबुः शचीभिः सरस्वती

त्वा मघवन्नभिष्णक् ॥ ३४ ॥

इसका काशीवत सुकीर्ति ऋ० सुरिगार्ची पं० छं० अश्विनसर-
स्वतीन्द्रा देवता है । मंत्रार्थ—(इन्द्र, उमा, अश्विना, काव्यैः, संस-
नाभिः, त्वा, आवधुः, इव, पितरां, पुत्रं, यत्, मघवन्, शचीभिः
सुरामम्, व्यपिबुः, सरस्वती, अभिष्णक्) हे इन्द्र ! दोनों हित-
कारी अश्विनीकुमार मन्त्र देखनेवाले महर्षियों के काव्य और
कर्मों से मयोगोंसे असुर सहवाससे अगुद्ध सोमरस पानकर विपत्ति
को प्राप्त हुए तुमको रक्षा करते हुए जैसे माता पिता पुत्रकी रक्षा
करते हैं, जिस प्रकार हे इन्द्र ! तुमने नमुचि वधाशिकर्म करके पान
करते ही प्रसन्न करनेवाले रमणीय सोम को विशेषकर पान किया
सरस्वती वाणी तुम्हारी अनुगत है, सेवा करती है ॥ ३४ ॥

इति घृष्ट यजुर्वेदान्तर्गत वाजसनेयि संहिता का सातवादा दशम
अध्याय समाप्त.

अथ एकादशोऽध्यायः

जिसमें अभिषेक के लिये जल लाना आदि राजसूय यज्ञ प्र-
धान है ऐसे दशम अध्याय में अभिषेक से लेकर राजसूय पर्यंत
मन्त्र कहे । अब ग्यारह से लेकर अठारहवें अध्याय तक अग्नि-
चयन के मन्त्र कहे जायेंगे ॥

युञ्जानः प्रथमममनस्तत्वाय सविता धियम् ।

अग्नेज्योतिर्निन्वाद्यं पृथिव्या अद्वाभरत् ॥ १ ॥

भजापति ऋ०, विराटार्घ्यनुष्टुप् छन्द और सविता देवता है ।
मंत्रार्थ—(सविता, मनः, प्रथमं, युञ्जानः, अग्निः, ज्योतिः, धि-
यम्, तत्वाय, निचाद्यं, पृथिव्यै, अध्याभरत्) सबके मेरण करने
वाले भजापति अग्निके आरम्भ में मनको पहले पकाकर अग्नि

के तेज को, बुद्धिपूर्वक इष्टिकादि ज्ञान को पंच पशुओं में प्रविष्ट
जानकर मानसभूमि के लिये धारण किया ॥ १ ॥

युक्तेन मनसा वृषण्डेवस्य सवितुः सवे । स्वः
ग्याय शक्त्या ॥ २ ॥

प्रजापति ऋ०, शंकुमती गा० छ० और सविता देवता है ।
मंत्रार्थ—(सवितुः, देवस्य, सवे, पर्यं, युक्तेन, मनसा, स्वंग्याय,
शक्त्या) संसार को अपने २ कर्म में भेरणा करनेवाले सविता
देव की आज्ञा में वर्तमान हम एकाग्र मनसे स्वर्ग के साधन
करनेवाले कर्म में, अपनी सामर्थ्य से प्रयत्न करते हैं ॥ २ ॥

युक्तार्य सविता देवान्स्वर्यतोश्चिदियम् । बृह-
ज्योतिः करिष्यतः सविताप्रहृवाति तान् ॥ ३ ॥

इसका प्रजापति ऋ०, निषुदा० छ० सविता दे० है । मंत्रार्थ—
जिसकारण से जगत्भेरीक देवता (सविता, तान्, धिया, दिवः,
स्वः, यतः, बृहत्, ज्योतिः, करिष्यतः, देवान्, युक्ताय, आ प्रसु-
वति) सब देवताओं को स्वर्ग में भेरणा करनेवाला तथा इन्द्रिग
गणों को दमन करनेवाला है, वन, बुद्धिपूर्वक कर्मानुष्ठान से
प्रकाशमान स्वर्ग को जानेवाले, महान् आदित्य नामक
आत्मज्योति को संस्कार करनेवाले, प्रसिद्ध देवताओं को अग्नि
कर्म में संयुक्त कर भेरणा करता है ॥ ३ ॥

युञ्जते मन उत युञ्जते धियो धिना विप्रस्य
बृहतो विष्वशितः । वि होत्रा दधे वयुना धिदेक
इन्मही देवस्य सवितुः परिष्टुतिः ॥ ४ ॥

इसका प्रजापति ऋ०, जमतीबिन्द, सविता देवता है । मंत्रार्थ—
(बृहतः, विष्वशितः, विप्रस्य, होत्राः, धियाः, मनः, युञ्जते, उत,
धियो, युञ्जते, एकः, इत्, वयुनावित्, धिदधे, सवितुः, देवस्य,
परिष्टुतिः, मही) अतिमहान् महापण्डित ब्राह्मण यजमान का,
होत्र कार्य करनेवाले अध्वर्यु आदि, इस अग्निर्चयन कार्य में मनु
नियुक्त करते हैं, और बुद्धि नियुक्त करते हैं, एक, आद्वितीय ही

प्रज्ञा तथा ऋत्विक् यजमान के अभिमाय के ज्ञाता ने, यह सब जगत् निर्माण किया है, सब के प्रेरक सविता देव की, सब वेदों में सुनी हुई स्तुति महान है ॥ ४ ॥

युजे वाम्प्रथमं पूर्व्यमोभिर्विश्लोकं एतु पथ्येव
सूरेः । शृण्वन्तु विश्वे अमृतस्य पुत्रा भाये
धामानि दिव्यानि तस्युः ॥ ५ ॥

इसका प्रजापति ऋ०, विराटार्थी त्रि० छ०, सविता दे० है ।
मंत्रार्थ—(वाम्, नमोभिः, पूर्व्य, ब्रह्म, पुत्रे, ब्रह्म, सूरेः, रलोकः, व्येतु,
इव, पथ्या, अमृतस्य, पुत्राः, विश्वे, शृण्वन्तु, ये, दिव्यानि, धामानि,
आतस्युः) हे पत्नी और यजमान ! तुम्हारे निमित्त, नम उक्ति
सहित, पुरातन महर्षियों से अनुष्ठित, अग्निचयनाख्य आत्म-
ज्योतिषर्दक कर्म सम्पादन करता हूँ, ब्राह्मणजाति को अन्नो से
रक्ष करता हूँ, पण्डित यजमान की कीर्ति लोकद्वय में प्राप्त हो,
जैसे यज्ञभाग में प्रवृत्त हुई आहुति लोकद्वय को प्राप्त होती है,
मरणधर्मरहित प्रजापति के पुत्र सम्पूर्ण देवता यजमान की कीर्ति
को सुनें, जो दिव्य स्वर्ग के स्थानों में स्थित हैं ॥ ५ ॥

यस्य मयाणमन्वन्व इत्युर्देवादेवस्य महिमान-
मोजसा । सः पाथिषानि विममे स एतंशो
रजांशसि देवः सविता महित्यना ॥ ६ ॥

सबका प्रजापति अ०, निचूदार्थी ज०, छं० सविता देवता है ।
मंत्रार्थ—(अन्ये, देवाः, यस्य, देवस्य, मयाणं, महिमानं, इत्,
मोजसा, अनुयया, यः, सविता, रजांसि, विममे, सः, देवः,
महित्यना, एतशः) और देवता जिस सविता देवता की प्रतीति
को, महिमा को, अवश्य तपोबल से वर्जित हैं, जिस परमात्मा
ने सम्पूर्ण लोक निर्माण किए हैं वह परमात्मा अपनी महाभाग्य
महिमा के प्रभाव से इस स्यावर जंगम लोक में प्राणरूप से प्रविष्ट
हुआ व्याप्त है ॥ ६ ॥

देव सवितुः प्रसुंष यज्ञप्रसुंष यज्ञपतिभगांय ।

हस्ताभ्याम् । आददे गायत्रेण छन्दसाङ्गिर-
स्यत्पृथिव्याः सधस्यादङ्गिर्व्युत्पृथिव्याः सधस्यादङ्गिर्व्युत्पृथिव्याः सधस्यादङ्गिर्व्युत्पृथिव्याः

। भ्रुवुभेन छन्दसाङ्गिरस्यत् ॥ ९ ॥

इसका मजापति ऋ०, भुरिगति शक्वरी छं० सवित्रभी देवता है । मंत्रार्थ—हे अग्नि (सवितुः, देवस्य, प्रसवे, गायत्रेण, छन्दसा आश्रितोः, वाहुभ्यां, पूष्णः, हस्ताभ्यां, त्वा, अङ्गिरस्यत्, आददे, अङ्गिरस्यत्, त्रैपुभेन छन्दसा, पृथिव्याः, सधस्यात्, पुरीष्यम्, अङ्गिर्व्युत्पृथिव्याः, अङ्गिरस्यत्, आभर) सपके मेरकं सविता, देवकी मेरणा से गायत्री छन्दके मभावसे, आश्विनीकुमार की मुआसे, पूषा देवताके हाथोंसे बुभु को अङ्गिरा वंशी अघियों के समान ग्रहण करता हूँ, अङ्गिरा वंशियों की समान त्रिपु छन्दके मभावसे पृथिवीके उत्सङ्ग भीतरसे पशुओंकी हितकारिणी अग्नि को अङ्गिरा की समान आहरण कर ॥ ९ ॥

अङ्गिरसि नाय्यसि त्वया व्यमग्निः शक्येन

खानितुं सधस्य आ । जागतेन छन्दसाङ्गिरस्यत् ? ॥

इसका मजापति ऋ० भुरिगनुपु छं० अग्नि दे० है । मंत्रार्थ—हे वैष्णवी तुम (अग्निः, असि, नारी, असि, त्वया, वयं, अङ्गिरस्यत्, जागतेन, छन्दसा, सधस्ये, अग्नि, खानितुं, शक्ये) जवा निर्माण करने को मृतत्वन्तका कारण काष्ठ विशेष अग्नि नामवाची दो, धीरुपा हो, तुम्हारे द्वारा हम अङ्गिरा की समान जगती छन्द के मभावसे पृथ्वी के उत्सङ्ग में वर्तमान अग्नि को खनन करने को समर्थ हो ॥ १० ॥

। इस्तं आधाय सविता विभ्रदङ्गिर्व्युत्पृथिव्याः

अग्नेज्योतिर्निचाय्यं पृथिव्या अद्याभ्रदा-

त्रैपुभेन छन्दसाङ्गिरस्यत् ॥ ११ ॥

इसका मजापति ऋ० भुरिगर्षी पं० छं० सविता देवता है । मंत्रार्थ—(सविता, हस्ते, अङ्गिरस्यत्, हिरण्ययीम्, अग्निम्, आधाय विभ्रत्, अग्नेः, ज्योतिः, निचाय्य, पृथिव्याः, अपि, आनुपुमेन

छन्दसा, आभरत्) प्रेरक सविता देवताने, हाथमें अत्रिरा की समान सुवर्ण की अभ्रिको लेकर उसको धारण करतेहुए अग्नि की ज्योतिको निश्चय करके भूमिके सकाश से अनुपुच्छन्दके प्रभाव से आहरण किया ॥ ११ ॥

प्रतृत्तं वाजिन्ना द्रव्यं वरिष्ठामनु संवतम् । दिवि
ते जन्मं परममन्तरिक्षे तव नाभिः पृथिव्या-
मधि योनिरित् ॥ १२ ॥

इसका नामा नेदिष्ट ऋ०, आस्तार पं० छं०, वाजी देवता है ।
मंत्रार्थ—(वाजिन्, वरिष्ठाम्, सम्बतम्, अनु, प्रतृत्तम्, आद्रव,
ते, दिवि, परमं, जन्म, अन्तरिक्षे, तव, नाभिः, पृथिव्यां, अधि,
तव, योनिः, इत्) हे अश्व ! हे शीघ्रगामी ! श्रेष्ठ यज्ञभूमि को, लक्ष्य
करके, फिर शीघ्र आओ, तेरा पुत्रोक्त में, आदित्यरूप से उत्कृष्ट,
जन्म है, अन्तरिक्ष में तेरी नाभि है, पृथिवी के ऊपर तुम्हारा
स्थान है, अर्थात् भूमि में तुम्हारा निवासस्थान प्रत्यक्ष दीखता
है विराटरूप से अश्व की स्तुति की जाती है ॥ १२ ॥

युञ्जाथाथ रासभं युवमस्मिन्यामे वृषण्वसू ।

अग्निम्भरन्तमस्मयुम् ॥ १३ ॥

इसका कुञ्चि ऋपि है, गायत्री छं०, रासभ देवता है । मंत्रार्थ—
(वृषण्वसू, युवम्, अस्मिन्, यामे, अस्मयुम्, अग्निम्भरन्तं,
रासभम्) हे अध्वर्यु ! और यजमान, तुम दोनों इस अग्निकर्म
में अपने हितकारी अग्निरूप मृत्तिका को बहन करनेवाले, रासभ
को नियुक्त करो ॥ १३ ॥

योगे योगे तवस्तरं वाजे वाजे हवामहे । स-

खाय इन्द्रमूतये ॥ १४ ॥

इसका शुनःशेष ऋ०, गायत्री छं० अज देवता है । मंत्रार्थ—
(सखायः, योगे योगे, तवस्तरम्, इन्द्रम्, ऊतये, वाजे वाजे, हवा-
महे) परस्पर मित्रताको प्राप्त हुए, हम ऋत्विज् यजमान सब
प्रत्येक कर्ममें उत्साहवान्, बलवान् अजका, रत्नाके निमित्त

और पितरोंके वृत्त होनेयोग्य अन्नप्राप्तिके कर्ममें आह्वान करतेहैं १४
 प्रत्यूयन्नेहावृक्रामन्नशस्ती रुद्रस्य गार्णपत्यम्मयो
 भूरहि । उर्वन्तरिक्षं वीहि स्वस्तिगंव्युतिरभं-
 यानि कृषवन्पूष्णा सयुजा सह ॥ १५ ॥

इस कं० में २ मं० हैं । सबका शुनःशेष ऋ० छं० १ निचू०
 गा० २ भुरिगा० गा० और देवता १ अश्व, २ रासभ है । मंत्रार्थ-
 (प्रत्यूयन्, अशस्तीः, अबक्रामन्, एहि, मयोभूः, रुद्रस्य, गार्ण-
 पत्यम्, एहि) हे अश्व ! तुम शत्रुगण को बध करते शत्रुओंकी
 कोहुई निन्दाको निवारण करते हमारे निकट आओ, हमारे सुख
 के कारण होतेहुए रुद्र देवताके गणपतिस्वको प्राप्त हो, हे रासभ !
 (स्वस्ति, गंव्युतिः, अभयानि, कृषवन्, सयुजा, पूष्णा, उरु, अन्त-
 रिक्षं, वीहि) भयरहित गुमनवाले तुम हमको अभय करते ऋ-
 त्विज्ञ यज्ञमानादि का रोग दूर करते समान योगी पृथ्वीके साथ
 विस्तीर्ण अन्तरिक्षको विशेषकर प्राप्त हो ॥ १५ ॥

पृथिव्याः सधस्थादग्निम्पुरीष्यमङ्गिरस्वदाभंरा-
 ग्निम्पुरीष्यमङ्गिरस्यदन्धैमोग्निम्पुरीष्यमङ्गिर-
 स्वङ्गिरिष्यामः ॥ १६ ॥

इस कं० में २ मं० हैं । सबका शुनःशेष ऋ० छं० १ आ०
 गा० २ सा० गा० ३ आसु० जु० और देवता १ अग्नि २ अशवाया
 ३ अग्नि है । मंत्रार्थ-हे अग्ने ! (पृथिव्याः, सधस्थात्, पुरीष्यम्,
 अग्निः, अंगिरस्वत्, आभर) भूमिके स्थानसे पशु सम्बन्धी अग्नि
 को अङ्गिराकी समान आहरण कर (पुरीष्यम्, अग्निः, अंगिर-
 स्वत्, अन्ध, इमः) पशु सम्बन्धी अग्निको अंगिराकी समान
 प्राप्त होनेको अभिमुख प्राप्त होते हैं (पुरीष्यं, अग्निः, अंगिरस्वत्
 अरिष्यामः) पशु सम्बन्धी अग्नि को अंगिरा की समान सम्पा-
 दन करेंगे ॥ १६ ॥

अन्वृग्निरूपसामग्नमन्धैमोदन्धैमो ज्ञा-
 तवैदाः । अनुसूर्यस्य पुर्यात्तं गृहीतनुवाचा-

पृथिवी आततन्य ॥ १७ ॥

इसका पुरोध ऋ०, निचृदार्षीं त्रि० छं०, अग्नि देवता है ।
 मंत्रार्थ—(अग्निः, उपसां, अग्रम्, अन्वरूपत्, जातवेदाः, मयमः,
 अहामि, अनु, सूर्यस्य, रश्मीन्, पुरुत्रा, अनु, च, धावापृथिवी,
 अनु, आततन्य) जो अग्नि उपाकाल से पहले अग्निरूप से
 अनुक्रम से प्रकाशित रहा, सबका जाननेवाला यह अग्नि मुख्य
 रूप से दिनों को प्रकाश करता हुआ, सूर्य की किरणों को बहुत
 प्रकार से प्रकाश करता हुआ और स्वर्ग पृथ्वी को क्रम से सब
 प्रकार प्रकाशित करता हुआ, उस सर्वप्रकाशक लोकस्रष्टा अग्नि
 को हम देवते हैं ॥ १७ ॥

आगत्यं व्वाज्यध्वान्धं सर्वांमृधो विधुनुते ।

अग्निं च सधस्ये महति चक्षुषा निचिकीपते ॥ १८ ॥

इसका मयोभू ऋषि है, निचृदनु० छं०, अश्व देवता है ।
 मंत्रार्थ—(वाजी, अध्वानं, आगत्य, सर्वाः, मृधः, विधुनुते, म-
 हति, सधस्ये, चक्षुषा, अग्निं, निचिकीपते) यह वेगवान् अश्व
 मार्ग को आकर सब संग्रामों को कम्पितकरता है, उत्कृष्ट पृथ्वी
 के स्थान में वर्तमान, स्थिर चक्षु से अग्नि को देखता है ॥ १८ ॥

आक्रम्यं वाजिनपृथिवीमाग्निमिच्छ रुचा त्वम् ।

भूम्यां वृत्वार्यं नो ब्रूहि यतः खनेम तं वयम् ॥ १९ ॥

इसका मयोभू ऋ० निचृदनु० छं० अश्व देवता है मंत्रार्थ—
 (वाजिन त्वं, पृथिवीम्, आक्रम्य, रुचा, अग्निं, इच्छ, भूम्याः,
 वृत्वार्य, नः, ब्रूहि, यतः वयं, तम्, खनेम) हे अश्व ! तू भूमिको
 आक्रमण करके दीप्ति आदि के द्वारा अग्निको, अन्वेषण
 कर भूमिके प्रदेशको छूट कर हमसे यह कहो कि यह देश अग्नि
 हेतु के मृत्तिकाके योग्य है इसप्रकार कथन करो कि जिस देशसे
 हम उस अग्निको खन करे ॥ १९ ॥

यौस्तै पृष्टम्पृथिवी सधस्यमात्मान्तरिक्षं स-

मुद्रो योनिः । विख्याय चक्षुषा त्वामभितिष्ठ

पृतन्यतः ॥ २० ॥

इसका मयोभूर्ऋषि, निचृदार्षी वृ० छं०, अश्व देवता है। मंत्रार्थ—हे अश्व ! (घौः, ते, पृष्ठम्, पृथिवी, सधस्यम्, अन्तरिक्षं, आत्मा, सपुद्गं, योनिः, त्वं, चक्षुषा, विख्याय, पृतन्यतः अभितिष्ठ) स्वर्ग तुम्हारा पृष्ठ है, भूमि पात्र है, अन्तरिक्ष जीवात्मा है सपुद्ग के जल तुम्हारी उत्पत्ति का कारण है तुम नेत्रों से उखाते योग्य मृत्तिका को देखकर संग्राम करने की इच्छा करनेवाले शत्रु राक्षसादिं को मृत्तिका में गूड़ स्थित जानकर, चरणों से आक्रमण कर नष्ट करो ॥ २० ॥

उत्क्राम महते सौभगाद्यास्माद्वास्थानाद्द्रविणोदा वाजिन् वयं स्पाम सुमती पृथिव्या अग्निं खनन्त उपस्थे अस्याः ॥ २१ ॥

इसका मयोभूर्ऋषि, विरादार्षी पं० छं०, अश्वदे० है। मंत्रार्थ—(वाजिन् द्रविणोदाः महते, सौभगाय, अस्मात्, आस्थानात्, उत्क्राम, अस्याः, पृथिव्याः, उपस्थे, अग्निं, खनन्तः, वयं, सुमती स्पाम) हे अश्व ! धनके देनेवाले तुम बड़े महत्त्वपूर्ण का वृद्धि के निमित्त, इस स्थान से उत्क्रमण करो इस पृथ्वीके उपरीभाग में अग्नि को खनन करनेका उद्योग करतेहुए हम सानुग्रह श्रेष्ठ बुद्धि में स्थित हों ॥ २१ ॥

उदक्रमीद्द्रविणोदा वाज्यर्वाकः सुलोकं सुकृतम्पृथिव्याम् । ततः खनेम सुमतीकमग्निं अथो रुहाणा अधिनाकमुत्तमम् ॥ २१ ॥

इसका मयोभूर्ऋषि, निचृदार्षी त्रि० छं०, अश्व दे० है। मंत्रार्थ—(अर्वा, द्रविणोदाः वाजी, पृथिव्यां, उदक्रमीत्, सुलोकं, सुकृतं, अकः, ततः, नाकम्, उत्तमम् स्वः, अधिरुहाणाः, सुमतीकम्, अग्निं, खनेम) चक्षुषल धनपद अश्व पृथिवी में मृदापिण्ड से उतर आया सुन्दरलोक को पुण्यवान् किंवा उस देशसे दुःख रहित श्रेष्ठ स्वर्ग को आरोहण करने की इच्छा करनेवाले हम

सुन्दर सुखदेनेवाले पुरीष्य अग्निको मृत्पिण्ड से खनन करनेका उद्योग करते हैं ॥ २२ ॥

ॐ त्वां जिवर्षिभ्यः मनसा घृतेन प्रतिक्षिपन्त-
मभुवनानि विश्वा । पृथुन्तिरथा वयसा वृहन्तं
व्यधिष्टमन्नं रभसं दशानम् ॥ २३ ॥

इसका गृत्समद् ऋषि, आर्षी त्रि० छं०, अग्नि देवता है ।
मन्त्रार्थ—हे अग्ने ! (विश्वानि, भुवनानि, प्रतिक्षिपन्तं; तिरथा,
पृथुम्, वयसा, वृहन्तं, व्यधिष्टं, अन्नैः, रभसम्, दशानं, त्वा,
मनसा, घृतेन, आजिघर्षिभ्यः) सम्पूर्ण भुवनों में निवास करते हुए
तिर्यक् प्रमाण, ज्योति से विस्तीर्ण, भूम से महात्, अयकाशवान्,
विविध अन्नों करके परिपूर्ण, उत्साहसम्पन्न, प्रत्यक्ष गोचर, तुम
को श्रद्धायुक्त चित्त से, घृतद्वारा मदीत करता हूँ ॥ २३ ॥

ॐ विश्वतः प्रत्यक्षमजिघर्षिभ्यः क्षमा मनसा
तज्जुपेत । मर्यथीः स्पृहयदर्शो अग्निर्नाभि-
मृशं मन्त्वा जर्भुराणः ॥ २४ ॥

इसका गृत्समद् ऋ०, आर्षी पं० छं०, अग्नि दे० है ।
मन्त्रार्थ—हे अग्ने ! (विश्वतः, प्रत्यक्षम्, आजिघर्षि, अरक्षसा,
मनसा, तत्, जुपेत, मर्यथीः, स्पृहयदर्शः, तन्वा, जर्भुराणः,
अग्निः, अभिमृशे, न) सब ओर प्रत्यगात्मा रूपसे व्याप्त हो
पृथु द्वारा निष्कपट मन से सिद्धवन करता हूँ, क्रोधरहित चित्त से
उस घृत को सेवन करो, मनुष्यों से सेवन करनेयोग्य दर्शनीय
कान्तिमान् स्वरूप वाले शरीर से इधर उधर गमन करनेवाली
अग्नि अभिमर्शन के योग्य नहीं है ॥ २४ ॥

पञ्चिवाजंपतिः क्विश्चिदग्निर्हव्यान्यक्रमीत् । द-
ध्रत्नानि दाशुपे ॥ २५ ॥

इसका सोमक ऋ०, निचू० गा० छं०, अग्नि देवता है ।
मन्त्रार्थ—(वाजपतिः, कविः, अग्निः, दाशुपे, रत्नानि, दधत्, ह-
व्यानि, पर्यक्रमीत्) अन्न का पति, क्रान्तदर्शी अग्नि हवि

वाले यजमानके निमित्त, मनोहर विविध रत्न प्रदानपूर्वक हवियों को स्वीकार करता हुआ ॥ २५ ॥

परित्वाग्ने पुरं वयं विप्रं सहस्य धीमहि ।

धूपद्वर्णदिवे दिवे हन्तारम्भङ्गुरायताम् ॥ २६ ॥

इसका पापु ऋषि है, अनुष्टुप् छन्द, अग्नि देवता है । मंत्रार्थ (सहस्य, अग्ने, पुरं, विप्रं, धूपद्वर्ण, दिवे, दिवे, भङ्गुरायताम्, हन्तारं, त्वा, वयं, परिधीनाहि) बलसे मथनकर उत्पन्न होनेवाले हे अग्नि ! पुरु इससे सबके शरीर में स्थित, पालन करने वाले बुद्धिसम्पन्न, असह्यरूप प्रतिदिन राक्षस दल को मारनेवाले, तुमको हम सब श्रोतसे ध्यान करते हैं ॥ २६ ॥

त्वमग्ने शुभिस्त्वमोशुशुक्षणिस्त्वमद्भ्यस्त्वम-

श्मनस्परि । त्वं वनेभ्यस्त्वमोपधीभ्यस्त्वन्कु-

णान्त्वृपते जायसे शुचिः ॥ २७ ॥

इसका गृह्यसमद ऋ०, पंक्ति छं० अग्नि देवता है । मंत्रार्थ- (वृपते, अग्ने, शुचिः, आशुशुक्षणिः, त्वं, शुचिः, जायसे, त्वम् अद्भ्यः, त्वं, अश्मनः, परि त्वम्, वनेभ्यः, त्वम्, ओपधीभ्यः, त्वम्, वृणाम्) मनुष्योंके पालक अग्नि परमपवित्र आर्द्र भूमिको कान्तिसे शोषकर कान्तिसे अन्धकारके दूर करनेवाले हो । तुम प्रतिदिन मथन करने से उत्पन्न होते हो । तुम जलों से विजलीरूप करके उत्पन्न होते हो, तुम पापाणसे दूसरा पापाण लगने से उत्पन्न होये हो तुम वनोंमें अरण्य काष्ठ से तुम ओपधियोंसे वंशादिसे तुम अग्नि होत्र करनेवाले मनुष्यों के घर में होते हो ॥ २७ ॥

वैचस्यं त्वा सचिंतुः प्रमवेश्विनोर्वाहृभ्यास्पृष्णो

हस्ताभ्याम् । पृथिव्याः सुधस्थाद्ग्निसंपुरीष्यम-

हिस्यत्खनामि । ज्योतिष्मन्तन्त्वाग्ने सुप्रती-

कमजंघ्रेण भानुना दीर्घतम् । शिवम्प्रजाभ्यो

हिंसन्तस्पृथिव्याः सुधस्थाद्ग्निसंपुरीष्यमहि-

हस्पत्खनामः ॥ २८ ॥

इस कं० में ३ मं० हैं । सबका गृत्समद ऋ० छन्द ? गजा
 प० वृ० २ आर्ची गा० ३ सुराडा० त्रि० है । और दे० १ आग्नि
 २, ३ अग्नि है । मंत्रार्थ—हे आग्नि (सवितुः, देवस्य, मसवे, अ-
 श्विनोः, यादृभ्यां, पूषणः, हस्ताभ्यां, पुरीष्यं, अग्निम्, पृथिव्याः
 सपस्यात्, अद्भिरस्वत्, खनामि) सबके प्रेरक सविता देवके आह्वा
 में वर्तमान अश्विनीकुमार की भुजाओं से पूषा देवताके हाथोंसे
 पशु सम्बन्धी आग्निको भूमि के ऊपर प्रदेशसे अंगिराकी समान
 खनन करता है । (अग्ने ज्योतिष्मन्तः, सुप्रतीकं, अजस्रेण, भानुना
 दीद्व्यतम्, गजाभ्यः, शिवम्, अहिथंसनो, त्वा, पुरीष्यं, अग्नि,
 पृथिव्याः, सपस्यात्, अद्भिरस्वत्, खनामः) हे अग्ने ! ज्वालायुक्त
 सुगुह्र निरन्तर वर्धमान, रश्मियों से दीप्तिमान्, गजाके उपकार
 के निमित्त, शान्तरूप हिंसा न करनेवाले गुह्र पुरीष्य अग्निको
 भूमिके गर्भ से अंगिरा की समान खनन करते हैं ॥ २८ ॥

अपास्पृष्टमस्मि योनिर्गुणेः समुद्रमभितः पिन्व-
 मानम् । वर्द्धमानो महाथ आ च पुष्करे दिवो
 मात्रया वरिष्णा प्रथस्य ॥ २९ ॥

इस कं० में २ मं० हैं । सबका गृत्समद ऋषि है छं० १ सुरि
 गा० पं० २, आ० पं० और देवता पुष्करपर्ण है, मंत्रार्थ—हे पत्र
 गुम (अपां, पृष्ठं, अग्नेः, योनिः, अस्ति, पिन्वमानं, समुद्रं, अभितः
 वर्द्धमानः, महान्, पुष्करे, आ) जलोंके ऊपर रहनेसे पृष्ठरूप हो
 अग्निके निमित्त पिण्ड के कारण हो, संचितरूप जल समुद्रको
 सब ओरसे वृद्धिको प्राप्त, बड़े जलमें सबप्रकार स्थित हो । हे पत्र
 (दिवः, मात्रया, वरिष्णा, प्रथस्य) पुलोकके परिमाण की दीर्घता
 से विस्तारको प्राप्त हो ॥ २९ ॥

शर्मन् च स्थो वर्मे च स्थोषिच्छ्रे बहुलं त्रिभे ।

व्यचंस्यती संवसाथाम्भृतमग्निम्पुरीष्यम् ॥३०॥

इसका गृत्समद ऋ०, विराटार्पणु० छं० कृष्णाग्नि पुष्कर
 पर्ण देवता है । मंत्रार्थ—हे कृष्णाग्नि ! हे पुष्कर पर्ण (अश्विच्छ्रे

बहुले, ध्यच्चस्वती, उमे, शं, स्पः, च, वर्म, स्यः, पुरीष्यं, अग्निं
संवसायां, च, भृतम्) द्विद्रशून्य बहुलविस्तारवाले अंबकाशवाले
तुम दोनों अग्निके सुखकारी हो, और कवचकी समान रक्षा करने
वाले हो, पुरीष्य अग्निको आच्छादन करो, और धारण करो ३०
संवसायाध् स्वर्विदां समीची उरंसात्मनां ।

अग्निमन्तर्भरिष्यन्ती ज्योतिष्मन्तमजंमृमिस् ॥ ३१ ॥

इसका अर्थ है ऋ० निचृदनु० छं० कृष्णाजिन पुष्करपर्ण देवता
है। मंत्रार्थ—हे कृष्णाजिन! हे पुष्करपर्ण! (स्वर्विदा, समीची, अज-
समित्, ज्योतिष्मन्तम्, अग्निं, अन्तः, उदरे, भरिष्यन्ती, उरसा-
त्मना, अग्निं, सम्बसायाम्) स्वर्गलाभके साधन एकाधिरामिले
हुए, निरन्तर तेजमान अग्निको भीतर उदरमें धारण करतेहुए,
हृदयरूप अपने शरीर से अग्नि को धिरकाल धारण करते आ-
च्छादित रखो ॥ ३१ ॥

पुरीष्योसि विश्वभरा अथर्व्या त्वा प्रथमो
निरमन्धदग्ने ! त्वामग्ने पुष्करादध्यथर्वा नि-
रमन्धत । मूर्ध्ने विश्वस्य वाघतः ॥ ३२ ॥

इस कं० में २ मं० हैं। सका भर० ऋ० है। छं० १ आन्यु-
ष्णिक १ निचृदार्पां गा० और सका अग्नि देवता है। मंत्रार्थ—
(अग्ने, पुरीष्यः, विश्वभरा, असि, प्रथमा, अथर्वा, त्वा, निरम-
न्यत्) हे अग्ने! तुम पशुओंके हितकारी समस्त चराचर के पालन
करनेवाले हो, सबसे प्रथम प्राणने तुम्हको प्रकाशित किया था। हे
अग्नि! (अथर्वा, पुष्करात्, अथि, त्वा, निरमन्यत्, विश्वस्य,
वाघतः, मूर्ध्नेः) प्राण ने जलके सकाशसे तुम्हको मथित किया,
सम्पूर्ण संसारके सम्बन्धी आत्विज्ञाने आदरसे तुम्हको मथित किया

तमु त्वा दध्यद्दृषिः पुत्र ईधे अथर्वणः । वृत्र-

हणम्पुरन्दरम् ॥ ३३ ॥

इसका भरद्वाज ऋ० निचृद् गा० छं० अग्नि देवता है मंत्रार्थ
(अथर्वणः, पुत्रः, दध्यद्, तमु, वृत्रहणम्, पुरन्दरम्, त्वा, धेइ)

अथर्व के पुत्र दध्यह् नामक ऋषि ने उस पापनाशक रुद्ररूपसे पुर सम्बन्धी तीन आवरणों के भेदक तुमको प्रज्वलित किया ॥३३॥

तमु त्वा पृथ्यो वृषा समीधे दस्युहन्तमम् ।

धनञ्जयथे रणे रणे ॥ ३४ ॥

भरद्वाज ऋ०, निचृ० गा० छं०, अग्नि देवता है । मंत्रार्थ— (पाथ्यः, वृषा, तम्, दस्युहन्तमम्, रणे, रणे, धनञ्जयं, त्वा, इधे) । सम्मार्गमें वर्षमान मनके सिञ्चन करनेवाले हे अग्ने ! उस अति-शय शत्रुओं का नाश करनेवाले वन उन संग्रामोंमें धनके जीतने वाले तुमको सन्दीप्त करता हूँ ॥ ३४ ॥

सीदं होतः स्व उ लोके चिकित्वान्त्सादया

यज्ञथे सुकृतस्य योनौ । देवावीर्देवान्हविषा

यज्ञास्पग्ने वृहद्यजमाने वयो धाः ॥ ३५ ॥

इसका देवयव और देववात ऋ० नि० त्रि० छं और अग्नि देवता है । मंत्रार्थ— (होतः, अग्ने, चिकित्वान्, स्वे उ, लोके, सीद सुकृतस्य, योनौ, यज्ञ, आसादय, अग्ने, देवावीः, हविषा, देवान् आपजासि, यजमाने, वृहत्, वयो, धाः) आह्वान कार्य में नियुक्त हे अग्ने ! चेतनवान् अपने अधिकारको जानने वाले अपने स्थान कृष्णा जिनपर स्थापित किए पुष्कर पर्णपर स्थित हो, श्रेष्ठकर्म के स्थानवाले यज्ञको स्थापनकर हे अग्ने ! देवताओं के प्रसन्न करने वाले तुम हविद्वारा देवताओं को पूजनकर वृत्त करते हो इसकारण यजमानमें बड़ी आयु धारणकर इसमें बड़ा यश स्थापित करो ३५

नि होतां होतृपदने विदानस्त्वेपो दीदिवान्

अंसदत्सुदक्षः । अदब्धव्रतप्रमतिर्वासिष्ठः सह-

सम्भरः शुचिजिह्वो अग्निः ॥ ३६ ॥

इसका वृत्समद ऋ० है । त्रिष्टु छं० अग्नि देवता है मंत्रार्थ— (होता, विदानः, त्वेपः, दीदिवान्, सुदक्षः, अदब्धव्रतप्रमतिः, वशिष्ठः, सहसम्भरः, शुचिजिह्वः, अग्निः, होतृपदने, न्यप्रीदत्) देवताओंका आह्वान करनेवाले अपने अधिकार को जाननेवाले

रक्षाके निमित्त सबके मेरक सूर्य देवता की समान ऊंचे होते ऊर्ध्व स्थित हो ऊंचे होते तुम अन्न के देने वाले हो जिसकारण कि मंत्र के उच्चारण करने वाले हव्यवाहक ऋत्विजों द्वारा आन्धान करते हैं ॥ ४२ ॥

सजातो गर्भो असि रोदस्योरग्ने चारुविभृगु
ओपधीषु । चित्रः शिशुः परि तमांशस्यक्तून
प्रमावृभ्यो अधिकानिक्रदद्वाः ॥ ४३ ॥

इसका त्रित ऋ०, विराट् त्रि० छं० अश्व देवता है । मंत्रार्थ-
(अग्ने सः, चारु, ओपधीषु, विभृतः, चित्रः, शिशुः रोदस्योः,
जातः, गर्भः, असि, अक्तून, तमांशि, परि, मावृभ्यः, अधिक-
निक्रदत्, प्रमाः) हे अग्ने ! वह तुम शोभनपूजनीयं पुरोडाशादि
लक्षण वाली ओपधियों में पुष्ट करने को स्थित अनेक वर्ण की
ज्वालाओं से विचित्ररूप इस समय उत्पन्न होने के कारण शिशु
रूप यावा पृथिवी के मध्य में उत्पन्न हुए गर्भरूप रात्रि लक्षण
वाले अन्धकारों को दूर करके हुए ओपधि वनस्पतियों के मकाश
से अत्यन्त शब्द करते हुए शीघ्रता से चलो ॥ ४३ ॥

स्थिरो भव वीड्वह्नः अगुर्भव वाज्यर्वन् । पृथुर्भव
सुखदस्त्वमग्नेः पुरीषवाहनः ॥ ४४ ॥

इस का त्रित ऋ० विराट्नुष्टु० छं० रासभ देव० है । मंत्रार्थ-
(अर्वन्, स्थिरः, वीड्वह्नः भव, आथुः, वाजी, भव, पुरीषवाहनः
त्वं, पृथुः, आनेः, सुखदः भव) हे गमन में कुशल रासभ ! स्थिर
होकर स्थिर कायावाले हो, वेगवान होकर अन्न के हेतु हो,
पुरीष्य अग्नि तुम पृष्ट को विस्तीर्ण करते अग्नि देहरूप मृत्तिका
के सुख से स्थिति के योग्य हो ॥ ४४ ॥

शिवो भव पूजाभ्यो मानुषीभ्यस्त्वमंद्गिरः ।
मा यावापृथिवी अभिशोचीन्मान्तरिक्षमा
वनस्पतीन् ॥ ४५ ॥

इसका त्रित ऋ० विराट् पथ्या ष्टु० छं० अन्न दे० है । मंत्रार्थ

(अङ्गिरः, स्वं, मानुषीभ्यः, मजाभ्यः, शिवः, भवः घावा पृथिवी
मा, अभिशोचीः अन्तरिक्षम्, मा वनस्पतीन्, मा) हे अग्निरूप
अग्नि के प्रियशिशु अन्न । तुम मनुष्यसम्बन्धी मजाओं के नि-
मित्त कल्याणकारी शान्त हो, घावा पृथिवी को मत सन्तप्त करो
अन्तरिक्ष को मत सन्तापित करो वनस्पतियों को मत सन्तापित
करो ॥ ४६ ॥

प्रेतुं वाजी कनिक्कदन्नानद्व्रासंभः पत्वा । भ-
रन्नग्निर्गुह्युदीप्यन्मा पाथ्यायुषः पुरा । वृषानि
वृषंग्मभरन्नपाहर्भेऽसमुद्रियम् । अग्न आया-
हि वीतये ॥ ४६ ॥

इस कं० में १ मं० है । सबका भित ऋ०, छं० १ पंक्ति २,
साम्बन्धु० ३ एकपदा गा० और देवता १ अश्व, २ रासभ, ३
अग्नि है । मंत्रार्थ—(वाजी, कनिक्कदत्, प्रेतु, पत्वा, रासभः, नान-
दत्, पुरीष्यं, अग्नि, भरत्, आयुषः, पुरा, मा, पाहि) वेगवान्
अश्व आतिहोपिन शब्द करताहुआ, वेगसे गमन करो, पतनशील
गर्दभ दिशाओं को शन्दायमान करताहुआ, यवसचाहनके नि-
मित्त पीछे धलै यह अश्व पशुसम्बन्धी अग्निको धारण करताहुआ
कर्म से पहले मत विनाशको प्राप्त हो, कर्मसमाप्तिपर्यन्त जीवन
को प्राप्त हो (वृषा, वृषणम्, अपां, गर्भं, समुद्रियम्, अग्नि, भरत्)
सिंचनमें समर्थ रासभ, आहुतिपरिणाम से फलदान में समर्थ
जलों के मध्य मैघों में विद्युत रूपसे होनेवाले सागरमें बड़वाहप
से होनेवाले अग्नि को धारण करता आगमन कर (अग्ने, वीतये
आयाहि) हे अग्निदेव ! हवि भक्षणके निमित्त आगमन करो ४६

ऋतथे सत्यमृतथे सत्यमग्निर्गुह्युदीप्यन्माङ्गिरस्व-
ङ्करामः । ओषधयः प्रतिमोददृध्वमग्निमेतथे
शिवमापंतमभ्यन्नं गुप्ताः । व्यस्यन्विदद्या अ-
निरा अमीवा निपीदन्तोअपदुर्मतिञ्जहि ॥ ४७ ॥

इस कं० में ४ मं० है । सबका भित ऋ०, छं० १ प्राजाप०

गा० २ सा० गा० ३ निचू० जु- ४ नि० सा० त्रि० और दे०
 १, २, ४ अग्नि ३ ओपधी है । मंत्रार्थ—(ऋतम्, सत्यम्, सत्यम्
 ऋतम्) आदित्यरूप, अग्निरूप व्यष्टि समाष्टिरूप, अग्नि है, ऐसी
 ऋत और सत्यरूप अग्नि को अजापर रक्षित करते हैं (पुरीष्यं, अग्नि,
 अगिरस्वत्, भ्रामः, पशु सम्बन्धी अग्नि को अगिरा की समान
 संग्रह करते हैं (ओपधयः, एतम्, शिवं, अन्न, गुप्ता, अभि आ-
 यन्तं, अग्नि, प्रति, मोदध्वम्, निपीदन, नः, विश्वाः, अनिराः,
 अमीवाः, व्यस्यन्, दुर्मति, अपन्नहि) हे सम्पूर्ण ओपधियों ! तुम
 इस शान्त कल्याणकारक और इस स्थल में तुम्हारे सन्मुख आते
 हुए अग्नि के सन्मुख प्रत्युत्थानादि से आमोदित करो । हे अग्ने
 तुम यहां स्थित होते हमारे सम्पूर्ण दुर्भिक्षपीडा इति व्याधियों को
 दूर करते हुए हमारी, हवनदान से पराह्णुत्तु दुर्मतिको नाश करो ४७

ओपधयः प्रतिगृह्णीतु पुष्पवतीः सुपिप्पलाः ।

अयं वो गर्भं ऋत्विष्यः प्रत्नथ सधस्थमासदत् ॥ ४८ ॥

इसका प्रित ऋ० भुरिगार्पणु० छं० अग्नि देवता है । मंत्रार्थ—
 (ओपधयः, पुष्पवतीः, सुपिप्पलाः, प्रतिगृह्णीत, वः, गर्भः, ऋ-
 त्विष्यः, अयं, प्रत्नं, सधस्थं, आसदत्) हे सम्पूर्ण ओपधियों !
 तुम फूलवाली, अच्छे फलवाली तुम इस अग्नि को स्वीकार
 करो, तुम्हारे गर्भरूप ऋतुकाल को प्राप्त यह अग्नि पुरातन स्थान
 को स्थित हुआ ॥ ४८ ॥

विपाजसा पृथुना शोशुचानो वाधस्व द्विपो

रक्षसो अमीवाः । सुशर्मणो बृहतः शर्मणि

स्यामग्ने बृहथ सुहवस्य प्रणीतौ ॥ ४९ ॥

इसका उत्कीर्ण ऋ० त्रि० छं० अग्नि देवता है । मंत्रार्थ—
 (पृथुना, पाजसा, शोशुचानः, द्विपः, रक्षसः, अमीवाः, विवा-
 धस्व, सुशर्मणः, बृहतः, सुहवस्य, अग्नेः, प्रणीतौ, अहं, शर्मणि
 स्याम्) बड़े विस्तारवाले बलसे दीप्तिमान् हे अग्नि ! तुम शत्रुओं
 को, राक्षसों को समस्त व्याधियों को विशेष दूर करो अच्छे

सुख के कारण भौड़ महान सुखसे बुलानेको शक्य अग्निके मसत्र करने के कार्यमें नियुक्त मैं सुखमें प्राप्त हूँ ॥ ४९ ॥

आपो हि ष्ठा मयोभुवस्ता न ऊर्जं देधातन ।

महे रणाय चक्षसे ॥ ५० ॥

इसका सिन्धुद्वीप ऋ० गा० छं० आप देवता है । मंत्रार्थ— (आपः, मयोभुवः, स्य नः, महे रणाय, चक्षसे, हि, ऊर्जं, आदधातन) हे जलसमूह ! तुम सुखके करनेवाले सुखकी भावना करनेवाले स्नानापानादिसं सुखके उत्पादक हो, हमारे बड़े रमणीय, दर्शन के निमित्त, और निश्चय ही रसानुभव के निमित्त स्थापन करो ॥ ५० ॥

यो वः शिवतमो रमस्तस्य भाजयतेह नः ।

उशतीरिव मातरः ॥ ५१ ॥

इसका सिन्धुद्वीप ऋ० गायत्री छं० आप देवता है । मंत्रार्थ— हे जलों ! (वः, यः, शिवतमः, रसः, इह, नः, तस्य, भाजयत, उशतीः, मातरः, इव) तुम्हारा जो शान्तरूप सुख का एक ही कारण रस इस कर्म में है, हमको उस रसका भागी करो प्रीति युक्त माता जैसे कि अपने स्तनको बालकों को पिलाती हैं ॥ ५१ ॥

तस्मा अरंमाम यो यस्य क्षयाय जिन्वथ ।

आपो जनयथा च नः ॥ ५२ ॥

इसका सिन्धुद्वीप ऋ० गायत्री छं० आप देवता है । मंत्रार्थ— (आपः, वः, तस्मै, अरं, गमाम, यस्य, क्षयाय, जिन्वथ, च, नः, जनयथ) हे जलों ! तुम्हारे सम्बन्धी उस रसके निमित्त, शीघ्र चलो, जिसके निवास जगत् के आधारभूत तृप्त करते हो और उसके भोगसे हमको वृत्पन्न करते हो ॥ ५२ ॥

मित्रः सधसृज्यं पृथिवीभूमिंश्च ज्योतिषा

सह । सुजातञ्जातवेदतमयक्ष्मार्थं त्वा सध

सृजामि पूजाभ्यः ॥ ५३ ॥

इसका सिन्धुद्वीप ऋ० उपरिष्ठा ऋ० छं० मित्र देवता है मंत्रार्थ—

(मित्रः, पृथिवी, च, भूमि, ज्योतिषा, सह, सधेऽमृज्य, सुजातं, जातवेदसं, त्वा, प्रजाभ्यः, अयस्माय, सधेऽमृजामि) मित्रदेवता आदित्य युलोक और इस पिण्डरूप भूमिको ज्योतिरूप अजलोमके साथ एकत्र करके मुक्त अध्वर्यु को देता है, और मैं भी सुन्दर जन्मवाले प्रजासंयुक्त अजलोम नामक तुम्हें अग्नि को प्रजाओं के रोगनिवृत्ति के निमित्त पिण्डसे युक्त करता हूँ ॥१३॥

रुद्राः सधेऽमृज्यं पृथिवीं बृहज्ज्योतिः समीधिरे ।

तेषां भानुरजसू इच्छुक्रोटे वेषुरोचते ॥१४॥

इसका सिधुद्वीप ऋ०, अनुष्टु० छं०, रुद्र देवता है । मंत्रार्थ— (रुद्राः, पृथिवी, संमृज्य, बृहज्ज्योतिः, समीधिरे, तेषां, भुक्रः, भानुः, देवेषु, अजसूः, इव, रोचते) जिन रुद्रों ने पार्थिवपिण्ड को, बालु लोहकिट्ट और पापाण चूर्ण से संयुक्त करके मौढ़ अग्नि को प्रदीप्त किया, उन रुद्रों की शुद्ध प्रदीप्त ज्योति देवताओं के मध्य में परिपूर्ण भलीभंकार प्रकाशित होती है ॥ १४ ॥

सधेऽमृष्टां वसुभी रुद्रैर्धीरैः कर्मण्यामृदंम् ।

इस्ताभ्यां मूर्द्धां कृत्वा सिनीवाली कृणोतु ताम् ५५

इसका सिधुद्वीप ऋ०, विराटनुष्टुप् छं०, सिनीवाली देवता है । मंत्रार्थ— (सिनीवाली, धीरैः, वसुभिः, रुद्रैः, संमृष्टाम्, मृदं, इस्ताभ्यां, मूर्द्धां, कृत्वा, तां, कर्मण्यां, कृणोतु) चन्द्रकलायुक्त अमावस्याभिमानि देवता, बुद्धिमान् वसुगण, रुद्रगणों द्वारा, शर्करादि से संयोजित मृत्तिका को हाथों से कोमल करके उसको ऊखा कर्म के योग्य करें ॥ ५५ ॥

सिनिवाली सुंकपर्दा सुकुरीरा र्षीपशा ।

सा तुभ्यमदिते मख्योखान्दंधातु हस्तयोः ॥ ५६ ॥

इसका सिधुद्वीप ऋ०, विराटनु० छं०, अदिति देवता है । मंत्रार्थ— (अदिते, माहि, सा, सुकपर्दा, सुकुरीरा, र्षीपशा, सिनीवाली, तुभ्यं, अस्तयोः, उखां, र्षापयतु) हे दीनितारहित देवमाता, हे पूजित, वह सुन्दर केश और धनवाली, सुन्दर मस्तक

के चन्द्रिका वाली, विलास में चतुर अवयववाली, चन्द्रकलायुक्त
अमावास्याभिमानीनी देवी, तुम्हारे हाथों में पाकपात्र उखा को
स्थापित करो ॥ ५६ ॥

उखाङ्कृणोतु शक्त्या वाहुभ्यामदितिर्धिया ।
माता पुत्रं यथोपस्थे सार्गिन विभर्तु गर्भ आ ।
मस्रस्य शिरौसि ॥ ५७ ॥

इस कं० में २ मंत्र हैं, सबका सिन्धुद्वीप श्र०, छं०-१ निचू०
नु०, २ याजुपी गा०, और दे० १ अदिति, २ मृत्पिण्ड है ।
मंत्रार्थ-(अदिति, शक्त्या, धिया, वाहुभ्यां, उखाम्, कृणोतु,
सा, गर्भे, आ, अग्नि, विभर्तु, यथा, माता, उपस्थे, पुत्रम्)
अदिति देवता अपनी सामर्थ्य से, घुद्धि द्वारा, हाथों से उत्कर्ष
विधानपूर्वक पाकपात्र करे, वह उखा अपने मध्य में सब मकार
से अग्नि को धारण करे, जैसे जननी गोदी में पुत्र को धारण
करती है ॥ ५७ ॥

वसवस्त्वा कृण्वन्तु गायत्रेणच्छन्दसाङ्गिरस्व-
द्धुवासि पृथिव्यामि धारया मयि प्रजाथ राय-
स्पोपङ्गौपत्यथ सुवीर्यथ सजातान्यजमानाय
रुद्रास्त्वा कृण्वन्तु त्रैप्रुभेनच्छन्दसाङ्गिरस्वद्धुवा
स्यन्तरिक्षमसि धारया मयि प्रजाथ रायस्पो-
पङ्गौपत्यथ सुवीर्यथ सजातान्यजमानाया-
दित्यास्त्वा कृण्वन्तु जामतेनच्छन्दसाङ्गिरस्व-
द्धुवासि शीरसि धारया मयि प्रजाथ राय-
स्पोपङ्गौपत्यथ सुवीर्यथ सजातान्यजमानाय
विश्वे स्वा देवा धैश्वानराः कृण्वन्त्वानुपुभे-
नच्छन्दसाङ्गिरस्वद्धुवासि दिशोसि धारया
मयि प्रजाथ रायस्पोपङ्गौपत्यथ सुवीर्यथ स-
जातान्यजमानाय ॥ ५८ ॥

इस कं० में ४ मंत्र हैं, सबका सिन्धुद्वीप श्र०, छं० १

ह्यनु०, २ आर्ष्यनु, ३ ब्राह्मयनु०, ४ द्राक्षी वृ०, और सबका उवा देवता है । मंत्रार्थ—हे उखे ! वसवः, गायत्रेण, छन्दसा, अङ्गिरस्वत्, त्वा, कृष्वन्तु, ध्रुवा, असि, पृथिवी, असि, मायि, यजमानाय, मर्ता, रायः, पोषम्, गौपत्यं, सुवीर्यम्, सजातान्, आधारय) षष्ठगण गायत्री छन्द के प्रभाव से अंगिराकी समान तुम्हको करै, उनकी कीहुई तुम दृढ हो, पृथ्वीरूप हो, मुझ यजमान के निमित्त, सम्मान, धन, पुष्टि, गोपतित्व, सुन्दर पराक्रम, सहोदरगण के सहित हमको यथोचित सौहाई धारण कराओ । हे उखे ! (रुद्राः, अणुप्रुपेन, छन्दसा, अंगिरस्वत्, त्वा, कृष्वन्तु, ध्रुवा, असि, अन्तरिक्षं, असि) रुद्रगण त्रिष्टुप् छन्द के प्रभाव से अंगिरा की समान तुम्हको निर्माण करै, तुम दृढ हो कारण कि अन्तरिक्षरूपा हो, शेष पूर्ववत् । हे उखे ! (आदित्याः, जापतेन, छन्दसा, अंगिरस्वत्, त्वा, कृष्वन्तु, ध्रुवा, असि, द्यौः असि) वारह आदित्य जगती छन्द की सामर्थ्य से अंगिरा की समान तुम्हको निर्माण करै, तुम दृढ हो कारण कि ध्रुलोकरूप हो शेष पूर्ववत् । (वैश्वानराः, विश्वेदेवाः, आनुप्रुपेन, छन्दसा, त्वा, अंगिरस्वत्, कृष्वन्तु, ध्रुवा, असि, दिशः, असि) सब मनुष्यों से प्राप्त होनेयोग्य विश्वेदेवा देवता अनुष्टुप् छन्द के प्रभाव से हे उखे ! तुम्हको अंगिराकी समान निर्माण करै, तुम दृढ हो कारण कि दिशास्वरूप हो, शेष पूर्ववत् ॥ ५८ ॥

अदित्यै रास्नास्यदितिष्टे विलङ्गृभ्णातुकृत्वा
 य सा महीमुखाम्मन्मयीं योनिममन्थे । पुत्रेभ्यः
 प्रायच्छदितिः श्रपयानिति ॥ ५९ ॥

इस कं० में ३ मंत्र हैं । सबका सिन्धुक्षीप ऋ०, छं० १, या० गा०, २ या० वृ०, ३ उष्णिगनु० और दे० १ रास्ना, १ उवा, ३ अदिति है । मंत्रार्थ—हे मृत्तिकानिर्मितरेखा ! तुम (अदित्यै रास्ना असि) अदितिरूप उवाकी कांचीगुण के स्थानवाली हो । हे उखे ! (अदितिः, ते, विलं, गृभ्णातु) देवमाता तुम्हारे मध्य

को ग्रहण करै (सा, अदितिः, महीं, मृग्ययी, अग्नये, योनिं, उखा, कृत्वाय, श्रयान्, पुत्रेभ्यः, प्रायच्छत्, इति) देवमाता अदिति यह बड़ी मृत्तिका की अग्नि की स्थानभूत उखा निर्माण कर पाककार्य सम्पादन के निमित्त इसकार कहकर कि हे पुत्रो ! तुम इसको पाक करो मदान करती हुई ॥ ५९ ॥

वसवस्त्वा धूपयन्तु गायत्रेण छन्दसांगिरस्व-
दुद्रास्त्वा धूपयन्तु त्रैप्रुभेन छन्दसाङ्गिरस्व-
दादित्यास्त्वा धूपयन्तु जागतेन छन्दसांगिर-
स्वद्विभ्वे त्वा वैश्वानरा धूपयन्त्वानुप्रुभे-
न छन्दसांगिरस्वादिन्द्रस्त्वा धूपयतु वरुणस्त्वा
धूपयतु विष्णुस्त्वा धूपयतु ॥ ६० ॥

इस कं० में ७ मंत्र हैं । सबका सिन्धुद्वीप ऋ०, छं० १ आर्ची गा०, २ निघृदारपी गा०, ३ आर्ची गा०, ४ नि० गा०, ५, ७ याजु०, ६ प्राजापत्या गा० है और सबका उखा दे० है । मंत्रार्थ हे उखे ! (वसवः, गायत्रेण, छन्दसा, अङ्गिरस्वत्, त्वा, धूप-यन्तु) वसु गायत्री छन्द के प्रभाव से अङ्गिरा की समान तुभको धूपित करै (रुद्राः, त्रैप्रुभेन, छन्दसा, अङ्गिरस्वत्, त्वा, धूपयन्तु) रुद्र त्रैप्रुभ छन्द के प्रभाव से अंगिरा की समान तुभको धूपित करै (आदित्याः, जागतेन, छन्दसा, अंगिरस्वत्, त्वा, धूपयन्तु) आदित्य जगतीछन्द के प्रभाव से अंगिरा की समान तुमको धूपित करै (वैश्वानराः, विश्वदेवाः, आनुप्रुभेन, छन्दसा, अंगिरस्वत्, त्वा) सब के हितकारक विश्वदेवा देवता अनुप्रुप छन्द के प्रभाव से अंगिरा की समान तुभको धूपित करै । (इन्द्रः, त्वा, धूपयतु, वरुणः, त्वा, धूपयतु, विष्णुः, त्वा, धूप-यतु) इन्द्र तुभको धूप दे, वरुणदेव तुभको धूप दे, विष्णुदेवता तुभको धूप दे ॥ ६० ॥

अदितिपृत्वा देवी विश्वदेव्यावती पृथिव्याः
सधस्थे अंगिरस्वत्खनत्ववट देवानान्त्या पत्नी-

से, परिदंमि, एषा, मा भेदि) हे मित्र देवता ! गणियों के हित करनेवाले, इस उखा का खण्डित न होने के लिये, आपके निमित्त देता हूँ, यह तुम्हें सौंपी हुई उखा किसीप्रकार विदीर्ण न हो सपावद रहे ॥ ६४ ॥

वसं वस्त्वा छन्दन्तु गायत्रेण छन्दसा अङ्गिरस्वदुद्रा-
स्त्वा छन्दन्तु त्रैप्रुभेन छन्दसा अङ्गिरस्वदादित्या
स्त्वा छन्दन्तु जागतेन छन्दसा अङ्गिरस्वद्विश्वे-
त्वा देवा वैश्वानरा आछन्दन्त्वानुभेन छन्दसा-
ङ्गिरस्वत् ॥ ६५ ॥

इस कं० में ४ मं० हैं । सबका विश्वामित्र ऋ०, छं० १, २ भुरिगार्ची २ प्राजा० नु० ४ नि० सा०, ज०, और सबका उखा देवता है । मंत्रार्थ—हे उखे ! (वसवः, गायत्रेण, छन्दसा, अङ्गिरस्वत्, त्वा, आछन्दन्तु) वसु गायत्री छन्दके प्रभाव से अङ्गिरा की समान तुभको अजादुग्ध से सिंचित करें । हे उखे ! (रुद्राः, त्रैप्रुभेन, छन्दसा, अङ्गिरस्वत्, त्वा, आछन्दन्तु) रुद्रगण त्रिप्रुष छन्द के प्रभाव से अङ्गिरा की समान तुभको सिञ्चन करें । हे उखे ! (आदित्याः, जागतेन, छन्दसा, अङ्गिरस्वत्, त्वा, आछन्दन्तु) आदित्यगण जगती छन्दकी सामर्थ्यसे अङ्गिराकी समान तुभको सिंचन करें । हे उखे ! (वैश्वानराः, विश्वेदेवाः, आनुप्रुभेन, छन्दसा, अङ्गिरस्वत्, त्वा, आछन्दन्तु) विश्वके हितकारी विश्वेदेवा, आनुप्रुष छन्द के प्रभाव से अङ्गिरा की समान तुभको सिंचन करें ॥ ६५ ॥

आकूतिमग्निम्युज्जथ स्वाहा मनो मेधामग्नि-
म्युज्जथ स्वाहा चिसं विज्ञातमग्नि म्युज्जथ
स्वाहा याचो विधृतिमग्निम्युज्जथ स्वाहा प्रजा
पतये मनवे स्वाहाग्नेये वैश्वानराय स्वाहा ॥ ६६ ॥

इस कं० में ६ मंत्र हैं । सबका विश्वामित्र ऋ० है । छं० १ या० पं०, २, ३, ४ या० त्रि०, ५ या० पं०, ६ आ० त्रि०, और

देवता सबका लिङ्गोक्त है । मंत्रार्थ—(आकृति, अग्नि, प्रयुजं, स्वाहा) यज्ञ संकल्प के मेरक अग्नि को इस यज्ञकर्म में प्रयुक्त किया उसके निमित्त यह आहुति प्रदान की जाती है । (मनः, मेधां, प्रयुजम्, अग्नि, स्वाहा) मन और मेधा मंत्रधारणशक्ति को मेरणा करनेवाले अग्नि को आहुति देते हैं । (चित्तं, विज्ञातं, प्रयुजम्, अग्नि, स्वाहा) चित्त अविज्ञात अनुष्ठान के ज्ञानसाधन विज्ञान के मेरक अग्नि को आहुति देते हैं । (वाचा, विधृति, प्रयुजम्, अग्नि, स्वाहा) मंत्रपाठरूप वाणी और विशेष धारणा के मेरक अग्नि को आहुति देते हैं । (मन्त्रे, मजापतये, स्वाहा, वैश्वानराय, अग्नये, स्वाहा) मन्त्रन्तर को प्रवृत्त करने वाले मजापतये के निमित्त श्रेष्ठ आहुति हो, विश्व के हितकारी अग्नि देवता के निमित्त श्रेष्ठ होम हो ॥ ६६ ॥

विश्वो देवस्य नेतुर्मर्तो घुरीत सख्यम् । विश्वो

राय इपुद्ध्यति घुम्नं वृणीत पुष्यसे स्वाहा ॥ ६७ ॥

इसका स्वस्त्यात्रेय ऋ०, आर्ष्यनुष्टुप् छं०, सविता देवता है । मंत्रार्थ—(विश्वः, मर्तः, नेतुः, देवस्य, सख्यं, घुरीत, पुष्यसे, घुम्नं, वृणीत, राये, विश्वः, इपुद्ध्यति, स्वाहा) सम्पूर्ण मनुष्य फल को प्राप्त करानेवाले परमात्मा के सख्यभाव को प्रार्थना करें, कर्म उपासना ज्ञान की पुष्टि के निमित्त यश वा धन की इच्छा करो, धनप्राप्ति के निमित्त सब मनुष्य उनसे प्रार्थना करते हैं, उनके निमित्त श्रेष्ठ होम हो ॥ ६७ ॥

मा सु भित्था मा सु रिपोम्य धृष्णु वीर्यस्य सु

अग्निश्चेदङ्कुरिष्यथः ॥ ६८ ॥

इसका आत्रेय ऋ०, आर्षी गा० छं०, उखाग्नी दे० हैं । मंत्रार्थ (अम्ब, सु, मा, भित्थाः, सु, मा, रिपुः, धृष्णाः, सु, वीर्यस्य, अग्निः, च, इदम्, करिष्यथः) हे भौतों उखे ! तुम अवश्य ही मत्त विदीर्ण हो, अवश्य ही मर्ग विनाश को प्राप्त हो, किन्तु मगलभतापूर्वक भलीप्रकार वीरकर्म करो, अग्नि और तुम समाप्ति

पर्यन्त इस हमारे कार्य को करोगे ॥ ६८ ॥

दृष्टेऽस्व देवि पृथिवि स्वस्वये आसुरी माया
स्वधया कृतानि । जुष्टेऽदेवेभ्य इदमस्तु हव्यम-
ग्निष्टा त्वमुदिहि यज्ञेऽस्मिन् ॥ ६९ ॥

इसका आश्रय ऋ०, शिष्टुप छन्द, उवा देवता है । मंत्रार्थ—
(देवि, पृथिवि, स्वस्वये, दृष्टेऽस्व, स्वधया, आसुरी, माया,
कृतानि-अस्ति, इदं, हव्यं, देवेभ्यः, जुष्टं, अस्तु, त्वं, अग्निष्टा, अ-
स्मिन्, यज्ञे, उदिहि) हे देवी! पृथिवि उगे! यजमान के कल्याण
के निमित्त दृढ़ हो, अन्न के निमित्त माणसम्बन्धिनी मृदा की गई
हो, यह हविषोग्रय अन्न देवताओं के निमित्त बिय हो कार्य शेष
पर्यन्त तुम अभानरूप से इस यज्ञ में अवस्थिति करो ॥ ६९ ॥

द्रन्नः सर्पिरासुतिः पूतनो होता वरेण्यः सहस्र-
स्पृत्रो अद्भुतः ॥ ७० ॥

इसका सोमाहुति ऋ०, विराह गा० छं०, अग्नि० देवता है ।
मंत्रार्थ—(द्रन्नः, सर्पिरासुतिः, मस्तः, होता, वरेण्यः, सहस्रः,
पुत्रः, अद्भुतः) जिसका प्रधानमक्षय पलाशकाष्ठ है, जिसका
प्रधान पानी घृत है, जो पुरातन, देवगणों का आव्हान करनेवाला,
वरणीय, बल से मयम करनेपर उत्पन्न होनेवाला आश्चर्यरूप है
वह अग्नि देवता कार्मुकी समिद्ध को भक्षण करे ॥ ७० ॥

परस्या अधि संवतो वराथे अभ्यातर । यत्राह-
मस्मि ताथे अंब ॥ ७१ ॥

इसका विरूप ऋ०, विराह गा० छं०, अग्नि देवता है । मंत्रार्थ
(परस्याः, सम्बतः, अवरातः, अभ्यातर, यत्र, अहं, अधि, अस्मि,
तां, अंब) शत्रुसम्बन्धी संग्राम से हमारे जनों को दुख से तारने
को सन्मुख आधो और जिस स्थान में मैं सम्यक् स्थित हूँ उस
स्थान की रक्षा करो ॥ ७१ ॥

परमस्याः परावतो रोहिदंश्च इदागं हि । पुरीण्यः
पुरुषिषोग्ने त्वन्तरा मृधः ॥ ७२ ॥

इसका वारुणि ऋषि है, भुरिगेनुष्टुप् छन्द, अग्नि देवता है ।
 मंत्रार्थ—(अग्ने, रोहिदश्वः, पुरीष्यः, तुकंभियः, त्वं, परमस्याः,
 परावतः, इह. आगहि, मृधः. आतुः) हे अग्निदेव ! रोहित नाम
 अथ रत्नवाले, पशुओं के हितकारी, बहुजनभिय, तुम अत्यन्त
 दूर देश से इस यज्ञकर्म में आगमन करो, संग्राम में शत्रुओं का
 विनाशकर उचीर्ण होओ ॥ ७२ ॥

१ यदग्ने कानि कानि चिदा ते दाक्षणि दधमसि ।

सर्वन्तदस्तु ते घृतं तज्जुपस्व यविष्ठय ॥ ७३ ॥

इसका जमदाग्नि ऋ०, निचृ० छ०, अग्नि दे० है । मंत्रार्थ—
 (यविष्ठय, अग्ने, यत् कानिचिन् दाक्षणि ते, ते, आदध्यासि तत्
 सर्वं, ते. घृतं, अस्तु. तव, जुपस्व) हे युवश्रेष्ठ ! अग्नि ! जो कोई
 भी काष्ठ तुम्हारे निमित्त अर्पण करे वह सब तुमको घृतकी समान
 भिय हो, उसको प्रीति सहित सेवन करो ॥ ७३ ॥

यदत्पुपजिह्विका यद्वज्रो अति सर्षति । स-

र्वन्तदस्तु ते घृतन्तज्जुपस्व यविष्ठय ॥ ७४ ॥

इसका जमदाग्नि ऋ०, विराट्नुष्टुप् छ०, अग्नि दे० है । मंत्रार्थ
 हे अग्ने ! (उपजिह्विका, यत्, अति, वज्रः, यत्, अतिसर्षति,
 यविष्ठय, तत् ते, घृतं, अस्तु, तव, जुपस्व) दीपकाण जां काष्ठ
 भक्षण करते हैं वज्रीक जिसका ष्ट के पार हो निकलती है हे तरुण
 अग्ने ! वह समित् तुमको घृतवत् भिय हो, उसको प्रीति से
 सेवन करो ॥ ७४ ॥

अहंरहरप्रपाद्यभरन्तोश्वाघेऽ तिष्ठन्ते घ्रास-

र्मसमै ; शयस्पोषेण समिपा मटन्तोग्ने मा ते

प्रति वेशा रिपाम ॥ ७५ ॥

इसका नाभानदिष्ट ऋ०, विराट् त्रिष्टुप् छ०, अग्निदेवता है ।
 मंत्रार्थ—(अग्ने, ते, प्रतिवशा अहंरहः, अपयावम्, अस्मै, घ्रासं,
 भरन्तः, तिष्ठते, अश्वाय, इव, शयः, पोषेण, इपा सम्मदन्तः, मा
 रिपाम) हे अग्ने ! तुम्हारे आश्रयवाले हम निरन्तर अपमत्तकी

समान इस अग्निदेव के निमित्त जैसे वांजिशाला में स्थित घोंड़ को गतिदिन घास दीजाती है तैसे समिधा रूप धन की पुष्टि और अन्न से हरे को सम्पादन करते नाशको प्राप्त नहो ॥ ७२ ॥

नाभां पृथिव्याः समिधाने अग्नौ रायस्पोषाय
बृहते हवामहे । इरम्मदवृहदुक्थं यजत्रजेता-
रमग्निमृतनासु सासहिम् ॥ ७३ ॥

इसका नामानेदिष्ट ऋ०, स्वराढार्पी त्रिष्टुप्छन्द है, अग्निदेवता है । मंत्रार्थ—(पृथिव्याः, नाभा, समिधाने अग्नौ इरम्मदम् वृहदुक्थम्, यजत्रम्, पृतनासु, जेतारं, सासहिं, अग्निं, वृहते, रायस्पोषाय, हवामहे) पृथ्वी के नाभिस्वरूप ब्रह्मा के मध्यमें दीप्यमान आहवनीयनाम अग्नि के मज्जलित होनेपर अन्न से तृप्त होने वाले बड़े शस्त्रस्तोत्रवाले यजनपूजन के योग्य संग्रामों में जीतनेवाले शत्रुओं का निरादर करने वाले अग्नि के अधिष्ठात्री देवताको बहुत से धनकी पुष्टि के निमित्त आवाहन करते हैं ॥ ७३ ॥

याः सेनां अभीत्वंरीराव्याधिनीरुगणा उत ।

ये स्तेना ये च तस्करास्तांस्ते अग्नेपिदधम्यास्ये ७७

इसका नामानेदिष्ट ऋ०, भूरिगनुष्टुप्छन्द, अग्नि देवता है । मंत्रार्थ—(याः, सेनाः, अभीत्वंरीः, उत, आव्याधिनीः, उगणः ये, स्तेनाः, च, ये, तस्कराः, अग्ने, तान्, ते, ध्यास्ये, अपिदधामि) जो शत्रुकी सेना हमारे सम्मुख आनेवाली है, और जो सेना हमारी सब प्रकार से ताड़न करने वाली है, और जो शस्त्रधारी हैं, जो डाकू हैं, हे अग्ने ! उनको तुम्हारे मज्जलित मुख में आहुति करता हूँ ॥ ७७ ॥

दध्म्याभ्याम्लिम्लूजम्भ्यैस्तस्कराश्च उत ।

एतुंभ्याश्च स्तेनान् भगवृस्तास्त्वंस्वाहृ सुखादितान् ॥

इसका नामानेदिष्ट ऋ०, भूरिगण्युष्णिक्छन्द, अग्नि दे० है । मंत्रार्थ—(भगवः, स्त्वं, मलिम्लूजं, दध्म्यां, तस्करान्, जम्भ्यै, उत, स्तेनान्, इतुंभ्यां, तान्, सुखादितान्, स्वाहृ) हे परमपूरव्ये

सम्पन्न परात्पर परमेश्वरं हे अग्निस्वरूप ! जो गाँव में प्रकटभाव से चोरी करते हैं उनको केवल ढाढ़ों से, तस्करों को जो निर्जन स्थान में दस्युवृत्ति करते हैं उनको आगे के दांतों से और चोरों को ठोड़ी से पीड़ित करो उन अंच्छेपकार नष्ट करनेयोग्यों को जीवितारहित करके भक्षण करो ॥ ७८ ॥

ये जनैषु मलिम्लव स्तेनामस्तस्करा वने । ये

कक्षेष्वायवस्तांस्तौ दधामि जम्भयोः ॥ ७९ ॥

इसका नाभानेदिष्ट ऋ०, निचू० छं०, अग्नि देवता है ।
मन्त्रार्थ—(ये, जनेषु, मलिम्लवः, स्तेनासः, वने, तस्कराः, ये, कक्षेषु, अघायवः, तान्, तै, जम्भयोः, दधामि) जो ग्रामवर्ती मनुष्यों के स्थान में पूर्वोक्त मलिम्लुव और स्तेन नाम से मसिद्ध गुप्त चोर हैं, जो वन में निर्जन प्रदेश में गमन करते हैं तस्कर नाम से मसिद्ध चोर हैं, जो नदी पर्वत गहन स्थानों में पापाभिलाषी लोभ से मनुष्यों के माण हरनेवाले हैं, हे अग्ने ! उन सबको तुम्हारी ढाढ़ों के अन्तर में खाने को स्थापन करता हूँ ॥ ७९ ॥

संशितम्ने ब्रह्म संशितं वीर्यंस्वल्पम् । स-

शितञ्जत्रञ्जिष्णु यस्याहमस्मि पुरोहितः ॥ ८० ॥

इसका नाभानेदिष्ट ऋ० अनुष्टुप् छं०, अग्नि दे० । मन्त्रार्थ—
(यः, जनः, अस्मभ्यं, अरातीयात्, च, यः, नः, द्वेषते, यः, निन्दात्, च, अस्मान्, धिप्सात्, तं, सर्वम्, भस्मसा, कुरु) जो मनुष्य हमसे शत्रुता करे जो हमारे देयधनको हमें न दे और जो हमसे द्वेषकर हमारे कार्य को नष्ट करे जो हमारी निन्दा करे गुण में दोष करे और जो हमारे माणवध का यत्न करे उन चारप्रकारके अराती द्वेषी निन्दक जिघांसु सबको भस्मकरो ॥ ८० ॥

यो अस्मभ्यंमरातीयाद्यश्च नो द्वेषति जनः ।

निन्दाद्यो अस्मान्धिप्साञ्च सर्वन्तम्भस्मसा कुरु ८१

इसका नाभानेदिष्ट ऋ०, निचू० पं० छं०, अग्नि दे० है ।
मन्त्रार्थ—हे अग्ने वा हे परमात्मन् ! आपके मसाद से (मे, ब्रह्म

संशिनम्, वीर्यं, बलं, संशितं, यस्य, अहं, पुरोहितः, अस्मि, क्षत्रं, जिष्णुः, संशिनम्) मेरा ब्रह्मतेज तीक्ष्ण हुआ इन्द्रिय शक्ति शरीर शक्ति, स्वकार्यमें समर्थ हुई जिसका मैं पुरोहित हूँ उसके क्षत्रतेज जयशील को तीक्ष्ण किया ॥ ८१

उदेषाम्ब्राह्म अंभिरमुद्वृच्यो भयो चलम् । सि-
णोमि ब्रह्मणा मित्रानुन्नयामि स्वाथं अहम् ॥ ८२ ॥

इसका नाभानेदिष्ट ऋ० विराटनु० छं० अग्नि दे० है । (प-
पाम्, वाहू, उदितारम्, वचः, बलम्, अहम्, ब्रह्मणो, अमित्रान्,
, सिणोमि, स्वान्, उन्नयामि) मंत्रार्थ—इन परमात्मा अग्नि के
मसाद से इन अपने ब्राह्मण राजा भोंके बीच में अपनी भुजा ऊंची
की यह लोकोक्ति भी है कि जब कोई औरों से उत्कृष्ट होता है
तब लांक कहते हैं इसने अपना हाथ ऊपर किया तेजने सबकी
कान्ति को अनिक्रमण किया बनेने शरीरशक्ति ने सबके वयको
अभिभूत किया मैं मंत्रकी सामर्थ्य से अमित्र शत्रुओं को नष्ट
करता हूँ, अपने पुत्र पौत्रादिको उत्कृष्टता को प्राप्त करता हूँ इस
प्रकार तरह समिधा के मंत्र कहे ॥ ८२ ॥

अन्नपतेर्घ्नस्य नो देह्यनमीवर्घ्यं शुष्मिणः ।

प्रदातारंन्तारिषु ऊर्जान्नो धेहि द्विषटे चतुष्पदे ॥

इसका नाभानेदिष्ट ऋ०, उपरिष्ठा० वृ० छं० अग्नि दे० है ।
मंत्रार्थ—(अन्नपते, मः, अन्नमीवस्य, शुष्मिणः, अन्नस्य, देहि,
प्रदातारं, प्रतारिषु, नः, द्विषदे, चतुष्पदे, ऊर्जान्, धेहि) हे अन्न
के पालक अग्ने । हमारे व्याधिरहित बलदायक अन्न को प्रदान
करो, अन्न के देनेवाले हमारी अतिवृद्धि करो और हमारे मनुष्य
पुत्रादि गौ आदिकों में अन्न को धारण करो ॥ ८३ ॥

इति शुक्ल यजुर्वेदान्तर्गत वाजसनेयि संहिता का सानुवाद

भारहृदा अध्याय समाप्त

द्वादशोऽध्यायः

ॐ

जिसमें अग्निचयन प्रधान है, उसे ग्यारहवें अध्याय में उखा सम्भरण आदि समिदधानान्त के मंत्र कहे । अब बारहवें अध्यायमें उखाधारण के मंत्र कहे जायेंगे ॥

दृशानो रुक्म ऽवृष्या व्यथौ दुर्मर्षमायुः श्रिये
रुचानः अग्निरमृतो अभवद्ययो भिर्यदैतन्धौ
रजनपत्सुरेताः ॥ १ ॥

इसका वत्समी ऋ०, भुरिण पंक्ति छं० रुक्म देवता है मंत्रार्थ—
(दृशानः, श्रिये, रुचानः, दुर्मर्षम्, आयुः, रुक्मः, वृष्या व्यथौ
अग्निः, वयोभिः, अमृतः, अभवत्, यत्, सुरेताः, यौः, एतं, अत-
नयत्) मत्पक्ष प्राप्त मनुष्यों को लक्ष्मी प्रदान करने के निमित्त
अमिलपित अखापिठत आयुवाला सुवर्णभरण बड़ी दीप्तिसे प्रका-
शित होता है, सो यह अग्नि अन्नादि के पुरोडाशादि से चिर-
स्थायी हुआ क्योंकि सुन्दर अग्निरूप धुलोकवासी देवगणों ने
इस अग्निको प्रकट किया है ॥ १ ॥

नक्तोपा सा समनसा विरूपे धापयेत्ते शिशुमे-
कंथे समीची । यावाक्षामा रुक्मा, अन्तर्वि-
भाति देवा अग्निन्धारयन्द्रविणोदाः ॥ १ ॥

इस कं० में १ मंत्र है । सबका कुत्स ऋ०, छं०, १ साम्नी
त्रि० २, १, यालुषी त्रि० और देवता सबका अग्नि है । मंत्रार्थ
हे उखे ! (समनसा, विरूपे, समीची, नक्तोपा, एकं, शिशुं,
धापयेत्) समान मनवाले, कृष्ण शुक्ल भेदसे विलक्षण रूप,
परस्पर मिले हुए रात्रिदिन, एक बालकरूप अग्नि को साथ पातः
अग्निहोत्रादि कर्म से तृप्त करते हैं, (यावाक्षामा, अन्तः, रुक्मा,
विभाति) ऊपर धुलोक और नीचे धूलोक के मध्यमें जो रोचमान
अग्नि विशेष शोभित होता है, उसको उठाता हूँ । (द्रविणोदाः,
देवाः अग्नि) यज्ञद्वारा घनरूप फलके दाता देवगणों ने अग्नि को

धारण क्रिया ॥ २ ॥

विश्वा रूपाणि प्रतिमुञ्चते कृषिः प्रासावीद्वद्रं
द्विपदे चतुष्पदे । विनाकंमरुपत्मखिता घरे-
ण्यो नु मयाणमुपसो विराजति ॥ ३ ॥

इसका शावाश्व ऋ०, विराहजगती छं०, सविता दे० है । मंत्रार्थ (वरेण्यः, कृषिः, सविता, विश्वा, रूपाणि, प्रतिमुञ्चते द्विपदे, चतुष्पदे, भद्रं, प्रासावीद्व, नाकं, मरुपत्, उपसः, मयाणम्, अनु, विराजति) श्रेष्ठ विद्वान् जगत् के मेरु सविता के मभाव से, सम्पूर्ण जगत् की वस्तुएं विविधप्रकार के रूपों को धारण करती हैं, द्विपाये मनुष्यादि चौपाये गौ आदि सब प्रकार के प्राणियों को स्वस्वव्यवहार प्रकाशनरूप श्रेय को प्रेरणा करता है (नाकं, मरुपत्, उपसः, मयाणं, अनु, विराजति) स्वर्ग को प्रकाश करता है और जो उपाकाल के गमन के पीछे विराजमान होता है ३

सुपर्णोसि गरुत्मान्स्त्रियुते शिरौ गायत्र्यचक्षु-
र्वृहद्रथन्तरे पक्षौ । स्तोम आत्मा छन्दाश्चि-
ज्ञानि यजूंषि नाम । साम ते तनुर्धामदेव्यं
यज्ञायज्ञियं पुच्छन्धिष्णयाः शफाः सुपर्णोसि
गरुत्मान्दिव्यच्छ स्वः पत ॥ ४ ॥

इसका श्यावाश्व ऋ०, अरिभृति छं०, सुपर्ण दे० है । मंत्रार्थ है उवाग्ने ! जिसकारण कि तुम ऊर्ध्वगामी होने में समर्थ हो और महात् हो इसकारण तुम (सुपर्णः, गरुत्मान्, अस्ति, निवृत्, ते, शिरः, गायत्रम्, ते, चक्षुः, वृहद्रथन्तरे, पक्षौ, स्तोमः, आत्मा, छन्दाश्चि, अज्ञानि, यजूंषि, नाम, सामदेव्यं, साम, ते, तनुः, यज्ञायज्ञियं, पुच्छम्, धिष्णयाः, शफाः, गरुत्मान् सुपर्णः, अस्ति, दिवं, गरुत्, स्वः, पत) सुन्दर पक्षवाले घेगामी गरुत् की समान हो, निवृत् स्तोम तुम्हारा शिर है, गायत्री तुम्हारे नेत्र हैं, वृहत् और रथन्तरे साम तुम्हारे दोनों पंख हैं, पंचदशस्तोम तुम्हारा अन्तःकरण है, गायत्री आदि इषकीस छन्द तुम्हारे हृद-

यादि अङ्ग है, इपेत्या आदि यजुः, तुम्हारे नाम है, वामदेव्य नामक साम तुम्हारा शरीर है, यज्ञायह्निय नामक साम तुम्हारी पुच्छ है, होठ आदि पिण्णयमे स्थित अग्नि तुम्हारे खुरोंके नख है, इस प्रकार हे अग्ने ! तुम वेगवान् गरुड़की समान पक्षिरूप हो । इस कारण आकाशको गमन करो स्वर्गलोकको प्राप्त होओ ॥ ४ ॥

विष्णोः क्रमोसि सपत्नहा गापञ्चन्द आरोह
 पृथिवीमनु विक्रमस्य विष्णोः क्रमोस्यभिमा-
 तिहा त्रैप्रुभञ्चन्द आरोहान्तरिक्षमनुविक्रमस्य
 विष्णोः क्रमोस्यरातीयतो हन्ता जागतञ्चन्द
 आरोह दिवमनुविक्रमस्य विष्णोः क्रमोसि
 शश्रूयतो हन्तानुष्टुभञ्चन्द आरोह विशोनु
 विक्रमस्य ॥ ५ ॥

इस कं० में ४ मं० हैं । संवकां शावांश्च ऋ० छं० १, २, ४
 निचृदापीं वृ० ३ आर्षीं वृ० और देवता संवकां उखाग्नि है ।
 मंत्रार्थ—हे प्रथम पादविन्यास ! तुम (विष्णोः, सपत्नहा, क्रमः,
 असि, गापनः, चन्दः, आरोह, पृथिवीम्, अनु, विक्रमस्य) यज्ञाग्नि
 के शमुपासी क्रम हो, इसकारण गापत्री चन्दको अनुग्रह कर स्वी-
 कार करो, फिर भूदेवता रूप इस भूमिके प्रदेशको विशेषकर प्राप्त
 करो । हे द्वितीय पादविन्यास ! तुम (विष्णोः, अभिमातिहा,
 क्रमः, असि, त्रैप्रुभम्, चन्दः, आरोह, अन्तरिक्षम्, अनु, विक्रमस्य)
 उखाग्निके पापनाशक क्रम हो, त्रिप्रुभ चन्दको अनुग्रह कर स्वी-
 कार करो, पश्चात् अन्तरिक्ष स्थान को प्राप्त करो । हे तृतीय पाद
 विन्यास ! तुम (विष्णोः, क्रमः, अरातीयतः, हन्ता, असि, जागतं
 चन्दः, आरोह, दिवं, अनु, विक्रमस्य) उखाग्निके क्रम धन ले
 कर न देनेवालों के नाशक हो, जगती चन्दको आरोहण करो,
 शुलोकको गमन के पीछे स्थानको प्राप्त करो । हे चतुर्थपाद वि-
 न्यास ! (विष्णोः, क्रमः, शश्रूयतः, हन्ता, असि, अनुष्टुभ
 चन्दः, आरोह) तुम उखाग्निके क्रम शत्रुता करने वां-

हो, अनुग्रह छन्दको आरोहण करो। हे अग्ने ! तुम (दिशा अनु-
विप्रमस्य) सब दिशा-निदिशाओं में परिब्याप्त होओ ॥ ५ ॥

अक्रन्ददग्निस्तनयन्निव्यथीः क्षामां रेरिहृद्वी-
रुधः समञ्जन् । सद्यो जज्ञानो विहीमिद्धो अ-
ख्यदारोदसी भानुना भात्यन्तः ॥ ६ ॥

इसका वत्सपी ऋ०, मितृ० त्रि० छं० अग्नि देवता है । मंत्रार्थ
(थीः, इव, स्तनयन, क्षामां, रेरिहृत्, वीरुधः समञ्जन्, अग्निः
अक्रन्दम्, हि, जज्ञानाः, सद्यः, इद्धः, इप्, व्यख्यत्, रोदसी, अन्तः
भानुना, आभाति) स्वर्गकी समान अर्थात् मेघकी समान गर्जना
करते पृथ्वीको आस्थादन करो, वृक्षोंको अंकुरित करता हुआ अग्नि
प्रदीप्त होता है, जिसकारण से कि प्रकट होता हुआ शीघ्रही दीप्त
हो, इस सबको विख्यात अर्थात् प्रकाश करता है, चाषापृषिबी
के मध्यमें रश्मिद्वारा प्रकाशित होता है ॥ ६ ॥

अग्नेभ्यावर्तिष्निभि मा निवर्त्तस्वायुं प्रावर्चसा
प्रजया धनेन । सन्या मेधया रथ्या पोषेण ॥ ७ ॥

इसका वत्सपी ऋ०, भुरिगार्प्यनु०, छं० अग्नि देवता है ।
मंत्रार्थ—(अभ्यावर्तिन्, अग्ने, आयुषा, वर्चसा, प्रजया, सन्या,
मेधया, रथ्या, पोषेण, मा, अभि, निवर्त्तस्व) हमारे सन्मुख
आने के स्वभाववाले, गमनागमन में समर्थ, हे अग्निदेव परमा-
त्मन् ! आयु, तेजकान्ति, सन्तान, इष्टलाभ, धारणावती बुद्धि,
सुवर्णादि अलङ्कार, आयु आदि की पुष्टि के साथ मेरे सन्मुख
माप्त हूजिये ॥ ७ ॥

अग्ने अक्षिरः शतन्ते सन्वघृतं सहस्रन्त
उपावृतं । अधा पोषस्य पोषेण पुनर्नो नष्ट-
माकृधि पुनर्नो रथिमाकृधि ॥ ८ ॥

इसका वत्सपी ऋ०, आपी त्रि० छं०, अग्नि दे० । मंत्रार्थ—
(अक्षिरः, अग्ने, ते, आवृतः, शतम्, ते, उपावृतः, सहस्रं, सन्तु,
अध, पोषस्य, पोषेण, नः, नष्टं, पुनः, आकृधि, पुनः, नः, रथिम्,

आकृषि) हे श्रेष्ठ अंगवाले ! हे अग्निदेवता ! आपकी गमना-
गमन शक्ति सैकड़ों हैं, आपकी निवृत्ति शक्ति सहस्रों हैं, इस
कारण प्रार्थना करते हैं कि शतसंख्यक आवृत्ति शक्तियों की
समृद्धि की लक्षसंख्यादि वृद्धि द्वारा हमारे व्ययहुए धन को फिर
सबपकार सम्पादन करो, फिर भी हमारे पूर्वसम्पादित धन को
सबपकार सम्पादन करो अर्थात् आवृत्ति शक्ति के प्रभाव से हम
को असंख्य धन का अधिकारी करो और उपावृत्ति शक्ति के प्रभाव
से तृप्त धन पुनः प्राप्त कराओ ॥ ८ ॥

पुनरूर्ज्जा निर्वर्त्तस्व पुनरग्न इषायुषा । पुनर्धः

प्राथ्यथैहसः ॥ ९ ॥

इसका वत्समी ऋ०, निवृत्तार्थी गा० छं०, अग्नि देवता है ।
मंत्रार्थ—(अग्ने, ऊर्जा, पुनः, निवर्त्तस्व, इषा, आयुषा, पुनः पुनः,
अथैहसः, प्रादि) हे अग्निदेवता ! तुम क्षीरादि रस के सहित
फिर आगमन करो, अन्न, जीवन के साथ, फिर आगमन कर
आयेहुए तुम हमको फिर पापों से रक्षा करो ॥ ९ ॥

सह रय्या निर्वर्त्तस्वाग्ने पिन्वस्व धारया ।

विरवप्स्व्या विश्वत्स्परि ॥ १० ॥

इसका वत्समी ऋ०, निवृत्तार्थी गा० छं०, अग्नि देवता है ।
मंत्रार्थ—(अग्ने, रय्या, सह, निवर्त्तस्व, विश्वप्स्व्या, धारया,
विश्वत्स्व, परि, पिन्वस्व) हे अग्निदेव ! धूम के सहित लौटो,
सब संसार के उपभोग योग्य वृष्टिरूप जलधारा से सम्पूर्ण जगत्
के तृण धान्य लता वृक्षों के ऊपर सिंचन करो ॥ १० ॥

आ त्वांहार्यमुन्तरंभ्रुवस्तिष्ठाविचाचलिः ।

विशस्त्या सर्वा वाञ्छन्तु मा त्वद्रूपमधिभ्रशत् ११

इसका ध्रुव ऋ०, आर्ष्यनु० छं०, अग्नि दे० है । मंत्रार्थ—
हे अग्नि ! (त्वा, अहार्यम्, अविचाचलिः, ध्रुवः, अन्तरभ्रुः, तिष्ठ,
सर्वाः, विशः, त्वा, वाञ्छन्तु) तुमको मैंने आहरण किया है,
अत्यन्त अचल होकर तुम स्थिरतायुक्त उखा के मध्य में स्थित

हो हमारी सम्पूर्ण प्रजा तुम्हारी इच्छा करे (राष्ट्रं, त्वत्, मा, अभिभ्रशत्) हमारा राज्य तुमसे नहीं गून्प हो ॥ ११ ॥

वकुञ्चमं वंशुण पाशांस्मदवाद्युषं विभञ्जनथं
अधाय अथा वृषमादित्यं व्रते तथानागसो
अदितये स्पाम ॥ १२ ॥

इसका पुनःशेष ऋ०, विराट्पार्षां छं०, वरुणदे० है। मंत्रार्थ (वरुण, उत्तमम्, पाशं, अस्मत् उव, आश्रयाय, अधमम्, एव मध्यमं, अथ, आदित्य, अनागसाः, तव, व्रते, वयम्, अदितये, स्पाम) हे सकलपाशापगिवारक देव ! हमारे उत्तम अंग शिर में स्थापित अपनी पाशको हम से निकालकर दूर करो तथा अधमशङ्ख पादप्रदेश में स्थित अपनी पाशको सवभकार विषय दूरकरो मध्यमप्रदेश में स्थित अपनी पाशको विच्छेद करो तीनों पाशको विनाश के अनन्तर हे अदितिपुत्र ! अत्रापिहत शक्तिमान् वरुण ! अपराध रहित, तुम्हारे कर्म में वर्त्तमान हम दीनतारहित अत्रापिहत तत्त्व के योग्य हो ॥ १२ ॥

अग्नें वृहन्नुपसंसूद्धर्षो अस्थात्तिर्जगन्वान्त-
मसो ज्योतिपागात् । अग्निभ्रानुनाकशता
स्वंग आ जातो विभ्या सट्मान्यमाः ॥ १३ ॥

इसका वित ऋ०, भुरिगा० प० छं० अग्नि दे० है। मंत्रार्थ (वृहत्, अग्निः, उपसाम्, अग्ने, ऊद्धर्षाः, अस्थात्, तमसः, निः जगन्वान, ज्योतिपा, आ-अगात्, रुपता, भानुना, स्वङ्गः जातः, विश्वा, सदानि, आ, अमाः) ममानसे महान् अग्नि, उपःकाल के अग्नि ऊंचा स्थितहुआ रात्रिरूप अन्धकार से निकले दिनरूप ज्योति के संग यहाँ मात हुवा अन्धकार को दूर करता हुवा किरणजाल से शोभनशरीर वाला हुआ उत्पन्नमात्र ही संपूर्ण स्वान अर्थात् सब लोकों को सवभकार अपने तेज से पूर्ण करता हुआ ॥ १३ ॥

हृषिः शुचिपद्मसुरन्तरिक्षसन्तोषेष्टिपदति -

धिर्दुरीणमत् । नृपद्वरसदृत्सदृष्योमसदृञ्जा
गोजा ऋतञ्जा अग्निजा ऋतम्बुहत् ॥ १४ ॥

इस कं० में २ मंत्र हैं । सबका त्रित ऋ०, छं० १-निचृत् ज०, २ दैव्युदिकू, और देवता सबका अग्नि है । दशम अध्याय के २४ वें मंत्र में इसकी व्याख्या होगई ॥ १४ ॥

सीद त्वम्मातुरस्या उपस्थे विश्वान्यग्ने वयु-
नानि विद्वान् । मैनान्तपसा मार्षिपाभिर्शो-
चीरन्तास्याथ शुक्रज्योतिर्धिभादि ॥ १५ ॥

इसका त्रित ऋ० है, विराट् त्रि० छं०, अग्नि-दे० है । मंत्रार्थ (अग्ने, विश्वानि, वयुनानि, विद्वान्, त्वं, अस्याः, मातुः, उपस्थे, सीद, एनाम्, तपसा, मा, अभिशोचीः, अर्षिपा, मा, अस्यां, अन्तः, शुक्रज्योतिः, धिभादि) हे अग्निदेवता ! सम्पूर्ण ज्ञानके उपायों को जाननेवाले तুম, इस माताकी समान उखा की गोद में स्थित हो, इसको संताप से मत संतापित करना, ज्वाला से मत दीप्त करना, इस उखा के मध्य में निर्मल प्रकाश से विशेष प्रदीप्तिमान् हो ॥ १५ ॥

अन्तरग्ने रुचा त्वमुखायाः सदने स्वे । तस्या-
स्त्वथहरसा तपन्जातवेदः शिवोभव ॥ १६ ॥

इसका त्रित ऋ० है, विराडनु० छं०, अग्नि दे० है । मंत्रार्थ- अग्ने, त्वं, रुचा, उखायाः, अन्तः, स्वे, सदने, जातवेदः, त्वं, हरसा, तपन्, तस्याः, शिवः, भव) हे अग्ने ! तুম अपनी दीप्ति से, इस उखा के मध्य में, अपने घर में दीप्त होकर स्थित हो, हे सबके जाननेवाले तুম ज्योति से तपतेहुए उस उखा के कल्याण कारीं हूजिये ॥ १६ ॥

शिवो भूत्वा मर्त्यमग्ने अथो सीद शिवस्त्वम् ।

श्रियाः कृत्वा दिशः सर्वाः स्वयोनिमिहात्सदः ॥ १७ ॥

इसका त्रित ऋ० विराडनु० छं० अग्नि देवता है । मंत्रार्थ- (अग्ने, त्वं, मर्त्य, शिवः, भूत्वा, अथो, शिवः, सीद, सर्वाः, दिशः

शिवाः, इह, योनिं, आसद्) हे अग्निदेवता । तुम मेरे निमित्त कल्याणकारी होकर और इसके अनन्तर सर्वात्मा से शान्तस्वरूप होकर स्थित होओ, सम्पूर्ण दिशाओं को कल्याणरूप करके इस स्वरूप अपने स्थानमें स्थित हूजिये ॥ १७ ॥

द्विघत्परिं प्रथमर्जज्ञे अग्निरस्मद्विद्वितीयम्परिं
जातवेदाः । तृतीयंमप्सु नृम्णा अजसृभिन्धान
एनञ्जरते स्वाधीः ॥ १८ ॥

इसका वत्सपी श्रु०, निचृ० भि० छं०, अग्निदे० है । मंत्रार्थ (जातवेदाः, अग्निः, प्रथमम् दिवः, परिजज्ञे, द्वितीयं, अस्मत्परि) सबके ज्ञाता अग्नि, प्रथम धुनोक में सूर्यरूप से प्रकट हुए दूसरा जातवेदा अग्नि, हम ब्राह्मणों के सकाश से मादुर्मृत हुआ (नृ-मणा, तृतीयं, अजसृं, अप्सु) मजापात ने तीसरीबार निरन्तर जलों के भीतर स्थित अग्नि को सृजन किया (स्वाधीः, एनं; इन्धानः, जरते) सुन्दर बुद्धिवाला यजमान, इस अग्निको प्रदीप्त करता हुआ प्रकट करता है ॥ १८ ॥

विद्मा ते अग्ने त्रेधा त्रयाणि विद्मा ते धाम्
विभृता पुरुत्रा । विद्मा ते नामं परमं गुहा
यद्विद्मा तमुत्तं यत् आजगन्थं ॥ १९ ॥

इसका वत्सपी श्रु० निचृ० नि० छं०, अग्निदे० है । मंत्रार्थ (अग्ने, त्रेधा, त्रयाणि, ते, आविश्, पुरुत्र, विभृता, ते, धाम्, आविश्, यत् ते, परमं, गुहा, नाम आविश्, तं, उत्सम्, आविश् यतः, आजगन्थ) हे अग्निदेव । जो पूर्व मंत्र में कहे तमिस्वरूप आदित्य अग्नि बटवानल रूप हैं, तीनों उन तुम्हारे रूपोंको हम जानते हैं और आपके सम्बन्धी गार्हपत्य आहवनीय अन्वाहार्य पचन आग्नीषीयादि स्थानों में तुम धारण करनेवाले के स्थानों को भी हम जानते हैं, और जो तुम्हारा अत्यन्त गुप्त मंत्र में परिगणित प्रसिद्ध नाम है उसको भी जानते हैं और उस उत्स्यन्दन जलरूप स्थानको भी जानते हैं, जिस जलरूप स्थानसे विद्युत् रूप

ते तुम से प्राप्त हुए हों ॥ १९ ॥

समुद्रे त्वां नृम्णा अण्स्वस्तर्मुचक्षा ईधे दिवो

अग्ने ऊधेन् । तृतीये त्वा रजसि तस्यिवात्स

संपामुपस्थे महिषा अर्बधेन् ॥ २० ॥

इसका वत्सपी श्रु०, निचृ० त्रि० छं० अग्निदे० है। मंत्रार्थ—
(अग्ने, नृम्णाः, समुद्रे, ईधे, नृचक्षाः, अण्स्व, अग्नाः, दिवाः,
ऊधेन्, तृतीये, रजसि, तस्यिवात्सं, त्वा, महिषाः, अपा, उपस्थे,
अर्बधेन्) हे अग्ने ! मनुष्यों के हितकारी प्रजापति ने समुद्र में
बढ़वानल रूप से वर्तमान तुमको मदीप्त किया पदते हुए पुरुषों
में स्पष्ट मंत्र के कहनेवाले प्रजापति ने दृष्टिरूपजलों के भीतर
विद्युतरूप से प्रकाशित किया दुलोक के उत्कृष्ट तीसरे रंजन
करने वाले, तेजोमण्डल आदित्यरूप से स्थित होते हुए तुमको
प्रजापति ने दीप्त किया महान माणों ने जलों के उत्सर्ग में स्थित
तुमको मदीप्त किया ॥ २० ॥

अक्रन्ददग्निस्तनयस्त्रिवृष्यैः क्षामारेरिहृद्दी-

रुधः समञ्जन् । मधो जज्ञानो विहीमिद्धो अ-

ख्यदारोदसी भानुना भात्यन्तः ॥ २१ ॥

इसकी व्याख्या छठे अध्याय में हो चुकी है। भावार्थ—अग्नि
देवता मेघकी समान गर्जन करते, पृथ्वी को आस्वादन करते,
औषधि वृक्षादि को अंकुरित करते शीघ्र प्रकट होकर धावापृथ्वी
में परिव्याप्त होकर प्रभावसहित देदीप्यमान होते हैं ॥ २१ ॥

श्रीणामुदारो धरुणो रथीणाम् मनीषाणाम्प्रा-

र्षणः सोमगोपाः । वसुः सनुः सहसो अणु

राजा विभात्यग्रं उपसामिघानः ॥ २२ ॥

इसका वत्सपी श्रु०, निचृदा० त्रि० छं०, अग्निदे० है मंत्रार्थ
(श्रीणां, उदारः, रथीणाम्, धरुणः, मनीषाणाम्, प्रर्षणः,
सोमगोपाः, वसुः, सहसः, सनुः, अणु, राजा, उपसाम्, अग्ने,
इघानः, विभाति) गौ बोड़े आदि सम्पत्तिका प्रतिशय देनेवाला

धर्मोंका धारण करनेवाला, मनके अभिलाषोंका प्राप्त करानेवाला यजमान के किये सोमयाग का रक्षक सबका निवासहेतु मन्यत के वेगरूप बल से प्रकट होने से पुत्ररूप जल में स्थित चरुणरूप से राजा प्रभातके प्रथम आदित्यरूप से दीप्यमान अग्नि विशेष कर प्रकाशित होता है कारण कि प्रभातकाल में अग्नि होमादि से प्रकट होता है ॥ २२ ॥

विश्वस्य केतुर्भुवनस्य गर्भआरोदसी अपृणा-

ज्जायमानः । वीदुषिदद्रिमभिनत्परायञ्जना

यदग्निमयजन्त पञ्च ॥ २३ ॥

इसका वत्समी ऋ०, आर्ची नि० छं०, अग्नि दे० है । मंत्रार्थ यह अग्नि (विश्वस्यः केतुः भुवनस्य, जायमानः, आरोदसी, आ, अपृणात्) सम्पूर्ण जगत् का विज्ञानस्वरूप आत्माग्नि, सब प्राणिमात्रों के अन्तरमें वायु आत्मा से प्रकट होने वाला यावापृथिवी को सब प्रकार तेजसे पूर्ण करता है (परायन, वीदुम्, चित् आर्द्रि, अभिनत्) चन्द्ररूप से सब ओर गमन करता अतिदृढ़ भी, मेघको विदीर्ण करता है अर्थात् जो प्रतिदिन उदित होकर अतिदृढ़ पर्वतका भी रन्ध्रभेद कर भूलोक से द्युलोक पर्यन्त को अपनी उद्योति से पूर्णकरता है (पञ्जनाः अग्नि, आ, अजयन्त) मनुष्यगण उस अग्नि का सबप्रकार यजन करते हैं २३

उशिक् पावको सुरतिः अमेधा मर्त्येष्वग्निर-

भृतो निधायि । इयसि धूममरुपम्भरिभ्रदु-

च्छुक्लेण शोचिषा धामिनक्षन् ॥ २४ ॥

इसका वत्समी ऋ०, निचृ०, त्रि० छं० अग्नि दे० है । मंत्रार्थ- (उशिक्, पावकः, अरतिः अमेधाः अमृतः, अग्निः, मर्त्येषु, निधायि, अरुपम्, धूमम्, उदियसि, भरिभ्रत्, शुक्लेण, शोचिषा, धाम्, इनक्षन्) लोकों का काम्य कान्तिमान्, शोधक, दुष्टों से प्रीतिरहित श्रेष्ठ बुद्धिमान्, मरणधर्मरहित अग्नि मरणधर्म मनुष्यों में देवताओं द्वारा स्थापन किया गया, उपद्रवरहित धूम

को वृष्टि के निमित्त आकाश में प्राप्त करता है, जगत् को धारण करता हुआ निर्मल मभावयुक्त कान्तिसे शुलोक को व्याप्त किया १४

दृशानो रुक्म उर्व्या व्यद्यौ दुर्मर्ममायुः श्रिये
रुचानः । अग्निरमृतो अभयद्वयोभिर्यदेन-
न्यौरजनयत्सुरेताः ॥ २५ ॥

इसकी व्याख्या अध्याय १३ के मंत्र १ में हो चुकी है ॥ २५ ॥

यस्ते अद्य कृणधद्द्र शोचेपूपन्देव घृतवन्तमग्ने ।

प्र तन्नप प्रतरं वस्यो अरुच्छीभि सुम्नन्देवभक्तं

य्यविष्ट ॥ २६ ॥

इसका वत्सपी ऋ० विराटा० त्रि० छं० अग्नि देवता है। मंत्रार्थ— (मद्रशोचे, देव, अग्ने, अद्य, यः, ते, घृतवन्तं, अपूपं, कृण्वत्, यविष्ट, तं, प्रतरम्, वस्यः, प्रणय, देवभक्तम्, सुम्नं, आभि) हे कल्याणदीप्ति ! हे दिव्यगुण संयुक्त अग्ने ! इस समय आज प्रतिपदा में जो यज्ञमान तुम्हारे निमित्त घृतसिक्त पुरोडाशको करता है, हे अतियुवा ! उस यज्ञमानको अतिश्रेष्ठ स्वान दो देवताओंके भोगयोग्य सुख सब प्रकारसे प्राप्त कराओ ॥ २६ ॥

आ तम्भज सौश्रवमेत्वंग्न उक्थ उक्थ आभज

शस्यमाने । प्रियः सूर्ये प्रियो अग्ना भवात्युज्जा-

तेन भिनददुज्जनित्वैः ॥ २७ ॥

इसका वत्सपी ऋ० विराटा० त्रि० छं० अग्नि देवता है । मंत्रार्थ— (अग्ने, तम्, सौश्रवसेपु, आभज, उक्थे, उक्थे, शस्यमाने आभज, सूर्ये, प्रियः, अग्ना, प्रियोः, भवाति, आतेन, वज्जिनदत्, जनित्वैः, उद्) हे अग्ने ! तूसे यज्ञमानको कीर्ति बढ़ानेवाले यह कर्म में सब प्रकार सेवन करो, गति उक्थकाण्ड में श्लोक शलादि द्वारा सम्मन्न कर तुम उसको अपना प्रीतिपात्र करो, और सूर्यका प्रियपात्र करो, अग्निका प्रिय ही उत्पन्नहुए पुनसे वृद्धिको प्राप्त हो २७

त्वामग्ने यज्ञमाना अनु धृन्विशवा वस्तुं दधिरे ।

वायर्षाणि । स्वर्षा सह द्रविणमिच्छमाना व्रजन्ते

मन्तमुशिजो विश्वः ॥ २८ ॥

इसका वत्समी ऋ०, विराडापी नि० छं०, अग्नि देवता है ।
मंत्रार्थ—(अग्ने, यजमानः, त्वां, अनुचून्, वाय्पीण, विश्वा, वसु
दधिरे, स्वया, सह, द्रविणं, इच्छमानाः, उशिषः, गोमन्तं, ब्रजं,
विश्वः) हे अग्नि देवता ! यजमानः तुम्हारी सेवा में वर्तमान
हुए, दिग्मे वरणीय सम्पूर्ण धनधान्य गोहिरण्यादि ऐश्वर्य प्राप्त
करते हैं, तुम्हारे साथ यज्ञफलको तुम्हारी सेवा करते से इच्छा
करते हुए बुद्धिमान् ज्ञानकर्मसमुच्चयकारी जनों ने रविमण्डलके
मध्यमें देवयान मार्गको सेवन किया ॥ २८ ॥

जस्ताव्यग्निर्नराधसुशोषो वैश्वानरऋषिभिः

सोमगोपाः अद्रेपे घाषापृथिवी हुवेम देवा धत्त

रपिमस्मै सुवीरम् ॥ २९ ॥

इसका वत्समी ऋ०, विराडा० नि० छं०, अग्नि देवता है ।
मंत्रार्थ—(नराणां, सुशेषः, वैश्वानरः, सोमगोपाः, अग्निः,
ऋषिभिः, अस्तावि, अद्रेपे, घाषापृथिवी, हुवेम, देवाः, अस्मे,
सुवीरम्, रपिम, धत्त) मनुष्यों को सुन्दर सुख देनेवाला, जड-
रागिरूप से सबका हितकारी, सोमरक्षक अग्नि देवता, ऋषियों
द्वारा स्तुति किया गया, द्वेपरहित, भूमि और पृथ्वीके अधिष्ठात्री
देवता को आह्वान करते हैं, हे देवताओं ! हमारे निमित्त वरिष्ठ
सुन्दर ऐश्वर्य को स्थापन करो ॥ २९ ॥

सुमिधाग्निन्दुबस्थत घृतैर्वाधयतातिधिम् ।

अस्मिन्दृष्या जुहोतन ॥ ३० ॥

इसकी व्याख्या ३ अ० १ क० में होगई है ॥ ३० ॥

खंडु त्वा विश्वेदेवा अग्ने भरन्तु चित्तिभिः ।

स नो भव शिवस्त्वथ सुप्रतीको विभावसुः ॥ ३१ ॥

इसका तापस ऋ०, विराडनु० छं०, अग्नि देवता है । मंत्रार्थ—
(अग्ने, विश्वे, देवाः, उ, चित्तिभिः, उद्भरन्तु, सः, सुप्रतीकः,
विभावसुः, त्वं, नः, शिवः, भव) हे अग्ने ! सम्पूर्ण गायकूप

देवता हो उद्यम में प्रवीण बुद्धि की वृत्तियों के द्वारा तुमको ऊँची धारण करें वह ऊर्ध्वरूप सुन्दर मुखवाले दीप्तिरूप धनवाले तुम हमारे कल्याणकारक होओ ॥ ३१ ॥

प्रेदग्ने ज्योतिष्मान्याहि शिवेभिरर्चिवाभिष्ट्वम्

वृहद्भिर्भानुभिर्भासन्मा हिंसीस्तन्वा प्रजाः ॥ ३१ ॥

इसका तापस ऋ० विराडनु० छं० अग्नि देवता है मंत्रार्थ-- (अग्ने, शिवेभिः, अर्चिभिः, इत्, ज्योतिष्मान्, त्वं, मयाहि, वृहद्भिः, भानुभिः, भासन्, तन्वा, प्रजाः, माहिंसीः) हे अग्ने ! मंगलयुक्त ष्वालाओं करके ही प्रकाशवान् तुम गमन करो बड़ी किरणों से प्रकाशवान शरीर से प्रजा पुत्रादि को किसी प्रकार पढा मतदो ॥ ३२ ॥

अक्रन्ददृग्निस्तनयंस्त्रिघ्नैः क्षामा रोरिहद्वीरुधः

समञ्जन् । सद्यो जज्ञानो विहीमिद्धो अख्यदा-

रोदसी भानुनां भात्यन्तः ॥ ३३ ॥

इस मं० की व्याख्या इसी अध्याय के ६ मंत्रमें होगई ॥ ३३ ॥

प्रप्रायमग्निर्भरतस्य शृण्वे विपत्सूर्यो न रोचते

वृहद्भाः । अभि यः पूरुम्पृतनासु तस्यौ दीदाय

दैव्यो अतिथिः शिवो नः ॥ ३४ ॥

इसका वशिष्ठ ऋ० है, आर्षी त्रि० छं० अग्नि देवता है मंत्रार्थ; (अयं, अग्निः, भरतस्य, मशृण्वे, सूर्यः, नः, वृहद्भाः, मरोचते यः पृतनासु, पूरुम्, अभितस्यौ, दैव्यः, अतिथिः, नः, शिवः दीदाय) यह अग्नि हवि धारण करनेवाले यजमान के आह्वानको सुनता है। सूर्यकी समान बड़ा दीप्तिमान् होता हुआ अत्यन्त प्रकाशवान् होता है, जो संग्रामों में राक्षसके सन्मुख स्थित होता है देहसम्बन्धी अतिथि हमारा मंगलरूप अग्नि दीप्तिमान् होता है ॥ ३४ ॥

आर्षो देधीः प्रतिगृभ्णीत भस्मैतरस्योने कृणु-

द्भवथ सुरभा उ लोके तस्मै नमन्ताञ्जनयः

सुपत्नीर्भर्तव पुत्रम्बिभृताप्स्येनत् ॥ ३५ ॥

इसका वशिष्ठ ऋ०, आर्षी त्रि० छं० आप देवता है । मंत्रार्थ-
हे (देवीः, आपः, भस्म, प्रतिगृहणीत, स्योने, सुरमौ, लोके, च,
एतत्, कृणुध्वम्, सुपत्नीः, जनयः, तस्मै, नमन्ताम्, एतत्, अप्सु,
विभृत, माता, पुत्रं इव) दीप्यमान ! जलों ! तुम भस्म को ग्रहण
करो, सुखकारक पुष्प धूआदि से सुन्दर गन्धयुक्त स्नान में ही
इसको धारण करो, जिनके सुन्दर पति वरुण हैं वह वृक्षादि को
उत्पन्न कर अग्नि की प्रकट करनेवालों हैं, उस भस्मरूप अग्नि
के निमिषा नवो । हे जलों ! इस भस्म को जलों में धारण करो
जैसे कि मैया पुत्र को धारण करती है ॥ ३६ ॥

अध्वगने सधिप्रयसोपधीरनुरुध्यसे । गर्भे
सज्जायसे पुनः ॥ ३६ ॥

इसका विरूप ऋ०, निचृ० गा० छं०, अग्नि देवता है ।
मंत्रार्थ- (अग्ने, अप्सु, तव, सधिः, सः, ओपधीः, अनुरुध्यसे,
गर्भे, सन्, पुनः, जायसे) हे यक्ष्मीभूत अग्ने ! जलों में तुम्हारा
स्नान है, वही भस्म जल से प्रकट होकर यवादि रूप को प्राप्त
होते हो, अरणी के मध्य में होते हुए फिर प्रकट होते हो ॥ ३६ ॥

गर्भो अस्यापधीनाङ्गर्भो वनस्पतीनाम् । गर्भो
विश्वस्य भूतस्याग्ने गर्भो अपामसि ॥ ३७ ॥

इसका विरूप ऋ० भुरिगार्ष्यु० छं० अग्नि देवता है मंत्रार्थ-
(अग्ने, ओपधीनाम्, गर्भः, असि, वनस्पतीनाम्, गर्भः विश्वस्य
भूतस्य, गर्भः, अपां, गर्भः असि) हे अग्ने ! तुम ओपधियों के
गर्भ हो, वनस्पतियों के गर्भ हो, सम्पूर्ण प्राणियों के गर्भ हो सम्पूर्ण
जलों के गर्भ हो ॥ ३७ ॥

पुंसस्य भस्मना योनिमुपश्य पृथिवीमग्ने । सद्य
सृज्य मातृमिष्वज्ज्योतिष्मान् पुनरासदः ॥ ३८ ॥
इसका विरूप ऋ० निचृदार्ष्यु० छं० अग्नि देवता है मंत्रार्थ-
(अग्ने, त्वं, भस्मना, योनिम्, पृथिवीं, च, अपः, मसद्य, मातृभिः
संसृज्य, ज्योतिष्मान्, पुनः, आसदः) हे अग्ने ! तुम भस्मद्वारा

कारणमून पृथ्वीको और जलोंको प्राप्त होकर मातारूप जलोंसे सम्मिलित हो, तेजस्वी होकर फिर उत्रामें स्थित होजिये ॥ ३८ ॥

पुनरसासथ सदनमपश्चं पृथिवीमग्ने । शेषे मातु-
र्यथोपस्थेन्तरस्याथ शिवतमः ॥ ३९ ॥

इसका विरूप ऋ० निवृदनु० छं० अग्नि देवता है । मंत्रार्थ-
(अग्ने, शिवतमः, अपः, च, पृथ्वीम्, सदनं, आसथ, पुनः अस्यां
अन्तः, शेषे, यथा, मातुः उपस्थे) हे अग्ने ! अति कल्याणरूप
तुम जल और पृथ्वीके स्थान को प्राप्त होकर फिर इस उत्रा के
मध्यमें शयन करते हो जैसे कि माताकी गोदीमें बालक सोता है ३९

पुनरूर्जा निर्वर्त्तस्वः पुनरग्न इवाधुपा । पुनर्नः

॥ प्राद्यथैहसः ॥ ४० ॥

सहरय्या निर्वर्त्तस्वाग्ने पिन्वस्व धारया । विश्व-
स्न्या विश्वतस्परि ॥ ४१ ॥

इन (४० । ४१ः) दोनोंकी व्याख्या होचुकी है ॥

बोधो मे अस्य वचसो यविष्ठ महिष्ठस्य
पभृतस्य स्वधावः । पीयति त्वो अनु त्वो गृ-
णाति वन्दारुष्टे तन्व वन्दे अग्ने । ४२ ॥

इसका दीर्घतमा ऋपि है, विराडार्थी त्रि० छं०, अग्नि दे० है ।
मंत्रार्थ- (स्वधावः, यविष्ठ, अग्ने, मे, अस्य, महिष्ठस्य, पभृतस्य,
वचसः, बोधः, त्वः, पीयति, त्वः, अनुगृणाति, वन्दारुः, ते,
तन्वम्, वन्दे) हे धनवान् । श्रेष्ठ युवारूप अग्ने, मेरे इस महान्
बारम्बार कथन करने से श्रवणपथ को प्राप्त हुए वचन के अभिप्राय
को जानो, कोई तुम्हारी निन्दा करे कोई एक पुरुष तुम्हारी स्तुति
करे यह मनुष्यों का स्वभाव है, परन्तु स्तुति करनेके स्वभाववाला
मैं तुम्हारे शरीर को प्रणाम करता हूँ ॥ ४२ ॥

स बोधि सूरिर्मघश वसुपते वसुदावन् । युयो-
ज्यासद्वेषाथसि विश्वकर्मणे स्वाहा ॥ ४३ ॥

इस क० में २ मंत्र हैं, सबका सोमाहुति ऋ० है । छं०-१ नि-

चृदार्षी गा०, २ याजुष्युष्णिक्, और देवता सबका अग्नि है ।
 मंत्रार्थ—(वसुपते, वसुदावन्, सः, धरिः, मघवा, वोधि, द्वेषांसि,
 अस्मत्तः, युयोधि, विश्वकर्मणे, स्वाहा) हे धनपते ! धनके दाता
 अग्ने ! वह तुम सबके ज्ञाता धनयुक्त हो हमारे अभिप्राय को जानो
 आप सन्तुष्ट होकर दुर्भागों को हमसे पृथक् करो, जगत् की सृष्टि-
 स्थिति आदि कर्म करनेवाले तुम्हारे निमित्त अग्नि में आहुत
 यह हवि मलीमकार गृहीत हो ॥ ४३ ॥

पुनस्त्वादित्या रुद्रा वसवः समिन्धताम्पुनर्व-

क्षाणो वसुनीध यज्ञैः । घृतेन त्वन्तन्वं वर्धयस्व

सत्याः सन्तु यजमानस्य कामाः ॥ ४४ ॥

इसका सोमाहुति ऋ० स्वराढार्षी त्रिष्टुप् इन्द्र अग्निदेवता है
 मंत्रार्थ—हे अग्ने ! (वसुनीध, आदित्याः, रुद्राः, वसवः, त्वा,
 पुनः, समिन्धताम्, प्रक्षाणः, यज्ञैः, पुनः, त्वं, घृतेन, तन्वं, वर्ध-
 यस्व, यजमानस्य कामाः, सत्याः, सन्तु) धन के निमित्त स्तुति
 वाले हे देव ! आदित्यगण, रुद्रगण, वसुगण तुमको फिर प्रदीप्त
 करें, हे धननेता ! ऋत्विग्यजमान यज्ञ करके फिर तुमको प्रदीप्त
 करें, तुम घृत के द्वारा शरीरको बड़ाओ तुम्हारे वृद्धिको प्राप्त होने
 में यजमानके मनोरथ सफल हो ॥ ४४ ॥

अपेतं व्रीत् वि चं सर्पता येत्र स्थ पुराणा ये च

नृतनाः । अदायमो वसानस्पृथिव्या अक्र-

न्निमस्पितरां लोकमस्मै ॥ ४५ ॥

इसका सोमाहुति ऋ० निचृदार्षी त्रि० छं०, छिन्नोक्त देवता
 है । मंत्रार्थ—हे यमभृत्यगण ! (ये, पुराणाः, च, ये, नृतनाः,
 अत्रस्थ, अता, अपेतं, वीत्, च, विसर्पत, यमः, पृथिव्याः, अव-
 सानं, अदात्, पितरः, इमं, लोकं, अस्मै, अक्रन्) जो पुराने और
 जो नये तुम इस स्थानमें हो, वह तुम यहांसे दूर चलेजाओ अति
 दूरही संघात त्यागकर अनेक स्थानोंमें चलेजाओ, यमने पृथ्वीका
 अवकाश इस यजमानके निमित्त दिखाई, पितरोंने इस लोकको

इस यज्ञमानके निमित्त करियग किया है ॥ ४५ ॥

संज्ञानमसि कामधरणम्मपि ते कामधरणं ऋ-
यात् । अग्नेर्भस्मास्थग्नेः पुरीषमसि चितस्य
परिचितं ऊर्ध्वचितंः श्रयद्ध्यम् ॥ ४६ ॥

इस कं० में १ मं० है । सबका सोमाहूति ऋ० है । छं० १ सा०
पं० २ आ० पं० ३ आहु० णि० और देवता १ उरु २ सिकता,
३ परिश्रित है । मंत्रार्थ-हे उपास्वरूप ! तुम (संज्ञानम्, असि,
कामधरणं, ते, कामधरणं, मयि, भूयात्) पशुओं के सम्पूर्ण
ज्ञान के साधन हो, तथा यज्ञद्वारा मनोरथ सम्पादन करनेवाले
हो, इस कारण तुम से प्रार्थना करते हैं कि तुम्हारी मनोरथ स-
म्पादनकी सामर्थ्य मुझ यज्ञमानमें हो । हे सिकता ! तुम (अग्ने,
भस्म, असि, अग्नेः, पुरीषम्) अग्निकी भस्म हो, अग्निके पूरण
करने वाले हो । हे (शर्कराः, चितः, परिचितः, स्य, श्रयद्ध्यम्)
परिश्रित गण ! तुम भूमिपर डालेहुए सब ओर स्थापित हो, ऊर्ध्व
में स्थापित तुम इस गार्हपत्य स्थानको सेवन करो ॥ ४६ ॥

श्रयधेसो अग्निर्ध्वस्मिन्त्सोममिन्द्रः स्तुतन्दधे
जठरे वायुज्ञानः । महस्त्रियं याजमत्यन्न ससिधे
समवान्स्त्वृषसे जातवेदः ॥ ४७ ॥

इसका विरधामिन्न ऋ० है, आर्या नि० छं०, अग्नि दे० है ।
मंत्रार्थ (सः, अयं, अग्निः, यस्मिन्, वावशानः, इन्द्रः, सुगम्,
सहस्रिपम, वागे, अत्यम्, न, ससि, सोमं, जठरे, धत्ते, जातवेदः,
ससवान्, सन्, स्त्वृषसे) वह यह अग्नि है, जिस अग्निचयन में
इच्छा करने वाले इन्द्रने, अभिषव किए सदस्यों के योग्य अन्न की
समान भक्षण करते में मद न करनेवाले दर्पकारक वृत्तिकारक
सोमको उदरमेंधारण किया, हे अग्नि ! तुमभी हवियों को भक्षण
करते हुए ऋत्विग् यज्ञमानों से स्तुतिको प्राप्त होते हो ॥ ४७ ॥

अग्ने यत्तं द्विवि वधीः पृथिव्यां यदोपर्वीषु-
स्त्वापंजत्र । येनान्तरिक्षमुर्व्यतितन्धं त्वेषः स-

भानुरर्णवो नृचक्षाः ॥ ४८ ॥

इसका विश्वामित्र ऋ०, भुरिगार्षी पं० छं० अग्नि दे० है ।
 मंत्रार्थ—(आयजत्रं, अग्ने, ते, यत्, दिवि, वर्धः, यत्, पृथिव्यां,
 ओषधीषु, अप्सु, येन, उरु, अन्तरिक्षं, आततान्य, सः, स्वपः,
 अर्णवः, नृचक्षाः, भानुः) भर्षादासे यजनयोग्य हे अग्निदेव ।
 तुम्हारी जो घुलोक में सूर्यरूप ज्योतिहै जो भूमिमें अग्निरूप
 ओषधियों में भास्कर रूप, जलोमें प्रमारूप ज्योति है, जिसने
 विद्युत् रूपसे बड़े अन्तरिक्ष लोकको व्याप्त कियाहै वह विश्व
 प्रकाशक सब ओर गमनशील मनुष्यों के शुभाशुभ कर्मका द्रष्टा,
 सूर्यरूप दीप्ति है ऐसेतुम महा नारायणस्वरूपहो ॥ ४८ ॥

अग्नें द्वियो अर्णमच्छा जिगास्यच्छा देवाथ
 ऊचिषे विष्ण्या घोषा रोचने परस्तात्सूर्यस्य
 याश्चावस्तादुपतिष्ठन्त आपः ॥ ४९ ॥

इसका विश्वामित्र ऋषि है, भुरिगार्षी पं० छं० अग्नि देवता
 है । मंत्रार्थ—(अग्ने, दिवः, अर्णम्, अच्छ, जिगासि) हे अग्नि
 देवता ! घुलोक सम्बन्धी जलको अभिमुखसे प्राप्त करते हो (ये,
 विष्ण्याः, ऊचिषे, देवान्, अच्छ. आ रोचने, सूर्यस्य, परस्तात्,
 याः, आपः, च, अवस्तात्, याः, उपतिष्ठन्ते) जो बुद्धि इन्द्रियों के
 मेरेक प्राण कहाते हैं उन प्राणरूप देवताओं के प्रति, सन्मुख
 गमन करतेहो, दीप्तिरूप मण्डल में वर्तमान सूर्यकेऊपर जो जल
 हैं और नीचेजो जलहैं उन सबके मध्यमें तुम विराजमान हो
 आशय यह कि तुमही इन रूपों को धारण करते हो ॥ ४९ ॥

पुशीप्यासो अग्नयः प्रावृणोभिः सजोपसः ।

जुपन्तां यज्ञसद्गुहोन्मीषा इषां सहीः ॥ ५० ॥

इसका विश्वामित्र ऋ०, आर्षी पं० छं० है, अग्नि देवता है ।
 मंत्रार्थ—पुशीप्यासः, प्रावृणोभिः, सजोपसः, अद्गुहः, अग्नयः,
 यज्ञम्, अन्मीषाः, महीः, इषाः, जुपन्ताम्) पशुओं के हितकारी
 मनों से प्रीतिपुक्त हिंसा न करनेवाले अग्नि इस इष्टकारुण्य यज्ञ

को धुवा सृष्ट्या निर्वर्तक बहुत अन्नयुक्त को सेवन करो ॥ ५० ॥

इडांमग्ने पुरुदथसंथं सनिहोः शश्वत्तमथ हव-
मानाय साध । स्यान्नः सूनुस्तनयो विजावाग्ने
सा ते सुमतिर्भूत्वस्मे ॥ ५१ ॥

इसका विश्वामित्र ऋ०, भुरिगार्पी पं० छं०, अग्नि दे० है ।
मंत्रार्थ—(अग्ने, पुरुदंसम्, इडाम्, शश्वत्तमम्, गोः, सनिम्,
हवमानाय, साध, नः, विजावा, तनयः, सूनुः, स्यात्, अग्ने,
सा, ते, सुमतिः, अस्मे, भूतु) हे अग्ने ! बहुत कर्मों के साधनरूप
अन्न को, निरन्तर विद्यमान हेतु सम्बन्धी दान को अर्थात् दूध
दही घृतादि को हवन करनेवाले यजमान के निमित्त सम्पादन
करो अर्थात् दो, हमारे मजावान् औरस पुत्र हो, हे अग्ने ! वह
तुम्हारी अन्न गौ पुत्रदान के विषय की सुन्दर बुद्धि हममें हो ॥ ५१ ॥

अयन्ते योनिं ऋत्विजो यतो जातो अरोचथाः ।

तज्ज्ञानन्मग्न आरोहाथा नो वर्द्धया रयिम् ॥ ५२ ॥

इस मंत्र की व्याख्या अ० ३ क० १४ में होगई ॥ ५२ ॥

चिदंसि तथा देवतयाङ्गिरस्वद् धुवा सीद ।

परिचिदंसि तथा देवतयाङ्गिरस्वद् धुवा सीद ॥ ५३ ॥

इसका विश्वामित्र ऋ० है स्वराडनुष्टुप् छं० है, अग्नि देवता है ।
मंत्रार्थ—हे इष्टके ! तुम (चित्, असि, तथा, देवतया, अङ्गिरस्वत्
धवा सीद) स्थापित की हुई हो उस मसिद्ध वाक् रूप देवता द्वारा
स्थापित होकर अंगिरा की समान दृढ़ता पूर्वक इस स्थानमें स्थित-
होओ हे इष्टके ! (परिचित्, असि, तथा, देवतया अङ्गिरस्वत्, धुवा
सीद) सब ओर से भोगों को चपन करनेवाली हो उस मसिद्ध
वाक् रूप देवता द्वारा सम्पादित हुई, अङ्गिराकी समान दीर्घ
काल तक निश्चल इस स्थान में स्थित होओ ॥ ५३ ॥

लोकस्पृणच्छिद्रस्पृणाथो सीद् धुवा त्वम् । इ-

न्द्राग्नी त्वा बृहस्पतिरस्मिन्योनावसीपदन् ॥ ५४ ॥

इसका विश्वामित्र ऋ०, विराडनु० छं०, अग्नि दे० है । हे

इष्टके ! (त्वम्, लोकम्, पूण, छिद्रम्, पूण, अयो, ध्रुवा, सीद)
 तुम गार्हपत्य चयन स्थानमें पूर्व इष्टकाओंसे अनाक्रान्त होकर
 स्थानको पूर्णकरो और दृढ़ होकर स्थितहोओ (इन्द्राग्नी, वृह-
 स्पतिः, अस्मिन्, योनौ, त्वा, -आसीपदन्) इन्द्र देवता अग्नि
 देवता और वृहस्पति देवताने इस स्थानमें तुमको स्थापनकिया है ५४
 ता. अंस्य स्रुदवोदसः सोमं ॥ श्रीणन्ति प्रश्नयः ।

... जन्मन्देवानां विशांश्चिष्वारोचने दिवः ॥ ५५ ॥

इसका मियमेधा ऋ०, विराटनु० छं०, आप दे० है । मंत्रार्थ
 (दिवः, प्रश्नयः, स्रुदवोदसः, ताः, देवानां, जन्मन्, त्रिषु, आरो-
 चने, अंस्य, विशाः, सोमं, आश्रीणन्ति) दुलोक सम्बन्धी अनेक
 प्रकार के जल और अन्नसे संयुक्त वे प्रसिद्ध जल देवताओं के
 जन्मवाले सम्बत्सरमें तीन संवनों के मध्यमें इस यज्ञ सम्बन्धी
 सोमको सम्पूक प्रकार से परिपक्व करते हैं ॥ ५५ ॥

। इन्दुं विश्वा अवीदधन्त्समुद्रव्यचसद्गिरां ।

। रथीतमथ रथीनां चाजानाथ सत्पतिम्पतिम् ॥ ५६ ॥

इसका सुतजेत् मधुच्छन्द ऋ०, नि० नु० छं० इन्द्र देवता है ।
 मंत्रार्थ—(विश्वाः, गिरा, समुद्रव्यचसम्, रथीनाम्, रथीतमम्,
 चाजिनाम्, पति, सत्पति, इन्द्रम्, अवीदधन्) सम्पूर्ण ऋक् यजुः-
 सामरूप स्तुति, समुद्रवत् व्यापक सब रथियों के मध्य में अत्यंत
 रथी अर्थात् के पति निजधर्म में रहनेवालों केपालक इन्द्र को
 वर्धित करती हैं ॥ ५६ ॥

समित्थ संकल्पेथाथ सम्प्रियौ रोचिष्णू सुम-
 नस्यमानौ । इपमूर्जमभिसंधसानौ ॥ ५७ ॥

इसका मधुच्छन्द ऋ०, भुरिगुण्णिक छं० अग्नि देवता है ।
 मंत्रार्थ—(सम्प्रियौ, रोचिष्णू, सुमनस्यमानौ, इपं, ऊर्जम्,
 अभिसंधसानौ, समित्थम्, संकल्पेथाम्) समान प्रीतिवाले कान्ति
 मान् परस्पर श्रेष्ठ चित्तवाले होउवा । और चित्तके अग्निदेवताओं
 अन्य घृतादि रसको भोग करते हुए अर्थात् हमारे दियेहुए अन्न

और रस को स्वीकार करते हुए एक मन होकर मिलो एक संकल्प होओ ॥ ५७ ॥

सं वाम्मनांशिसि संव्रता समुचितान्पाकरम् ।
अग्ने पुरीष्याधिपा भव त्वन्न इपमूर्ज्जं यज-
मानाय धेहि ॥ ५८ ॥

इसका मधुच्छन्दा ऋ० भुरिगुपरिष्ठा वृहती छन्द अग्नि देवता है । मन्त्रार्थ-हे दोनों अग्नियों ! (वाम्, मनांसि, समाकरम्, व्रता, सम्, चित्तानि, सम्, उ, पुरीष्य, अग्ने, त्वं, नः अधिपा, भव, इयम्, ऊर्ज्जम्, यजमानाय, धेहि) तुम्हारे मन सब प्रकार संगत करता हूँ, व्रत संगत करता हूँ, मनोगत संस्कारों को संगत करता हूँ, और हे पशुसम्बन्धी गृहस्थकार्यसाधक अग्निदेव ! तुम हमारे अधिपति हो अन्न बल यज्ञमानके निमित्त पदानकरो ५८

अग्ने त्वं पुरीष्यो रयिमान्पुष्टिमाश्र आसि ।

शिवाः कृत्वा दिशः सर्वाः स्वं योनिमिहांसदः ॥ ५९ ॥

इसका मधुच्छन्दा ऋ० भुरिगुष्टिक् छं०, अग्नि देवता है । मन्त्रार्थ-(अग्ने, त्वं, पुरीष्यः, रयिमान्, पुष्टिमान्, आसि, सर्वाः दिशः, शिवाः, कृत्वा, इह, स्वं, योनिम्, आसदः) हे अग्नि देवता तुम पशुसम्बन्धी पशुहितकारक धनवान् पुष्टियुक्त हो, तुम्हारे मसाद से हम पुष्टि और ऐश्वर्यलाभ करें, सब दिशाओं कल्पण कारक करके यहाँ अपने स्थानमें स्थितहो ॥ ५९ ॥

भयंतन्नः समनसौ सचेतसा वरेपसौ । मा
यज्ञश्रिष्टिमा यज्ञपतिज्ञातवेदसौ शिवौ
भधत्तमद्य नः ॥ ६० ॥

इसका मधुच्छन्दा ऋ० आर्षी पं० छं० अग्नि देवता है । इस मंत्रकी व्याख्या ५ अध्यायके तीसरे मंत्रमें होचुकी है ॥ ६० ॥

मातेयं पुत्रस्पृधिषी पुरीष्यमग्निश्रि स्वै योना-
चभारुखा । तां विश्वैर्वैर्ऋतुभिः संविदानः
प्रजापतिर्विश्वकर्मा विमुञ्चतु ॥ ६१ ॥

इसका मधुच्छन्दा ऋ० आर्या त्रि० छं० उखा देवता है मंत्रार्थ (पृथिवी, उखा, पुरीष्यम्, अग्निं, स्वे, योनी, अमाः, माता, पुत्रं, इव, विश्वैः देवैः, ऋतुभिः, संविदानः, विश्वकर्मा, प्रजापतिः ताम्, विमुञ्चतु) भूमिरूप मृत्तिकानिर्मित उखा पशुओंके हितकारी अग्निको अपने गर्भस्नानमें धारण करती हुई, मैया पुत्रको जैसे धारण करती है, सम्पूर्ण देवताओं और ऋतुओं द्वारा एक मतको प्राप्त हुए, अहो ! उखाने महत् कर्म किया इसप्रकार संवाद करते हुए सृष्टि के निर्माता प्रजापति उस उखाको शिव्य पाश से विमुक्त करो ॥ ६१ ॥

असुन्वन्तमयं जमानमिच्छ स्तेनस्येत्यामन्विहि
तस्करस्य । अन्यमस्मदिच्छ सा तं हृत्पानमो
देवि निर्ऋते तुभ्यमस्तु ॥ ६२ ॥

इसका मधुच्छन्दा ऋ० नि० त्रि० निर्ऋति देवता है, मन्त्रार्थ हे निर्ऋते ! [अलहमी] (असुन्वन्तम्, अयं जमानम्, इच्छ, स्तेनस्य, तस्करस्य, इत्याम्, अन्विहि, अस्मत्, अन्यं, इच्छ, सा, ते, इत्या, देवि, तुभ्यम्, नमः, अस्तु) सोमयाग न करने वाले हवि आदि से किसी प्रकार वैदिक कर्म न करनेवाले पुरुषों की संगति की इच्छाकर चोरकी प्रकट चोरकी गतिको प्राप्त हो हमसे अन्य पुरुषकी इच्छाकर वही दुष्टशिक्षा तेरी गति है । हे देवी ! तेरे निमित्त नमस्कार दो ॥ ६२ ॥

नमः सुते निर्ऋते तिग्मतेजोपस्मयं विचृता
बन्धमेतम् । यमेतु त्वं यस्या संविदानोत्तमे
नाके अधिरोहयैनम् ॥ ६३ ॥

इसका मधुच्छन्दा ऋ०, भुरि० पं० छं० निर्ऋति देवता है । मन्त्रार्थ—(तिग्मतेजः, निर्ऋते, ते, सु, नमः, अयस्मयम्, एतम्, बन्धनम्, आविचृत्, यमेत, यस्या, संविदाना, एतम्, उत्तमे, नाके, अधिरोहय) हे तीक्ष्ण तेजवाले ! घोर क्रूररूप निर्ऋते, तुम्हारे निमित्त निरन्तर नमस्कार है, लोहपाशकी समाप्त दृष्ट,

इस जन्म मरणरूप अज्ञानको छेदन करो, और अग्नि पृथ्वीके साथ एक मतको प्राप्त होकर, इस यजमानको उत्कृष्ट स्वर्गलोक में स्थापन करो ॥ ६३ ॥

यस्यास्ते घोर आसञ्जुहोम्येषाम्यन्धानाम्ब
सर्जनाय । यान्त्वा जतो भूमिरिति प्रमन्दते
निर्ऋतिन्वाहपरिवेद विरचतः ॥ ६४ ॥

इसका मधुञ्जन्दा ऋ० आर्षो त्रि० छं० निर्ऋति देवता है ।
मन्त्रार्थ—(घोर, पर्षा, बन्धानाम्, अयसर्जनाय, यस्याः, ते, आसन्
जुहोमि, जनः, यां, त्वा, भूमिः, इति, प्रमन्दते, अहं, त्वा, वि-
श्वतः, निर्ऋतिम्, परिवेद) हे विषमशील क्रूररूपा, निर्ऋति देवी
इस यजमानों के स्वर्गप्राप्ति के प्रतिबन्धक पापों को नाशके अर्थ उस
तुम्हारे मुखमें आहुति की समान इष्टका को धारण करता हूं,
मनुष्यमात्र जिस तुम्हको भूमि है, इसप्रकार शास्त्राभिष्ट होने से
स्तुति करते हैं, मैं तो शास्त्रज्ञानसे तुम्हको सपप्रकार निर्ऋति देवी
ही जानता हूं ॥ ६४ ॥

यन्ते देवी निर्ऋतिरायुचन्ध पाशंप्रीयास्ववि-
चृत्यम् । तन्ते विष्णाम्पायुषो न मद्ध्यावधैत-
म्पितुमांश्चि प्रसृतः । नमो भूत्यै येदञ्चकारं ॥६५॥

इस कं० में २ मंत्र हैं । सबका मधुञ्जन्दा ऋ० छं० १ त्रिचु०
पं० २ एकप० वि० और देवता १ यजमान २ भूति है । मन्त्रार्थ
हे यजमान ! (निर्ऋतिः देवी, ते, प्रियासु, यम्, अविचृत्यम्, पाशं,
आवधन्ध, तं, ते, आयुषः, मध्यात्, न, विष्णामि) निर्ऋति देवी
ने तुम्हारी ग्रीवामें जो हृद् छेदनके अयोग्य पाशको बाँधा था उस
को तुम्हारी अग्निके मध्य इसी समय दूर करता हूं (अय प्रसृतः
एतम्, पितुम्, अद्धि) पाशाविमोचन के अनन्तर निर्ऋति की
अनुज्ञा को प्राप्त हो, इस रक्षा करनेवाले अन्नको हे यजमान !
भक्षण करो (या, इदं, चकार, भूत्यै, नमः) जिस देवीके प्रसाद
से यह समस्त क्रिया सम्पन्न हुई उस ऐश्वर्यरूप देवी के निमित्त

नमस्कार है ॥ ६५ ॥

निवेशनः सङ्गमनो वसुनां विश्वा रूपाभिचष्टे
शचीभिः । देव इव सविता सत्यधर्मेन्द्रो न
तस्यौ समरे पथीनाम् ॥ ६५ ॥

इसका विश्वावसु ऋ०, वि० त्रि० छं०, अग्निदेवता है ।
मंत्रार्थ—(निवेशनः, वसुनां, संगमनः, सत्यधर्माः, शचीभिः,
विश्वा, रूपा, अभिचष्टे, सवितादेवा, इव, पथीनां, समरे, तस्यौ,
इन्द्रो न) स्वयंभू यजमानका स्थापक धर्मोका प्रापक अक्षय्य होने
वाले फल से युक्त अग्निहोत्रादि लक्षण से युक्त अग्नि अपने
आने कर्मोंसे संयुक्त सम्पूर्ण आहवनीय अतिप्रणीता आग्नीध्र
धिण्यादिरूपों को प्रकाश करता है सविता देवताकी समान प्रका-
शक होकर शत्रुओं के साथ युद्धमें स्थित हुआ जिसप्रकार इन्द्र
युद्ध में स्थित होता है ॥ ६५ ॥

सीरां युञ्जन्ति कवयो युगा वितन्वते पृथक् ।

धीरां देवेषु सुम्नया ॥ ६७ ॥

इसका सोमपुत्र बुध ऋ०, गायत्री छं०, सीर देवता है । मंत्रार्थ
(धीराः, कवयो, देवेषु, सुम्नया, सीराः, युञ्जति, युगा, पृथक्
वितन्वते) बुद्धिमान् अग्नि विद्या में कुशल कृषिकर्म के मर्म को
जाननेवाले विद्वान् देवशोक में सुख प्राप्त करने को हलों का वैलों
से योग करते हैं, युगोंको भिन्न २ विस्तार करते हैं ॥ ६७ ॥

युक्त सीरा वि युगा तनुध्वं कृते योनीं वपते ह

वीजम् । गिरा च श्रुष्टिः सभरा असन्नो नेदीय

हृत्सृणुः पक्वमेपात् ॥ ६८ ॥

इस का सोमपुत्र बुध ऋषि, विराडार्षिः त्रि० छं०, सीर दे०
है । मंत्रार्थ—हे कर्पकण्ठो ! (सीराः, युक्त, युगा, वितनुध्वम्
कृते, हृ, योनीं, गिरा, च, वीजम्, वपते, श्रुष्टिः, सभरा, असत्,
पक्वम् इव सृणुः नः नेदीयः इपात्) हलोंको जोड़ो हलके
जुप शम्पा और यौकृ आदि से विस्तार करो कर्पणसे संस्कार

करने पर इस स्थान में “था औपधीः पूर्वा० १९ कं०” यह मंत्रपाठ करके और चमस द्वारा संस्कृत व्रीहि आदि बीजको घोओ अन्न समूह व्रीहि आदि फलादि सहित वर्त्तमान होकर पुष्ट हो, पकेहुए धान्यको अल्पकाल में ही दरांती से काटकर हमारे अति-समीप घासे प्राप्त करो ॥ ६८ ॥

शुनं सुफाला विकृपन्तु भूमिं शुनं कीनाशां
अभियन्तु वाहैः शुनां सीरा हविषा तोशमाना
सुपिप्पला ओपधी कर्त्तनास्मे ॥ ६९ ॥

इसका कुमार हारीत ऋ० त्रिष्टुप् छन्द सीता देवता है मंत्रार्थ- (सुफालाः, भूमिं, शुनम्, विकृपन्तु, कीनाशाः, वाहैः, शुनम्, अभियन्तु, शुनां सीरा, हविषा, तोपमानाः, अस्मे, औपधीः, सुपि-प्पलाः, कर्त्तन) हे सुन्दर फलवाले हलो ! तुम पृथ्वी को सुख पूर्वक जोओ, हलवाले मनुष्य वृषभादिके संग सुखपूर्वक गमन करे हे वायु आदित्य दोनों देवताओ। जलसे भूमिको सिंचते हुए हमारी औपधियों को सुन्दर फलवाली कर्त्तन करो ॥ ६९ ॥

घृतेन सीता मधुना समज्यतां विश्वैर्देवैरनुमता
मरुद्भिः । ऊर्जस्वती पयसा पिन्वमानास्मा-
न्त्सन्ति पयसाभ्याववृत्स्य ॥ ७० ॥

इसका कुमार हारीत ऋ० आर्षी नि० छं० सीता देवता है । मंत्रार्थ- (विश्वैः, देवैः, मरुद्भिः, अनुमता, सीता, मधुना घृतेन, समज्यताम्, सीते, पयसा, पिन्वानाः, पयसा, अस्मान्, अभ्या-ववृत्स्य) सम्पूर्ण देवतागण मरुत्गणों से आंगिकार कीहुई हल की फाल मधुर घृत अर्थात् अमृतमय जलसे सिंचित हो, ‘परोक्ष से कहकर गत्यक्ष कहते हैं’ । हे फाल ! ऊर्जस्वती अन्नवान् तुम पय दही घृतादि से दिशाओं को पूर्ण करतीहुई दुग्धादि से हम को सत्रमकार अनुकूल हो और क्षेत्रमें उत्पन्न होनेवाली सम्पूर्ण औपधी अमृत जलसे परिपुष्ट होकर सजेत हो इसकारण तुम अमृत जल संग्रह पूर्वक हमारी और अनुकूल हो ॥ ७० ॥

छात्रं पर्वीरवत्सुशेवं सोमपितृसहः । तदु-
द्वपति गामविम्रं कृष्यञ्च पीवरीन्प्रस्थावद्-
धवाहनम् ॥ ७१ ॥

इसका कुमार हारीत ऋ०, विराट् पं० छं० सीता देवता है ।
मंत्रार्थ—(तद्, पर्वीरवत्, सुशेवं, सोमपितृसहः, छात्रं, प्रकृष्य
अनि, पीवरीम्, गां, च, प्रस्थावत्, रथवाहनम्, उद्वपति) यह
पूर्वोक्त काल संपुक्त सुखकारक यजमानके निमित्त भूमिका खोदने
वाला हल अति वेगवान् छाग स्थूल पुष्ट अंगवाली गौ और गमन
में समर्थ रथवाहक अश्वदिको प्राप्त कराता है ॥ ७१ ॥

कामदुघे धुक्ष्व मित्राय वरुणाय च । इन्द्रा-
याश्विभ्यां पूष्णे प्रजाभ्य ओपधीभ्यः ॥ ७२ ॥

इसका कुमार हारीत ऋ०, विराटनु० छं० सीता देवता है ।
मंत्रार्थ—(कामदुघे, मित्राय, वरुणाय, इन्द्राय, अश्विभ्यां, पूष्णे,
प्रजाभ्यः, च, ओपधीभ्यः, कामम् धुक्ष्व) हे मनोरथ पूरक सीते!
मित्र वरुण इन्द्र दोनों अश्विनीकुमार पूषा प्रजाओं के भोगार्थ
और ओपधियों के निमित्त अपेक्षित भोगको सम्पादन करो ७२
विमुच्यध्वमघ्न्या देवयान्ता अगन्म तमस-
स्पारमस्य ज्योतिरापाम ॥ ७३ ॥

इसका कुमार हारीत ऋ० है, भुरिगा० गा० छं० वृषभ दे०
है । मंत्रार्थ—(देवयानाः, अघ्न्या विमुच्यध्वम्, अस्य, तमसः,
पारं, अगन्म, ज्योतिः, आपाम) हे देवताओं के निमित्त कर्म
करने वाले मारने के अयोग्य गोवलीवर्द आदि! जगत्की स्थिति
के हेतु कृषिको सम्पादन करो युगसे पृथक् हो तुम्हारी कृपासे
हम इस क्षुधापिपासा से उत्पन्न हुए दुःखके पारको प्राप्त हुए
परमात्मारूप को प्राप्त हुए ॥ ७३ ॥

सजूरन्तो अपवोभिः सजूरुपा अरुणीभिः । स-
जोषमावशिषना दधसोभिः सजुः सूर एतद्योनः ।
सजूर्वश्वानुर इड्या घृतेन स्वाहा ॥ ७४ ॥

इसका कुमार हारीत ऋ० ब्राह्मणनुष्टुप् छं० छिन्नोक्त दे० है ।
 मंत्रार्थ (अन्दः, अयरोभिः, सजूः, उषा, अरणीभिः, सजूः,
 अश्विनी दंसोभिः, सजोपसौ, सूरः, पतरोन, सजूः, वैश्वानरः,
 इडया, घृतेन, सजूः, स्वाहा) संवत्सर जलों का दाता अवयव
 मास अर्धमासके सहित प्रीतियुक्त, मातः कालके अधिष्ठात्री देवता
 उषा अरुण वर्ण वाली गौशोसे प्रीतियुक्त, अश्विनी कुमार चिकि-
 रसादि कर्मों से प्रीतियुक्त, धृष्य घोड़े से प्रीतियुक्त, वैश्वानर
 अग्नि पृथ्वीसे घृतसे प्रीतियुक्त हैं इन देवताओंके निमिष
 श्रेष्ठ होम हो ॥ ७४ ॥

या ओषधीः पूर्वा जाता देवैभ्यस्त्रियुगम्पुरा ।

मनैनु सुभ्रूणामहृत् शतन्धामानि सस च्च ॥७५॥

इसका भिषगृषि, अनुष्टुप् छं० ओषधि देवता है । मंत्रार्थ (पुरा
 याः पूर्वाः, ओषधीः, देवैभ्यः, त्रियुगम्, जाताः, सुभ्रूणाम्, शतं,
 च, सप्तधामानि, धामानि अहं, मनैनु) सृष्टिकी आदि में जो
 पहले ओषधी ऋतुओंके द्वारा वसन्त वर्षा और शरद ऋतु में
 उत्पन्न हुई हैं, जगत् की उत्पत्ति पालन में समर्प और पाकसे
 पीली हुई ओषधियोंके विशेषकर सौ सौ और मावान्यतः श्रीहि
 गोधूमादि सात नाम में जानताहूँ ॥ ७५ ॥

शतम्बो अम्ब धामानि सुहृत्सुत घो रुहः

आधा शतक्रत्वो यूयमिमं मे अगदं कृत ॥७६॥

इसका भिषगृषि है, अनुष्टुप् छं० ओषधय दे० है । मंत्रार्थ
 अम्ब आवः, धामानि, शत, उत, वः, रुहः, सुहृत्सं, शतक्रत्वो,
 यूयम्, मे, इमं, अगदं, कृत) हे माता की समान ओषधियों !
 सब प्रकार के तुम्हारे नाम सैरुदों हैं और तुम्हारे अंकुर असंख्यात
 हैं, तुम्हारे सत्वसे सब जगत् के कार्य होते हैं, इस कारण हे अमन्त-
 कर्मसाधक ओषधियों ! तुम मेरे इस यज्ञमानको क्षुत्पिपासादि
 षड्भिरोगों से रहित करो अर्थात् यज्ञमान किसी प्रकार के रोग
 से पीड़ित नहो ॥ ७६ ॥

ओषधीः प्रतिमोदध्वं पुष्पवतीः प्रसूचरीः । अश्वी
इव सजित्वरीर्वीरुधः पारयिष्णवः ॥ ७७ ॥

इसका भिपगृपि निघृ दनु० छं० ओषधय दे० है । मंत्रार्थ
(ओषधीः, पुष्पवतीः, प्रसूचरीः, अश्वीः, इव, सजित्वरीः, वीरुधः,
पारयिष्णवः प्रतिमोदध्वम्) हे ओषधीगण ! पुष्पोसे युक्त फल
उत्पन्न करने वाली, घोड़ों की समान वेगसे गमन वाली अनेक
प्रकारकी व्याधि निवारण करने वाली, फलपाकान्त के सिवाय
बहुत काल तक कर्मपरायण प्रसन्न होओ अश्वकी समाग वेगसे
शीघ्र पुष्पवान फलवान् होओ ॥ ७७ ॥

ओषधीरिति मातरस्तथा देवीरुपब्रुवे । सने-
यमश्वज्ञां वासं आत्मानन्तव पूरुप ॥ ७८ ॥

इसका भिपग् ऋ० निच्यू० छं०, ओषधय दे० है । मंत्रार्थ
(मातरः, देवीः, ओषधीः, वः, इति, तत्, उपब्रुवे, पूरुप, तव,
अश्वम्, गाम्, वासः, आत्मानम्, समेयम्) हे जगत्की निर्माण
करनेवाली, हे दिव्यगुणोंसे युक्त हे सम्पूर्ण ओषधी तुमसे इस
आगे कहीं विधिके द्वारा वह जो हम प्रार्थना करते हैं हे यज्ञपुरुष !
आपके प्रसाद से घोड़े गौ वस्त्र रोगरहित शरीर को भोगूँ यह
पुरुषसे जो मेरी प्रार्थना है उसे ओषधी मानै ॥ ७८ ॥

अश्वत्ये वो निपदनं पूर्णे वा वसतिष्कृता । गो-
भाज्ञ इत् किलासथ यत्सनवथ पूरुपम् ॥ ७९ ॥

इसका भिपग् ऋ० अनुष्टुप् छं०, ओषधय दे० है । मंत्रार्थ
हे ओषधियो ! (वः, अश्वत्य, निपदनम्, वः, पूर्णे, वसतिः, कृता,
किला, गोभाज्ञः, इत् असथ, यत्, पुरुषं, सनवथ) तुम्हारा पीप-
लकाष्टीर्नामत्त उपभूत् और सुचपात्रमें स्थान है, तुमने पलाश
पत्रसे बनी हुई जुहू में स्थान किया है, पात्रमें हवि स्थापन करते
हैं, होमके निमित्त हवि जुहू में रखते हैं, हे हविभूत ओषधियो !
निश्चय करके तुम आदित्य की भजनेवाली ही हो, कारण कि
अग्निमें दी हुई आहुति आदित्यको प्राप्त होती है । इस कारण तुम

यजमानको अन्नादि से पुष्टकरो ॥ ७९ ॥

यत्रौपधीः समग्मत राजानः समिताविवा विप्रः

स उच्यते शिष्यग्रंथोहामीवचातनः ॥ ८० ॥

इसका भिपग् ऋ० है, अनुष्टुप् छं० ओपधि दे० है । मंत्रार्थ (ओपधीः, यत्र, समग्मत, इव, राजानः, समिता, सः, रत्तोहा, अमी वचातनः, विप्रः, भिपग्, उच्यते) हेः ओपधियो ! तुम जिस ओपधी करने वाले वैद्यके पास जाती हो, जैसे राजा संग्राम में शत्रुजयको, जातेहैं, वह तुम्हारे आश्रितवैद्य पुरोडाशववायादि से राक्षसरूप रोगोंका नाशक होताहै । ओपधी देकर रोगका नाश करनेवाला ब्राह्मण वैद्य कहाताहै ॥ ८० ॥

अश्वत्थीनां सोमावतीमूर्जयन्ती उदोजसम् ।

आवित्सि सर्वा ओपधीरस्मा अरिष्टतातये ॥ ८१ ॥

इसका भिपग् ऋ०, अनुष्टुप् छं०, वैद्य देवता है । मंत्रार्थ—(अस्मै, अरिष्टतातये, अश्वत्थीम्, सोमावतीम्, ऊर्जयन्ती उदोजसम्, सर्वाः ओपधीः, आ, आवित्सि) इस यजमानको अरिष्ट नाश के निमित्त अश्वत्थी पशुगण के उपयोगी सोमयाग को, उपयोगी बल प्राण की सम्पादन करनेवाली तेजःसम्पादक सम्पूर्ण ओपाधियों का सब प्रकार से जानता हूँ ॥ ८१ ॥

उच्छुप्सा ओपधीनां गावो गोष्ठादिवेरते ।

धनं सनिष्यन्तीनामात्मानं तर्ष पूरुष ॥ ८२ ॥

इसका भिपग् ऋ०, विराडनु० छं०, ओपधय देवता है । मंत्रार्थ—(पूरुष, गव, आत्मानं, धनम्, सनिष्यन्तीनाम्, ओपधीनाम् शुष्माः, उदीरते, इव, गावः गोष्ठात्) हे यज्ञपुरुष ! तुम्हारे शरीर के प्राण धनरूप हाथ देने की इच्छा करनेवाली ओपाधियों की सामर्थ्य प्रकट होती है, जैसे गौ गोठ से निर्गत होती हैं ॥ ८२ ॥

इष्कृतिर्नामिं चो माताधो यूयथ स्थ निष्कृतीः

सौराः पतञ्जिणी स्थन्त यद्दामयन्ति निष्कृथ ॥ ८३ ॥

इसका भिपग् ऋ०, निचृ० छं०, ओपधय दे० है । मंत्रार्थ—

हे औषधियों ! (निष्कृतिः, नाम, वः, माता, अयो, युयम्, निष्कृ-
तीःस्य, सीराः, पतंत्रिणीः, स्वप्न, आमयति, निष्कृप) निष्कृति
नामवाली तुम्हारी माता है और तुम भी व्याधि की दूर करनेवाली
हो और धन्न के सहित वर्तमान गमनयुक्त प्रसरण शील हो,
इसकारण मनुष्यों में स्थित रोगका विनाश करो ॥ ८३ ॥

अतिविद्धाः परिष्ठा स्तेन ईव प्रजमंक्रमुः ।

औषधीः प्राञ्चुष्यवुर्विकृद्धं तन्त्रो रयः ॥८४ ॥

इसका भिषग् ऋ०, विराडनु० छं०, औषधयदेवता है । मंत्रार्थ
(परिष्ठाः, विश्वा, औषधीः, अत्यक्रमुः, इव, स्तेनः प्रजम्, तर्वाः,
यत्, किञ्च, रयः, प्राञ्चुष्यवुः) सब ओर से रोग को दबाकर
बैठनेवाली रोगनाशक सम्पूर्ण औषधियां जब भासित होकर बेह
को व्याप्त करती हैं, जैसे दस्यु गोष्टको व्याप्त करता है, उससमय
शरीर में जो कुछ भी शिरकी व्यथा गुल्म अतिसारादिरूप पाप
का फल है उस सबको नाश करती हैं ॥ ८४ ॥

यदिमा वाजयन्नहमापंधीर्हस्त आदधे । आत्मा

यक्ष्मस्य नश्यति पुरा जीवगृभो यथा ॥ ८५ ॥

इसका भिषगृपि, अनुष्टु० छं०, औषधि दे० है । मंत्रार्थ—
(यत् अहम् इमाः औषधीः, वाजयन्, हस्ते, आदधे, यक्ष्मस्य,
आत्मा, पुरा नश्यति यथा, जीवगृभः) जिस समय इन औष-
धियोंका पूजन करता हुआ हाथ में धारण करता हूं, उससमय
यक्ष्म रोग का स्वरूप भक्षण से पहले ही नाश हो पाता है
जैसे वध के निमित्त लेजाया हुआ प्राणी वध से पहले ही अपने
को हत मानता है ॥ ८५ ॥

पस्यौषधीः प्रसर्पथाद्गमं पशुपुरुः । ततो यक्ष्मं

विषोषध्व उग्रो मध्यमशीरिव ॥ ८६ ॥

इसका भिषग् ऋ०, निचूद० छं० औषधि दे० है । मंत्रार्थ—
(औषधीः, यस्य, अङ्गं, अङ्गं, पुरुःपुरुः, प्रसर्पथ, यक्ष्मं, विषोषध्वे,
इष, मध्यमशीः, उग्रः,) हे औषधियों तुम जिसके अंग

अंग में ग्रन्थी ग्रन्थी में फैलती हो और यक्ष्मा रोग को बाधा देती हो जिस प्रकार देह के मध्यमें मर्म भागको पीड़ा देनेवाला उग्र रुद्र युगान्तमें विशूल के मध्यभाग से जगत्को पीड़ा देता है ८६

साकं यक्ष्म प्रपत चापेण किकिदीविना । साकं
घातस्य ध्राज्या साकं नश्य निहाकया ॥ ८७ ॥

इसका भिषगु ऋ०, वि० नु० छं०, यक्ष्मा दे० है । मंत्रार्थ—
(यक्ष्म, किकिदीविना, चापेण, साकं, प्रपत, घातस्य, ध्राज्या, साकं, निहाकया, साकं, नश्य) हे व्याधियों तुम कफसे रुके, कंठसे उठे शब्दके द्वारा क्रीडा करने वाले श्लेष्म रोग और पित्त-रोगके साथ गमन करो घात रोगके साथ नष्टहोओ सर्वांग वेदना से जो रोगीका हाहाकार है उस दुःखके सहित नष्टहोओ । ८७

अन्या चो अन्यामवत्वन्यान्यस्या उपाधत ।

ताः सर्वाः संविदाना इदं मे प्राच्यता वचं ॥ ८८ ॥

इसका भिषगु ऋ० विराडनुष्टुप छं० श्लोपधय दे० है मंत्रार्थ—
हे ओषधियो (वः, अन्या, अन्याम्, अवत्, अन्या अन्यस्याः, उपाधत, ताः, सर्वाः, संविदानाः, मे, इदं, वचः, प्राच्यता) तुम्हारे मध्यमें कोई एक ओषधी दूसरी की रक्षाकरै रक्षित हुई कोई दूसरी की रक्षा करने को समीपआवै अर्थात् योगज पदार्थों से तुम्हारी शक्ति अधिकहो, तुम सब परस्पर एकमति होकर मेरे इस मंत्रार्थना रूप वचन की रक्षाकरो ॥ ८८ ॥

याः फलिनीर्षा अफला अपुष्पा याश्च पुष्पिणीः ।

वृहस्पतिप्रसूतास्तानो मुञ्चत्वथैहसः ॥ ८९ ॥

इसका भिषगु ऋ०, विराडनु० छं० श्लोपधि दे० है । मंत्रार्थ—
(याः, फलिनीः, याः अफलाः, अपुष्पाः, च, याः, पुष्पिणीः, ताः, वृहस्पतिप्रसूताः, तानो, मुञ्चन्तु) जो ओषधी फल वाली हैं जो ओषधी फल रहित हैं जो फूल रहित हैं और जो ओषधी फूल वाली हैं वे सब ओषधी मजापालक परमात्माकी मेरणा से हमको पापसे छुड़ावें ॥ ८९ ॥

मुञ्चन्तु मा शपथपादधो बरुण्याद्भुत । अधो
यमस्य पद्भ्योशात्सर्वस्माद् देवकिल्बिपात् ॥२०॥

इसका बन्धु ऋ०, भुरिगुणिक् छं० औपधी देवता है । मंत्रार्थ
औपधिये (शपथपात्, किल्बिपात्, अयो, बरुण्यात्, उतः, यमस्य,
पद्भ्योशात्, अयो, सर्वस्मात्, एव, मा, मुञ्चन्तु;) शपथके कारण
होने वाले पापसे जल क्रीडादिजन्य जलरोगसे, यम सम्बन्धी बन्ध
के कारणरूप पापसे सब प्रकार के पापसे देवापराध के कारण
होने वाले पापसे मुक्तकी छुटाओ ॥२०॥

अवपतन्तीरवदान्द्रिय औपधयस्परि । धं जीव-
अश्रवामहै न सरिष्याति पूरुषः ॥ २१ ॥

इसका बन्धु ऋ०, अनुमु० छं०, औपधि दे० है । मंत्रार्थ
(दिवः, परि, अवपतन्तीः, औपधयः, अवदन्, यम्, जीवप्,
अश्रवामहै, सः पूरुषः न रिष्यति) दुलोक से भूमिपर मातृ
होती हुई औपधियों ने कहा, जिस माणी को हम व्याप्त करती हैं
वह पुरुष नहीं नष्ट होता ॥ २१ ॥

या औपधीः सोमराज्ञीर्विहीः शतविचक्षणाः ।

तासांसि त्वक्षुत्तमारं कामाय शथ हृदे ॥२२॥

इसका बन्धु ऋ०, विराटार्थ० छं०, औपध दे० है । मंत्रार्थ
(याः, सोमराज्ञीः, बह्वीः, शतविचक्षणाः, औपधीः, तासाम्,
त्वं, उत्तमा, असि, कामाय, अरं, हृदे शम्) जो सोमपत्नी हैं,
अनन्त असंख्यात शुभगुणों से युक्त औपधी हैं, उन के मन्त्र में
हे औपधी ! तुम उत्तम हो, इच्छित के निमित्त समर्थ तुम हृदय
के निमित्त सुखकारिणी हजिये ॥ २२ ॥

या औपधीः सोमराज्ञीर्विष्टिताः पृथिवीमनु ।

बृहस्पतिप्रसूता अस्मै सन्दत्त वीर्यम् ॥ २३ ॥

इसका बन्धु ऋ० विराटा० छं०, औपध दे० है ॥ मंत्रार्थ
(याः, सोमराज्ञीः, औपधयः, पृथिवीम्, अनु, विष्टिताः, बृहस्पति-
प्रसूताः, अस्मै, वीर्यम्, सन्दत्त) जो सोमपत्नी औपधिये पृथिवी

पर नाना प्रकार से स्थित हैं वृहस्पति द्वारा प्रेरणाकी हुई वे औषधी इस हमारी लाई हुई औषधी के निमित्त पराक्रमको दें अर्थात् वीर्यसम्पन्न करें ॥ ९३ ॥

याश्चेदमुपशृण्वन्ति याश्च दूरं परागताः । सर्वाः
संगत्य वीरुधोऽस्यै सन्दत्त वीर्यम् ॥ ९४ ॥

इसका बन्धु ऋ० विराडनु० छं० ओषधि देवता है । मंत्रार्थ—
(या, उप, च, याः, दूरं, परागताः, च, इदं, शृण्वन्ति, वीरुधः,
सर्वाः, संगत्य, अस्यै, वीर्यम्, सन्दत्त) जो औषधी समीप स्थित
हैं, और जो औषधी हमसे दूर स्थित हैं और इस हमारे वचनको
सुनती हैं, वे तरुजात सम्पूर्ण ओषधी मिलकर हमारी ग्रहण की
हुई इस औषधी में बलको धारण करें ॥ ९४ ॥

मा वां रिपत्खनिता यस्मै चाहं खनामि चः ।

द्विपात्तुंप्पाटस्माकथं सर्वमस्त्वनातुरम् ॥ ९५ ॥

इसका बन्धु ऋ० विराडनु० छं०, ओषधि देवता है मंत्रार्थ—
हे औषधियो! रोगकी चिकित्सा के निमित्त तुम्हारी मूलकी आवृ-
श्यकता है इस निमित्त (यः, खनिता, मा, रिपत्, यस्मै, वां,
अहं, खनामि, च, अस्माकम्, द्विपात्, चतुष्पात्, सर्वं, अनातुरम्)
जो कोई तुमको खनन करता है, वह खनन करने के अपराध से
हानिको न प्राप्त हो, जिस रोगी की चिकित्सा के निमित्त तुमको
मैं खनन करता हूँ वह भी हानि को प्राप्त न हो, हमारे सम्बन्धी
श्री पुत्रादि द्विपाये और चौपाये सबही रोगरहित हों ॥ ९५ ॥

ओषधयः समवदन्त सोमेन सह राजां । यस्मै

कृणोति ब्राह्मणस्तथं राजन् पारयामसि ॥ ९६ ॥

इसका बन्धु ऋ० निष्पृ० छं०, ओषधी देवता है । मंत्रार्थ—
(राज्ञा, सोमेन, सह, ओषधयः, समवदन्त, ब्राह्मणः, यस्मै,
कृणोति, राजन्, तम्, पारयामसि) अपने स्वामी सोमके सहित
औषधिये कहती हुई, ब्राह्मण जिस रोगी के निमित्त हमारे सुख
फल पत्रसे चिकित्सा करता है हे स्वामिन सोम! उस

मनुष्यको हम रोगरहित करती हैं ॥ ९६ ॥

नाशयित्री बलास्यशीस उपचितामसि अथो
शतस्य यक्ष्माणां पाकारोरसि नाशनी ॥ ९७ ॥

इसका बन्धु ऋ०, अनुष्टुप् छं०, ओपधी देवता है । मंत्रार्थ-
हे ओपधी ! (बलास्य, अशीसः, उपचिताम्, नाशयित्री, असि) क्षय क्षरी
मेदरोग और अनेकों रक्तयु "सूजन" रलीपद आदि रोगों की
नाश करनेवाली हो, और क्षतादिसकड़ों रोगों की तथा मुखपा-
कादि रोगों की नाश करनेवाली हो ॥ ९७ ॥

त्वाङ्गन्धर्था अखनस्त्यामिन्द्रस्त्यां बृहस्पतिः ।

त्वामोपधे सोमो राजा विद्वान् यक्ष्मादमुच्यता ॥ ९८ ॥

इसका बन्धु ऋ० निच्युदनुष्टुप् छं० ओपधय देवता है मंत्रार्थ-
(ओपधे, गन्धर्वाः, त्वाम्, अखनन्, इन्द्रः, त्वां, बृहस्पतिः, त्वां
सोमः, राजा, विद्वान्, त्वां, यक्ष्मात्, अमुच्यत) हे ओपधि !
गन्धर्वों ने तुमको खोदा इन्द्रे ने तुमको खोदा बृहस्पति ने तुमको
खोदा सोम राजा ने तुम्हारी सामर्थ्य जानकर तुमको सेवनकर
यक्ष्मारोगसे निष्कृति लाभ की तुम्हारे गुणज्ञाता तुमको पाकर
अनेकों रोगों से मुक्त हुए ॥ ९८ ॥

सहस्र मे अरातीः सहस्र पृतनायतः । सहस्र

सर्वे पाप्मानुः सह मानास्योपधे ॥ ९९ ॥

इसका बन्धु ऋपि है, विराडनु० छं०, ओपधि दे० है । मंत्रार्थ
(ओपधे, सहमाना, असि, मे, अरातीः, सहस्र, पृतनायतः, सहस्र,
सर्वे, पाप्मानम्, सहस्रं) हे ओपधि ! तुम शत्रुओं की तिस्कार
करने वाली हो मेरे अदानशील शत्रुकी सेनाको तिस्कार करो,
संग्राम चाहने वाले शत्रुओंको जीतो सब अशुभको तिस्कार करो ९९
दीर्घायुस्त ओपधे खमिता यस्मै च त्वा खना-
म्यहम् । अथो त्वं दीर्घायुर्भूत्वा शतवल्गु वि-
रोहतात् ॥ १०० ॥

इसका वन्द्य ऋ०, विराट् वृह० छं०, ओपधी दे० है । मंत्रार्थ (ओपधे, तौ, खनिता, दीर्घायुः, यस्मै, अहं, त्वाम्, खनामि, च, अथो, त्वं, दीर्घायुः, भूत्वा, शतवल्शा, विरोहतात्) हे ओपधी ! तुम्हारा करने वाला दीर्घायु हो, जिस रोगी के निमित्त मैं तुमको खनन खनन करूँ वह भी दीर्घायु हो और तुम भी दीर्घायु होकर सैकड़ों अंकुरवाली होकर वृद्धिको प्राप्त होओ ॥ १०० ॥

स्वमुत्तमास्योपधं तथ वृक्षा उपस्तयः । उपस्ति-

रस्तु सोस्माकं यो अस्मां अभिदासति ॥ १०१ ॥

सवका वन्द्य ऋ०, निचू० छं०, ओपधि देवता है । मंत्रार्थ-- (ओपधे, त्वं, उत्तमा; असि, वृक्षाः, तव, उपस्तयः, यः, अस्मान् अभिदासति, सः, अस्माकं, उपस्तिः, अस्तु) हे ओपधी ! तुम श्रेष्ठ हो, तुम्हारे निकटके शूल, ताल तमालादि वृक्ष तुम्हारे समीप में स्थित होकर उपद्रव निवारण कर द्यायादि द्वारा उपकार करते हैं, जो हमसे चिरकालतक द्वेष कर रहा है वह हमारे अनुगत हो १०१

मा मां हिंसीज्जनिता यः पृथिव्या यो वा

दिषं सत्यधर्मा व्यानट् । यश्चापरचन्द्राः प्रथमो

ज्जानत कस्मै देवाय इविषा विधेम ॥ १०२ ॥

इसका द्विरप्यगर्भ ऋ० नि० त्रि० छं० प्रजापति देवता है । मंत्रार्थ-- (यः, पृथिव्याः, जनिता; यः, सत्यधर्मा, दिषं व्यानट्, च, यः, प्रथमः, आपश्चन्द्राः, ज्जानत, प्रथमः, मा, मा, हिंसीत्, कस्मै, देवाय, इविषा, विधेम) जो प्रजापति पृथिवी का उत्पन्न करनेवाला है, जो सत्य को धारण करनेवाला सुलोकको सृजन कर चुका है और जो आदिपुरुष जगत् के आच्छादक और वृत्तिसाधक जलको उत्पन्न करता हुआ जो पहिला शरीर है वह प्रजापति तुम्हें मत मारो, उस प्रजापतिके निमित्त हमें देते हैं वह हमारी रक्षा करे ॥ १०२ ॥

अभ्यावर्त्तस्व पृथिवि प्रजेनं पथसां सह व्रानो

अग्निरिपतो अरोहत ॥ १०३ ॥

इसका हिरण्यगर्भ ऋ० नि० दु० छं० अग्नि देवता है । मंत्रार्थ (पृथिवि, यज्ञेन, पयसा, सह, अभ्यावर्तस्व, इपितः, अग्निः, ते, वंपाम्, अरोहत) हे पृथिवि ! यज्ञ और उसके फल, वृष्टि के साथ सन्मुख आशु, परितृप्त हो मजापाति के मेरित अग्नि तुम्हारे पृष्ठदेश में आरोहण करे ॥ १०३ ॥

अग्ने यत्ते शुक्रं चंद्रचन्द्रं यत्पूतं । यच्च यज्ञियम्
तद् देवेभ्यो भरामसि ॥ १०४ ॥

इसका हिरण्यगर्भ ऋ०, भु० गा० छं० अग्नि दे० । मंत्रार्थ (अग्ने, ते, यत्, शुक्रं यत्, चन्द्रम्, यत्, पूतं, च, यत्, यज्ञियम्, तत्, देवेभ्यः, भरामसि) अग्निदेव तुम्हारा जो अंग शुक्लवर्ण दीप्तिमान् है, जो अंगज्योति चंद्रमाकी समान आल्हाद करने वाली है, जो ज्योति पवित्र है गृहकार्य के योग्य है और जो, यज्ञकार्य के योग्य है उस सब प्रकार श्लाघनीयज्योतिको देवकार्य की सिद्धि के निमित्त सम्पादन करते हैं ॥ १०४ ॥

इपमूर्जमहमित आदमृतस्य योनिं महिपस्य
धाराम् । आमा गोपु विशत्वातनूपु जहामि
मेदिमनिं राममीधाम् ॥ १०५ ॥

इस कं० २ मं० हैं सबका हिरण्यगर्भ ऋ० है, छं०-१ वि० नि०, २या० त्रि० है देवता-१ आशीः, २यजमान है । मंत्रार्थ-(अतस्य, योनिं, इपम्, ऊर्जमम्, माहिपस्य, धारां इतः, अहं, आदम्) सत्य की उत्पत्ति के कारण अन्न उसके उपसेचन दही दूध घृतादिको, महत् इच्छा वाले अग्निकी आहुतिको इस प्रदेश उदीची दिशासे मैं मन्त्रण करताहूँ (आविशतु, तनूपु, गोपु, आ,) शुभमें प्रवेश करे, मेरे पुत्रादि शरीरों में मेरे धेनु आदि पशुओंमें प्रवेश करे (अनिराम् अमीवाम् सेदिं जहामि) अन्नराहित क्लेशदायक होनेकी व्याधिको त्यागन करताहूँ ॥ १०५ ॥

अग्ने तव श्रवो षणो महिं आजन्ते अर्चयों
विभावसो । एवंज्ञानो शवसा वाजमुक्थं

दधामि दाशुपे कवे ॥ १०६ ॥

इसका पावकाग्नि ऋ०, विष्टार पं० छं०, अग्नि देवता है ।
 मंत्रार्थ—(विभावसो, वृद्धज्ञानो, कवे, अग्ने, तव, श्रवः, महि,
 वयः, अर्चयः, भ्राजन्ते, दाशुपे, शवसा, उक्थ्यम्, वाजसु, द-
 धामि) हे कान्तिरूप धनवाले बड़े मकाशवान्, यज्ञमान के अ-
 भिप्राय को जाननेवाले अग्निदेवता ! तुम्हारी यज्ञमवृत्ति देवताओं
 को सुनानेवाला बड़ा धूम और दीप्ति मकाशित होती है, तुम हवि-
 र्दातायुजमान के निमित्त बलसहित शस्त्रादि से युक्त यज्ञके योग्य
 अन्न को देते हो ॥ १०६ ॥

पावकवर्चा शुक्वर्चा अनूनवर्चा उदियर्षि भानु-

ना । पुत्रो मातरां विचरन्नुपावसि पृणासि

रोदसी उभे ॥ १०७ ॥

इसका पावकाग्नि ऋ० है, वि० पं० छं०, अग्नि दे० है । मंत्रार्थ—
 हे अग्ने ! (पावकवर्चाः, शुक्वर्चाः, अनूनवर्चाः, भानुना, उदियर्षि,
 विचरन्, उपावसि, पुत्रः, मातरा, उभे, रोदसी, पृणासि) शोधक
 दीप्तिवाले निर्मल कान्तिवाले पूर्ण शक्तिवाले तुम अपनी दीप्ति
 से उत्कृष्टता को प्राप्त हो तथा सब ओर से विचरते हुए देवता म-
 नुष्यों सहित जगत् की रक्षा करते हो, जैसे पुत्र वृद्ध हुए माता
 पिता की रक्षा करता है, इसी प्रकार तुम माता पिता रूप दोनों
 धावा पृथिवी का धूमपुंज द्वारा अर्थात् हवि से बुलोक का जल
 से भूमि का पालन करते हो ॥ १०७ ॥

ऊर्जांनपाज्जातवेदः सुशस्तिभिर्मन्दस्व धीति-

भिर्हितः । त्वे इपः संदधुर्मूर्तिर्वर्षसश्चित्रोतयो

धामजाताः ॥ १०८ ॥

इसका पा० ऋ०, सतो वृ० छं० अग्नि दे० है । मंत्रार्थ—
 (ऊर्जांनपात, जातवेदः, धीतिभिः, हितः, सुशस्तिभिः, मन्दस्व,
 भूर्तिर्वर्षसः, चित्रोतयः, वामजाताः, त्वे, इपः सन्दधुः) हे जलोंके
 पोते ! [जलसे वृक्ष और वृत्तों के मथनसे अग्नि होनेके कारण जलों

का पोता कहा] हे प्रज्ञावान् ! यज्ञकर्मों के निमित्त स्थापन किए तुम श्रेष्ठ स्तुतियों से हृष्टपुष्ट हो, अनेक रूपवाले बहुत प्रकार की रक्षावाले तुम से तर्पित श्रेष्ठताति कुलमें उत्पन्न हुए यजमानों ने तुममें अपने हाविरूप अन्नको होमा ॥ १०८ ॥

इरज्यन्तग्ने प्रथयस्व जन्तुभिस्मै रायों अमर्त्यं
सदर्शितस्य वपुष्णे विराजसि पृणक्षि सानसि
ऋतुम् ॥ १०९ ॥

इसका पावकाग्नि ऋ०, सतो वृ० छं० अग्नि दे० है । मंत्रार्थ—
(अमर्त्य, अग्ने, जन्तुभिः, इरज्यन्, रायः, अस्मै, प्रथयस्व, सः, दर्शितस्य, वपुषः, विराजसि सानसिम्, ऋतुम्, पृणक्षि) हे मरण धर्मरहित अग्नि देवता । हावि देनेवाले माणियों द्वारा मदीत होने हुए तुम, अनेक प्रकार के धनोंको हमारे निकट विस्तार करो, वह तुम दर्शनीय चित्त्याग्नि रूप शरीरके मध्यमें विशेष मदीत होते हो विरतन संकल्पको पूर्ण करते हो ॥ १०९ ॥

इष्कर्तारमध्वरस्य प्रचेतसं क्षपन्तश्च राधसा
महः । रातिं वामस्य सुभगां महीमिषं दधासि
सानसिश्च रथिम् ॥ ११० ॥

इसका पाव० ऋ० है, सतो वृ० छं० अग्नि दे० है । मंत्रार्थ—
(अध्वरस्य, इष्कर्तारं, प्रचेतसम्, क्षपन्तम्, वामस्य, महः, राधसा, रातिम्, सुभगाम्, महीम्, इषम्, सानसिम्, रथिम्, दधासि) यज्ञके रचनेवाले श्रेष्ठ चित्तवाले हे अग्ने! यज्ञस्थान में निवास करने वाले यजमान के निमित्त श्रेष्ठ बड़े धनके दान को और श्रेष्ठ पेश्वर्ष युक्त बड़े अन्नको चिरन्तन धन को धारण करते हो ॥ ११० ॥

ऋतावानं महिषं विश्वदर्शितगुग्निश्च सुम्नार्थं
वधिरे पुरो जनाः । भुत्कर्णश्च सप्रथस्तमं त्वा
गिरा दैव्यं मानुषा युगा ॥ १११ ॥

इसका पा० ऋ०, उ० ज्यो० छं० अग्नि दे० है । मंत्रार्थ—
हे अग्ने ! (मानुषाः जनाः युगा, गिरा, त्वा, ऋतावानं, महिषं,

विश्वदर्शितम्, धुस्कर्णम्, सप्रथस्तमम्, दैव्यम्, अग्नि, सुम्नाय,
पुरः, दधिरे) वृद्धिमान् मनुष्यों ने पौर्णमास अंमाचस्या आदि
पर्वों में वेदवाणी द्वारा तुम सत्यरूप महान् संसार के दर्शनीय
कर्णों से मार्थना सुननेवाले अति कीर्तिमान् देवताओं के हितकारी
अग्नि को यज्ञ के निमित्त पूर्वभाग में स्थापन किया ॥ १११ ॥

आप्यायस्व समेतु ते विश्वतः सोम वृष्ण्यम् ।

भवा वाजस्य संग्रहे ॥ ११२ ॥

इसका गो० ऋ०, नि० गा० छं० सोम देवता है । मंत्रार्थ—
(सोम, विश्वतः, वृष्ण्यम्, ते, समेतु, आप्यायस्व, वाजस्य,
संग्रहे, आभव) हे सोम ! सब ओर से सब माणियों की उत्पत्ति
करनेवाला तेज तुमको प्राप्त हो, अपने वीर्य से सब प्रकार परि-
वर्द्धित हो यज्ञादि सर्कार्य के उपयोगी अन्न की प्राप्ति के निमित्त
हमारे निकट आओ ॥ ११२ ॥

सन्ते पयांसि समुपन्तु वाजाः संवृष्ण्यान्ध-
भिमातिपाहः । आप्यायमानोऽमृताय सोम

दिवि अवांसिस्पुत्तमानि धिष्व ॥ ११३ ॥

इसका गो० ऋ०, भु० पं० छं०, सोम दे० है । मंत्रार्थ—(सोम,
पयांसि, ते, अभिमातिपाहः, संपन्तु, वाजाः, सम्, वृष्ण्यानि,
सम्, आप्यायमानः, उ, अमृताय) हे सोम ! पनियोग्यरस तुम
से पापनाशक का प्राप्तहो अन्न संगतिको प्राप्तहो वीर्य तुमको
प्राप्तहो दुग्ध अन्न और वीर्य से वृद्धिको प्राप्तहोते हुए तुम ही
अमरण धर्म के निमित्त हो और (दिवि उत्तमानि अवांसि
धिष्व) दुलोक में श्रेष्ठ आहुति परियामवाले अन्नों को धारण करो ।

आप्यायस्व मदिन्तमसोम विश्वेभिरधिगुभिः ।

अवा नः सप्रथस्तमः सखा वृधे ॥ ११४ ॥

इसका गो० ऋ० प्र० त्रि० छं०, सोम दे० है । मंत्रार्थ—
(मदिन्तम, सोम, सप्रथस्तमः, विश्वेभिः, अधिगुभिः, आप्या-
यस्व, वृधे, सखा, आभव) अतिशय वृत्त अन्तःकरणवाले हे

सोम अत्यन्त विख्यातकीर्ति वाले तुम सम्पूर्ण सूक्ष्मांशोंके द्वारा
 वृद्धिको पाओ, और हमारी वृद्धिके निमित्त सहायक हूजिये ११४

आ ते वत्सो मनो यमत्परमाचित्सुधस्तात्
 अग्ने त्वां कामया गिरा ॥ ११५ ॥

इसका वत्सार ऋ० है, नि० गा० छं० है अग्नि देवता है ।
 मंत्रार्थ—(अग्ने, ते, वत्सः, त्वां, कामया, गिरा, परमात्, स-
 धस्तात्, चित्, मनः, आयमत्) हे अग्ने ! तुम्हारा वत्सस्वरूप
 यज्ञमान तुमको स्तुति करने की इच्छावाली वेदवाणी के द्वारा
 उत्कृष्ट धुलोकसे भी तुम्हारे मनको हटाता है ॥ ११५ ॥

तुभ्यं ता अङ्घ्रिस्तम विश्वाः सुक्षितयः पृथक्
 अग्ने कामाय येमिरे ॥ ११६ ॥

इसका विरूप ऋ०, गाय० छं० अग्नि देवता है । मंत्रार्थ—
 (अङ्घ्रिस्तम, अग्ने, पृथक्, विश्वाः, ताः, सुक्षितयः, कामाय,
 तुभ्यं, येमिरे) हे अग्नि हविर्भक्षक अग्नि देवता ! अनेक प्रकार
 की सम्पूर्ण वह प्रसिद्ध स्वर्गादि सुन्दर स्थान की देनेवाली-
 स्तुतियों, अभिलाषा पूर्ण करनेवाले तुम्हारे निमित्त की गई हैं ॥ ११६ ॥

अग्निः प्रियेषु धामसु कामो भूतस्य भवस्य ।

सप्राडेको विराजति ॥ ११७ ॥

इसका मंत्रापति ऋ० गायत्री छन्द अग्नि देवता है । मंत्रार्थ—
 (भूतस्य, भवस्य, कामः, सप्राद्, अग्निः, प्रियेषु, धामसु, एकः,
 विराजति) उत्पन्न उत्पद्यमान यज्ञमानों की कामनाओंको पूर्ण
 करनेवाले सम्पक् प्रकार से विराजमान अग्निदेवता अपने प्रिय
 स्थानों में असहायभूत प्रधान रूपसे विराजमान होते हैं ॥ ११७ ॥

इति शुक्ल यजुर्वेदान्तर्गत वाजसनेयि संहिता का सातवादा द्वादश

अध्याय समाप्त ।

अथ त्रयोदशोऽध्यायः ।

जिसमें उखा धारण, गार्हपत्यचयन, क्षेत्रकर्मण और भौषधि चयन प्रधान हैं। ऐसे चारहवें अध्यायमें उखाधारणादि के मंत्र कहे। अब तेरहवें अध्यायमें पुष्करपर्ण आदि के उपधानके मंत्र कहे जावेंगे ॥

मयिं गृह्णाम्यग्नें अग्निधरायस्पोषाय सुमजा-
स्त्वार्थ सुवीर्याय । मार्शुं देवताः सचन्ताम् ॥ १ ॥

इसका वत्सार ऋ०, ककुब्धन्द अग्नि देवता है। मंत्रार्थ—
मैं यजमान (अग्ने, रायः, पोषाय, सुमजास्त्वार्थ, सुवीर्याय, अग्नि मयि, गृह्णामि, देवता, मार्शुं, सचन्ताम्) प्रथम धनकी पुष्टि के निमित्त श्रेष्ठ पुत्रादिकी प्राप्तिके निमित्त उत्तम सामर्थ्यके निमित्त अग्निकी अपने आत्मा में धारण करता हूँ, देवता भी मुझको सेवन करें ॥ १ ॥

अपां पृष्टमसि योनिरग्नेः समुद्रमभितः पिन्वं
मानम् वर्धमानो मूर्हो ॥ आ च पुष्करे दिवो
मार्त्रया धरिष्णा प्रथस्य ॥ २ ॥

इस मंत्र की व्याख्या ११ अध्यायके २२ मंत्रमें होगई है ॥२॥

ब्रह्मजज्ञानं प्रथमं पुरस्ताद्दि शीघ्रतः सुरुषो
वेन आचः । सवुध्या उपमा अस्य विष्टाः सत-
श्च योनिमसंतश्च विषः ॥ ३ ॥

इसका वत्सा० ऋ० आ० त्रि० छं० आदित्य देवता है मंत्रार्थ—
(पुरस्तात्, मयमं, जज्ञानं, ब्रह्म, सीमतः, सुरुषः, विष्टावः सः, वेनः, उपमाः, च, अस्य, विष्टाः, बुध्याः, सतः, च, असतः, योनि विषः) पूर्व दिशामें सबसे मयम मरुटद्वय आदित्यरूप ब्रह्मने भू-
गोलके मध्यमें आरंभ करके सुन्दर रुचिवाले इन लोकोंको अपने मकाश से फैलाया और वह कामनीय मेधावी सूर्य अयकाशयुक्त और इस जगत्की वासस्थान अन्तरिक्षमें होनेवाली दिशाओं को

तथा विद्यमान मूर्ध घट पटादि और अपूर्ण वायु आदि के उत्पत्ति स्थान ब्रह्माण्डको प्रकाशित करता है ॥ १ ॥

हिरण्यगर्भः समवर्त्ततात्र भूतस्य जातः पतिरेक-
आसीत् । स दाधार पृथिवीं धामृतेर्मां कस्मै
देवाय हविषां विधेम ॥ ४ ॥

इसका हिरण्यगर्भ ऋ० भार्गो त्रि० छं० मन्नापति देवता है ।
मंत्रार्थ—(हिरण्यगर्भः, भूतस्य, अप्रे, समवर्त्तत, जाता, एकः पतिः
आसीत्, सः, पृथिवीम्, धाम्, उत, इमाम्, दाधार, कस्मै, देवाय हविषा
विधेम) हिरण्य पुरुषरूप ब्रह्माण्डमें गर्भरूपसे अवस्थित मन्नापति
हिरण्यगर्भ प्राणिमात्रकी उत्पत्तिके प्रथम शरीरधारी हुआ, और
वह उत्पन्न अर्थात् प्रकट होतेही एकही इस उत्पन्न होनेवाले सब
जगत्का ईश्वर हुआ, वही अन्तरिक्ष पुनांक और इसभूमि अर्थात्
भिलोकीको निर्माण कर धारण करता है, उस मन्नापतिके निमित्त
हविद्वारा विधान करते हैं ॥ ४ ॥

द्रुप्तश्च स्कन्द पृथिवीमनुद्यामिमं च योनिमनु
यश्च पूर्वः समानं योनिमनु संचरन्तं द्रुप्तं
जुहोम्यनु सप्तहोत्राः ॥ ५ ॥

इसका देवश्रवा ऋ०, वि० त्रि० छं०, आदित्या दे० है मंत्रार्थ
यः, पूर्वाः, द्रुप्तः, पृथिवीं, अनुचस्कन्द, च, धाम्, अनु, च इमम्
योनिम्, अमु, समानं, योनिं, संचरन्तम्, द्रुप्तम्, सप्तहोत्राः, अनु-
जुहोमि) जो प्रथम मुख्य सबकी आदि है जिसकी आदि नहीं जो
कि द्रुप्त नामसे प्रसिद्ध आदित्यरूपका कारण अन्तरिक्षको मनु-
ष्यादि के धारणके निमित्त सौचता है, और पुनलोकको सौचता है,
और इस भूलोकको आहुतिके परिणामरूप रससे सौचता है, सम्पूर्ण
के मुख्य त्रिलोकीमें विचरण करते हुए आदित्य को सब दिशाओं
में स्थापन करता है ॥ ५ ॥

नमोऽस्तु सर्वेभ्यो ये केच पृथिवीमनु । ये अन्त-
रिक्षे दिवि तेभ्यः सर्वेभ्यो नमः ॥ ६ ॥

इसका देवभवा ऋ० भु० मा० त्रि० छं० सर्प देवता है मंत्रार्थ—
(ये, च, पृथिवी, अनु, सर्पेभ्यः, नमः, अस्तु, ये, अन्तारिक्षे, ये,
दिवि, तेभ्यः, सर्पेभ्यः, नमः) जो भी पृथ्वीके अनुगत लोक नक्षत्र
हैं, उन लोक नक्षत्रोंके निमिष नमस्कार हो, जो लोक अन्तारिक्ष
में वर्तमान हैं, जो सम्पूर्ण लोक दुलोकके आश्रित हैं, उन सर्पों
के निमिष नमस्कार है ॥ ६ ॥

या इपवो यातुधानानां ये वा वनस्पतीः । रन्
येषावृटेपु शेरते तेभ्यः सर्पेभ्यो नमः ॥ ७ ॥

इसका देवभवा ऋ० अनुष्टु० छं० सर्प देवता है । मंत्रार्थ—
(यातुधानानां, याः, इपवः, वा, ये, अवृटेपु, शेरते, तेभ्यः, सर्पेभ्यः
नमः) राक्षसगणोंके जो सर्प वाणरूपसे वर्तते हैं, या जो सर्प,
चन्दन वृक्षादि वनस्पतियोंके आश्रित हैं, या जो बिलोंमें शयन
करते हैं उन सब सर्पों के निमिष नमस्कार है ॥ ७ ॥

ये वामी रोचने दिवो ये वा सूर्यस्य रश्मिषु येषां
प्रप्लु सदस्कृतं तेभ्यः सर्पेभ्यो नमः ॥ ८ ॥

इसका देवभवा ऋ०, निचृ० छं०, सर्प देवता है । मंत्रार्थ—
(ये, वामी, दिवः, रोचने, वा, ये, सूर्यस्य, रश्मिषु, येषाम्, प्रप्लु,
सदः, कृतम्, तेभ्यः, सर्पेभ्यः, नमः) जो सम्पूर्ण लोकसर्प दुलोक
के दीप्ति स्थानमें है, जो हमको नहीं दीखते अथवा जो लोक सूर्यकी
किरणों में निवास करते हैं, जिन सर्प लोकों का जलों में स्थान
किया है, उन सब सर्पोंके निमिष नमस्कार है ॥ ८ ॥

कृणुष्व पात्राः प्रसितिं न पृथ्वीं याहि राजे वामं-
वान् । इमे न तृष्वीमनु प्रसितिं वृणानोऽस्तासि
विध्वरक्षस्तत्तापिष्टैः ॥ ९ ॥

इसका वामदेव ऋ० भु० पं० छं० अग्नि देवता है । मंत्रार्थ—
हे अग्ने ! तুম (आत्मा, असि, याहि, इव, आमवान्, राजा,
इमेन, पृथिवी, प्रसिति, न, पात्राः, कृणुष्व, तृष्वीम्, प्रसितिं अनु
वृणानः, तापिष्टैः, रक्षसः, विध्य) शत्रुओंके इटानेवाले हो, शत्रुओं

के ऊपर जाओ, जैसे सहायवान् नृप हाथीद्वारा शत्रुओंपर गमन करता है, ऐसे तुम गमन करो, विशाल पक्षिग्रहणके निमित्त फैलायेहुए जालकी समान बलको विस्तार करो, वेगवान् जालद्वारा सम्यक्शत्रुओंको मारनेवाले तपानेवाले राक्षसोंको ताड़नकरो ॥

तव भ्रमासं आसृया पतन्त्यनुस्पृश घृपता
शोशुचानः । तपूथेष्यग्ने जुब्हा पतद्भान सं-
न्दितो विसृज विष्वग्दकाः ॥ १० ॥

इसका वामदेव ऋ०, भु० पं० छं० अग्नि देवता है। मंत्रार्थ—
हे (अग्ने, तव, आसृया, भ्रमासः, पतन्ति, घृपताः, शोशुचानः,
तपूथि, पतद्भान्, अनुस्पृश, जुब्हा, आसन्दितः, विष्वक्, दकाः,
विसृज) अग्निदेवता ! तुम्हारी जो शीघ्रगामी ज्वालाएं पवम
से इधर उधर चलायमान होती हैं, उस प्रगल्भ ज्वालासमूह से
प्रकाशमान तुम तपानेवाले राक्षसों और पतंगों ज्वालासमूह से
दग्ध करो, छुकसे हूयमान तुम अखण्डित होकर सर्वत्र तिरछी
ऊँची नीची ज्वालाओं को राक्षसोंके नाश करने को छोड़ो पतंग
की समान राक्षस तुममें प्रविष्ट हो नष्ट होते हैं ॥ १० ॥

प्रतिस्पशो विसृज तूर्णितमो भवां प्रायुर्विशो
अस्या अदन्धाः । यो नो दूरे अघशंसो यो
अन्त्यग्नेमाकिं व्यथिरादधर्षित् ॥ ११ ॥

इसका वामदेव ऋ०, निचृ० त्रि० छं०, अग्नि देवता है।
मंत्रार्थ—(अग्ने, नः, दूरे, यः, अघशंसः, यः, अन्ति, तूर्णितमः,
अदन्धाः, प्रतिस्पशः, विसृज, अस्याः, विशः, प्रायुः, भव, ते,
किं, मा, आदधर्षित्) हे अग्ने ! हमारा दूर देश में जो शत्रु है
जो निकट में वर्तमान शत्रु है, बड़े वेगवान् अनुपहंसित तुम
उसकी घोर वन्धन को मेरण करो, इस हमारी प्रजा के रक्षक
हूँतिये, तुमको कोई भी शत्रु मत धर्षणा करो ॥ ११ ॥

उदग्ने तिष्ठ प्रत्यातनुष्वन्पुमिश्रान् औपतासि-
ग्महेते। योत्रो अरांतिथे समिधानवृत्रे नीचातं

धक्ष्यत्सं न शुष्कम् ॥ १२ ॥

इसका वामदेव ऋ०, भु० गा० पं० छं०, अग्नि दे० है । मंत्रार्थ (अग्ने, उत्तिष्ठ, मत्पातनुष्व, तिग्महेते, अमित्रान्, न्योपताव, समिधान, नः, यः, अरतिं, चक्रे, तम्, नीचा, धक्षि, न, शुष्कम्, अतसम्) हे अग्निदेवता ! तुम जागृत होवो ज्वाला विस्तार करो, हे उत्साहरूप आयुधवाले शत्रुओं को अत्यन्त भस्मीभूत करो, हे दीप्तिमान् ! हमारे जो शत्रु दानका प्रतिषेध करता है उसको निकृष्ट करके भस्म करा जिस प्रकार सूखे अतस (अलसीके) वृक्ष को भस्म करते हो ! सप्रकार शत्रु को नष्ट करो ॥ १२ ॥

ऊर्द्धां भ्रुवु प्रतिविध्याध्यस्मंदाविष्कृणुषु दैव्यां
नग्ने अयं स्थिरा तनुहि यातु जूनां जामिमजामिं
पृष्टुणीहि शश्रून् अग्नेष्ट्या तेजसा सादयामि ॥ १३ ॥

इस कं०में २ मंत्र हैं, सबका वामदेव ऋ० है, छं०-१ भु० पं० २ आ० त्रि०, देवता सबका अग्नि है । मंत्रार्थ-(अग्ने, उर्द्धः, भव, अस्मत्, अधि, शश्रून्, प्रतिविध्य, दैव्यानि, आवि, कृणुष्व, यातुजूनाम्, स्थिरा, अवतनुहि, जामिम्, अजामिम्, शत्रून्, पृष्टुणीहि) हे अग्निदेव ! उद्योगी उद्धत हो हमारे ऊपर वर्तमान शत्रुओं का ताड़न करो, दैवसम्बन्धी कर्मों को फट करो, राक्षसों के स्थिर धनुषों को उद्यारहित करो, ताड़ित अताड़ित शत्रुओं को विनाश करो । हे लुक-(अग्नेः, तेजसा, त्वा, सादयामि) अग्नि के तेज से तुझको स्थापन करता हूँ ॥ १३ ॥

अग्निर्मूर्धा शिवः कृकुत्पतिः पृथिव्या अपम् ।
अपाथं रेतांथसि जिन्वति इन्द्रस्य त्वाजसा
सादयामि ॥ १४ ॥

इस कं०में २ मंत्र हैं, सबका वामदेव ऋ०, छं०-१ निचृ० गा०, आ० त्रि० और देवता सबका अग्नि है । इसकी ३ । १२ में व्याख्या की गई है ॥ १४ ॥

ध्रुवो पृथस्य रजशश्च नेता यत्रा निपुट्टिः संचसे

शिवाभिः दिवि मूर्धानं दधिपे स्वर्पां जिह्वामग्ने
चकृपे हृष्ययाहम् ॥ १५ ॥

इसका त्रिशिरा ऋ०, निचृदापीं त्रि० छं०- अग्नि देवता है ।
मंत्रार्थ- (अग्ने, हृष्ययाहम्, जिह्वाम्, चकृपे, यज्ञम्य, व, रजसः,
नेता, भुवः, यत्र, शिवाभिः, निपुद्भिः, सचसे, दिवि, स्वर्पां,
मूर्धानम्, दधिपे) हे अग्निदेव ! तुम जब हवि धारण करनेवाली
जिह्वारूप ज्वाला को मगट करते हो तब द्रव्यदेवता त्यागात्मा
रूप यज्ञ के और यज्ञ परिणामरूप जल के मवर्तक और मापक
होते हो, यहाँ मंगलरूप अश्वों के सहित तुम सम्बन्ध को प्राप्त
होते हो और ध्रुलोक में स्वर्ग के देनेवाले आदित्य को धारण
करते हो ॥ १५ ॥

ध्रुवासि ध्रुणास्तृता विश्वकर्मणा मा स्वा
समुद्र उद्वधीन्मा सुपर्णा अव्यथमाना पृथिवीं
दृथ्ह ॥ १६ ॥

इसका त्रिशिरा ऋ०, उद्वधी० छं०, स्वयमातृणा दे० है ।
मंत्रार्थ- हे स्वयमातृणे ! तुम (ध्रुणा, विश्वकर्मणा, आस्तृता,
ध्रुवा, असि, समुद्रः, त्वा, मा, उद्वधीत्, सुपर्णाः, मा, अव्यथमाना,
पृथिवीं, दृथ्ह) भूमिरूपसे विश्व की धारण करनेवाली मजापति
द्वारा विस्तार कीहुई दृढ हो, समुद्र अर्थात् रुक्म तुमको मत नष्ट
करो, अचल होकर तुम भूभा॥ दृढ करने में समर्थ हो इस कारण
पृथ्वी को दृढ करो ॥ १६ ॥

मजापतिप्रया सादयत्पर्णां पृष्ठे समुद्रस्येमन् ।

व्यचस्वतीं प्रथस्वतीं प्रथस्व पृथिव्यसि ॥ १७ ॥

इसका त्रिशिरा ऋषि है, अनुष्टु० छं०, स्वयमातृणादि दे० है ।
मंत्रार्थ- हे स्वयमातृणे ! (मजापतिः त्वा, व्यचस्वतीम्, प्रथस्वतीम्
अर्णां, पृष्ठे, समुद्ररूप, एमन्, सादयत्, प्रथस्व, पृथिवी, असि)
मजापतिने तुम्हें अवकाशवान् विस्तार युक्त को जलके ऊपर
और समुद्रके स्थानमें स्थापन किया और तुम मजापतिसे सादित

होकर विस्तारको प्राप्त हो जिस कारण कि भूमिसे प्रकट होनेसे तुम पृथ्वीरूप हो ॥ १७ ॥

भूरसि भूमिंस्पदिनिरसि विश्वधाया विद्वंस्य
भुवनस्य धर्त्री । पृथिवीं यच्छ पृथिवीं दृष्ट्व
पृथिवीं मा हिंसीः ॥ १८ ॥

इसका विशिष्ट अर्थ है, प्रस्तार पंक्ति छं० स्वयमातृणा दे० है मंत्रार्थ-हे स्वयमातृणे तुम (भूः भूमिः, अस्ति, विश्वधाया, अदितिः, अस्ति, विश्वस्य, भुवनस्य, धर्त्री, अस्ति, पृथिवी, यच्छ, पृथिवी, दृष्ट्व, पृथिवी, मा, हिंसीः) सुखों की भावना करनेवाली भूमि नामसे प्रसिद्ध हो, विश्वपुत्र करनेवाली देवमाता हो सम्पूर्ण संसारकी धारण करने वाली हो पृथ्वीको कृपा दृष्टिसे अवलोकन करो भूभागको दृढ करो पृथिवीको मत कष्ट दो ॥ १८ ॥

विद्वंस्यै प्राणायानायं व्यानायौदानायं प्र-
तिष्ठायै चरित्राय अग्निष्वाभिपातु मह्या स्व-
स्त्या छर्दिपा शन्तमेन तथा देवतयाङ्गिरस्वद
धुवासीद ॥ १९ ॥

इसका विशिष्ट अर्थ है, भुरिग०, ज० छन्द, स्वयमातृणा दे० है । मंत्रार्थ-हे स्वयमातृणे (विश्वस्मै, प्राणाय, अपानाय, व्यानाय, उदानाय, प्रतिष्ठायै, चरित्राय, अग्निः, मह्या, स्वस्त्या, शन्तमेन, छर्दिपा, त्वा, अभिपातु, तथा, देवतया, धुवा, अङ्गिरस्वद, सीद) सम्पूर्ण प्राण अपान व्यान उदान नामक शरीर वायुकी उन्नतिकी कामना के निमित्त तथा प्रतिष्ठाकीार्थ लाभके निमित्त शास्त्रीय आचरण के निमित्त अग्निदेवता बड़ी कल्याण योगक्षेम की सम्पत्ति और अत्यन्त सुखकारी गृहके द्वारा तुमको रक्षा करे उस परम देवताके अनुग्रह से दृढहुई अङ्गिरा की समान स्थित हो ॥ १९ ॥

काण्डात्काण्डात्पुरोहन्ती परुषः परुषपरि
एवानो दूर्वे प्रतन्तु महर्षेण शतेन च ॥ २० ॥

इसका अर्थ है, अनुष्टुप् छं०, पूर्वोष्टिका देव० है । मंत्रार्थ

(दूर्वा, काण्डात्, काण्डात्, परुषः, परुषः, परि, मरोहन्ती, एव, सदस्रेण, च, शतेन, नः, आ, प्रतनु) हे दूर्वा ! इष्टके ! तुम मत्स्येक काण्ड से और मत्स्येक पर्व से सब ओर से अंकुरित होती हो और मिथय ही सदस्र और सैकड़ों भर्षात् असंख्य ऐश्वर्य पुत्र-पौत्रादि से अंकुरवत् हमको सब प्रकार वृद्धि को प्राप्त करो ॥ २० ॥

या शतेन प्रतनोपि सदस्रेण विरोहासि । तस्यास्ते
देवीष्टके विधेम हविषा वयम् ॥ २१ ॥

इसका अग्नि ऋ०, मिचृदनुष्टुप् छन्द, दूर्वाष्टिका देवता है ।
मंत्रार्थ—(देवी, इष्टके, या, शतेन, प्रतनोपि, सदस्रेण, विरोहासि, वयं, ते, हविषा, विधेम) हे दीप्यमान ! हे इष्टके ! जो तुम सैकड़ों काण्ड से विस्तार को प्राप्त होती हो, सदस्र अंकुरों से अनेक प्रकार से अंकुरित होती हो, हम तुमको हवि विधान करते हैं ॥ २१ ॥

यास्तं अग्ने सूर्ये रुचो दिवमातन्वन्ति रश्मि-
भिः । ताभिर्नो अथ सर्वाभी रुचे जनाय
नंस्कृधि ॥ २२ ॥

इसका इन्द्राग्नी ऋ०, भुरि०नु०, छ० अग्नि देवता है । मंत्रार्थ
(अग्ने, या, ते, रुचः, सूर्ये, रश्मिभिः, दिवं, आतन्वन्ति, अथ, ताभि, सर्वाभिः, नः, रुचे, नः, जनाय, कृधि) हे अग्ने ! जो तेरी दीप्ति सूर्यमण्डल में वर्तमान किरणों द्वारा अन्तरीक को प्रकाश करती है, इससमय उन सम्पूर्ण कान्तियों से आज हमारी शोभा के निमित्त करो तथा हमारे पुत्र पौत्रादि का जगत्प्रसिद्ध करो ॥ २२ ॥

या यो देवाः सूर्ये रुचो गोधवश्वेषु या रुचं इ-

न्द्राग्नी ताभिः सर्वाभी रुचं नो धत्त वृहस्पते ॥ २३ ॥

इसका इन्द्राग्नी ऋ०, अनुष्टुप् छ०, वृहस्पत्यादय देवता है ।
मंत्रार्थ—(इन्द्राग्नी, वृहस्पते, देवाः, यः, याः, रुचः, सूर्ये, याः, रुचः, गोषु अश्वेषु, ताभिः, सर्वाभिः, नः, रुचम्, धत्त) हे इन्द्राग्नी हे वृहस्पते ! हे देवसभ्रा ! तुम्हारी जो दीप्ति सूर्य मंडलमें वर्तमान है जो दीप्ति धेनुओं में जो अश्वोंमें स्थित है, उन सम्पूर्ण दीप्तियों

से देदीप्यमान तुम हमारे निमित्त कान्ति तीरोगताको प्रविपादन
कीजिये ॥ २३ ॥

विराड् ज्योतिरधारयत्स्वराड् ज्योतिरधारयत्
मृजापंतिष्ट्वा सादयतु पृष्ठे पृथिव्या ज्योति-
पमतीम् विश्वस्मै प्राणायानाय व्यानाय
विश्यं ज्योतिर्यच्छ अग्निष्टेऽधिपतिस्तथा तेष-
तयाद्गिरिस्वद् ध्रुवासीद् ॥ २४ ॥

इस कं० में २ मं० हैं । सका इन्द्राग्नी ऋ०, छं०-१ मा० गा,
२ पु० प्रा०, देवता-१ रेतः सिचौ २ विश्वज्योति है । मंत्रार्थ-
(विराड्, ज्योतिः, अधारयत्, स्वराड्, ज्योतिः, अधारयत्)
विशेष शोभायमान विराटरूप इस लोक ने अग्निरूप ज्योति को
धारण किया, स्वयं प्रकाशवान् दुलोक ने अग्निरूप ज्योति को
धारण किया । हे इष्टके ! (मृजापंतिः, विश्वस्मै, प्राणायं, अपा-
नाय, व्यानाय, ज्योतिपमतीम्, त्वा, पृथिव्याः, पृष्ठे, सादयतु,
विश्वम्, ज्योतिः, यच्छ, अग्निः, ते, अधिपतिः, तथा, वेषतया,
ध्रुवा, अद्गिरिस्वत्, सीद्) मृजा के पालक सम्पूर्ण प्राण अपान
व्यान की सम्पत्ति के निमित्त ज्योतिर्युक्ततुम्हको पृथ्वी के ऊपर
स्थापित करै; सम्पूर्ण ज्योति को निग्रह करो, अग्नि तुम्हारा
आपेपति है, उस प्रसिद्ध देवता के सहित दृढ होकर अग्निरा की
समाम स्थित हो ॥ २४ ॥

मधुश्च मार्धघट्टश्च चासन्तिकायुत् अग्नेरन्तः
म्लेघोऽसि कल्पेतां चावापृथिवी कल्पेतामाप
ओर्पधयः कल्पेन्तामग्नेयः पृथङ्मम ज्येष्ठपाय
सव्रेताः ये अग्नेयः समंसोऽन्तरा पावापृथिवी
इमे चासन्तिकायुत् अग्निकल्पेतामा इन्द्रमिष
देवा अभिभवंशन्तु तथा वेपतयाद्गिरिस्वद्
ध्रुवे सीदतम् ॥ २५ ॥

इस कं० में २ मंत्र हैं । सका इन्द्राग्नी ऋ०, छं०-१ पु० तं०,

२ भु० त्रा० वृ०, सबका ऋतु देवता है। मंत्रार्थ—(मधुः, च, माधवः, च, वासन्तिकौ, ऋतू) वैश्रमास और वैशाखमास यह दोनों ही वसन्त सम्बन्धी ऋतु हैं, अथवा हे (ऋतू, अग्ने, अन्तः, श्लेषः, असि) ऋतुरूप दोनों इष्टकाओ ! तुम चीपमान अग्नि के अन्तर में स्थिर होकर श्लेष अर्थात् रुढ़ता के निमित्त लगाये हुए हो (मम, ज्यैष्ठ्याय, यावापृथिवी, कल्पेताम्, आपः, ओषधयः, कल्पन्ताम्, सत्रताः, पूयकू अग्नयः कल्पन्ताम्) मुझ यज्ञमान की उत्कर्षता के निमित्त यह दुलोक और भूलोक अपने योग्य उपकार को कल्पना करें, जल और ओषधी हमारा माधान्य सम्पादन करें, समान व्रत अनेक नाम की अग्नि स्वयमातृणा आदि इष्टका उत्कृष्टता सम्पादन करें (इमे, यावापृथिवी, अन्तरा, समनसः, ये, अग्नयः, वासन्तिकौ, ऋतू, अभिकल्पमानाः, अभिसंविशन्तु, देवाः, इन्द्रम् इष,) यह यावापृथिवी के मध्य में वर्धमान एक मनबाली जो अग्निये हैं अर्थात् औरों से चपन कीहुई वसन्त सम्बन्धी ऋतु को सम्पादन करते इस कर्म का आश्रय करो, जैसे देवता इन्द्र को परिचर्या कर सम्पादन करते हैं इसी प्रकार इष्टका मास हो, हे इष्टके ! (तथा, देवतया, अन्निरस्वत्, ध्रुवे, सीदतम्) उस प्रसिद्ध देवता द्वारा अन्निरा की समान स्थिर होकर स्थित हो ॥ २५ ॥

अपादासि सहमाना सहस्यारतीः सहस्यपृतः

नायतः । सहस्रवीर्यासि सा मां जिन्व ॥ २६ ॥

इसका सविता ऋ०, मित्र० छं०, इष्टका देवता है। मंत्रार्थ— हे इष्टके ! तुम (सहमाना, अपादा, असि, अरातीः, सहस्य, पृतनायतः, सहस्य, सहस्रवीर्या, असि, मा, जिन्व) स्वभाव से शत्रुओं को नप करनेवाली तथा शत्रुओं को न सहनेवाली हो शत्रुओं को तिरस्कार करो, संग्राम की इच्छा करनेवाले शत्रुओं को तिरस्कार करो, तुम अनागत बलवाली हो, मुझपर सुभीता हो २

मधुवाता ऋतायते मधु क्षरन्ति सिन्धवः ।

माध्वीनिः सन्त्वोपधीः ॥ २७ ॥

इसका गीतम ऋ०, निचृ० गा० छं०, विश्वेदेवा देवता है ।
मंत्रार्थ—(ऋतायते, वाताः, मधु, क्षरन्ति, सिन्धवः, मधु, नः,
ओषधीः, माध्वीः, सन्तु) यज्ञ की इच्छा करनेवाले यजमान की
निमित्त वायु पुष्परस को बहन करती हैं, स्थन्दमान नदियों मधु
समान जल को क्षरण करती हैं, हमको सम्पूर्ण ओषधी मधुर
रस से युक्त हों ॥ २७ ॥

मधु नक्तं सुतोपसो मधुमत् पाथिब्रथ रजः ।

मधु द्यौरस्तु नः पिता ॥ २८ ॥

— इसका गीतम ऋ०, गापत्री छं०, विश्वेदेवा दे० है । मंत्रार्थ—
(नः, पिता, द्यौः, मधु, अस्तु, पाथिब्रथ, रजः, मधुमत्, नक्तं, सुत,
उपसः, मधु) हमको पितावत् पालन करनेवाला दुलोक अमृत
मय हो, मातारूप पृथ्वी सम्बन्धी रज अमृतमय हो, रात्रि और
दिन अमृतमय हो अर्थात् सब से हमको मंगल हो ॥ २८ ॥

मधुमान्नो वनस्पतिर्मधुमारः । अस्तु सूर्यः मा-

ध्वीर्गावो भवन्तु नः ॥ २९ ॥

इसका गीतम ऋ०, निचृ० गा० छं०, विश्वेदेवा देवता है ।
मंत्रार्थ—(वनस्पतिः, नः, मधुमान्, सूर्यः, मधुमान्, अस्तु,
गावः, नः, माध्वीः, भवन्तु) सम्पूर्ण वनस्पति, हमको मधुररस
से युक्त हों, सूर्य हमको मधुर रसयुक्त हों, गौ हमको मधुर
रसयुक्त हों ॥ २९ ॥

अपां गम्भन्त्सीद मा त्वा सूर्योऽभितापसी-

न्माऽग्निर्वैश्वानरः । अच्छिन्नपत्राः प्रजा अनु-

वीक्षुस्वान्तु त्वा दिव्या वृष्टिः सचताम् ॥ ३० ॥

इसका गीतम ऋ०, स्वराट् पं० छं०, कूर्म देवता है । मंत्रार्थ—
कूर्म से मजापाति वा आदित्य का ग्रहण है, हे कूर्म ! तुम (अ-
पाम्, गम्भम्, सीद, त्वा, सूर्यः, मा, अभितापसी, वैश्वानरः,

अग्निः, मा, अचिद्धन्नपत्राः, मजाः, अनुषीक्षस्व, दिव्या, वृष्टिः, त्वा, अनुसचताम्) जलों के गंभीरस्थान आदित्यमण्डल में स्थित हो, तुमको सूर्य वहां स्थित होने से मत सन्तप्त करो, संपूर्ण मनुष्यों के हितकारी अग्नि तुमको मत सन्तापित करो, अखंडित अवयववाली इष्टका तुमको निरन्तर देखो और दिव्य वर्षा तुमको सेवन करो ॥ ३० ॥

श्रीन्समुद्रान्तसमंसृष्टस्वर्गानिपांपतिर्वृषभ इष्ट-
कानान् । पुरीपं वसानः सुकृतस्य लोके तत्र
गच्छ यत्र पूर्वे परेताः ॥ ३१ ॥

इसका गीतम अ०, त्रिपु० छं०, कूर्म देवता है । मंत्रार्थ—
(अपां, पतिः, इष्टकानाम्, वृषभः, श्रीन्, स्वर्गान्, समुद्रान्, समस्रपत्, पुरीपं, वसानः, तत्र, गच्छ, यत्र, सुकृतस्य, लोके, पूर्वे, परेताः) जलों के स्वामी इष्टिकाओं की उपधानक्रिया का प्रधान अंग हो तुमने हीन भोग के साधन लोकोंको भली प्रकार प्राप्त किया, पुरीप को आच्छादन करते उस स्थान में गमन करो जहां पुण्यसत्माओं के लोक में पुरातन कूर्म अग्निपों से उपहित होकर गये हैं ॥ ३१ ॥

मही यौः पृथिवी यं न इमं यज्ञं निमिक्षताम् ।

पिपृतां नो भरीमभिः ॥ ३२ ॥

इसकी व्याख्या ८ अ० ३१ मं० में होगई ॥ ३२ ॥

विष्णोः कर्माणि पश्यन् यतो व्रतानि पश्यते
इन्द्रस्य युज्यः सखा ॥ ३३ ॥

इसकी व्याख्या ६ अ० ४ मं० में होगई ॥ ३३ ॥

ध्रुवासि धरुणतो जज्ञे प्रथममेभ्यो योनिभ्यो
अधिजातवेदाः । स गायत्र्या त्रिपुभाऽनुपुभां च
देवेभ्यो हव्यं ब्रह्म प्रजानन् ॥ ३४ ॥

इसका गो० अ०, सु० त्रि० छं०, उवा देवता है । मंत्रार्थ—
हे उवा ! (धरुणा, ध्रुवा, आसि, जातवेदाः, प्रथमम्, इतः, अधि-

जहें) जगत् की धारण करनेवाली तुम स्थिर हो, अग्नि पहिले इस वखा से मकट हुआ है (एभ्यः, योनिभ्यः, सः, प्रजानन्, गायत्र्या, त्रिष्टुभा, च, अनुष्टुभा, देवेभ्यः, इव्यं, वदतु) फिर इन अपने कारणों से मकट होता है यह अग्नि अपने अधिकार को भलीभाँति जानता हुआ गायत्री त्रिष्टुभ और अनुष्टुभ छन्द की सामर्थ्य से देवताओं के निमित्त इधि को लेजामो ॥ ३४ ॥

इपे राये रमस्व सधसे घुग्नेऽऊर्जे अपत्याय ।
सम्राडसि स्वराडसि सारस्वती त्वोत्सौ
प्राचताम् ॥ ३५ ॥

इसका गो० ऋ०, निचृ० वृ० छं०, उखा दे० है । मंत्रार्थ—
उत्वे ! (इपे, राये, सधसे, घुग्ने, ऊर्जे, अपत्याय, रमस्व, सम्राट्,
असि, स्वराट्, असि, त्वा, सारस्वती, उत्सौ, प्राचताम्) अन्न
घन बल यश दुग्ध दधि घृतादि रस और पुत्र पौत्रादि देने के
निमित्त यहां दीर्घकाल पर्यन्त स्थित हो तुम भूमिके भलेगकार
प्रकाशमान हो, स्वर्ग के स्वयं दीप्तिमान राजा हो, तुमको सर-
स्वती सम्बन्धी वाणी मन पालन करै ॥ ३५ ॥

अग्ने युक्ष्वा हि ये तवाभ्वांसो देव साधवः ।
अरं धहन्ति मन्यवे ॥ ३६ ॥

इसका भाट्टान ऋ०, निचृ० गा० छं०, अग्नि देवता है ।
मंत्रार्थ—(देव, अग्ने, ये, ते, साधवः, अथासः, अरं, मन्यवे,
वहन्ति, हि, आयुक्ष्व) हे दीप्यमान अग्नि देवता ! जो तुम्हारे
चतुरश्रेष्ठ घोड़े शीघ्र तुमको यज्ञ के निमित्त प्राप्त करते हैं उनको
ही रथ में जोतो ॥ ३६ ॥

युक्ष्वाहि देवहूतमाँ । अश्वान् । अग्ने रथोरिच
निहोता पूर्यः खदः ॥ ३७ ॥

इसका विरूप ऋ०, निचृ० गा० छं०, अग्नि दे० है । मंत्रार्थ—
(अग्ने, देवहूतमान्, अश्वान्, हि, रथी, इव, आयुक्ष्व, पूर्यः,
होता, निपदः) हे अग्ने ! देवताओं के अतिशय बुलानेवाले

होनेवाले (अद्रिबुध्नम्, अश्वं, मा, द्विध्वसीः) खुर से पर्वत को खोदनेवाले इस घोंट को मत मारो ॥ ४२ ॥

अग्निमिन्दुं न रूपं भुरग्युग्निभीहे पूर्वधितिं
नमोभिः सपर्वभिर्ऋतुशः कल्पमानो गां मा
द्विध्वसीरदितिं विराजम् ॥ ४३ ॥

इसका विरूप ऋ०, नि० मि० छं०, अग्नि दे० है। मंत्रार्थ—
(अमसं, इन्दुम्, अरुपम्, पूर्वधितिम्, नमोभिः, भुरग्युग्निम्, अग्निं, ईडे, सः, पर्वभिः, ऋतुशः, कल्पमानः, अदितिं, विराजम्, गां, मा, द्विध्वसीः) क्षयरहित ऐश्वर्य से युक्त रोपरहित पूर्व महर्षियों से क्षयन के योग्य अन्नों से सबके पोषण करनेवाले अग्नि को स्तुति करता हूँ, वह अग्नि अमावास्या आदि पर्व, प्रति ऋतु में कर्मों को सम्पादन करता हुआ, अखण्डित अदीन दुग्ध दानादि से विराजमान गौ को न मारै ॥ ४३ ॥

वरुणो त्वष्टुर्वरुणस्य नाभिमर्षिं जज्ञानात्
रजसः परस्मात् । महीत् साहसीमसुरस्य
मायामग्ने मा द्विध्वसीः परमे व्योमन् ॥ ४४ ॥

इसका विरूप ऋ०, नि० मि० छं०, अग्नि दे० है। मंत्रार्थ—
(अग्ने, परमे, व्योमन्, त्वष्टुः वरुणीम्, वरुणस्य, नाभिं परस्मात् रजसः, जज्ञानम्, महीं, साहसीम्, असुरस्य, अर्षिं, मा, द्विध्वसीः) हे अग्ने ! उत्कृष्ट रणस्थानमें स्थापित ऋषीकी निर्माण करनेवाली वरुणकी नाभितुल्य रक्षणाय दिक्कक्ष्य लोकसे जायमान बड़ी सहस्र मूल्यके योग्य सहस्रों उपकार साधक माणियोंको गप्पा देने वाली अबिको मत नष्ट करो ॥ ४४ ॥

यो अग्निरग्नेरध्यजापत्त शोकात्पृथिव्या उत
वां दिवस्पतिं येन मजा विश्वकर्मा जजान तम-
ग्ने हेहः परिते वृणक्तु ॥ ४५ ॥

इसका विरूप ऋ०, मि० पु० छं०, अग्नि दे० है। मंत्रार्थ—
(यः, अग्निः, अग्नेः, शोकात् अध्यजापत्त, उत, दिवः पृथिव्याः,

परि) जो अग्निरूप, अन्न, प्रजापतिके शोकसे उत्पन्न हुआ और
 युलोकके पृथ्वीके शोकरूप अग्निसे उत्पन्न हुआ (विश्वकर्मा येन
 मजाः, जजान. अग्ने, ते, हेडः, तम्, पारिवृणक्तु) मजापति ने
 जिस अन्न अर्थात् वायुसे प्रजाको उत्पन्न किया है, हे चिति-
 अग्निदेव ! तुम्हारा क्रोध उस अन्नको त्यागो ॥ ४५ ॥

चित्रं देवानामुदंगादनीकं चक्षुर्मित्रस्य वरुण-
 स्याग्नेः । आ मा घाघापृथिवी अन्तारिक्षं मूर्धं
 आत्मा जगत्स्तस्थुपश्च ॥ ४६ ॥

इसका विरूप ऋ०, विराट् घाक्षी पं० छं०, अग्नि दे० है ।
 इसकी व्याख्या अ० ७ । ४२ में होगई ॥ ४६ ॥

इमं मा हिंसीद्विपादं पशुं सहस्राक्षो
 मेधाय चीयमानः । मयुं पशुं मेधमग्ने जुपस्व तेन
 चिन्वानस्तन्वो निपीद । मयुं ते शुगृच्छतु यं द्वि-
 प्मस्तं ते शुगृच्छतु ॥ ४७ ॥

इसका विरूप ऋ०, वि० वा० पं० छं०, अग्नि देवता है ।
 मंत्रार्थ—(अग्ने, मेधाय, चीयमानः, सहस्राक्षः, इमं, द्विपादं,
 पशुं, मा, हिंसीः) हे अग्ने ! यज्ञ के निमित्त चयन किये हुए
 सहस्रों नेत्रवाले सुवर्णखण्डरूप सहस्रनेत्र तुम इस पुरुषरूप पशु
 को मत पीड़ा देना और पीड़ा की इच्छा हो तो (मेधम, मयुम्,
 पशुम्, जुपस्व) पवित्र तुरङ्गवदन किम्पुरुष पशु को सेवन करो
 (तेन, तन्वः, चिन्वानः, निपीद, ते, शुक्, मयुम्, ऋच्छतु. यं,
 द्विप्मः, ते, शुक्, तम्, ऋच्छतु) उसके सेवन से ज्वाला रूप शरीर
 पुष्ट करते हुए तुम यहाँ स्थित हो, तुम्हारा सन्ताप किम्पुरुष को
 मास हो, जिससे हम द्वेष करते हैं तुम्हारा सन्ताप उसको मास हो ४७

इमं मा हिंसीरेकशकं पशुं कनिकदं वाजिनं
 वाजिनेपुगौरमारुण्यमनुतेदिशामि तेन चिन्वा-
 नस्तन्वो निपीद गौरं ते शुगृच्छतु यं द्विप्मस्तं
 ते शुगृच्छतु ॥ ४८ ॥

देवता उसके द्वारा पूर्वजन्म में यज्ञादि कर्म करके देवत्व को प्राप्त हुए तथा यज्ञ के योग्य यजमान स्वर्ग को इसी के द्वारा प्राप्त हुए हैं (आरण्यम्, शरभम्, ते, अनुदिशामि) वनका शरभ नामक सिंहघाती आठ चरण का मृग तुमको देता हूँ (तन्वः, तेन, चिन्वानः, निपीद, ते, शुक्, शरभं, ऋच्छतु, यम्, द्विष्मः, तं, ते, शुक्, ऋच्छतु) शरीर उसके द्वारा पुष्टि को प्राप्त करते हुए तुम यहां स्थित हो तुम्हारी ज्वाला शरभ के प्रति प्राप्त हो जिससे हम द्वेष करते हैं उसको तुम्हारी ज्वाला प्राप्त हो ॥ ५१ ॥

त्वं यविष्ठ दाशुपो न्हः पाहि शृणुधी गिरः
रक्षांतोकमुत त्मना ॥ ५१ ॥

इसका उर्शना ऋ०, नि० गा० छं०, अग्निदेवता हैं । मंत्रार्थ (यविष्ठ, त्वं, गिरः, शृणुधी, दाशुपः, नृन्, पाहि, उत, आत्मना, तोकम्, रक्ष) हे अतिशयतरुण अग्ने ! तुम हमारी स्तुतियों को श्रवण करो हवि देनेवाले यजमान के मनुष्यों की रक्षा करो और अपने यजमान के अपत्य की रक्षा करो ॥ ५२ ॥

अपां त्वेमन्सादयाम्यपां त्वोद्मन्सादयाम्य-
पान्त्वा भस्मन्सादयाम्यपां त्वा ज्योतिपि
सादयाम्यपां त्वार्यने सादयाम्यर्णवे त्वा सदेने
सादयामि समुद्रे त्वा सदेने सादयामि सरिरे
त्वा सदेने सादयाम्यपां त्वा क्षये सादयाम्यपां
त्वा सधिपि सादयाम्यपां त्वा सदेने सादया-
म्यपां त्वा मधस्थे सादयान्यपां त्वा योनीं सा-
दयाम्यपां त्वा पुरीपे सादयाम्यपां त्वा पार्थसि
सादयामि गायत्रेण त्वा छन्दसा सादयामि
त्रैप्सुभेन त्वा छन्दसा सादयामि जागतेन
त्वा छन्दसा सादयान्यानुप्सुभेन त्वा छन्दसा
सादयामि पाङ्क्तौन त्वा छन्दसा सादयामि ॥५३॥
इस कं० में २० मं० हैं । सबका उर्शना ऋ० छं० १, २

याजुष्यनु० ३, ५, ९, १३, या० वृ०, ४, १०, ११, १९, १४,
 १५, या० पं०, ६, ७, २०, या, त्रि०, १६, १७, १८, या जु०
 ११, आसुर्यनु० और सबका इष्टका दे० है । मंत्रार्थ-हे अपस्या
 नामक इष्टका ! (अपां, एमन, त्वा, सादयामि) जलों के स्थान
 में तुमको स्थापन करता हूँ । हे अपस्या ! (त्वा, अपां, औद्मन्
 सादयामि) तुझको औपधियों से स्थापन करता हूँ । हे अपस्या
 (त्वा, अपां, भस्मन्, सादयामि) तुमको अभ्र में स्थापन करता
 हूँ । हे अपस्या (त्वा, अपां, ष्योतिषि, सादयामि) तुमको
 विद्युत् ज्योति में स्थापन करता हूँ । हे अपस्या (त्वा, अपां, अयने
 सादयामि) तुझको भूमिमें स्थापन करता हूँ । हे अपस्या (त्वा,
 अर्णवे, सद्ने, सादयामि) तुझको प्राणके स्थान में स्थापन
 करता हूँ । हे अपस्या (त्वा, समुद्रे, सद्ने सादयामि) तुझको
 मनके स्थान में स्थापन करता हूँ । हे अपस्या (त्वा, सरिरे, सद्ने
 सादयामि) तुझको वाणों के स्थान में स्थापन करता हूँ । हे अपस्या
 (त्वा, अपांक्षये सादयामि) तुझको चक्षु के निवास में स्थापन
 करता हूँ । हे अपस्या (त्वा, अपां, सधिषि, सादयामि) तुमको
 श्रोत्र में स्थापन करता हूँ । हे अपस्या (त्वा, अपांसद्ने सादयामि)
 तुमको ध्रुलोक में स्थापन करता हूँ । हे अपस्या (त्वा, अपांसधस्थे
 सादयामि) तुमको अन्तरिक्ष में स्थापन करता हूँ । हे अपस्या
 (त्वा, अपां योती सादयामि) तुझको समुद्र में स्थापन करता
 हूँ । हे अपस्या (त्वा अपां पुरीषे, सादयामि) तुझको सिकता
 में स्थापन करता हूँ । हे अपस्या (त्वा, अपां पायसि सादयामि)
 तुझको अन्नों में स्थापन करता हूँ । हे अपस्या (त्वा, गायत्रेण
 छन्दसा, सादयामि) तुझको गायत्री छन्दके प्रभावसे सादन
 करता हूँ । हे अपस्या (त्रैष्टुभेन, छन्दसा, त्वा, सादयामि)
 त्रिष्टुप छन्दके प्रभावसे तुझको स्थापन करता हूँ । हे अपस्या
 (त्वा, जागतेन छन्दसा सादयामि) तुझको जगती छन्दके
 प्रभावसे स्थापन करता हूँ । हे अपस्या (त्वा अनुष्टुभेन छन्दसा

सादयामि) तुम्हको अनुष्ठान् छन्दके मभाव से स्थापन करताहूँ ।
हे अपस्या (त्वा, पांक्तेन छन्दसा सादयामि) तुम्हको पंक्ति
छन्दके मभाव से सादन करता हूँ ॥ ५३ ॥

अयं पुरो भुवस्तस्य माणो भौवायनो वसन्तः
प्राणायनो गायत्री वासन्ती गायत्र्यै गायत्रं
गायत्राहुंपाशंशुरुपाशोस्त्रिवृत् त्रिवृतो रथः
न्तरं वसिष्ठ ऋषिः मजापतिगृहीतया त्वया
माणं गृह्णामि पूजाभ्यः ॥ ५४ ॥

इस कं० में १० मं० हैं । सबका उशना ऋ०, छन्द-१ दैवी
त्रि०, २ याजु० जु० ३, ८, या० णि०, ४, ५, ६, या० गा०
९, ७, दै० पं० १० आर्ची गा० है । और सबका माणभृदिष्टका
दे० है । मंत्रार्थ-हे इष्टका जो (अयं, पुरः, भवः, माणः, तस्य,
भौवायनः, प्राणायनः, वसन्तः, वासन्ती, गायत्री, गायत्र्यै गायत्रं
गायत्र्यात्, उपांशुः, उपांशोः, त्रिवृत्, त्रिवृतः, रथन्तरम्, वसिष्ठः,
ऋषिः) यह प्रथम होनेवाला अग्नि है तू इसके रूपवाली है माण
उस भुव नाम अग्निका संज्ञान है माणका पुत्र वसन्त ऋतु है
वसन्त की संज्ञान गायत्री है गायत्री से गायत्र साम उत्पन्न है
गायत्र सामसे उत्पन्न उपांशुग्रह है उपांशुग्रहसे उत्पन्न त्रिवृत्सोम
त्रिवृत्सोम से निर्मित रथन्तरसामः सर्वजन्तुओं में अधिष्ठित,
सर्वाधार वसिष्ठ रूप माण ज्ञाता । हे इष्टके (मजापति गृहीतया,
त्वया, मजाभ्यः, माणम्, गृह्णामि) मजापति के द्वारा ग्रहण
की हुई तुम्हारी सहायता से मैं मजाओं के निमित्त नीरोग माण-
लाभ के निमित्त ग्रहण करता हूँ ॥ ५४ ॥

अयं दक्षिणा विश्वकर्मा तस्य मनो वैश्वकर्माणं
श्रीपमो मानसस्त्रिपुत्रं श्रीपती त्रिपुत्रंः स्वारम् ।
स्वारादन्तर्पामोऽन्तर्पामात्पंचदशः पंचदशाद्
बृहद् भरद्वाजः ऋषिः पूजापतिगृहीतया त्वया
मनो गृह्णामि पूजाभ्यः ॥ ५५ ॥

इस कं० १० मं० हैं । सबका उशना ऋ० । छं० १-२ या०
 वृ० ३, ५ दै० पं०, ४ दै० वृ० ६, ८, ९ या० गा० ७ याजुष्यन्तु०,
 १० आ० गा० है, देवता सबका मनोभृदिष्टका है । मंत्रार्थ—
 यह इष्टका (विश्वकर्मा, अथवा, दक्षिणा) विश्व का निर्माता
 विश्वकर्मा नाम से प्रसिद्ध यह दक्षिण दिशा में आर्यावर्च
 से बहन करती है (मनः, तस्य, वैश्वकर्माणं, मन उस
 विश्वकर्मा का अपत्य है (ग्रीष्मः मानसः) ग्रीष्मऋतु
 मनकी अपत्य है (त्रिपुरं ग्रीष्मी त्रिपुरः स्वारं) त्रिपुराब्जन्द
 ग्रीष्म से मकट है, त्रिपुराब्जन्द से स्वार साम प्रकटहुआ (स्वारात्
 अन्तर्यामः) स्वार सामसे अन्तर्यामि ग्रहहुआ (अन्तर्यामात्
 पञ्चदशः) अन्तर्याम से पंचदशस्तोम हुआ (पञ्चदशात् वृहत्)
 पञ्चदशस्तोम से वृहत् साम हुआ (भरद्वाजः ऋषिः) अन्न का
 धारण करनेवाला मन सचेतन है । हे इष्टके (प्रजापतिगृहीतया
 त्वया मजाभ्यः मनः गृह्णामि) प्रजापति द्वारा सादर ग्रहण
 कीहुई तुम्हारी सहायता से मजाओं का मन ग्रहण करता हूँ ॥५५॥

अयं पश्चाद् विश्वव्यचास्तस्य चक्षुर्वैश्वव्यचसं
 वर्पाश्चाक्षुष्यो जगती वार्पा जगत्या ऋक्सामम्
 ऋक्सामान्चक्षुः शुक्लात्सप्तदशः सप्तदशा
 द्वैरूपं जमदग्निऋषिः प्रजापतिगृहीतया त्वया
 चक्षुर्गृह्णामि पूजाभ्यः ॥ ५६ ॥

इस कं० में १० मंत्र हैं । सबका उशना ऋ०, छं०-१ याजुष्यन्तु०,
 २ या० वृ० ३, ४, ६ दै० पं० ५, ७, ९, या० गा०, ८ याजुष्यु०
 १० आ० गा० और देवता सबका चक्षुर्भृदिष्टका है । मंत्रार्थ—
 (अयं, पश्चात्, विश्वव्यचाः, चक्षुः, तस्य, वैश्वव्यचसम्, वर्पा,
 चाक्षुष्या, जगती, वार्पा, जगत्यै, ऋक्सामम्, ऋक्सामात्, शुक्लः,
 शुक्लात्, सप्तदशः, सप्तदशात्, द्वैरूपं, जमदग्निऋषिः) यह
 पश्चिमगामी नेत्र उस रात्रि से उत्पन्न है, ऋतु चक्षु से मकट है,
 जगतीब्जन्द वर्पाऋतु से मकट है, जगतीब्जन्द से उत्पन्न ऋक्साम

अथ चतुर्दशोऽध्यायः ॥



जिसमें चित्तिकरण का वर्णन है ऐसे प्रयोद्श अध्याय में इष्टका सम्भरण के मंत्र कहे हैं, अब चौदह अध्याय में दूसरी तीसरी और चौथी चिति के मंत्र कहे जायेंगे—

ध्रुवक्षितिर्ध्रुवयोनिर्ध्रुवासि ध्रुवं योनिमासीद.

साधुया । उख्यस्य केतुं प्रथमं जुषाणा अश्विनानां ।

ध्वर्युं सादयतामिह त्वां ॥ १ ॥

इसका उशना ऋ०, निचृदारपी त्रिष्टुप् छन्द, अश्विनौ देवता है । मंत्रार्थ—हे इष्टके तुम (ध्रुवक्षितिः, ध्रुवयोनिः, उख्यस्य, प्रथमम्, केतुम्, जुषाणा, ध्रुवा, असि, ध्रुवम्, साधुया, योनिम्, आसीद, देवानां, अध्वर्युं, इह, त्वा, सादयताम्) स्थिर निवास वाली अचल कारणवाली उख्य अग्नि के पहले, प्रथम चित्तिकरण स्थान को सेवन करती हुई स्थिर होओ, स्थिर रेतःसिग्बेला नामक श्रेष्ठ स्थान पर बैठो, देवताओं के अध्वर्यु अश्विनीकुमार इस रेतःसिग्बेला पर तुमको स्थापन करें ॥ १ ॥

कुलायिनी घृतवती पुरन्धिः स्थोने सीद सद्ने

पृथिव्याः । अभि त्वा रुद्रा वसवो गृणन्त्विमा

ब्रह्म पीपिहि सौभगाय अश्विनौ अध्वर्युं साद-

यतामिह त्वां ॥ २ ॥

इसका उशना ऋ०, नि० द्रा० वृ० छं०, अश्विनौ देवता हैं । मंत्रार्थ—हे इष्टके ! (कुलायिनी, घृतवती, पुरन्धिः, पृथिव्याः, स्थोने, सद्ने, सीद, रुद्राः, वसवः, त्वा, अभिगृणन्तु, इमाः, ब्रह्म, सौभगाय, पीपिहि, अश्विनौ, अध्वर्युं, इह, त्वा, सादय-ताम्) पत्नी के यौसने के आकारवाली, होमेहुए घृण से युक्त नीचे स्थित प्रथम चिति इष्टकाओं की धारण करनेवाली तुम पृथ्वी के सुखदायक स्थान में स्थिर होओ, ग्यारह रुद्र आठ वसु तुमको स्तुत करें, इन मंत्रों को ऐश्वर्य के निमित्त दृष्टि दो यज-

मान का भाग्योदय हो, अश्विनीकुमार अध्वर्यू इस स्थल में तुमको स्थापित करें ॥ २ ॥

स्वैर्दक्षैर्दक्षपितेह सीद देवानांश्च सुम्ने वृद्धते
रणाय पितेर्वाधि सूनुव आ सुशेषा स्वावेशा
तन्वा संविशस्व । अश्विनाध्वर्यू सादय-
तामिह त्वा ॥ ३ ॥

इसका उ० ऋ०, वि० द्रा०, वृ० छ०, अश्विनौ देवता है ।
मंत्रार्थ—हे इष्टते ! (दक्षपिता, देवानाम्, रणाय, वृद्धते, सुम्ने,
इह, स्वैः, दक्षैः, सीद) बल की रक्षा करनेवाली तुम देवताओं के
रमणीय बड़े सुख के निमित्त इस दूसरी चिति में अपने बलों से
स्थित होओ, और (आ, सुशेषा, पयि, इव, पिता, सूनुव, स्वा-
वेशा, तन्वा, संविशस्व) सदा सुख की देनेवाली हो निसपकार
पिता पुत्र के निमित्त सुखदायक होता है, और सुख प्रवेशवाले
शरीर के साथ यहाँ अवस्थान करो (अध्वर्यू, अश्विना, इह,
त्वा, सादयताम्) अध्वर्यू अश्विनीकुमार इस स्थान में तुम को
स्थापन करें ॥ ३ ॥

पृथिव्याः पुरीषमस्यप्सोनामे तां त्वा विश्वे
अभि गृणन्तु देवाः स्तोमपृष्ठा घृतवतीह सीद
प्रजावदस्मे द्रविणा यजस्व अश्विनाध्वर्यू सा-
दयतामिह त्वा ॥ ४ ॥

इसका उ० ऋ०, भुरिक् द्रा० वृ० छ०, अश्विनौ दे० है ।
मंत्रार्थ—(पृथिव्याः, पुरीष्यम्, अप्सोनाम, असि, ताम्, त्वा,
विश्वे देवाः, अभिगृणन्तु, स्तोमपृष्ठाः, घृतवती, इह, सीद, प्रजावत्
द्रविणा, अस्मे, आयजस्व, अध्वर्यू, अश्विना, इह, त्वा, सादय-
ताम्) हे इष्टके ! तुम पहली चितिकी पूरक अप्स कहिये जलके
कारणाभूत रसरूप हो, उस तुमको सम्पूर्ण देवता सब ओरसे
रतुत करें, प्रिष्टत आदि स्तोम रथन्तरादि पृष्ठ जिसमें पढ़े जाते हैं
पेसी हवन होनेयोग्य घृत से युक्त तुम इस दूसरी चिति में ठहरा

को इस दूसरी चितिमें स्थापन करो । (ऋतुभिः सजू, विधाभिः सजू, यमुभिः, सजू, वयोनाधैः, देवैः, सजू, त्वा, वैश्वानराय अग्नये, अध्वर्यु अश्विना, त्वा, इह सादयताम्) हे इष्टके । ऋतुओंके साथके प्रीतिमान् जलोंके साथ प्रीतिमान् वसुओंके साथ प्रीतिमान् प्राणोंके साथ देवताओंके साथ प्रीतिमान् तुमको विश्वके हितकारी अग्निदेवताकी तृप्तिके निमित्त स्थापन करता हूँ, अध्वर्यु, अश्विनीकुमार तुमको इस दूसरी चितिमें स्थापन करें, (ऋतुभिः, सजू, विधाभिः, सजू, रुद्रैः, सजू, वयोनाधैः, देवैः सजू, त्वा वैश्वानराय अग्नये, अध्वर्यु अश्विना, त्वा, इह, सादयताम्) हे इष्टके ! ऋतुओंके साथ प्रीतिमान् जलोंके साथ प्रीतिवाले रुद्रोंके साथ प्रीतिवाले प्राणोंके साथ देवताओंके साथ प्रीतिवाले तुमको विश्वके हितकारी अग्निदेवताके निमित्त स्थापन करता हूँ अध्वर्यु अश्विनीकुमार तुमको इस दूसरी चितिमें स्थापन करें । (ऋतुभिः, सजू, विधाभिः, सजू, आदित्यैः, सजू, वयोनाधैः, देवैः, सजू, त्वा, वैश्वानराय, अग्नये, अध्वर्यु, अश्विना, त्वा, इह, सादयताम्) ऋतुओंके साथ प्रीतिवाले जलोंके साथ प्रीतिवाले आदित्यके साथ प्रीतिवाने प्राण देवताओंसे प्रीतिवाले तुमको सब विश्वके हितकारी अग्निदेवताकी प्रीतिके निमित्त स्थापन करता हूँ, अध्वर्यु, अश्विनीकुमार तुमको इस दूसरी चितिमें स्थापन करें । (ऋतुभिः, सजू, विधाभिः, सजू, विश्वैः वैश्वदेवैः, सजू, वयोनाधैः, देवैः सजू, त्वा, वैश्वानराय अग्नये, अध्वर्यु, अश्विना त्वा इह सादयताम्) हे इष्टके । ऋतुओंसे सेवित प्राणोंसे सेवित सम्पूर्ण देवताओंसे सेवित प्राण देवताओंसे सेवित तुमको सब जगत्के हितकारी अग्निदेवताकी प्रीतिके निमित्त ग्रहण करता हूँ, अध्वर्यु अश्विनीकुमार तुमको इस दूसरी चितिमें स्थापन करें ॥ ७ ॥

प्राणम्मे पाण्डुपानम्मे पाहि व्यानम्मे पाहि
चक्षुर्म उर्व्या विभ्राहि श्रोत्रम्मे श्लोक्य । अपः

पिन्वीपधीजिन्व द्विपादव चतुष्पात् पाहि
द्विवो वृष्टिमेरय ॥ ८ ॥

इस कं०में ४ मं० हैं । सबका विश्वदेवा ऋ०. ६, ८, दै० वृ०
१, ३, ७, ९, दै० पं०, २, ५, दै, त्रि० १० दै० ज०, ४ पा०
गा० और देवता ६, ८, आप, १, ३, ७, ९, वायुरा०, २, ५,
वायु, १०, आप, ४ वायु है । मंत्रार्थ—हे इष्टके ! तुम (मे माणं
पाहि, मे अपानं पाहि, मे, ज्यानं, पाहि) मेरी नाभिसे ऊपर
चलनेवाली माणवायुकी रक्षा करो मेरी नाभिसे नीचे चलनेवाली
अपान वायुकी रक्षाकरो मेरे शरीरकी सन्धिगत वायुकी रक्षाकरो
हे इष्टके ! तुम (मे, चक्षुः, उर्व्या, विभाहि, मे श्रोत्रं श्लोक्य)
मेरे नेत्रोंको विशिष्टीं दृष्टिसे देखनेमें समर्थ करो, मेरे कर्णोन्द्रिय
को बहुत शब्दों के श्रवणमें समर्थ करो । (अरः पिन्व. श्रौपधीः,
जिन्व, द्विपाद्, अव, चतुष्पात् पाहि, दिनः, वृष्टिम्, परय)
हे इष्टके ! तुम्हारे प्रसादसे यह पृथ्वी पृष्टि के जनसं सिन्निहो;
श्रौपधियोंका वृक्ष करो द्विपाये माणी मनुष्योंकी रक्षा करो, चौपाये
पशुओंकी रक्षाकरो, धुलोकसे वर्षाको सब ओर भरण करो ॥८॥

मूर्धा वयः प्रजापतिश्छन्दः अत्रं वयो भगन्तं
छन्दो विश्वभो वयोधिपतिश्छन्दो विश्वकर्मा
वयः परमेष्ठी छन्दो वस्तो वयो विपुलं छन्दो
वृष्णिर्वयो विशालं छन्दः पुरुषो वयस्तन्द्रं छन्दो ।
व्याघ्रो वयो नाधृष्टं छन्दः सिँहो वयश्छदि-
श्छन्दः पृच्छाड वयो वृहतीछन्द उश्ना वयः
कुकुप्छन्दं क्रुपभो वयः सुतो वृहती छन्दः ॥९॥

इस कं०में १९ मंत्र हैं, सबका विश्वदेवा ऋ० । छं०—१, ३, १०,
१७, याजुपी पं०, २, ५, ६, ७, ८, १३, १४, १६, १८, १९,
या० वृ०, ९, ११, १५, याजु० नृ०, ४, १२ या० ज० और सब
का लिङ्गोक्त देवता है । मंत्रार्थ—(प्रजापतिः, छन्दः, वयः, मूर्धा)
प्रजापति ने गायत्री छन्द होकर वयद्वारा प्रधान (ब्राह्मण) जाति

की रचना की है । क्षत्रं वयः, मयन्दं, छन्दः) दुःख से रक्षा करनेवाली क्षत्रिय अवस्था प्रजापति हृष, सुख देनेवाले अनिरुक्त छन्द प्रजापति हृष (आधपतिः, विष्टम्भः, वयः, छन्दः) अधिक पालन करनेवाले जगत् के स्तम्भनकर्त्ता प्रजापति संसाररूप पशु सम्बन्धी अवस्थावाले छन्द हृष (परमेष्ठी, विश्वकर्मा, वयः, छन्दः) परमपद में स्थित होनेवाले सबके सृष्टा प्रजापति वय द्वारा छन्दहृष अर्थात् प्रजापति ने छन्द के प्रभाव से विविध कर्मचारी 'सेवावृत्तियुक्त' शूद्रजाति उत्पन्न की (वस्वः, विवल्म, छन्दः, वयः) प्रजापति ने अजा वकरी जानी को एकपद नामक छन्द से उसी अवस्था के अनुसार उत्पन्न किया (विशालं, छन्दः, टाष्णिम्, वयः) द्विपदा गायत्रीरूप छन्द होकर सेवन में समर्थ भेषु पशु को उसी अवस्था से उत्पन्न किया (तन्द्रं, छन्दः, पुरुषं, वयः) पंक्ति छन्द होकर जातेहुए किन्नर की अवस्था को उत्पन्न किया (अनाधृष्टं, छन्दः, व्याघ्रं, वयः) विराट् छन्द होकर जातेहुए व्याघ्र पशु को उस अवस्था से प्रजापति ने उत्पन्न किया (छदिः, छन्दः, सिंहम्, वयः) अति जगती आदि छन्द होकर जातेहुए सिंह को उस अवस्था से उत्पन्न किया (वृहती, छन्दः, पटुवाट्, वयः) वृहती छन्द होकर जातेहुए पांच वर्ष के पीठार भार वहनेवाले पशु को अवस्था द्वारा उत्पन्न किया (ककुप्, छन्दः, उक्षा, वयः) आदि अन्त में अष्ट अक्षर के दो चरण मध्य मध्य का वारह अक्षर का इसप्रकार के ककुप् छन्द होकर जातेहुए उक्षा को उसी अवस्था से उत्पन्न किया (सतोवृहती, छन्दः, ऋपमम्, वयः) वारह अक्षर के त्रिपादवाले सतावृहती छन्दरूप से गमन करते, भल्लकादि को उसी अवस्था से उत्पन्न किया ॥ ९ ॥

अनुवृत्तान्वयः पंक्ति-छन्दों धेनुर्वयो जगती छन्द
अथर्विवयस्त्रिपुष् । छन्दों द्वित्यवाहवयो विराट्
छन्दः । पंचाविवयो गायत्री छन्दस्त्रिवत्सो वय

उष्णिक् छन्दस्त्वर्थवाद्बर्षानुष्टुप्छन्दः ॥ १० ॥

ऋष्यादि (१) ॐ अनङ्वानिति विनियोगादि पूर्ववत् ।
 मंत्रार्थ—(पंक्ति, छन्दः, अनङ्वान, वयः) पंक्ति छन्द होकर
 जातेहुए बलीवर्द्ध को उस अवस्था से उत्पन्न किया (जगती
 छन्दः, धेनुः, वयः) जगती छन्द होकर गमन करतेहुए धेनु को
 वय से माप्त किया (त्रिष्टुप् छन्दः, त्र्यविः, वयः) त्रिष्टुप्छन्द
 होकर गमन करतेहुए अठारह मासके पशु को वय से उत्पन्न किया
 (विराट् छन्दः, दित्यवाट्, वयः) विराट् छन्द के रूप से गमन
 करते धान्य बहन करनेवाले को उसी अवस्था से उत्पन्न किया
 (गायत्री छन्दः, पंचाविः, वयः) गायत्री छन्द से गमन करते
 ढाई वर्ष के पशु को उसी अवस्था से उत्पन्न किया (उष्णिक्
 छन्दः, त्रिवत्सः, वयः) उष्णिक् छन्द होकर गमन करते तीन
 वर्ष के पशु को उसी अवस्था से उत्पन्न किया (अनुष्टुप्
 छन्दः, तुर्थवाट्, वयः) अनुष्टुप्छन्द होकर गमन करते चार वर्ष
 के पशु को उसी अवस्थासे उत्पन्न किया ॥ १० ॥

इन्द्राग्नी अव्ययमानामिष्टकां दृष्ट्व हतं युवम् ।

पृष्टेन धावापृथिवी अन्तरिक्षं च विवाधसे ॥ ११ ॥

इसका विश्वेदेवा ऋ०, मुरिगनुष्टुप्छन्द, इन्द्राग्नी तथा स्वय
 मातृणा देवता है । मंत्रार्थ—(इन्द्राग्नी, युवम्, अव्ययमानाम्,
 इष्टकाम्, दृष्ट्व हत) हे इन्द्राग्नी दोनों देवताओं ! तुम दोनों अचल
 भङ्गहारहित स्वयमातृणा इष्टका को दृढ करो । हे स्वयमातृणा
 इष्टके ! (पृष्टेन, धावापृथिवी, च, अन्तरिक्षम्, विवाधसे) तुम
 अपने ऊपर के भाग में पृथ्वी स्वर्ग और अन्तरिक्ष को बाधित
 करने में समर्थ होओ ॥ ११ ॥

विश्वकर्मा त्या सादयत्खन्तरिक्षस्य पृष्टे व्यच-
 स्वतीं प्रथंस्वतीमन्तरिक्षं पच्छान्तरिक्षं दृष्ट्व
 हान्तरिक्षं मा हिंसेसीः । विश्वस्मै प्राणायां प्रा-
 नायं व्यानायां दानायं प्रतिष्ठायै चरित्राय वायु-

एवाभिपातु मह्या स्वस्त्या छर्दिषा शन्तमेन तथा
 देवतया अङ्गिरस्वत् ध्रुवा सीद ॥ १२ ॥

इसका विश्वकर्म ऋषि, विकृतिरश्मन्द, वायु दे० है । मंत्रार्थ—
 हे स्वयमातृणे ! (विश्वकर्मा, त्वा, व्यचस्वतीम्, मयस्वतीम्,
 अन्तरिक्षस्य, पृष्ठे, सादयतु) विश्वकर्मा प्रजापति तुम अवकाश
 युक्त विस्तारवाली को अन्तरिक्ष के ऊपर स्थापन करे । हे इष्टके !
 तुम (विश्वस्मै, माणाय, अपानाय, व्यानाय, उदानाय, प्रतिष्ठायै,
 चरिमाय, अन्तरिक्षम्, यच्छ, अन्तरिक्षं, दृष्ट्व, अन्तरिक्षं, मा,
 हिष्टसीः) सम्पूर्ण प्राणियों के प्राण अपान व्यान उदान की
 दृष्टिलाम अर्थात् वायुबल की दृढता के निमित्त, स्वगृह की प्रतिष्ठा
 और शास्त्र आचरण करने के निमित्त तुम अन्तरिक्ष को गन्धर्वादि
 अप्सराओं के धारण योग्य करो, अन्तरिक्ष को दृढ करो, अन्तरिक्ष
 को मत पीड़ा दो (वायुः, त्वा, मह्या, स्वस्त्या, शन्तमेन, छर्दिषा,
 अभिपातु, तथा, देवतया, अङ्गिरस्वत्, ध्रुवा, सीद) वायु देवता
 तुमको बड़ी योगक्षेम की सम्पत्ति से शुभकारी विशेष तेज से सब
 ओर से रक्षा करे तुम्हारा जो अधिष्ठात्री देवता है उस देवता से
 अनुग्रहीत हुई अङ्गिरा की समान निश्चल स्थित होओ ॥ १२ ॥

राश्वसि प्राची दिग्चिराडसि दक्षिणा दिक्
 सम्राडसि मतीची दिक् स्वराडस्युदीची दिग्धि
 पन्थसि बृहती दिक् ॥ १३ ॥

इस क्र० में ५ मंत्र हैं । सबका विश्वदेव ऋ०, छं०—१ या०
 गा०, २, १, या० जु०, ४, याजुष्यु० ५ या० वृ० है और दिग्दे
 देवता है । मंत्रार्थ—हे दिश्या इष्टके ! तुम (राश्वी, प्राची, दिक्,
 असि) राजमान होती पूर्व दिशा गायत्रीरूप हो) विराट्, दक्षिणा
 दिक्, असि) नानामकार से विराजमान तुम दक्षिण दिशा
 त्रिष्टुपरूप हो । (सम्राट्, मतीची दिक्, असि) मलीमकार वि-
 राजमान तुम पश्चिमदिशा जगतीरूप हो । (स्वराट्, उदीची दिक्,
 असि) स्वपं विराजमान तुम उत्तरदिशा अनुष्टुपरूप हो । (अधि-

पत्नी, वृद्धी, दिक्, असि) स्वयं अधिक रक्षा करनेवाली तुम
पंक्तिरूप हो तुमको स्थापन करता हूँ ॥ १३ ॥

विश्वकर्मा त्वा सादयत्यन्तरिक्षस्य पृष्ठे ज्योति-
ष्मतीम् । विश्वस्मै प्राणायानाय व्यानाय
विश्वं ज्योतिर्यच्छ । वायुष्टेधिपतिस्तया देवत-
याङ्गिरस्वद् ध्रुवासीद् ॥ १४ ॥

इसका विश्वेदेवा ऋ०, शक्वरीछं० वायु देवता है । मंत्रार्थ—
हे इष्टके ! (विश्वकर्मा, ज्योतिष्मती, त्वा, अन्तरिक्षस्य, पृष्ठे,
सादयतु, विश्वस्मै, प्राणाय, अपानाय, व्यानाय, विश्वं ज्योतिः,
यच्छ, वायुः, ते, अधिपतिः तया, देवतया, आङ्गिरस्वत्, ध्रुवा,
सीद्) मन्त्रपति वायुरूप तुम्हको अन्तरिक्षके ऊपर स्थापन करे,
यजमानके सम्पूर्ण प्राण, अपान, व्यान के निमित्त सम्पूर्ण ज्योति
को दो, वायु देवता तेरा स्वामी है उस अधिष्ठात्री देवता के मन्त्र
से समष्टि प्राणकी समान इस अग्निचयन कार्य में निश्चल ठहरो १४

नमश्च नमस्यश्च वापिकावृतू अग्नेरन्तः श्ले-
पोसि कल्पेतां यावापृथिवी कल्पन्तामाप
ओषधयः कल्पन्तामग्नयः पृथक् सम ज्यैष्ठ्याय
सद्व्रताः । ये अग्नयः समन्तसोन्तरा यावापृथिवी
इमे वापिकावृतू अभिकल्पमाना इन्द्रमिव देवा
अभिसंविशन्तु तया देवतयाङ्गिरस्वद् ध्रुवे
सीदतम् ॥ १५ ॥

इसका विश्वेदेव ऋ०, स्वराडतिकृति छं०, अतव देवता है ।
मंत्रार्थ—(नमः) श्रावण (नमस्यः) भादों शेष की व्याख्या
१३ । २५ में होगई ॥ १५ ॥

इपश्चोर्जश्च शाशदावृतू अग्नेरन्तः श्लेपोसि
कल्पेताम् यावापृथिवी कल्पन्तामाप ओषधयः
कल्पन्तामग्नयः पृथक् सम ज्यैष्ठ्याय सद्व्रताः ।
ये अग्नयः समन्तसोन्तरा यावापृथिवी इमे

शारदावृत्तु अभिकल्पमाना इन्द्रमिव देवा
अभिसंविशन्तु तया देवतपाङ्गिरस्वद् ध्रुवे
सौदतम् ॥ १६ ॥

इसका विश्वदेव ऋ०, सुरिगुत्कृति छन्द, ऋतु देवता है ।
मंत्रार्थ—(इपः) आश्विन (ऊर्जः) कार्तिक (शारदा) शरद्
(ऋतु) ऋतु के दो अवयव । अ० १३ । कं० २५ में शेष की
व्याख्या होगई ॥ १६ ॥

आयुर्मै पाहि प्राणम्मै पाह्यपानं मै पाहि व्यानं
मै पाहि चक्षुर्मै पाहि श्रोत्रं मे पाहि वाचं मे
पिन्व मनो मे जिन्वात्मानं मे पाहि ज्योतिर्मै
यच्छ ॥ १७ ॥

इस कं० में १० मंत्र हैं । सबका विश्वदेव ऋ०, छं० ३-९,
दैवी त्रि०, १, २, ४ से १० तक दे० पं०, सबका लिंगोक्त दे० है ।
मंत्रार्थ—(मे, आयुः, पाहि, मे, प्राणं, पाहि, मे, अपानं, पाहि,
मे, व्यानं, पाहि, मे, चक्षुः, पाहि, मे, श्रोत्रं, पाहि, मे, वाचं, पिन्व,
मे, मनः, जिन्व, मे, आत्मानं, पाहि, मे, ज्योतिः, पाहि) हे
इष्टके ! मेरी आयु की रक्षा करो, मेरे प्राण की रक्षा करो, मेरे
अपान वायु की रक्षा करो, मेरे व्यान वायु की रक्षा करो, मेरे
दोनों नेत्रों की रक्षा करो, मेरे दोनों कानों की रक्षा करो, मेरी
बाणी को कामनाओं से पूर्ण करो, मेरा मन प्रसन्न करो, मेरे
शरीर की प्रारब्ध समाप्तिपर्यन्त रक्षा करो, मेरे प्राणरूप तेज
की रक्षा करो ॥ १७ ॥

मा छन्दः प्रमा छन्दः प्रतिमा छन्दो अघीवय-
श्छन्दः पंक्तिश्छन्दः वृष्णिक् छन्दो बृहती
छन्दोऽनुष्टुप् छन्दो विराट् छन्दो गायत्री छन्द-
स्त्रिष्टुप् छन्दो जगती छन्दः ॥ १८ ॥

इस कं० में १२ मंत्र हैं । सबका विश्वदेव ऋ०, छं० १, १९,
२८, २२ दैव्यनुष्टुप् २, ५, ६, ९, ११, १६, १९, २०,

२३, २४, दै० वृ०, ३, ७, ८, १०, १२, १३, २१, २५,
 २६, २७, ३०, ३१, दै० पं०, ४, १४, १७, २८, २९, ३१, ३२,
 ३६, दै० त्रि० और सब कालिदासादि दे० हैं। मंत्रार्थ—(ममा छन्दः)
 हे इष्टके ! अन्तरिक्ष, लोक को मनन करते तुमको स्थापन करता
 हूँ। (मतिमा; छन्दः) मतीतिहारक शुनोक्के छन्दक रूप हो।
 मतिमा छन्दको मनन करते तुमको स्थापन करता हूँ, (असीवयः
 छन्दः) पतनशील अन्न त्रिलोकीरूप छन्दक हो, असीवय
 छन्दको मनन करते तुमको स्थापन करता हूँ (पंक्तिश्छन्दः उष्णिक्
 छन्दः, वृहतीछन्दः, अनुष्टुप्छन्दः, विराट् छन्दः, गायत्री छन्दः
 त्रिष्टुप्छन्दः, जगतीछन्दः) पंक्ति छन्दको मनन करते तुमको स्था-
 पन करता हूँ, उष्णिक् छन्दको मनन करते तुमको स्थापन करता
 हूँ, वृहतीछन्दको मनन करते तुमको स्थापन करता हूँ अनुष्टुप्छन्द
 को मनन करते तुमको स्थापन करता हूँ, विराट्छन्दको मनन करते
 तुमको स्थापन करता हूँ, गायत्री छन्दको मनन करते तुमको स्था-
 पन करता हूँ, त्रिष्टुप्छन्द को मनन करते तुमको स्थापन करता हूँ
 जगती छन्दको मनन करते तुमको स्थापन करता हूँ तुम इन सब
 की रूप हो ॥ १८ ॥

पृथिवी छन्दोन्तरिक्षं च योः छन्दः समाश्चन्दो
 नक्षत्राणि चन्दो वाक् छन्दो मनश्छन्दः कृपि-
 श्छन्दो हिरण्यं चन्दो गौश्छन्दोजा चन्दो
 श्वश्छन्दः ॥ १९ ॥

ऋष्यादि पूर्ववत् । मंत्रार्थ—(पृथिवी, छन्दः, अन्तरिक्षं,
 छन्दः, योः, छन्दः, समाः छन्दः, नक्षत्राणि छन्दः, वाक् छन्दः मनः
 छन्दः, कृपिः छन्दः, हिरण्यं छन्दः, गौः छन्दः, अजाः छन्दः, श्वः
 छन्दः) पृथिवी देवतावाले छन्दको मनन करते यह इष्टका स्थापन
 करता हूँ, अन्तरिक्ष देवतावाले छन्दको मनन करते यह इष्टका स्थापन
 करता हूँ, बुदेवतावाले छन्दको मनन करते यह इष्टका स्थापन
 करता हूँ, वर्ष देवतावाले छन्दको मनन करते यह इष्टका स्थापन

करता हूँ, नक्षत्र देवतावाले छन्दको मनन करते यह इष्टका स्थापन करता हूँ, वाग्देवता वाले छन्दको मनन करते यह इष्टका स्थापन करता हूँ, मनदेवता वाले० कृषि देवतावाले० हिरण्य देवतावाले० गौ देवतावाले० अज्ञा देवतावाले० अश्वदेवतावाले छन्दको मनन करते यह इष्टका स्थापन करता हूँ ॥ १९ ॥

अग्निदेवता वाता देवता सूर्यो देवता चन्द्रमा
देवता वसवो देवता रुद्रा देवता अदित्या देवता
मरुतो देवता विश्वेदेवा देवता बृहस्पतिदेवतेद्रो
देवता धरुणो देवता ॥ २० ॥

इसका विश्वदेव ऋ०, भुरिग्भ्राह्मी वि० छं० अग्न्यादय दे० है । मंत्रार्थ—(अग्निः, देवता, वातः देवता, सूर्यो देवता, चन्द्रमा देवता, वसवो देवता, रुद्राः देवता, आदित्याः देवता मरुतो देवता विश्वेदेवाः देवता बृहस्पतिः देवता इन्द्रो देवता बरुणः देवता) अग्नि देवताको मनन करते यह इष्टका स्थापन करता हूँ, वायु देवता० करते० सूर्य देवताको मनन करते यह०, चन्द्रमा देवताको मनन करते यह० वसुदेवताओंको मनन करते यह०, रुद्र देवताओंको मनन करते यह० आदित्यदेवताओंको मनन करते० मरुतदेवताओंको मनन करते यह० विश्वदेवा देवताओंको मनन करते यह० बृहस्पति देवताको मनन करते यह०; इन्द्र देवताको मनन करते यह इष्टका स्थापन करता हूँ ॥ २० ॥

मूर्ध्नासि राड् ध्रुवासि धरुणां धर्न्यासि धरणी ।

आपुंषे त्वा वर्चसे त्वा कृष्यै त्वा क्षेमाय त्वा ॥ २१ ॥

इसका विश्वदेव ऋ०, निचू० नु० छं०, और प्राणदेवता है । मंत्रार्थ—(राड्, मूर्धा, आसि, धरुणा, ध्रुवा, आसि धर्नी, धरणी आपुंषे, त्वा, वर्चसे, त्वा, कृष्यै, त्वा, क्षेमाय, त्वा) हेवालाखिल्ये ! तुम मकाशवाइ मूर्धाकी समान उत्तम हो, धारण करते और स्थिर हो, तुम ध्रुवरूपसे इस स्थलको धारण करो, धारण करनेवाली अमिरूप हो, तुम धरणस्विरूपसे इस स्थलको

धारण करनेमें तत्पर होओ, आयुष्टदिके निमित्त तुमको स्थापन करता हूँ, कान्तिके निमित्त तुमको स्थापन०, अन्नकी वृद्धिके निमित्त तुमको० कल्पाणकी वृद्धिके निमित्त तुमको स्थापन करता हूँ ॥ २१ ॥

यन्त्री राट् यन्त्र्यसि यमनी ध्रुवासि धरित्री ।

इष त्वाँ त्वाँ रयै त्वा पोपाय त्वा लोकन्ता ।

इन्द्रम् ॥ २२ ॥

इसका विश्वदेव ऋ०, परोष्णिक् इ०, प्राणदेवता है । मंत्रार्थ हे बालखिल्ये ! तुम (यन्त्री राट्, यन्त्री, यमनी, असि, ध्रुवा, धरित्री, असि) नियमसे युक्त विराजमान हो इस स्थानमें विराजमान हो, स्वयं भी नियमवाली सबकी नियम करानेवाली हो स्थिर धरणी भूमिरूप हो, हे बालखिल्ये ! (इषे, त्वा, ऊँ त्वा, रयै त्वा, पोपाय त्वा,) अन्न प्राप्तिके निमित्त तुमको स्थापन करता हूँ, बलप्राप्तिके निमित्त तुमको धनप्राप्तिके निमित्त तुमको स्थापन करता हूँ धनपुष्टिके निमित्त तुमको स्थापन करता हूँ ॥ २२ ॥

आशुस्त्रिवृत् भ्रान्तः पंचदशो व्योमाससदशो
ध्रुर्ण एकविंशः प्रतूर्तिरष्टादशस्तपो नवद-
शो भीवृत्ताः सविंशो वर्चा द्वाविंशः सम्भ-
रणस्त्रयोविंशो योनिश्चतुर्विंशः गर्भाः पंच-
विंश ओजस्त्रिणवक्रतुरेकत्रिंशः प्रतिष्ठा
ध्रयस्त्रिंशो मध्नस्पृष्टिषं चतुस्त्रिंशो नाकः
पद्त्रिंशो विवर्तोष्टाचत्वारिंशो ध्रुवं च-
तुष्टोमः ॥ २३ ॥

इसक० में १८ मंत्र हैं । ऋ० १ विश्वदेव और सबका विश्व कर्मा है, छं०-१ वै० वृ०, २, ३, ६, १०, ११, १३, १८ वै० त्रि० ४, ६, ७, १४ वै० ज०, ८, १२, १६ वै० पं०, ९, १७ याजुष्य० १५ या० पं०, सबका लिंगोक्त देवता है । मंत्रार्थ—हे इष्टके ! (त्रिवृत् आशुः) त्रिवृत् स्तोम तथा त्रिलोकमें व्याप्त वायु देवता

को मनन करते त्रिवृत् आष्टरूप तुमको इस स्थान में स्थापन करता हूँ, (पञ्चदशः भान्तः) पन्द्रह दिनमें इस और वृद्धिपाने वाले पंचदश कलाके अधिपति चन्द्रज्योतिको मनन करते तुमको सादन करता हूँ (व्योमा सप्तदश) अनेक प्रकार से रक्षा करने वाला मजापति सप्तदश स्तोमरूप है, (धरुणः एकविंशः) धारण कर्ता प्रतिष्ठा रूप, एकविंश स्तोम है (प्रतूर्तिः अष्टादश) सम्बत्सर बारह महीने पांच ऋतु एक सवत्सर इन अठारह अवयववाला है (तपः, नवदश) तप रूप नवदश स्तोम है, (अभीवर्तः, सविंशः) समावृत्तिरूप सविंशस्तोम है, (वर्चः, द्वविंशः) विशेष बल देनेवाला द्वाविंशस्तोम है, (सम्भरणः त्रयोविंशः) सम्पत् पुष्टिकारक त्रयोविंशस्तोम है, (योनिः चतुर्विंशः) प्रजाका उत्पादक, चतुर्विंशस्तोम है (गर्भाः पञ्चविंशः) सामगर्भ, पञ्चविंशस्तोम है (शोभः प्रिवणः) तेजस्वी, त्रिवणस्तोम है (क्रतुः एकत्रिंशः) यज्ञके उपयोगी, एकत्रिंशस्तोम है (प्रतिष्ठा, त्रयस्त्रिंशः) स्थानकाहेतु, त्रयस्त्रिंशस्तोम है (ब्रह्मस्य त्रिवृत् चतुस्त्रिंशः) सूर्य का, स्वाराज्य निवासस्थान भुवन देनेवाला, चतुस्त्रिंशस्तोम है (नाकः पट्विंशः) स्वर्गका देनेवाला, पट्विंशस्तोम है, (त्रिवर्तः, अष्टचत्वारिंशः) सामके आवर्तनोंसे युक्त, अष्टचत्वारिंश स्तोम है (धर्मम् चतुष्टोमः) धारक होनेसे, त्रिवृत् पञ्चदश सप्तदश, एकविंश इनचार स्तोमोंका संपूर्णरूप है ॥ २३ ॥

अग्नेर्भागोसि दीक्षाया आधिपत्यं ब्रह्मसृप्तं
त्रिवृत्स्तोमः इन्द्रस्य भागोसि विष्णोराधिपत्यं
सत्रं सृप्तं पंचदशस्तोमः नृचक्षसां भागोसि
धातुराधिपत्यं जनित्रं सृप्तं सप्तदशस्तोमः ।
मिथ्रस्य भागोसि चरुणस्याधिपत्यं दिवो वृष्टि-
र्षातंसृप्तं एकत्रिंशस्तोमो वसुनां भागः ॥ २४ ॥

इस कं० मे० मं० है । सवका विश्वदेव ऋ०, छं-१ साम्नी पं०, २ सा० त्रि०३ साम्नी ज०, ४ आर्ची घृ० और दे० सवका

लिङ्गोक्त है । मंत्रार्थ—हे इष्टके जो तुम (अग्नेः भागः, असि, दीक्षायाः, आधिपत्यम्, त्रिवृत्स्वोमः, व्रक्ष, स्पृतम्) अग्निकी, भागदा जो तुम्हारे ऊपर दीक्षाका आधिपत्य है इस कारण तुमसे त्रिवृत्स्वोमद्वारा, प्राक्षणजाति, मृत्युसे रक्षित हुई है त्रिवृत्स्वोम को मनन करते तुमको सादन करताहूँ (इन्द्रस्य, भागः, असि, विष्णोः आधिपत्यं, पंचदशस्तोमः, क्षत्रं, स्पृतम्) इन्द्रका, भाग हो, तुम्हारे ऊपर, विष्णुका आधिपत्यहै, पंचदशस्तोमसे, क्षत्र जातिकी मृत्युमुखसे रक्षाकी है, (नृवक्षसाम्, भागः, असि, धातुः, आधिपत्यम्, सप्तदशस्तोमः जनित्रं स्पृतम्) मनुष्योंके शुभाशुभ जात्रवाले देवताओंके, भाग, हो तुम्हारे ऊपर धाताका आधिपत्यहै तुमने, सप्तदशस्तोमद्वारा वैश्वजातिकी मृत्युमुखसे रक्षा कियाहै सप्तदशस्तोमको मनन करते तुमको सादन करताहूँ (मित्रस्य, भागः, असि, बरुणस्य, आधिपत्यं एकविंशस्तोमः, दिवः, हीष्टः, वातः, स्पृणः) माणोंका भागहो तुम्हारे ऊपर बरुणका आधिपत्य है एकविंशस्तोमकेद्वारा ध्रुलोक सम्बन्धिनी वर्षा पवन मृत्युमुखसे रक्षित है ॥ २४ ॥

वसूनां भागोसि रुद्राणामाधिपत्यं चतुष्पात्स्पृतं
चतुर्विंशस्तोमः । आदित्यानां भागोसि म-
रुतामाधिपत्यं गर्भोस्पृताः पंचविंशस्तोमः ।
अदित्यै भागोसि पूष्ण आधिपत्यमोजस्पृतं
त्रिणवस्तोमो देवस्य सवितुर्भागोसि बृहस्पते
राधिपत्यं समीचीर्दिशस्पृताश्चतुष्टोमः स्तोमो
यवानां भागः ॥ २५ ॥

इस कं०में ४ मं० हैं सबका विश्वेदेव ऋ०छं० १, २ सा० ज०,
१, आर्च्युष्णिक, ४, आर्ची पं० है देवता सबका लिङ्गोक्त है ।
मंत्रार्थ—हे इष्टके तुम (वसूनाम्, भागः, असि, रुद्राणाम् आधि-
पत्यम्, चतुर्विंशस्तोमः, चतुष्पाद् स्पृतम्) वसुगणका भाग हो
तुम्हारे ऊपर रुद्रोंका, आधिपत्यहै, चतुर्विंशस्तोमकेद्वारा तुमने

चौपायोंकी मृत्युमुखसे रक्षाकी है (आदित्यानां, भागः, असि, मरुतां, आधिपत्यं, चत्वारिंशस्तोमः, गर्भाः, स्पृणम्) आदित्य गणोंका माग, हो तुम्हारे ऊपर मरुद्गणोंका आधिपत्यहै, पंचविंशस्तोमकेद्वारा गर्भोंकी मृत्युमुखसे रक्षाकी है पंचविंशस्तोम देवताको मनन करते तुमको इसस्यानमें सादन करताहूँ (आदित्ये मागः, असि, पूष्णः, आधिपत्यं, त्रिणवस्तोमः, श्रोजः स्पृणम्) आदितिके, भाग हो तुम्हारे ऊपर पूषादेवताका अधिकारहै त्रिणवस्तोमद्वारा मजाओंके श्रोज आठवों धातुकी रक्षाकी है त्रिणवस्तोम देवताको मनन करते तुमको स्थापना करताहूँ (सविषुः, देवस्य, भागः, असि, बृहस्पतिः आधिपत्यम्, चतुष्टोमः, समीचीः दिशः स्पृताः) सबके प्रेक सविता देवका भागहो तुम्हारे ऊपर बृहस्पति देवताका स्वामित्व है, चतुष्टोम स्तोमकेद्वारा संपूर्ण मनुष्यों के जाने योग्य दिशा मृत्युसे रक्षा कीगई चतुष्टोमस्तोम देवताको मनन करते तुमको स्थापन करताहूँ ॥ २५ ॥

यवानाम्भागोस्ययवानामाधिपत्यं मजा स्पृताश्च
तुश्चत्वारिंशस्तोमं ऋभूणाम्भागोसि विश्वे-
षान्देवानामाधिपत्यम्भूतश्च स्पृतन्त्रयस्त्रिंश-
स्तोमः सहश्च ॥ २६ ॥

इस कं० में १ मं० हैं । सबका विश्वदेवऋषिः ० १ भु० गा० १ स्वराहू गा० और लिङ्गोक्त देवताहै मंत्रार्थ—हे इष्टके तुम (यवानाम्, भागः, असि, अयवानाम्, आधिपत्यं, चत्वारिंश-
स्तोमः, मजाः, स्पृताः) पूर्वपक्षों के भागहो तुम्हारे ऊपर कृष्णपक्षकी तिथियोंका स्वामित्व है तुमने चत्वारिंशस्तोमके द्वारा मजाकी मृत्युमुखसे रक्षाकी (ऋभूणां, भागः, असि विश्वेषाम् देवानां, आधिपत्यम्, त्रयस्त्रिंशस्तोमः, भूतं, स्पृणम्) ऋभुना-
मक देवताओंका भागहो तुम्हारे ऊपर संपूर्ण देवताओंका आधि-
पत्यहै, त्रयस्त्रिंशस्तोमके द्वारा तुमने प्राणीमात्रकी मृत्युमुखसे रक्षाकी है ॥ २६ ॥

सहस्रं सहस्रं च हैमन्तिकावृतु अग्नेरन्तः
 स्लेपोसि कल्पेतां घावापृथिवी कल्पन्तामाप
 ओषधयः कल्पन्तामग्नयः पृथक् मम ज्यैष्ठ्याय
 सव्रताः । ये अग्नयः समनसोन्तरा घावापृथिवी
 इमे हैमन्तिकावृतु अंभिकल्पमान्ना इन्द्रमिवः
 देवा अंभिसंविशन्तु तया देवतपाङ्गिरस्वद्
 ध्रुवे सीदतम् ॥ २७ ॥

इस कं० में २ मंत्र हैं। सबका विश्वदेव ऋ०, छं०-१. सुरिगति
 ज०, १ भु० घ्रा० वृ० और देवता सबका ऋतु है। मंत्रार्थ—(सहः)
 मार्गशीर्ष (च) और (सहस्यः) पौष (हैमन्तिकौ, अतु) हेमन्त
 ऋतु के अवयव हैं। शेष की व्याख्या मं० १३ कं० १५ में होगई २७
 एकया स्तुवत प्रजा अधीयन्त मजापतिरधिप-
 तिरासीत् । तिसृभिरस्तुवत ब्रह्मासृज्यत ब्रह्म-
 णस्पतिरधिपतिरासीत् । पृथ्वीभिरस्तुवत भूता-
 न्यसृज्यन्त भूतानां पतिरधिपतिरासीत् सप्त-
 भिरस्तुवत सप्त ऋषयोऽसृज्यन्त घाताधिप-
 तिरासीत् ॥ २८ ॥

इस कं० में ४ मंत्र हैं। सबका विश्वदेव ऋ०, छं०-१ साग्नी
 त्रि०, २ ति० गा०, ३ सा० ज०, ४ सा० त्रि० है। मंत्रार्थ—
 (एकया, मजाः, अधीयन्त, मजापतिः, अधिपतिः, आसीत्)
 मजापति ने एक ही वाणी के साथ आत्मा की स्तुति की उससे
 सब मजा उत्पन्न हुई मजापति उनके स्वामी हुए (तिसृभिः, अ-
 स्तुवत, ब्रह्म, असृज्यत, ब्रह्मणस्पतिः, अधिपतिः, आसीत्)
 प्राण उदान व्यानोंसे स्तुतिकी वेदकी रचनाकी वेदकर्त्ता स्वामी
 हुए (पृथ्वीभिः, अस्तुवत, भूतानि, असृज्यन्त, भूतानाम्पतिः,
 अधिपतिः, आसीत्) पाँच प्राणों से स्तुति की उससे पञ्चभूय

आसीत्) श्रोत्र २ नासिका २ चक्षु २ जिह्वा १ इन सातों की सहायता से स्तुति की सप्ताश्रुपि प्रकट हुए अगत्कर्त्ता देव उनके स्वामी हुए ॥ २८ ॥

नवभिरस्तुवत पितरोऽसृज्यन्तादितिरधिपत्न्या-
सीत् । एकादशभिरस्तुवत ऋतवोऽसृज्यन्ता-
र्त्तुवा ... अधिपतय । आसन्नयोदशभिरस्तुवत
मासाऽसृज्यन्त संवत्सरोधिपतिरासीत्पञ्च-
दशभिरस्तुवत चन्द्रमंसृज्यतेन्द्रोधिपतिरासी-
त्सप्तदशभिरस्तुवत ग्राम्याः पृथवोऽसृज्यन्त
पृहस्पतिरधिपतिरासीन्नवदशभिरस्तुवत ॥ २९ ॥

इस कं० में ५ मं० हैं, सबका विश्वदेव ऋ०, छं०-साम्नी
पं० २, ३ सां० ज० ४ आर्च्युं, ५ आ० वृ०, और सबका सृष्टी-
ष्टिका दे० है । मन्त्रार्थ—(नवभिः, अस्तुवत, पितरः, आदितेः,
अधिपत्नी, आसीत्) सातशिरकेमाण और दो नवि अर्थात् नव
द्वार शरीरके माणोंकी सहायतासे प्रार्थनाकी वससे पितृ॥ण अग्नि-
ष्वात्तादि उत्पन्न हुए अत्रापिठत प्रमापति शक्ति उनकी स्वामिनी
हुई कारण कि पितर अपनी अत्रण्ड शक्तिसे ही सर्वत्र श्राद्ध
करनेवालोंको प्राप्त होते हैं (एकादशभिः, अस्तुवत ऋतवः, असृ-
ज्यन्त, आर्त्तवाः, अधिपतयः, आसन्) दशमाण ग्यारहवां आत्मा
इन ग्यारहसे, स्तुतिकी वससे वसन्तादि ऋतु प्रकट हुई उनके
ऋतुपालक देवविशेष स्वामी होते हुए (त्रयोदशभिः, अस्तुवत,
मासाः, असृज्यन्त, संवत्सरः, अधिपतिः, आसीत्) दश माण
दोषाद [प्रतिष्ठा] एक आत्मा अभ्यन्तरीय संस्थान से स्तुति
की, वससे चैत्रादि अधिक मास सहित रचनाकी दो अयन मास
का अभिमानी वर्ष उनका पालक हुआ (पञ्चदशभिः, अस्तुवत
चन्द्रम्, असृज्यन्त, इन्द्राः, अधिपतिः, आसीत्) दश हाथकी
अंगुली दो हाथ दो भुजा एक नाभिका ऊर्ध्वभाग इनके द्वारा
स्तुतिकी सन्निय जातिकी उत्पन्न किया, उनका इन्द्र स्वामी हुआ

(सप्तदशभिः, अस्तुवत, ग्राम्याः, पशवः, असृज्यन्त वृहस्पतिः, अधिपतिः, आसीत्) दश पैरकी अंगुलि दो उर दो जानु दो पाद और नाभिका अधोभाग इनके देवताओं सहित स्तुतिकी उनसे ग्रामके गाँ आदि पशुओं की रचना की वृहस्पति देवता उनके स्वामी हुए ॥ २९ ॥

नवदशभिरस्तुवत शूद्रार्यांसृज्येतामहोरात्रे
अधिपत्नी आस्ताम् । एकविंशत्यास्तुवतैक-
शकाः पशवोसृज्यन्त वरुणोधिपतिरासीत् ।
त्रयोविंशत्यास्तुवत क्षुद्राः पशवोसृज्यन्त
पूषाधिपतिरासीत् । पञ्चविंशत्यास्तुवतारण्याः
पशवोसृज्यन्त वायुरधिपतिरासीत् । सप्त-
विंशत्यास्तुवत चार्वाष्ट्रिची व्येतां षसवो
क्षुद्रा आदित्या अनुष्णांस्त एवाधिपतय आसन् ॥ ३० ॥

इस कं० में ९ मं० हैं । सबका विशद्व ऋ०, छं०-१ नि०
दा० वृ०, २ भु० सा० ज०, ३ नि० सा० ज०, ४ सा० ज०,
५ आ० ज० और सबका सृष्टीष्टिका देवता है । मन्त्रार्थ—
(नवदशभिः, अस्तुवत, शूद्रार्यैः, असृज्येताम्, अहोरात्रे, अधिपत्नी,
आस्ताम् । दश हाथ की अंगुलि ऊपर नीच के छिद्ररूप नौ माणों
से स्तुति की उससे शूद्र और वैश्य जाति उत्पन्न कीं, उनके दिनरात
स्वामी हुए (एकविंशत्या, अस्तुवत, एकशकाः, पशवः, असृज्यन्त,
वरुणः, अधिपतिः, आसीत्) बीस हाथ पैरकी अंगुली दो चरण एक
आत्मा उनसे स्तुतिकी, एकखुरवाले पशु उत्पन्न किये, वरुण उनका
स्वामी हुआ (त्रयोविंशत्या, अस्तुवत, क्षुद्राः, पशवः, असृज्यन्त,
पूषा, अधिपतिः, आसीत्) बीस हाथ पैर की अंगुलि दो चरण
एक आत्मा इनके साथ स्तुतिकी इससे क्षुद्र पशु अजाआदि उत्पन्न
किये पूषा देवता उनका स्वामी हुआ (पञ्चविंशत्या, अस्तुवत,
आरण्याः, पशवः, असृज्यन्त, वायुः, अधिपतिः, आसीत्) बीस
हाथ पैर की अंगुलि दो हाथ दो चरण एक आत्मा के साथ

स्तुति की उससे वन के कृष्णामृगादिक पशु उत्पन्न किये वायु देवता उनका स्वामी हुआ (सप्तविंशत्या, अस्तुवत, यावापृ-
थिवी, व्येताम, वसवः, रुद्राः, आदित्याः, अनुव्यायन्, ते, एव,
अधिपतयः आसन्) बीस हाथ पैर की अंगुली दो भुजा दो
ऊरु दो प्रतिष्ठा एक आत्मा इन के साथ स्तुति की स्वर्गलोक
भूलोक अन्तरिक्षलोक प्रकटहुए वसुगण रुद्रगण आदित्यगण
इन के अनुगत होने से क्रम से ये ही इनके स्वामी हुए ॥ ३० ॥

नवविंशत्यास्तुवत वनस्पतयोऽसृज्यन्त सोमो
अधिपतिरासीत् । एकत्रिंशतास्तुवत । मजा
असृज्यन्त यवाश्चायवाश्चाधिपतय आसन् ।
त्रयस्त्रिंशतास्तुवत भूतान्यंशाभ्यन्मजापतिः
परमेष्ठ्याधिपतिरासीत् ॥ ३१ ॥

इस कं० में ३ मं० हैं । सबका विश्वदेव ऋ० छं० १ नि०
सा० ज० २, ३ नि० आ० वृ- सबका सृष्टीष्टिका दे० । मंत्रार्थ
(नवविंशत्या, अस्तुवत, वनस्पतयः, असृज्यन्त, सोमः, अधि-
पतिः आसीत्) बीस हाथ पैर की अंगुली नवप्राणके छिद्रोंके
साथ स्तुतिकी इससे वनस्पति अश्वत्थ वट आदिकी रचनाकी
उनका सोम स्वामी हुआ (एकत्रिंशता, अस्तुवत, मजाः,
असृज्यन्त, यवाः, च, अयवाः, च, अधिपतयः, आसन्) २०
हाथ पैरकी अंगुली १० इन्द्री एक आत्माके साथ स्तुतिकी उन
से अन्यान्य सङ्पूर्ण मजाकी रचनाकी पूर्वपक्ष और उत्तरपक्षकी
उनके स्वामी हुए, (त्रयस्त्रिंशता, अस्तुवत भूतानि अशाभ्यन्
परमेष्ठी, मजापतिः, अधिपतिः, आसीत्) बीस अंगुली दश इंद्रिय
दो पाद और आत्माके सहित स्तुतिकी उससे उत्पन्न समस्त
प्राणियोंके शांतिनामकी अर्थात् सुखी हुए, सर्वलोकमें स्थित होने
वाले मजापालक ईश्वर उनके स्वामी हुए ॥ ३१ ॥

इति शुक्ल यजुर्वेदान्तर्गत वाजसनेयिकंहिता का सामुवाद्

शौचहर्षा अध्याय समाप्त ॥

अथ पंचदशोऽध्यायः ॥



जिसमें चित्ति प्रधान है ऐसे चौदहवें अध्याय में दूसरी तीसरी चौथी चित्तिके मन्त्र कहे । अब पन्द्रहवें अध्यायमें पांचवीं चित्तिके मन्त्र कहे जायेंगे ।

॥ हरिः ॐ ॥ अग्नें ज्ञातान् प्रणुंदानः सपत्नान्
प्रत्यजातान्नुद जातवेदः । अधि नो ब्रूहि सुमना
अहेङ्स्तव स्याम शमोस्त्रिवरुथ उद्भौ ॥ १ ॥

इसका परमेष्ठी ऋ०, त्रिष्टुर् छं०, अग्नि दे० है । मंत्रार्थ (जातवेदः, अग्ने, नः, ज्ञातान्, सपत्नान्, आ, प्रणुद, अजातान्, प्रतिनुद, सुमनाः, अहेङ्, नः, अधिब्रूहि) हे सबके जानने वाले अग्नि देव हमारे पूर्व उत्पन्न शत्रुओंको सब प्रकारसे अधिकतासे नष्टकरो, अनुत्पन्न शत्रुओंको बिनष्ट करो अरुद्धे अन्तःकरणसे क्रोधरहित होकर हमको वर प्रदान करो—हे अग्ने (तव शर्मन्, उद्भौ. त्रिवरुथे स्याम) आपके सम्बन्धी सुखके आश्रय मनुष्य पशु धन धान्य आदिके प्रभवस्थान, सदीमण्डप हविर्धान्य आग्नीध्र प्रदेश इन तीनों स्थानोंमें, सदा यज्ञ करै ॥ १ ॥

सहसा ज्ञातान् प्रणुंदानः सपत्नान् प्रत्यजाता-
जातवेदो नुदस्व । अधि नो ब्रूहि सुमनस्यमानो
वयस्त्रिषाम् प्रणुंदानः सपत्नान् ॥ २ ॥

इसका परमेष्ठी ऋषि, त्रि० छन्द, अग्नि देवता है । मंत्रार्थ (जातवेदः, सहसा, ज्ञातान् नः सपत्नान्, आ, प्रणुद, अजातान्, प्रतिनुदस्व, सुमनस्यमानः, नः, अधिब्रूहि, वयम्, आ, स्याम) हे जातमज्ञान अग्ने ! बलसे उत्पन्न हुए हमारे शत्रुओंका सब ओरसे नाशकरो भविष्यत्में होनेवालोंकी उत्पात्तिकी रीकी सदन्तःकरण से क्रोधरहित हो हमको शत्रुओंसे बली कही, तुम्हारे प्रसादसे हम सब प्रकार अधिक हों, (नः, सपत्नान्, प्रणुद) हमारे शत्रुओंका नाश करो ॥ २ ॥

पोहशीस्तोम ओजो द्रविणं चतुधत्वारिंश
स्तोमो वर्चो द्रविणम् । अग्नेः पुरीषमस्वप्नो
नाम् तान् त्वा विश्वे अभिष्टगन्तु इवाः । म्ना-

मंपृष्ठा घृतवतीह सीद प्रजावदस्मे द्रविणा यजस्व रे
इसका परमेष्ठी ऋ०, छं० १-आ० त्रि०, २ आसुर्यनु०, ३
निष्० त्रि० और देवता सबका इष्टिका है । मंप्रार्थ-दे इष्टके !
(पोहशीस्तोमः, ओजः द्रविणं) पंचदशकला और पक्षका स्वामी
आदित्यरूप पोहशष्टिरूप स्तोमके प्रभावसे तुमको स्थापन करता
हूँ, इस स्थानमें तेज और धनही माप्ति हो, हे इष्टके ! (चत्वारि
ंशः, वर्चः द्रविणम्) चौबालीस आष्टितियुक्त चतुधत्वारिंशस्तो
रूप वज्र कान्तिरूप धन प्राप्ति (अस्तः, नाम, अग्नेः, पुरीषम्,
असि, ताम्, त्वा, विश्वे, देवाः, अभिष्टगन्तु, स्तोमपृष्ठा, घृत-
वती, इह, सीद, अस्मे, प्रजावत्, द्रविणं, आयजस्व) रक्षक नाम
से युक्त, पंचदश कलावाले चन्द्ररूप अग्निके पूर्ण करनेवाले हो
उस तुमको सम्पूर्ण देवता स्तुति करै, सम्पूर्ण स्तोमपृष्ठ मंत्रोंके
प्रभावसे होमरूप घृतसे संयुक्त होती तुम इस चौबीस चित्तिके ऊपर
ठहरो हमको इसके फलरूपसे पुनयुक्त धनदो ॥ ३ ॥

एशुश्छन्दो धरिश्छन्दः शम्भुश्छन्दः पारि-
शुश्छन्दः आच्छच्छन्दो मनुश्छन्दो नपश्-
श्छन्दः सिन्धुश्छन्दः समुद्रश्छन्दः सरि-
श्छन्दः क्रकृश्छन्दः क्षिकृश्छन्दः काव्यं छन्दो
अंकुषं छन्दोक्षरंपंक्तिश्छन्दः पदपंक्तिश्छन्दो
विप्रारपंक्तिश्छन्दः धुरोभ्रजश्छन्दः ॥ ४ ॥

इस कं० में ४० मं० हैं । सबका परमेष्ठी ऋ० है । छं०—१,
३, ५, ६, ७, ८, ११, १३, १९, २०, २१, २२, २३, २७,
२८, २९, ३१, ३५, ३७, ३९, देवी वृ० २, ४, ९, १०, १२,
१४, २५, २६, ३०, ३२, ३४, ३६, ३६, ४०, दै० पं० १६,
१८, २४, ३८, दै० त्रि०, १६, १७, दै० ज० है और सबका

इष्टका दे० है । मंत्रार्थ—हे इष्टके (एवञ्छन्दः, धरिवश्छन्दः, शम्भूश्छन्दः, परिभूश्छन्दः, आच्छन्दः, मनश्छन्दः, व्यचश्छन्दः, सिन्धुश्छन्दः, समुद्रश्छन्दः, सरिरश्छन्दः, ककुब्जश्छन्दः, त्रिककुब्जश्छन्दः, काव्यश्छन्दः, अक्काश्छन्दः, अक्षरपंक्तिश्छन्दः, पदपंक्तिश्छन्दः, त्रिप्यारपंक्तिश्छन्दः, क्षुराभ्रजश्छन्दः) जिसमें सब प्राणी चलते हैं ऐसे भूलोकको मनन करते-भुमको स्थापन करताहूँ प्रभामण्डलसे व्याप्त अन्तरिक्षलोक, मुखदायक द्युलोकको मनन करते सबभोर से व्याप्त होकर वर्तमानदिशाको मनन करते, अपने रसंत शरीरको आच्छादन करनेवाले अन्नको० प्रजापतिरूप मनको० सब जगत्को व्याप्त करने वाले आदित्यको० नाडियों द्वारा शरीर को व्याप्त करनेवाले प्राणवायुको० समुद्रके समान गम्भीर विकल्पयुक्त मन को० मुखसे निकलने वाली वाणीको० शरीरको दीक्षकर धारण करने वाले प्राणको० पिये हुए जलको तीन प्रकार का करने वाले उदानको० त्रयी विद्या अर्थात् वेदत्रयको० कुटिलगति चलने वाले जलको० नाशरीहत स्वर्गलोक को०, जिसमें चरण रखेजातेहैं उस भूलोकको०, जहां सकल वस्तु विस्तारितहै उस दिशा पाताल को०, तीव्रतासे आकाश को लिखने प्रकाशनेवाले विद्यत्पुञ्ज वा आदित्यको मनन करते हुए स्थापन करताहूँ ॥ ४ ॥ :

आच्छच्छन्दः प्रच्छच्छन्दः संघच्छन्दो विघच्छन्दो
बृहच्छन्दो रथन्तरं छन्दो निकायश्छन्दो वि-
वधश्छन्दो गिरश्छन्दो भ्रजश्छन्दः संस्तु-
च्छन्दोऽनुपुच्छन्दः एवश्छन्दो धरिवश्छन्दो व्य-
श्छन्दो वयस्कृच्छन्दो विष्पञ्जश्छन्दो विशालं
छन्दश्छन्दिरश्छन्दो दूरोद्गणं छन्दस्तन्द्रच्छन्दो
अंकाङ्कश्छन्दः ॥ ५ ॥

ऋष्यादि-पूर्ववत् मंत्रार्थ-(आच्छच्छन्दः, प्रच्छच्छन्दः, संघच्छन्दः
विघच्छन्दः, बृहच्छन्दः, रथन्तरं छन्दः, निकायश्छन्दः, विविधश्छन्दः
गिरश्छन्दः, भ्रजश्छन्दः, संस्तुच्छन्दः, अनुपुच्छन्दः, एवश्छन्दः)

परिवहन्तः, वयश्चन्दः, वयस्कृच्छन्दः, विपद्दीश्वन्दः, विशाल-
 लच्छन्दः, छदिश्वन्दः, दूरोहणं चन्दः, तन्द्रेच्छन्दः, अह्नाच्छन्दः)
 शरीरका आच्छादक अन्नहै उसको मनन करते०, शरीर प्रच्छा-
 दक जलके व्यापारकी नियर्त्तक रात्रिको० विशेष व्यापार पर्वत्तक
 दिन को० जहाँ रयादि द्वारा गमन करते हैं उस भूलोकको०,
 अत्यन्त शब्दकारक वायुको०, जहाँ भूत मेन रूपसे विविध प्रकार
 के पाप भोगे जाते हैं उस अन्तरिक्षको०, भक्षणयोग्य अन्नको०,
 प्रकाशवान् अग्निको०, वैखरी वाणीको० मध्यमा वाणीको०
 पृथ्वी लोकको० प्रभामण्डलको० बाल्यादि अवस्था के हेतु
 अन्नको० बाल्यादिकारक जाठराग्निको० विविध पेद्रवर्ष की
 प्राप्तिवाले स्वर्गको०, स्पर्धामूलक अहंतस्वको०, जहाँ मनुष्य अनेक
 प्रकारसे शोभित होते हैं उस भूतलको०, सूर्यकी किरणोंसे आच्छा-
 दित होने वाले अन्तर्िक्षको० ज्ञानको० अज्ञानको०, यास्तिकताके
 निदर्शन अथवा गर्त पापाणादि युक्त जलको मनन करते तुमको
 स्थापन करता हूँ ॥ ५ ॥

रश्मिनां सत्यार्थं सत्यञ्जिन्व प्रेतिना घर्म्मणा
 घर्म्मञ्जिन्वा न्वित्या दिवा दिधं जिन्व सन्धिना-
 न्तरिक्षेणान्तरिक्षं जिन्व प्रतिधिना पृथिव्या
 पृथिवीं जिन्व विष्णुभेन वृष्ट्या वृष्टिं जिन्व प्रव-
 यान्हाहर्जिन्वानुषा रात्र्या रात्रौञ्जिन्वोशिजा
 वसुंभ्यो वसुंञ्जिन्व प्रकृतेनादित्येभ्य आदित्या-
 ञ्जिन्व तन्तुना रायः ॥ ६ ॥

इस के में २९ मं० हैं सबका परमेष्ठी ऋ० छं० १, २, ६, ९,
 १७, या० पं० ३, ८, १८, २६, २९, या० वृ० ४, ५, १०, या० ज०
 ७, २०, याजुष्यु०, ११ सा० उ०, १३, १४, १५, १६, या०
 वि० २९, २१, २२, २३, २४, २५, २७, २८, याजुष्यु०, सयका
 इष्टका देवता है । मंत्रार्थ-दे इष्टके तुम (रश्मिना, सत्याय, सत्यं,
 जिन्व) अन्नके प्रभासे सत्यके निमित्त सत्य वाणीको गीति करो

(प्रीतिना, धर्मणा, धर्म, जिन्य) देहमें गतिवाले अन्नके प्रभाव से, धर्म के निमित्त धर्मको प्रीतिकरो, (अन्वित्या, दिवा, दिवं जिन्य) देहमें गतिवाले अन्नके प्रभावसे, दिव्य लोकके निमित्त युक्तोक्तको प्रीतिकरो, (सन्धिना, अन्तरिक्षेण, अन्तरिक्षं, जिन्य) पलादिके आधार अन्नके प्रभावसे अन्तरिक्षके निमित्त अन्तरिक्षको प्रीतिकरो, (प्रतिधिना, पृथिव्या, पृथिवीम् जिन्य) मत्स्यके इन्द्रियके आधार अन्नके प्रभावसे, अन्तरिक्षके निमित्त पृथिवीको प्रीतिकरो (विष्टम्भेन, वृष्ट्या, वृष्टिम्, जिन्य) देहादिके स्तम्भ करने वाले अन्नके प्रभावसे वृष्टिके निमित्त वर्षाको प्रीतिकरो (मयया, अन्हा, अहः, जिन्य) देहमें गमनागमनकारी अन्नके प्रभावसे दिनके निमित्त दिनको प्रीतिकरो (अनुया, रात्र्या, रात्री, जिन्य) देहान्तर्गत ७२ नाडियों में गमनागमनकारी अन्नके प्रभावसे रात्रिके निमित्त रात्रिको प्रीतिकरो, (उशिना, वसुभ्यः, वसुन, जिन्य) समस्त प्राणियों के आकांक्षणीय अन्नके प्रभावसे, वसुओंके निमित्त वसुगणको प्रीतिकरो (प्रकृतेन, आदित्येभ्यः, आदित्यान्, जिन्य) सुखानुभवके कारण अन्नके प्रभावसे आदित्योंके निमित्त आदित्योंको प्रीतिकरो ॥ ६ ॥

• तन्तुना रायस्पोषेण रायस्पोषं जिन्य स्रथसर्पेण
श्रुताय श्रुतं जिन्यैडेनौपधीभिरौपधीर्जिन्योत्तमेन
तनूभिस्तनूजिन्य वयोधसार्धातेनार्धातजिन्या-
भिजिता तेजसा तेजो जिन्य ॥ ७ ॥

ऋष्यादि ६ मंत्र में कहदिये । मंत्रार्थ—(तन्तुना, रायस्पोषेण, रायस्पोषम् जिन्य) शरीरके वर्द्धक-अन्नके प्रभावसे धनकी-पुष्टिके निमित्त धनकी पुष्टिको प्रीतिकरो (स्रथसर्पेण, श्रुताय, श्रुतं, जिन्य) मति इन्द्रियमें फैलनेवाले अन्नके प्रभावसे शास्त्रके निमित्त शास्त्रको प्रीतिकरो (एतेन औपधीभिः, औपधीः, जिन्य) प्रसिद्ध अन्नके प्रभावसे औपधियोंके निमित्त औपधियोंको प्रीतिकरो (उत्तमेन, तनूभिः, तनूः, जिन्य) पृथ्वीके उत्कृष्ट पदार्थ अन्नके प्रभावसे

तनुओंके निमित्त शरीरोंको प्रीतिकरो (वयोधसा, अधीतेन अधी-
तम्, जिन्व) शरीरके उपचयकारी अन्नके प्रभावेसे अध्ययन के
निमित्त अध्ययनको प्रीतिकरो (अभिजिता, तेजसा, तेजः, जिन्व)
बलकारी अन्नके प्रभावेसे तेजके निमित्त तेजको प्रीतिकरो ॥ ७ ॥

प्रतिपदसि प्रतिपदे त्वानुपदस्यनुपदे त्वा सम्प-
दसि सम्पदे त्वा तेजोसि तेजसे त्वा त्रिवृदसि ॥ ८ ॥

ऋष्यादि ६ ठे मंत्र में कहदिये । मंत्रार्थ—हे इष्टके (प्रतिपद,
असि, प्रतिपदे, त्वा) जिससे जीवनका अस्तित्व प्राप्त होताहै
ऐसे अन्नरूप हो, अन्नमाप्ति के निमित्त तुमको उपधान करताहूं
तुम—(अनुपद, असि, अनुपदे, त्वा) इन्द्रियोंको स्वस्वकार्य में
समर्थ करनेवाले अन्नरूप हो अन्नके निमित्त तुमको उपधान
करताहूं तुम (सम्पद, असि, सम्पदे, त्वा) सम्पत्तिप्रतिपादक
अन्नरूप हो अन्नसम्पत्तिके निमित्त तुमको सादन करताहूं (तेजः,
असि, तेजसे, त्वा) शरीरमें तेजोदायक अन्नरूप हो तेजके निमित्त
तुमको सादन करताहूं ॥ ८ ॥

त्रिवृदसि त्रिवृते त्वा प्रवृदसि प्रवृते त्वा विवृदसि
विवृते त्वा सवृदसि सवृते त्वा क्रमोस्याक्रमाय
त्वा संक्रमोसि संक्रमाय त्वोत्क्रमोस्तुत्क्रमाय
त्वोत्क्रान्तिरस्तुत्क्रान्त्यै त्वाधिपतिनोर्जोर्ज-
ञ्जिन्व ॥ ९ ॥

ऋष्यादि ६ ठे मंत्रमें लिखचुके । मंत्रार्थ—हे इष्टके ! तुम
(विष्टु, असि, त्रिवृते, त्वा) कृषि वृष्टि और बीजसं उत्पन्न
अन्नरूप हो, अन्नके निमित्त तुमको सादन करता हूं—तुम (प्रवृत्त
असि, प्रवृत्ते, त्वा) सब माणियोंको कार्यमें प्रवृत्तिकारी अन्न
रूप हो, कार्यप्रवृत्ति के निमित्त तुमको सादन करता हूं (विष्टु
असि, विष्टुते त्वा) मत्पेक इन्द्रियको उस २ कार्यमें प्रवर्धक
अन्नरूप हो प्रवृत्तिके निमित्त तुमको सादन करता हूं (सवृत्त,
असि, सवृत्ते, त्वा) जीवनके सहचारी अन्नरूप हो अन्नके निमित्त

तुमको सादन करता हूँ । तुम (आक्रमः, असि, आक्रमाय, त्वा)
 क्षुधाका तिरस्कार करनेवाले अन्नरूप हो, अन्नप्राप्तिके निमित्त
 तुमको सादन करता हूँ (संक्रमः, असि, संक्रमाय, त्वा) संतां-
 नोत्पत्तिका बीज अन्नरूप हो, संतानप्राप्तिके निमित्त तुमको उप-
 हित करता हूँ, तुम (उत्क्रमः, असि, उत्क्रमाय, त्वा) जन्मका
 निदानभूत अन्नरूप हो, उत्क्रमके निमित्त तुमको सादन करता
 हूँ, (उत्क्रान्तिः असि, उत्क्रान्त्यै त्वा) उत्कृष्ट गमनवाले अन्न
 रूप हो उत्क्रान्तिके निमित्त तुमको सादन करता हूँ ॥ २ ॥

राज्ञपसि प्राची दिग्बसंवस्ते देवा अधिपतयो-
 ग्निहेतीनां प्रतिधर्त्ता त्रिवृत त्वा स्तोमः पृथि-
 व्याथ श्रयत्वाज्यं मुख्यमव्यथायै स्तभ्नातु रथ-
 न्तरं साम् प्रतिष्ठित्या अन्तरिक्ष ऋषयस्त्वा
 प्रथमजा देवेषु दिवो मात्रया वरिष्णा प्रथन्तु
 विधर्त्ता चायमधिपतिश्च ते त्वा सर्वे संविदाना
 नाकस्य पृष्ठे स्वर्गो लोके यजमानं च सादयन्तु ॥१०॥

इस कं० में २ मंत्र हैं सबका परमेशी ऋ०, १ वि० वा० त्रि०
 छं०, २ प्रा० वृ० छं०, लिङ्गोक्तं देवता है । मंत्रार्थ—हे इष्टके !
 तुम (राज्ञी, प्राची, दिक्, असि, वसवः, देवा ते, अधिपतयः,
 अग्निः, हेतीनाम्, प्रतिधर्त्ता, त्रिवृत्स्तोमः, त्वा पृथिव्यां, श्रयतु,
 आज्यं, उक्तं, अव्यथायै, स्तभ्नातु, रथन्तरं, साम्, अन्तरिक्ष,
 प्रतिष्ठित्यै, प्रथमजाः, ऋषयः, देवेषु, दिवः, मात्रया, वरिष्णा,
 त्वा, प्रथन्तु, विधर्त्ता, च, अयम्, अधिपतिः, च, त्वा, ते, सर्वे,
 संविदानाः, नाकस्य, पृष्ठे, स्वर्गलोके, यजमानं, च, सादयन्तु)
 राजमान पूर्वदिशा दूर हो आठवसु देवता तुम्हारे पालक हैं, अग्नि
 देवता तुम्हारी सम्पूर्ण वाधाओंका निवारक है, त्रिवृत्स्तोम तुम
 को पृथ्वीमें स्थापन करो, आज्यनामक शत्रुव्यथाहीनता अर्थात्
 दृढ़ताके निमित्त तुमको दृढ़ करे, रथन्तर साम् अन्तरिक्षलोकमें
 प्रतिष्ठितके निमित्त तुमको दृढ़ करे प्रथमोत्पन्न प्राण देवता आकाश

की परिमाणना उहगानिस्तारसे तेरा विस्तार करै इष्टका निष्पादन करनेवाला और यह इष्टकापानक भी तुमको विस्तारित करै, इस प्रकार वं सम्पूर्ण वसुधादि देवता एकमात्रसे स्थित हुए सुख स्वरूप लोकरु ऊपर स्वर्गलोकमें यज्ञमानको अवश्यही प्राप्त करै ॥

विराडसि दक्षिणां दिमुद्रास्तै देवा अधिपतवु
इन्द्रो हेतीनां प्रतिघृत्ता पंचदशस्त्वा स्तोमः
पृथिव्यां श्रयतु प्र उगमुक्थमव्यथायै स्तभ्नातु
बृहत्साम् प्रातिष्ठित्वा अन्तरिक्ष ऋषयस्त्वा
प्रथमजा देवेषु दिवो मात्रया चरिष्णा प्रथन्तु
विघृत्ता चायमधिपतिश्च ते त्या सर्वे संविदाना
नाकस्य पृष्ठे स्वर्गे लोके यजमानं च सादयन्तु ॥११॥

इसका परमेष्ठी ऋ०, पूर्वम्य भुरिगवाह्नी त्रि० छं०, लिङ्गोक्त देवता है (प्रथमजा इत्यस्य प्रा० वृ० छन्दः) मंत्रार्थ—हे इष्टके! तुम (विराट्, दक्षिणा, दिक्, द्यासि, रुद्राः, देवाः, ते, अधिपतयः इन्द्रः, हेतीनाम्, प्रतिघृत्ता, पंचदशः, स्तोमः, त्वा, पृथिव्याम्, श्रयतु, प्र उगं, उक्थम् अव्यथायै, स्तभ्नातु, बृहत्साम्, अन्तरिक्षे, प्रातिष्ठित्यै०) विशेष विराजमान दक्षिण दिशा हो रुद्र देवता तुम्हारे पालक हैं, इन्द्र देवता व्याधियोंका निवर्तक है, पंचदश स्तोम तुमको पृथिवीमें स्थापित करै प्र उगनामक उक्थदृहताके निमित्त तुमको स्तंभित करै, बृहत्साम अन्तरिक्ष में प्रतिष्ठाका कारण हो, शेष पूर्वकी समान है ॥ ११ ॥

विराडसि प्रतीची दिमादित्यास्तै देवा अधि-
पतयो वरुणो हेतीनां प्रतिघृत्ता संसदशस्त्वा
स्तोमः पृथिव्यां श्रयतु मरुत्पतीर्षमुक्थमव्य-
थायै स्तभ्नातु वैरूपं साम प्रातिष्ठित्वा अन्त-
रिक्ष ऋषयस्त्वा प्रथमजा देवेषु दिवो मात्रया
चरिष्णा प्रथन्तु विघृत्ता चायमधिपतिश्च ते
त्या सर्वे संविदाना नाकस्य पृष्ठे स्वर्गे लोके

घर्जमानं च सादयन्तु ॥ १२ ॥

इसका परमेष्ठी ऋषि, पूर्वभ्य नि० त्रा० ज० छं०, वा प्रथमजा इत्युत्तरस्य त्रा० वृ० छं०, लिङ्गोक्त दे० है। मंगार्थ—हे इष्टके। तुम (स्वराट्, प्रीची, दिक्, आसि, आदित्याः, देवाः, ते अधिपतयः, वरुणः, हेतीनाम्, प्रतिधर्ता, सप्तदशः, स्तोमः, त्वा, पृथिव्यां, श्रयतु, मरुत्वतीपम्, उक्ष्यं, अक्षयथायै, स्वभ्नातु, वैरूपं, साम, गतिष्ठित्यै, अन्तरिक्षे०) विशेष दीक्षिमान् पथिमा दिशा हो आदित्य देवता तुम्हारे पालक हैं, वरुण दुःखों का निवारक है, सप्तदश स्तोम तुमको पृथ्वीमें दृढकरो मरुत्वतीप शस्त्र दृढताके निमित्त तुमका स्थापन करै वैरूप साम गतिष्ठाके निमित्त अन्तरिक्षमें तुमको दृढकरै शेष पूर्ववत् ॥ १० ॥

स्वराट्स्युदीची दिक् मरुतस्ते देवा अधिपतयः
स्तोमो हेतीनां प्रतिधर्तैकविंशस्त्वा स्तोमः
पृथिव्यां श्रयतु निष्केवल्वमुक्ष्यमव्यथायै स्व-
भ्नातु वैराजथं साम प्रतिष्ठित्वा अन्तरिक्ष
ऋषयस्त्वा प्रथमजा देवेषु दिवो नात्रया
परिष्णा प्रथन्तु विधर्ता चायमधिपतिश्च ते
त्या सधै संविद्वाना नाकस्य पृष्टे स्वर्गं लाके
घर्जमानं च सादयन्तु ॥ ११ ॥

इसका परमेष्ठी ऋ०, पूर्वभ्य भुरिगत्रा० त्रि० छं०, लिङ्गोक्त देवता है (प्रथमजा इत्युत्तरस्य त्रा० वृ० छं०) मंगार्थ—हे इष्टके तुम (स्वराट्, उदीची, दिक्, आसि, महताः, देवाः, ते, अधिपतयः, स्तोमः, हेतीनां, प्रतिधर्ता, एकविंशः, स्तोमः, त्वा, पृथिव्याम्, श्रयतु, निष्केवल्वम्, उक्ष्यम्, अव्यथायै, स्वभ्नातु, वैराज-
थं साम, गतिष्ठित्यै, अन्तरिक्षे०) स्वयं विराजमान होनेवाली उत्तर दिशा हो, मरुग देवता तुम्हारे पालक हैं, सोम व्याधियोंका निवारक है, एकविंशस्तोम तुमको पृथ्वीमें स्थापन करो, निष्केवल्व नाम शस्त्र दृढताके निमित्त तुमको स्थापन करो, वैराजसाम गतिष्ठा

के निमित्त तुमको अन्तरिक्षमें दृढकरो । शेषं पूर्ववत् ॥ १३ ॥
 अधिपत्यसि बृहती दिग्विश्वे ते देवा अधि-
 पतयो बृहस्पतिर्हृतीनां प्रतिधृत्ता त्रिणवत्रय-
 स्त्रिंशो त्वा स्तोमो पृथिव्याश्च श्रयतां वैश्व-
 देवाग्निमारुते उक्थे अव्यथायै स्तभ्नीताश्च-
 शाकररैवते सामनी प्रतिष्ठित्या अन्तरिक्षं ऋष-
 यस्त्वा प्रथमजा देवेषु दिवो माघ्रपा वरिष्णा
 प्रथन्तु विधृत्ता चापमर्धिपतिश्च ते त्वा सर्वे
 संविद्याना नाकस्य पृष्ठे स्वर्गे लोके यजमानं
 च सादयन्तु ॥ १४ ॥

इसका परमेष्ठी ऋ० पूर्वस्य द्रा० ज० छं० लिङ्गोक्त दे० ।
 यस्त्वेत्युत्तास्य द्राही त्रि० छं० । मंत्रार्थ हे इष्टके! तुम (अधि-
 पत्नी, बृहती, दिक्, असि, विश्वे, देवाः, ते, अधिपतयः, बृहस्पतिः
 हेतीनाम्, प्रतिधृत्ता, त्रिणवत्रयस्त्रिंशो, स्तोमो, त्वा, पृथिव्यां,
 श्रयताम्, वैश्वदेवाग्निमारुते, उक्थे, अव्यथायै, स्तभ्नी नाम, शाक्वर-
 रैवते, सामनी, प्रतिष्ठित्यै, अन्तरिक्षे०) अधिक पालन करनेवाली
 बड़ी ऊँची दिशा हो, सम्पूर्ण देवता तुम्हारे पालक हैं, बृहस्पति
 देवता त्रिदशुःलोकोंका निवाकर है, त्रिणवत्रयस्त्रिंश स्तोम तुमको पृथ्वी
 में स्थापित करै वैश्वदेव अग्निमारुत उक्थ दृढताके निमित्त तुमको
 स्थापित करै शाक्वररैवत दोनोंसाम प्रतिष्ठाके निमित्त अन्तरिक्षमें
 तुमको स्थापित करै । शेषं पूर्ववत् ॥ १४ ॥

अयं पुरो हरिकेशः सूर्यरश्मिस्तस्य रथगृत्सश्च
 रथोजाश्च सेनानी ग्रामण्यौ । पुञ्जिकस्थला
 च क्रतुस्थला चाप्सरसो दृङ्गणधः पशवो हेतिः
 पौरुषेयो वृधः प्रहेतिस्तेभ्यो नमो अस्तु ते
 नोषन्तु ते नो मृडयन्तु ते यन्धिष्णो यश्च नो
 द्वेषिष्ट तमेष्वाङ्गभो दधमः ॥ १५ ॥

इसका परमेष्ठी ऋ० कृतिशब्द० लिङ्गोक्त दे० है । मंत्रार्थ—(अयं

अयं पश्चाद् विश्वव्यचास्तस्य रथप्रोतश्चासंम-
रथश्च सेनानीग्रामण्यौ प्रम्लोचन्ती चानुम्लो-
चन्ती चाप्सरसौ वृषाद्या हेतिः सर्पाः प्रहेति-
स्तेभ्यो नमो अस्तु ते नो वन्तु ते नो मृडयन्तु
ते यं द्विष्मो यश्च नो द्वेष्टि तमेपाञ्जम्भे दधमः ॥१७॥

इसका परमेष्ठी ऋ०, विराट् कृतिरक्ष०, लिङ्गोक्त दे० है । मंत्रार्थ
(अयं, पश्चात्, विश्वव्यचाः, तस्य, रथप्रोतः, च, असंमरथः,
सेनानीग्रामण्यौ, प्रम्लोचन्ती, च, अनुम्लोचन्ती, अप्सरसौ, च,
व्याघ्रः, हेतिः, सर्पाः, प्रहेतिः) यह पश्चिम दिशामें स्थापित इष्टका
रूप सब विश्वका प्रकाशक आदित्य है, उसका रथयुद्धमें धैर्यवान्
शूर और अनुपम रथी सेनापति और ग्रामपालक वर्षाकर्तु हैं,
अपने वेशविन्यासादि द्वारा सर्वसाधारणका मन हरने में समर्थ
और एकबार सुग्ध होकर क्लेश पानेवाले व्यक्तिको फिर मोह
करने वाली दोनों अप्सराएँ और व्याघ्रजीव शस्त्रहै, सर्प तक्षिण
शस्त्रहै, शेष पूर्ववत् ॥ १७ ॥

अयमुत्तरात्संपदमुस्तस्य तार्क्ष्यश्चारिष्टनेमिश्च
सेनानी ग्रामण्यौ विश्वाची च घृताची चाप्सर-
सावापो हेतिर्वातः प्रहेतिस्तेभ्यो नमो अस्तु ते
नो वन्तु ते नो मृडयन्तु ते यं द्विष्मो यश्च नो
द्वेष्टि तमेपां जम्भे दधमः ॥ १८ ॥

इसका परमे० ऋ०, भु० ग० घृ० छं०, लिङ्गोक्त दे० है ।
मंत्रार्थ- (अयं, उत्तरात्, संपदमुः, तस्य, तार्क्ष्यः, च, अरिष्टनेमिः,
सेनानीग्रामण्यौ, च, विश्वाची, च, घृताची, अप्सरसौ, च,
वातः, हेतिः, वातः, प्रहेतिः) यह उत्तर दिशामें स्थापित इष्टका
धनसे प्राप्त होनेवाला यह है, उसका अन्तरिक्षमें तक्षिण पक्षरूपी
आयुधोंका विस्तार करनेवाला और अरिष्टनाशक अमतिहत
आयुधवाना सेनाधी और ग्रामपालक शरद् कर्तु है संसार
में विदित और घृताकी भोजन करनेवाली दो अप्सराएँ, जल शस्त्रहै,

और पवन तीक्ष्ण शस्त्र है, शेषं पूर्ववत् ॥ १८ ॥

अथमुपर्यर्वाग्धंसुस्तस्य सेनजिच्च सुपेणश्च
सेनानीग्रामण्यौ । उर्वशी च पूर्वचित्तिश्चाप्स-
रसांघवस्फूर्जन् हृतिर्विश्रुत्प्रहेतिस्तेभ्यो नमो
अस्तु ते नोवन्तु ते नो मृढयन्तु ते घं द्विष्मो
यश्च नो द्वेष्टि तमेषां जम्भे दध्मः ॥ १९ ॥

इसका परमे० ऋ०, नि० कृ० छं०, लि० दे० है । मंत्रार्थ
(अयं, उपरि, अर्वाग्धमुः, तस्य, सेनजित्, च, सुपेणः, सेनानी-
ग्रामण्यौ, न, उर्वशी, च, पूर्वचित्तिः, अप्सरसां, च, अघवस्फूर्जन्,
हेतिः, विश्रुन्, प्रहेतिः) यह मध्यदिशा में वर्त्तमान इष्टकापर्जन्य
है, उसके सेना जीतनेवाले और सुन्दर सैन्यवाले सेनापति और
ग्रामपालक हेमन्तकृदु हैं और विस्तीर्ण काम को बश में करने
वाणी और अधिकरूपा होने से पुरुषों का मन हरने करनेवाली
पूर्वचित्ति नाम दो अप्सरा हैं और भयका हेतु वज्रका शब्द शस्त्र
है, वितनी तीक्ष्ण शस्त्र है, इनको नमस्कार है, इत्यादि पूर्ववत् १९

अग्निर्मूर्धा त्रिवः ककुत्पतिः पृथिव्या अथम् ।
अवाधे रेतोऽसि जिन्वति ॥ २० ॥

मंत्रार्थ—इसकी व्याख्या ३ अ० १२ कं० में होगई ॥ २० ॥

अथमग्निः संहस्त्रिणो वाजस्य शनिनस्पतिः मूर्धा
कवी रयीणाम् ॥ २१ ॥

इसका परमे० ऋ०, नि० ॥१०० छं०, अग्नि देवता है । मंत्रार्थ
(अयं, अग्निः, संहस्त्रिणः, शनिनः, वाजस्य, पतिः, कविः,
रयीणाम्, मूर्धा) यह अग्नि सप्त संख्यावाले शग संख्यावाले
अन्नका स्वामी क्रान्तदर्शी और सब धनोंमें प्रधान धनवाला है २१

स्वामिने पुष्करादध्वर्धर्वा निरमन्थत । मूधनो
विश्वस्य वाचतः ॥ २२ ॥

मंत्रार्थ—इसकी व्याख्या ११ अ० ३२ कं० होगई ॥ २२ ॥

भुवो प्रजस्य रजसश्च नेता यत्रा निगुद्धिः सचसे

त्रिषाभिः । त्रिवि मूर्धानं दधिषे स्वर्षां जिह्वा-
मग्ने षकृषे हव्यघाहम् ॥ २३ ॥

इसका परमेष्ठी ऋ०, नि० त्रि० छं० अग्नि देवता है । मंत्रार्थ-
इसकी व्याख्या १३ अ० १५ कण्टिका में होगई ॥ २३ ॥

अधोध्यग्निः समिधा जनानां प्रतिधेनुर्निषाय-
तीमुपासम् । यहा इव प्रवयामुज्जिहानाः प्र
भानर्षः सिस्रते नाकमच्छ ॥ २४ ॥

इसका परमेष्ठी ऋ०, नि० त्रि० छं० है अग्नि दे० है । मंत्रार्थ
(जनानां, समिधा, अग्निः, अधोधि, इव, आयतीम्, धेनुम्,
उपासम्, प्रति, मानवाः, नाकम्, अच्छ, प्रसिस्रते, इव, वयाः
यहा, प्रोज्जिहानाः,) ज्ञान श्रद्धा द्विजतर्पण, सत्यादिसे सम्पन्न
अग्निहोत्रियोंकी समिधासे अग्नि प्रज्वलित होते हैं, दीप्तिमान्
इसकी किरणें स्वर्गके चारोंओर से फैलती हैं, जिसपकार पत्नी
बड़े पक्षोंसे वृक्षोंकी शाखाओंसे आकाशको उड़ते हैं ॥ २४ ॥

अधोचाम क्वषे मेधाय वधो वन्दारु वृषभार्थ
वृष्णे । गविष्ठिरौ नमसा स्तोममग्नाौ द्विवीच
रुक्मर्मुक्व्यं चमश्रेत् ॥ २५ ॥

इसका परमेष्ठी ऋ०, नि० त्रि० छं०, अग्नि दे० है । मंत्रार्थ
उद्गाता कहते हैं—हम (कवये, मेधाय, वृषभाय, वृष्णे, वन्दारु
वधः, अधोचाम, गविष्ठिरः, नमसा, स्तोमं, अग्नाौ, अश्रत्, इव,
दिवि, रुक्मं, उरुक्व्यं चम् ।) क्रान्तदर्शी यज्ञके योग्य श्रेष्ठ कामना
पूर्ण करनेमें समर्थ अग्निके निमित्त स्तुतिवन्दना करनेवाले वचनको
कथन करते हैं । वाणीमें स्थिर होता हुआ पुरुष अन्नसे युक्त स्तुति
को आहवनीय अग्निमें अर्पण करता है, जिसपकार स्वर्गमें रोच-
मान आदित्यको सन्ध्यावन्दन सूर्यवपस्यानादिमें प्रयुक्त कीहुई
बड़ी स्तुति अर्पित होती है ॥ २५ ॥

अयमिह प्रथमोधापि धातृभिर्होता यजिष्ठो
अश्वरेष्वीर्ष्या यममवानो भृगंधो विरुचुर्नैषु

चित्रं विभुं विशे विशे ॥ २६ ॥

इसकी व्याख्या ३ अ० १५ कं० में होगई ॥ २६ ॥

जनस्य गोपा अजनिष्ट जागृविर्गुणः सुदक्षः

सुविताय नव्यसे घृतप्रतीको बृहता दिविस्पृशा

द्युमद्विभाति भरतेभ्यः शुचिः ॥ २७ ॥

इसका परमेष्ठी ऋ०, नि०दा०ज० छं०, अग्नि दे० है । मंत्रार्थ (जनस्य, गोपाः, जागृविः, सुदक्षः, घृतप्रतीकः, शुचिः, अग्निः, नव्यसे, सुविताय, भरतेभ्यः, अजनिष्ट, दिविस्पृशा, बृहता, द्युमत्, विभाति) यजमानोंका रक्षक कर्म में साधधान अति उत्साहयुक्त घृत को मुख में रखनेवाला पवित्र अग्नि नहीं न यज्ञ के निमित्त ऋत्विजोंके द्वारा प्रकटहुआ वह अग्नि स्वर्ग को स्पृश करनेवाली बड़ी कान्तिर्यों सं प्रकाशवान् होता है ॥ २७ ॥

त्वामग्ने अङ्गिरसो गुहाहितमन्वविन्दञ्छिभ्रि-

याणं वने वने । स जायसे मध्यमानः सहो

महत्त्वामाहुः सहस्रपुत्रमङ्गिरः ॥ २८ ॥

इसका परमेष्ठी ऋ०, विराट्पार्षी ज० छं०, अग्नि देवता है । मंत्रार्थ—(अङ्गिरः, अग्ने, अङ्गिरसा, त्वाम्, गुहाहितम्, वने वने, शिभ्रियाणं, अन्वविन्दन्, सः, महत्सहः, मध्यमानः, जायसे, त्वाम्, सहसा, पुत्रं, आहुः) अनेक रूपसे यज्ञमें विचरनेवाले हे अग्नि देव, अङ्गिरा ऋषिके वंशमें उत्पन्न हुए ऋषियोंने तुमको निगूढ़ देशमें स्थित अनेक वनस्पतियों में निवास करने वालेको ढूँढकर प्राप्तकिया, वह तुम अब बड़े बलसे मध्यमान होनेके कारण अरणीसे उत्पन्न होते हो, तुमको इसी कारण मुनि, बलका पुत्र ब्रह्मज्योति कहनेहैं ॥ २८ ॥

सखायः संवः स्रभ्यश्चमिपथं स्तोमं चाग्नये ।

वधिष्ठाय क्षितीनामूर्जो नप्ते सहस्वते ॥ २९ ॥

इसका परमे० ऋ०, वि०, ज०, छं०, अग्नि दे० मंत्रार्थ— यजमानने कहा हे ऋत्विजो ! (सखायः, वः, क्षितीनां, वधिष्ठाय,

ऊर्जा, नखे, सहस्रवै, अग्नये, सम्यञ्चं, इपं, च, स्तोमं, समम्) मित्ररूप तुम मनुष्योंके श्रेष्ठगम जलके पौत्ररूप बड़े बलवाले अग्नि देवताके निमित्त समीचीन नवीन हविरूप अन्न तो और स्तोत्रको सम्पादन करो ॥ २९ ॥

समिधस्यसे वृषन्नग्ने विश्वान्यय आ । इड-

स्पदे समिधस्यसे स नो वसून्याभरं ॥ ३० ॥

इसका परमेष्ठी ऋ०, विराटनु० छं० अग्नि दे० है । मंत्रार्थ (वृषन्, अग्ने, अर्थः, विश्वानि, सम, आ, संयुक्तसे इडस्पदे, समिधस्यसे, सः, इत्, नः, वसूनि आभर) हे सेवन करनेवाले अग्निदेव ! स्वामी तुम सम्पूर्ण यज्ञफलोंको सबभारसे यजमान को प्राप्त कराते हो, पृथ्वीके स्थान उत्तरवेदीमें कर्मके निमित्त मदीप्त हाते हो, वह तुम ही हमारे निमित्त धनोंको स्वप्नकार लाकर मदानकरो ॥ ३० ॥

त्वां चित्रश्रवस्तमहवन्ते विश्वु जन्तवः । शोचि-

त्कौशं पुरुमिषाग्ने हव्याय बोढवे ॥ ३१ ॥

इसका परमे० ऋ०, वि० नु० छं०, अग्नि दे० है । मंत्रार्थ- (चित्रश्रवः, पुरुमिषः, अग्ने, विश्वु, जन्तवः, तं, त्वां, हव्याय, बोढवे, हवन्ते) कीर्ति और ऐश्वर्य से अतिविचित्र यजमानों के मिथ हे अग्ने ! प्रजाओंमें ऋत्विग्यजमान उस तुमको हवि बहन करनेके निमित्त पुजते हैं ॥ ३१ ॥

एना यो अग्नि नभसोर्जो न पातमाह्वये । मिय-

च्चेतिष्ठमरुनिध्वं ध्वरं विश्वस्य दूतममृतम् ॥ ३२ ॥

इसका परमे० ऋ०, वि० वृ० छं०, अग्नि दे० है । मंत्रार्थ- हे ऋत्विग्यजमानों ! (वः, एनाः, नभसा, ऊर्जा, न, पातम्, मियं, चेतिष्ठम्, अरातिम्, स्वध्वरम् विश्वस्य, दूतं, अमृतं, अग्निम् आह्वये) गृहद्वारे इस अन्नद्वारा जलाके पौत्रे यजमानकी प्रीतिके कारण अतिशय वैश्वानरकी ज्ञानदागा सदा उद्यमी श्रेष्ठ यज्ञवाजे सम्पूर्ण के गृहपाकादि कार्य करने से दूतरूप मरुत्तरहित अग्नि

को स्तुति पूर्वक आवाहन करते हैं ॥ ३२ ॥

विश्वस्य दूतममृतं विश्वस्य दूतममृतम् ।

स योजते अरुपा विश्वभोजसा स दुद्रवत्स्याहुतः ३३

इसका परमेश्वर ऋ०, नि० दु० छं० अग्नि० दे० है मंत्रार्थ अमृतं, विश्वस्य, दूतं, अमृतं, विश्वस्य, दूतम्, सः, अरुपा, विश्व-भोजसा, योजते, स्वाहुतः, सः, दुद्रवत्) मरणधर्मरहित सब के दूतवत् कार्यकर्ता मरणधर्मरहित सम्पूर्ण के दूत जिस अग्नि को हम खलाते हैं, वह अग्नि क्रोधरहित श्रेष्ठ सब यज्ञके भाग भोगने वाले दो अश्वोंको अपने रथमें योजना करता है, स्थासु होकर भलीप्रकारसे आहुतिको प्राप्त हुआ वह अग्नि शीघ्र प्राप्त होता है ३३

स दुद्रवत्स्याहुतः स दुद्रवत्स्याहुतः । सुव्रता

यज्ञः सुशमी वसूनां देवधराधो जनानाम् ॥ ३४ ॥

इसका परमेश्वर ऋ० वृहती छं०, अग्नि देवता है। मंत्रार्थ--(सुव्रता, सुशमी, यज्ञः सः स्वाहुतः, दुद्रवत्, स्याहुतः, सः, जनानाम्, देव, राधः, वसूनाम्, दुद्रवत्) श्रेष्ठ अतिव्रतोंसे युक्त शुभकर्मवाला यज्ञ है उसमें वह अग्नि शुभ प्रकारसे आवाहन किया हुआ वह जहां यजमानोंका दीप्यमान धन है वहां वसु रुद्र आदि देवगणोंके तीन सवनके यज्ञमें जाता है ॥ ३४ ॥

अग्ने वाजस्य गोमत ईशानः सहसो यदो

अस्मे धेहि जातवेदो महि श्रवः ॥ ३५ ॥

इसका परमेश्वर ऋ० सपिणक् छं० अग्नि देवता है। मंत्रार्थ--(सहसः, यदो, जातवेदः, अग्ने, गोमतः, वाजस्य, ईशानः, अस्मे-महि, श्रवः, धेहि) धनके पुत्र ज्ञानसम्पन्न है अग्ने धेनुयुक्त अन्न के आधिपति तुम, हमारे निमित्त बड़े धनको दो ॥ ३५ ॥

स इधानो वसुक्कविः अग्निरीडेन्यो गिरा रेवद-

स्मभ्यं पुर्वणीक दीदिहि ॥ ३६ ॥

इसका परमेश्वर ऋ०, नि० दु० छं०, अग्नि दे० है। मंत्रार्थ (पुर्वणीकः, सः, इधानः, वसुः, कविः, गिरा, ईडेन्यः, अग्निः,

उतो न उत्पुपूर्वा उक्थेषु शवसस्पतु इपथ
स्तोतृभ्य आभर ॥ ४३ ॥

इसका परमे० ऋ०, नि० प० छं०, अग्नि दे० है । मंत्रार्थ—(सु-
श्वन्द्र, आसमि, सर्पिषः, उमे, दर्षी, श्रीणीषे, उतो, शवसः, पतं,
उक्थेषु, नः, दुपूर्वाः, स्तोतृभ्यः, इपम्, आभर) चन्द्रमाकी समान
आच्छाद करनेवाले हे अग्ने ! तुम अपने मुखमें घृतपान करने के
निमित्त दोनों दर्षीके आकारवाले हाथोंको ग्रहण करते हो और
हे बलके अधिपति ! शस्त्रनाम स्तुतिवाले यज्ञोंमें हमको धनोसे
पूर्ण करो स्तुति करनेवालोंको अन्न दो ॥ ४३ ॥

अग्ने तमव्याश्र्वं न स्तोमैः क्रतुं न भद्रथे हृदि-
स्पृशाम् । आध्यामां तु ओहैः ॥ ४४ ॥

इसका परमेष्ठी ऋ०, पदपंक्ति छं०, अग्नि दे० है । मंत्रार्थ—
(अग्ने, अथ, ते, तम्, क्रतुं, ओहैः, स्तोमैः, आ, आध्याम, न,
अश्वम्, न हृदिस्पृशाम्, भद्रम्) हे अग्ने ! आज तुम्हारे उस यज्ञ
को तुम्हारे नामरूप कर्मके प्रतिपादन करनेवाले फलप्राप्तक साम
मंत्रोसे सबपकार समृद्ध करते हैं, जैसे अनेक स्तुतियोंसे अश्वमेध
के घोड़ोंको श्रावण समृद्ध करते हैं जिसपकार अतिमिय चिरकाल
से मनमें स्थित कल्याणरूपी यज्ञके संकल्पको समृद्ध करते हैं ४४

अघ्राह्यग्ने क्रतोर्भद्रस्य दक्षस्य साधोः ।

रथीर्भ्रतस्य बृहतो बभूथ ॥ ४५ ॥

इसका परमेष्ठी ऋ०, मु०, प०, छं०, अग्नि दे० । मंत्रार्थ—
(अग्ने, अथ, हि, दक्षस्य, साधोः भद्रस्य, ऋतस्य, बृहताः, क्रतोः,
रथी, बभूथ) हे अग्ने ! इसके अनन्तर अवश्य समृद्ध सम्पन्न
पकारसे अनुष्ठान किए कल्याणरूप अमोघ फलवाले बड़े हमारे
यज्ञके, सारथी जिसपकार रथका निर्वाह करता है तिसपकार नि-
र्वाहक हुआये ॥ ४५ ॥ ॥

एभिर्सां अर्कैर्भवानो अर्वाङ् स्वर्णज्योतिः ।

अग्ने विश्वेति सुमना अनीकैः ॥ ४६ ॥

इसका परमेष्ठी ऋ०, पदपंक्ति छं०, अग्नि दे० है । मन्त्रार्थ (अग्ने, नः, एभिः अर्कैः, सुमनाः, विश्वेभिः अनीकैः, नः अर्वाङ् आ भव, न, स्वर्ज्योतिः) हे अग्ने ! हमारे इन पदोंहुए मन्त्रों से प्रसन्नमन होकर अग्ने सम्पूर्ण सुखों से सब प्रकार हमारे सम्मुख हजिये, जैसे सूर्य आकाश में उदित होकर सम्पूर्ण जगत्के सम्मुख होता है ॥ ४६ ॥

अग्निं होतारं मन्ये दास्वन्तं वसुं सूनुं
सहसो जातवेदसं विपुत्र जातवेदसम् । य
ऊर्ध्वपां स्वध्वरो देवो देवाच्या कृपा । घृतस्य
विभ्राष्टि मनुवाष्टिशोचिपा जुष्टानस्य सर्पिषः ॥ ४७ ॥

इसका परमे० ऋ०, अतिद्वन्द्व छं०, अग्नि दे० है । मन्त्रार्थ (यः, देवः, स्वध्वरः, ऊर्ध्वपा, देवाच्या, कृपा, शोचिपा, आ-
जुष्टानस्य, सर्पिषः, घृतस्य, विभ्राष्टिम्, अनुवाष्टि, अग्नि, होतारं,
दास्वन्तम्, वसुम्, सहसः, सूनुं, जातवेदसं, जातवेदसं, विपं, न,
मन्ये) जो दानादि गुणयुक्त शुभयज्ञवाला अग्नि ऊंची, देवताओं
के समीप जानेवाली समर्प ज्वालासे सबभोर होमेहुए अङ्क २
में फैलनेवाले घृतके निरन्तर पानको इच्छा करता है, उस अग्नि
को देवताओंका बुलानेवाला दानशील वासदेनेवाला ब्रह्मज्योति
का पुत्र सब प्रकारके ज्ञानसे सम्पन्न सर्व शास्त्रके ज्ञानवाले ब्राह्मण
की समान जानता हूँ ॥ ४७ ॥

अग्ने त्वन्नो अन्तंम उत घ्राता शिबो भवा
वरूप्यः, वसुरग्निर्घसुश्रवा अर्च्छा नक्षिद्युमर्त्तमथ
रुचिन्द्राः । तन्त्वा शोचिष्ठ दीदिषः । सुमन्य
नूनमीमहे सखिभ्यः ॥ ४८ ॥

मन्त्रार्थ—इसकी व्याख्या [१ अ० २५, २६] काण्विका
में हो गई ॥ ४८ ॥

येन ऋषयस्तर्पसा सत्रमायन्निन्धाना अग्निं
स्वर्गभरन्तः । तस्मिन्नहं निर्दधे नार्के अग्निं

यमाहुर्मनवस्तीर्णार्धर्हिपम् ॥ ४९ ॥

इसका परमे० ऋ०, आर्षो त्रि०, छं०, अग्नि दे० है । मंत्रार्थ (अग्नि, इन्धाताः, स्वः, आमरन्तः, ऋषयः, येन, तपसा, सत्रम् आयन्, तस्मिन्, नाके, अग्नि, अहं, निदधे, मनवः, स्तीर्णार्ध-पम्, आहुः) अग्नि को मदीश करते स्वर्गको स्वीकार करते ऋषि जिस चित्तकी एकाग्रतारूप तपसे यज्ञ करनेको उद्यत हुए उस तपके होनेपर स्वर्गलोकमें प्राप्त करानेवाले अग्निको मैं स्थापन करता हूँ, मनन करने में प्रधान विद्वान् जिस अग्निको यज्ञ साधन सहित कहते हैं ॥ ४९ ॥

तत्पत्नीभिरनुगच्छेम देवाः पुत्रैर्भ्रातृभिरुत वा
हिरण्यैः । नाकं गृभ्यानाः सुकृतस्य लोके तृतीयं
पृष्ठे अधिरोचने दिवः ॥ ५० ॥

इसका परमेष्ठी ऋ०, भु०, गा०, त्रि०, छं०, अग्नि देवता है । मंत्रार्थ—(देवाः, तृतीय, दिवः, पृष्ठे, सुकृतस्य, रोचने, लोके, नाकं, अधिगृभ्यानाः, पत्नीभिः, पुत्रैः, वा, भ्रातृभिः, उत, हिरण्यैः तम्, अनुगच्छेम) हे विद्वान् आत्त्वजो ! भूमिसे तीसरे ध्रुव लोक के ऊपर शुभकर्म के फलरूप दीप्यमान आदित्यमण्डलमें दुःखहीन स्थानको स्वीकार करते हुए हम स्त्री, पुत्र, भाई और सुवर्णादि द्रव्योंके साथ उस अग्निका सेवन करें इसे हमको तीसरे लोक की प्राप्ति हांगी ॥ ५० ॥

आ वाचो मध्यमारुहद्गुरुर्युग्मग्निः सत्पति-
श्चेकितानः । पृष्ठे पृथिव्या निहितो दविद्युतद-
धस्पदं कृणुतां ये पृतन्यवः ॥ ५१ ॥

इसका परमे० ऋ०, स्वराडार्षो त्रि०, छं०, अग्नि दे० है । मंत्रार्थ—(अयं, गुरुर्युः, सत्पतिः, चेकितानः, पृथिव्याः, पृष्ठे, निहितः, दविद्युतद, अग्निः, वाचः, मध्यं, आरुह्य, ये, पृतन्यवः अधस्पदम्, कृणुताम्) यह जगत्का कर्ता, सत्पुरुषोंका पालक ज्ञानी पृथिवीके ऊपर स्थापित अत्यन्त प्रकाशवान् अग्नि चयनके

मध्यस्थानमें स्थित हुआ, जो पुद्गली इच्छावाले पापी हैं तिनको चरणोंके अधोभागमें करे ॥ ५१ ॥

अयमग्निर्वीरतमो वयोधाः सहस्रियो व्योतता-
नंप्रयुञ्जन् । विभ्राजमानः सरिरस्य मध्य
उपप्रयाहि दिव्यानि धाम ॥ ५२ ॥

इसका परमे० ऋ०, निच्यूदार्पी त्रि० छं०, अग्नि दे० है । मंत्रार्थ (अयम्, वीरतमः, वयोधाः, सहस्रियः, अग्निः, अप्रयुञ्जन्, व्योतताम्, सरिरस्य, मध्ये, विभ्राजमानः, दिव्या, धामानि, उप-प्रयातु) यह बड़ा वीर हविप्रहणकरनेवाला सहस्र इष्टकाओंसे केतुल्य अग्नि देवता कर्मोंमें प्रमाद न करता हुआ प्रज्वलित हो, त्रिलोकीके मध्यमें दीप्यमान दिव्य स्थानोंको प्राप्त हो ॥ ५२ ॥

सुप्रव्यवध्वमुपमंप्रयाताग्ने पथो देवयानान-
कृणुध्वम् । पुनः कृण्वाना पितरा युवानान्वातां
सीत् त्वयि तन्तुमेतम् ॥ ५३ ॥

इसका परमेष्टी ऋ०, मु० गा० प० छं०, अग्नि दे० है । मंत्रार्थ हे ऋषियों ! तुम (प्रव्यवध्वम्, उप, समाधान्, अग्ने, देवयानान्, पथः, कृणुध्वम् पुनः, पितरा, युवाना, कृण्वानाः, एतम्, तन्तुं, त्वयि, अतन्वातां सीत्) इस अग्निके समीप आओ, समीप आकर भजेपकार प्राप्त करो, हे अग्ने, देवयान मार्गको सिद्ध करो, फिर वाणी और मनको तरुण करतेहुए ऋषियोंने इस यज्ञ को तुझमें क्रमपूर्वक विस्तार दिया है ॥ ५३ ॥

उद्बुध्यस्वाग्ने प्रणिजागृहि त्वभिष्टापूर्त्तं सध
सृजेथामयं च । अस्मिन्सधस्थे अध्युत्तरस्मिन्
विश्वेदेवा यजमानश्च सीदत ॥ ५४ ॥

सबका परमे० ऋ०, आ० त्रि० छं०, अग्नि दे० है । मंत्रार्थ (अग्ने, त्वं, उद्बुध्यस्व, प्रणिजागृहि, इष्टापूर्त्तं, संसृजेथाम्, अयम्, च, विश्वेदेवाः, यजमानः, च, सधस्थे, अस्मिन्, उत्तरस्मिन्, अधिः सीदत) हे अग्ने तुम सावधान होओ, श्रौतस्मार्त्त कर्ममें यजमान

से संसर्ग करो तुम्हारे भसादसे यह इष्टपूर्व से निष्पाप यजमान भी देवताओं के साथ स्थितियोग्य इस सबसे उत्कृष्ट स्वर्गलोक में निरकाल तक निवास करे ॥ ५४ ॥

येन वहंसि सहस्रं येनाग्ने सर्ववेदसम् । तेनेमं
यज्ञं नो नय स्वर्गेषु गन्तवे ॥ ५५ ॥

इसका परमं० ऋ०, नि० अ० छं०, अग्नि दे० है । मंत्रार्थ (अग्ने, येन, सहस्रं, वहंसि, येन सर्ववेदसं तेन, नः, इमम्, यज्ञम्, देवेषु, गन्तवे, स्वः, नय) हे अग्ने जिस सामर्थ्यसे सहस्र दक्षिणावाले यज्ञको प्राप्त करातेहो जिस सामर्थ्यसे सर्वस्व दक्षिणावाने यज्ञको प्राप्त कराते हो उस सामर्थ्यसे हमारे इस छोटे यज्ञको देवताओंके प्रति गमन करनेको स्वर्गमें प्राप्त करो यज्ञके स्वर्गमें गमन होनेसे हमारा भी वहां गमन होगा ॥ ५५ ॥

अपन्ते योनिर्ऋत्विषो यतो ज्ञानो अरोचथाः ।

तज्ज्ञानन्नगन्तु आरोहाथां नो वर्द्धया रुपिम् ॥ ५६ ॥

इस मं० की व्याख्या ३ । १४ अ० के १२ । १२ मं० में होगई ५६

तपश्च तपस्पृश्च शैशिरावृतु अग्नेरन्तः श्लेषो-
ऽसि कल्पेतां यावापृथिवी कल्पन्तामाप ओष-
धयः कल्पन्तामग्नयः प्रथङ् मम् ज्यैष्ठ्याणु
सवताः । ये अग्नयः समनसोन्तरा यावापृथिवी
हमे शैशिरावृतु अभिकल्पमाना इन्द्रमिव
देवा अभिसंविशन्तु तथा देवतायाङ्गिस्वद्
ध्रुवे मादतम् ॥ ५७ ॥

इसका परमं० ऋ०, स्वराहुत्कृति छं०, ऋतु दे० है । मंत्रार्थ

(तपः) माघमास (तपस्यः) फाल्गुनमास, (शैशिरावृतु)

शिशिर ऋतुक अवयवहै । शेषकी व्याख्या ३ । १५ में होगई १७

पुत्रमेष्टां त्वां सादयतु दिवस्पृष्टे ज्योतिष्मतीम् ।

विश्वस्मै प्राणायानार्थं व्यानाय विश्वज्यो-

तिर्धच्छ । सूर्यस्तेधिपतिस्तथा । देवतयाङ्गि-

रुस्वद्भुवासीद ॥ ५८ ॥

इसका परमेष्ठी ऋ०, शक्वी छं०, सूर्य देवता है । मंत्रार्थ—हे इंद्रके (परमेष्ठी, ज्योतिष्मतीम्, स्वा, दिवः, पृष्ठे सादयतु, सूर्यः, ते, अधिपतिः) विश्वकर्मा वायु रूप ज्योतिष्मती तुम्हको धुनोक के ऊपर स्थापनकरै सूर्य तुम्हारा स्वामी है ॥ ५८ ॥

लोकं पृण छिद्रं पृणार्थो सीद ध्रुवा त्वम् इन्द्राग्नी

त्वा वृहस्पतिरस्मिन्गोनां वसीपदन् ॥ ५९ ॥

ता अस्य सूददोहसः सोमं श्रीणन्ति पृथ्वयः

जन्ममन्देवानां विशस्त्रिण्वारोचने दिवः ॥ ६० ॥

इन्दुं विश्वां अधीष्टन्मसुद्रव्यं चसं गिरः ।

स्थीतमथै रथीनां वाजांनथै सत्पन्तिस्पतिम् ॥ ६१ ॥

इन तीन मंत्रों की व्या० [१२ अ० ५४-५५-५६ क०] में होगई ॥ ५९-६०-६१ ॥

प्रोथदस्वो न यवसेविष्यन्धदा महः संवरणा-
ग्रथस्थात् । आदस्य वातो अनुवाति शोचिरधं
स्म तं व्रजनं कृष्णमस्ति ॥ ६२ ॥

इसका वशिष्ठ ऋ०, विराट् त्रि० छं०, अग्नि दे० है । मंत्रार्थ (यदामहः, संवरणात्, व्यस्यत्, मोयत्, न, अश्वः, अविष्यन्, यवसे, आत्, शोचिः, वातः, अस्य, अनुवाति, अधः, ते, व्रजनं, कृष्णम्, अस्तिस्म) जिस समय बड़े अणुकाष्ठसे अग्नि प्रकाशित होती है, तब शब्द करती है जिसप्रकार घोड़ा भोजनकी इच्छा करता हुआ घासके निमित्त शब्द काता है अग्नि के प्रज्वलित शब्दके उपरान्त प्रज्वलित करनेवाला वायु अग्नि की ज्वालाको देखकर बहन करता है, इसके उपरान्त हे अग्ने ! उस समय तुम्हारा यह गमन कृष्णवर्ण होता ही है ॥ ६२ ॥

आपोष्वा सदेने सादयास्ववतश्छायायां
समुद्रस्य हृदये । रुष्मीवतीम्नास्वतीमाघाघा-
म्भास्या पृथिवीमोर्वन्तरिक्षम् ॥ ६३ ॥

इसका वसिष्ठ ऋ० ब्राह्मणुष्णिगच्छं, स्वयमावृणा दे० है ।
 मंत्रार्थ—हे स्वयमावृणे ! (अथतः, समृद्धस्य, आयोः, व्यायायाम्,
 हृदये, सद्मे, रश्मिवतीम्, भास्वतीम्, त्वा, सादयानि) जगत्के
 पालन करनेवाले वर्षासे जगत्को आर्द्र करनेवाले आयु नामसे
 प्रसिद्ध आदित्यदेवताके आश्रयरूप प्रधान हृदयरूपस्थानमें बहुत
 किरणोंसे युक्त प्रकाशवान् तुमको स्थापन करताहूँ (त्वम्, धाम्
 आभासि, पृथिवीम्, ऊरु, अन्नरिक्तं, आ) तुम धुनोंको प्रकाश
 करती हो, भूनोंको प्रकाश करती हो, विस्तीर्ण अन्नरिक्तको
 प्रकाशवान् करती हो ॥ ६३ ॥

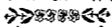
परमेष्ठी त्वा सादयतु द्विस्पृष्टे व्यचस्वतीम्प्र-
 धस्वतीन्दिवं यच्छ दिवंन्दृष्टं दिवम्मा हिंसीः ।
 विश्वस्मै प्राणायानार्थं व्यानार्थोदानार्थं प्रति-
 ष्ठाप्यं चुरिन्नाय । सूर्यस्त्याभिषातु मद्या स्व-
 स्त्याच्छर्हिषा शान्तमेत तर्था देवतयाद्विरस्वद्
 ध्रुवे सीदतम् ॥ ६४ ॥

इसकी व्या० १४ अ० के १२ मं० १५ अ० ५८ मं० में होगई ६४
 सहस्रस्य प्रमांसि सहस्रस्य प्रतिमांसि सहस्र-
 स्योन्मांसि साहस्रोसि सहस्राप त्वा ॥ ६५ ॥

इसका मधुञ्जना ऋ०, देवी जगती या जुष्यनुषु दे० देवी पं०
 छं०, अग्निदे० है । मंत्रार्थ—हे अग्ने तुम (सहस्रस्य, प्रमांसि,
 सहस्रस्य, प्रतिमा, अंसि, सहस्रस्य, उन्मानं, अंसि, साहस्रः,
 अंसि, सहस्राय, त्वा) सहस्र इष्टकाओं की प्रमाण हो, तुम सहस्र
 इष्टकाओंकी प्रतिमिति हो, तुम सहस्र इष्टकाओंकी तुष्टा हो,
 तुम सहस्र इष्टकाओंके उपयुक्त हो, अनन्त फलप्राप्तिके निमित्त
 तुमको प्रोक्षण करता हूँ ॥ ६५ ॥

इति शुक्लपञ्चमोऽङ्कः ।

अथ षोडशोऽध्यायः ।



(रुद्राध्यायः)

जिसमें पञ्चम वित्ति प्रधान है उसे पंचदश अध्याय में चयनके मंत्र समाप्त करके सोलहवें अध्याय में शतरुद्रिय होम के मन्त्र वर्णन करते हैं—

॥ हरिः ॐ ॥ नमस्ते रुद्र मन्पर्वऽउतो त इपवे

नमः । बाहुभ्यामुत ते नमः ॥ १ ॥

इसका परमेष्ठी ऋ०, गायत्री छ०, रुद्र देवता है । मंत्रार्थ— (रुद्र, ते, मन्पर्वे, नमः, उतो, ते, इपवे, नमः, उत, ते, बाहुभ्याम्, नमः) हे दुःखके दूर करनेवाले अथवा हान के देनेवाले अथवा पापीजनों को उनका कर्मफल देकर, रूतानेवाले रुद्रदेव ! आपके क्रोधको नमस्कार है और तुम्हारे बाणोंको नमस्कार है अर्थात् हे रुद्रदेव ! आपका क्रोध और बाणधारी हस्त शत्रुओंपर पड़े हमको शान्ति प्राप्त हो ॥ १ ॥

या ते रुद्र शिवा तनूरघोरार्पापकाशिनी ।

तया नस्तन्वा शान्तमया गिरिशन्ताभिचाकशीहि ॥ २ ॥

इसका परमेष्ठी ऋ०, आर्या स्वराटजु० छ०, रुद्र देवता है । मंत्रार्थ— (गिरिशन्त, रुद्र, या, ते, शिवा, अघोरा, अपापकाशिनी, तनुः, तया, शान्तमया, तन्वा, नः, अभिचाकशीहि) कैलाश पर्वत पर वा वेदवाणी में स्थित होकर माणियों के सुख को बढ़ानेवाले वा भेष में स्थित होकर वर्षा से सुख देनेवाले हे रुद्र । जो तुम्हारी शान्त मद्गलरूप, सौम्य, पुण्यफल की देनेवाली पराशक्ति है उस परमानन्दरूप शरीराकार शक्ति से हमको देखिये ॥ २ ॥

यामिपुं गिरिशन्त हस्तै द्विभर्ष्यस्तवे । शिवा-

क्लिरिञ्च ताङ्कुरु मा हिंथस्रीः पुरुषं जगत् ॥ ३ ॥

इसका परमे० ऋ०, वि० थ० छं, रुद्र देवता है । मंत्रार्थ— (गिरिशन्त, गिरिभ, याम, इपुम्, अस्तवे, हस्तै, विभर्ष्य, ताम्,

शिवाम्, कुरु, पुरुषम्, जगत्, मा, हिंसीः) हे वेदवाणी में स्थित होकर जगत् का कल्याण करनेवाले, कैलास वा वेदवाणी में स्थित होकर प्राणियों की रक्षा करनेवाले तুম जिस वाण को शत्रुओं के नाश करने को हाथ में धारण करते हो हे रक्षक उस वाण को कल्याणकारी करो, पुत्रपौत्रादि और जगत् के गदाश्वादि को मत मारो अथवा जीवात्मा और इन्द्रियों के समूह को संसार बन्धन से नष्ट न करो, किन्तु सदुपदेश देकर मोक्ष प्राप्त कराओ ३ शिवेन वचसा त्वा गिरिशच्छां वदामसि ।

यर्था नः सर्वमिज्जगदयक्ष्मं सुमना असंतु ॥ ४ ॥

इसका परमेष्ठी ऋ०, नि० अ० छं०, रुद्र देवता है । मंत्रार्थ— (गिरिश, शिवेन, वचसा, त्वा, अच्छ, वदामसि, नः, सर्व, इत्, जगत्, यथा, अयक्ष्मं, सुमनाः, असंतु) हे वेदवचन में शयन करनेवाले परमात्मन् हम मङ्गलकारी वेदरूप स्तुतिवचन से, तुम को प्राप्त होने के निमित्त प्रार्थना करते हैं, हमारे सब ही जंगम मनुष्य पशु आदि वा इंद्रिये जिसप्रकार नीरोग वा संसाररोग से मुक्त शुभ मनवाले हों सो करो ॥ ४ ॥

अध्यवोचदधिवक्ता प्रथमो दैव्यो भिपक् ।

अहीन् अम्भयन् सर्वाः अधराचीः यातुधान्योध-

राचीः परासुव ॥ ५ ॥

इसका मंत्रापति ऋ०, भु० गा० वृ० छं०, रुद्र देवता है । मंत्रार्थ— अधिवक्ता, प्रथमः, दैव्यः, भिपक्, अध्यवोचत्, च, सर्वान्, अहीन्, अम्भयन्, सर्वाः, अधराचीः, यातुधान्यः, च, परासुव) तारकमन्त्रका उपदेश करनेवाले सब देवताओंमें मुख्य पूजनीय देवताओंके हितकारी संसाररोगके नाशक रुद्र हमको सबसे अधिक देवा मरामंत्रका उपदेश दें, और सब सर्वादिकी समान दसनेवाले कामादिका विनाश करतेहुए सम्पूर्ण अधोगमनशील कामकरूप राक्षसीको भी हमसे दूर करें ॥ ५ ॥

असौ यस्ताम्रो अरुण उत वधुः सुमंगलः ।

ये चैनं रुद्रा अभितां दिक्षु श्रितास्सहस्रशो
वैपाथ हेड ईमहे ॥ ६ ॥

इसका मन्त्रापति ऋ०, निचृ० पं० छं०, रुद्र देवता है। मन्त्रार्थ (च, यः, असौ, ताम्रः, अरुणः, उत, वधुः, सुमङ्गलः, च, ये, सहस्रशः, रुद्राः, एनम्, अभिताः, दिक्षु, श्रिताः, एषाम्, हेडः, ईमहे) और जो यह प्रत्यक्षरुद्र सूर्यरूप उदयसमयमें अत्यन्त लालवर्ण अस्तसमय रक्तवर्ण और मध्यान्ह समयमें पिङ्गलवर्ण मंगलरूप कर्मोका विभार करनेवाले हैं और जो सहस्रों रुद्रांशरूप देवता इनके सयभोर दिशाओंमें स्थित हैं, इनका क्रोध जोकि हमारे थपरापसे मकट हुआ है उसको हम माक्तिद्वारा निवारण करते हैं।

असौ योवसर्पति नीलग्रीवो विलोहितः । उतैर्न

गोपा अदृशन्नदृशन्नुदहार्युः स दृष्टो मृदयाति नः ॥ ७ ॥

इसका मन्त्रापति ऋ०, विराट्पार्षी पंक्ति छं०, रुद्र दे० है। मन्त्रार्थ (यः, असौ, नीलग्रीवः, उत, विलोहितः, अवसर्पति, एनं, गोपाः, अदृशन्, उदहार्यः, अदृशन्, सः, दृष्टः, नः, मृदयाति) जो यह विपधारणसे अस्तसमय नीलग्रीव और शिरोप रक्तवर्ण आदित्य रूपसे उदय अस्त करते निरन्तर गमन करते हैं इनको वेदोक्तसंस्कार हीन गोपालतक देखते हैं, जल लेजानेवाली नारी पर्यन्त भी देखती है वह रुद्र दर्शनपथमें प्राप्त होते ही हमको सुखी करे, अथवा गोप कहिये इन्द्रियगोलकोकी रक्त इन्द्रियशक्तियाँ देखती हैं, और उदहारी कहिये अमृतको प्राप्त करानेवाली प्रज्ञाशक्तियें देखती हैं वह रुद्र दर्शन देतेहुए हमको मोक्षमुख दें ॥ ७ ॥

नमोस्तु नीलग्रीवाय सहस्राक्षाय मीढुपे ।

अथो ये अस्त सत्वानो हन्तेभ्योकाक्षमः ॥ ८ ॥

इसका मन्त्रापति ऋ०, वि०, पं०, छं०, रुद्र दे० है। मन्त्रार्थ— (नीलग्रीवाय, सहस्राक्षाय, मीढुपे, नमः, अस्तु, अथो, अस्य, ये सत्वानः, तेभ्यः, अहम्, नमः, अक्षरम्) नीलकण्ठ सहस्रेणसे सब जगत्को देखनेवाले इन्द्ररूप वा विराटरूप सेवनेमें समर्प

पर्जन्यरूप वा वरुणरूप रुद्रके निमित्त नमस्कार हो और इस रुद्र देवताके जो अनुचर देवता हैं उनको मैं नमस्कार करता हूँ ॥ ८ ॥

प्रभुञ्च धन्वनस्त्वमुभयोरान्तर्याज्याम् ।
याश्च ते हस्त इपवः परा ता भगवो वप ॥ ९ ॥

इसका प्रजापति ऋ०, वि०, पं०, छं० रु० देवता है । मंत्रार्थ (भगवः, धन्वनः, उभयोः, आन्तर्याः, ज्याम्, त्वम्, प्रभुञ्च, च, याः ते, हस्ते, इपवः, ताः, परावप) हे परैश्वर्य सम्पन्न भगवन् । आप धनुषकी दोनों कोटियोंमें स्थित ज्याको दूरकरो उतार लो और जो आपके हाथमें बाण हैं उनको दूर त्यागदो हमारे निमित्त सौम्यमूर्ति होजाओ ॥ ९ ॥

विज्यन्धनुः कपर्दिना विशल्यो वाणवान् च

उत । अनेशन्नस्य या इपव अशुरस्य निपह्वधिः ॥ १० ॥

इसका प्रजापति ऋ०, धु०, गा० छं०, रुद्र दे० है । मंत्रार्थ (कपर्दिनः, धनुः, विज्यं, उत, वाणवान्, विशल्यः, अस्य, याः, इपवः, अनेशन्, अस्य, निपह्वधिः, आधुः) जटाजूटधारी रुद्रका धनुष ज्वाराहित और तरकस भालावाले वाणोंसे, रीता हो, इन ईश्वरके जो वाण हैं वे अदर्शनको प्राप्त हों इनका खन्न रखने का कोश खन्नसे रीता हो, क्योंकि योगसंजीवन्मुक्त में बंधके योग्य नहीं हैं ॥ १० ॥

या ते हेतिमीदृष्टम् हस्ते बभूव ते धनुः ।

तयास्मान्विश्वतस्त्वमश्वमया परिभुज ॥ ११ ॥

इसका प्रजापति ऋ०, त्रि०, छं०, रुद्र दे० है । मंत्रार्थ (मीदृष्टम्, ते, या, हेतिः, ते, हस्ते, धनुः, बभूव, तथा, अश्वमया, त्वम्, विश्वतः, अस्मान्, परिभुज) हे ज्ञानामृतसे सींचनेवाले तुम्हारे जो ज्ञानरूप आयुष है आपके हाथमें जो माणरूप धनुष है, उस संसाररोगरूपी उपद्रव से रहित धनुष से आप सब ओरसे हमको पालन करो अर्थात् हमभक्तोंकी संसारबन्धनसे रक्षा करो ? ?

परिंते धन्वनो हेतिरस्मान्वृणक्तु विश्वतः ।

अथो य इषुधिस्तवारो अस्मत्त्रिवेहि तम् ॥ १२ ॥

इसका प्रजापति ऋ०, निचृ० छं०, रुद्र दे० है। मंत्रार्थ—हे रुद्र ते, धन्वनः, हेतिः, विश्वतः, अस्मान्, परिवृणक्तु, अथो, यः, गव इषुधिः, तम्, अस्मत्, आरे, निधेहि) हे रुद्र । तुम्हारे धनुषसम्बन्धी आयुध सबओरसे हमको त्यागो, और जो तुम्हारा तरकस है उसको हमसे दूर स्थापन करो ॥ १२ ॥

अवतत्य धनुष्ट्वथ सहस्राक्ष शतेषुधे ।

निशीर्य शल्यानां मुखं शिवो नः सुमना भव ॥ १३ ॥

इसका प्रजापति ऋ०, नि० छं०, रु० देवता है। मंत्रार्थ—सहस्राक्ष, शतेषुधे, त्वम्, धनुः, अवतत्य, शल्यानाम्, मुखः, निशीर्य, नः, शिवः, सुमनाः, भव) हे विराटरूप होनेसे सहस्रनेत्र हे सहस्रो तरकसवाने ! तुम धनुषको ज्यारहिग कर्के बाणोंके मुख भाला रहित करके हमारे निमित्त शान्त और शांभनचित्त हजिये क्योंकि मैं सायुज्यके योग्य हूँ ॥ १३ ॥

नमस्तु आयुधायानां तताय धिष्णवे । उभाभ्यां-

मुत ते नमो बाहुभ्यान्तव धन्वने ॥ १४ ॥

इसका प्रजापति ऋ०, भु० गा० छं० रु० देवता है। मंत्रार्थ—हे रुद्र (ते, अनांतताय, आयुधाय, नमः, ते, उभाभ्याम्, बाहुभ्याम्, उत, तव, धिष्णवे, धन्वने, नमः) आपके धनुषपर न चढ़ायेहुए बाणके निमित्त नमस्कार है आपके दोनों बाहुओंके निमित्त और आपके शत्रुओंको मारनेमें प्रगल्भ धनुषके निमित्त प्रणाम है १४

मा नो महान्तमुत मा नो अर्भकम्मा न उक्षि-

न्तमुत मा न उक्षितम् । मा नो वधीः पितर-

भ्योतं मातरम्मा नः प्पिपांस्तन्वो रुद्र रीरिपः ॥ १५ ॥

इसका कुरस ऋ०, नि० जगती छं०, रु० देवता है। मंत्रार्थ—हे रुद्र (नः, महान्तं, मा, वधीः, उत, नः, अर्भकं, मा, नः, उक्षिन्तम्, मा, उत, नः, उक्षितम्, मा, नः, पितरं, मा, उत, नः, मातरं, मा, नः, पिपाः, तन्वः, मा, रीरिपः) हमारे रुद्र गुरु पितृ-

पगडीधारण करनेवाले सभ्यगण नगरोंमें विचरनेवाले, शून्यमस्तक गिरिवनमें फिरनेवाले दोनों प्रकारके दलोंके हृदयमें स्थित परमात्माको नम० है, दल बल कौशलसे दूसरोंकी गृहभूमि आदि हरने वालों के पालकको नम० है, मनुष्यों के हराने को वाण धारण करनेवाले और धनुष साथ लेकर चलनेवाले आपको नम० है, कुलुधों के दमनार्थ धनुषपर ज्या चढ़ानेवाले को नम० है और धनुषपर वाण चढ़ानेवाले आपको नम० है और वाण को छोड़ने वाले आपको बारंबार नमस्कार है ॥ २२ ॥

नमो विसृजद्भ्यो विध्यद्भ्यश्च वो नमो नमः
स्वपद्भ्यो जाग्रद्भ्यश्च वो नमो नमः शयानेभ्य
आसीनेभ्यश्च वो नमो नमस्तिष्ठद्भ्यो धावद्भ्यश्च
वो नमः ॥ २३ ॥

इसका कुत्स ऋ०, निचृ० ज० छं०, रुद्र देवता है । मंत्रार्थ—
(विसृजद्भ्यः, नमः, च, विध्यद्भ्यः, वः, नमः, स्वपद्भ्यः,
नमः, च, जाग्रद्भ्यः, वः, नमः, शयानेभ्यः, नमः, च, आसी-
नेभ्यः, वः, नमः, तिष्ठद्भ्यः, नमः, च, धावद्भ्यः, वः, नमः)
पापियों के दमनार्थ वाण छोड़नेवाले को नम० और शत्रुओं के
लक्ष्य को वेधनेवाले आपको नम० है, सोनेवालों के अन्तर में
स्थित को नम० है और जाग्रत अवस्थाके अनुभवी आपको नम०
है, सुषुप्ति अवस्थावालों के अन्तर में स्थित आपको नम० है,
और बैठेहुओंके अन्तर में स्थित आपको नम० है और वेगयुक्त
गतिवालों के अन्तर में स्थित आपको नम० है ॥ २३ ॥

नमस्सुभाभ्यस्सुभापतिभ्यश्च वो नमो नमो-
ऽश्वेभ्योऽश्वपतिभ्यश्च वो नमो नम आव्याधि-
नीभ्यो विविर्षन्तीभ्यश्च वो नमो नम उर्गणा-
भ्यस्तृधृतीभ्यश्च वो नमो नमः ॥ २४ ॥

इसका कुत्स ऋ०, शकवरी छं०, रु०दे० है । मंत्रार्थ—सुभाभ्यः
नमः, च सुभापतिभ्यः, वः नमः, अश्वेभ्यः, नमः, च, अश्वपतिभ्यः

वः, नमः, श्राव्याधिनीभ्यः, नमः, च, विविध्यन्तीभ्यः, वः, नमः, उगणाय, नमः, च, वृद्धितीभ्यः, वः, नमः) सभारूपको नम० है [सभादिमें रुद्रदृष्ट करनी चाहिये] सभापतिरूप आपको नम० प्रत्येक शश्वोके अन्तरमें स्थितको नम० अश्वोके अधिपतिको नम० है देवसेनाओंमें स्थितको नम० है, विशेषकर वेधनेवाली देवसेनाओंमें स्थित आपको नम० है उत्कृष्ट भृत्यसमूहवाली ब्राह्मीआदि माताको नम० है, युद्धमें प्रहार करनेवाले दुर्गादिमें स्थित आपको नम० है ॥ २४ ॥

नमो गणेभ्यो गणपतिभ्यश्च वो नमो नमो
व्रातेभ्यो व्रातपतिभ्यश्च वो नमो नमो गृत्संभ्यो
गृत्संपतिभ्यश्च वो नमो नमो विरूपेभ्यो विश्व-
रूपेभ्यश्च वो नमः ॥ २५ ॥

इसका कुत्स ऋ०, भु०, श०, छं०, रुद्र दे० है । मंत्रार्थ— (गणोभ्यः नमः, च, गणपतिभ्यः, वः, नमः, व्रातेभ्यः, नमः, च, व्रात-पतिभ्यः, वः, नमः, गृत्संपतिभ्यश्च वः, नमः, विरूपेभ्यः, नमः, च, विश्वरूपेभ्यः, वः, नमः) गणरूप को नम० है और गणोंके अधिपति आपको नम० है, समूहरूपको नम० है और व्रातोंके अधिपति आपको नम० है बुद्धिमानोंको नम० है और बुद्धिमानों के रक्षक आपको नम० है नग्न सुयद जटिलादि विकृतरूपको नम० है और सर्वरूप नानाविधरूप आपको नम० है ॥ २५ ॥

नमः सेनाभ्यः सेनानिभ्यश्च वो नमो नमो
रथिभ्यो अरथेभ्यश्च वो नमो नमः क्षत्रुभ्यस्सं-
गृहीतृभ्यश्च वो नमो नमो महद्भ्यो अर्भके-
भ्यश्च वो नमः ॥ २६ ॥

इसका कुत्स ऋ०, भुरिग० ज० छं०, रुद्र दे० है । मंत्रार्थ (सेनाभ्यः, नमः, च, सेनानिभ्यः, वः, नमः, रथिभ्यः, नमः, च, अरथेभ्यः, वः, नमः, क्षत्रुभ्यः, नमः, च, संगृहीतृभ्यश्च, वः, नमः, महद्भ्यः, नमः, च, अर्भकेभ्यः, वः, नमः) सेनारूपको

नम० है, और सेनापतिरूपको नम० है, रथीरूपको नम० है, अरथीको नम० है, रथके अधिष्ठातृके अन्तरमें स्थितको नम० है और सारथियोंके अन्तरमें स्थित आपको नम० है, जाति विद्या ऐश्वर्यमें पूज्यको नम० है और प्रमाणादिसे अल्परूप आपको नम० है ॥ २६ ॥

नमस्तक्ष्मभ्यो रथकारेभ्यश्च वो नमो नमः कुला-
लेभ्यः कर्मारिभ्यश्च वो नमो नमो निषादेभ्यः
पुञ्जिष्टेभ्यश्च वो नमो नमः श्वनिभ्यो मृग-
युभ्यश्च वो नमः ॥ २७ ॥

इसका कुत्स ऋ०, निचृच्छकरी छं०, रुद्र दे० है । मंत्रार्थ (तक्ष्मभ्यः, नमः, च, रथकारेभ्यः, वः, नमः, कुलालेभ्यः, नमः, च, कर्मारिभ्यः, वः, नमः, निषादेभ्यः, नमः, च, पुञ्जिष्टेभ्यः, वः, नमः, श्वनिभ्यः, नमः, च, मृगयुभ्यः, वः, नमः,) काष्ठकी शिल्पविद्याके जाननेवालोंमें व्याप्तको नम० है और विमान रथ-निर्माणकारी उत्कृष्ट तत्ताके अन्तरमें स्थित आपको नम० है प्रशंसित मृत्तिकाके पात्र बनानेवालोंमें स्थितको नम० है और लोहेके शस्त्र बनानेवालोंमें स्थितको नम० है और गिरिचारी भीलादि में स्थितको नम० है और पक्षिघानक-पुलकसादि में स्थित आपको नम० है कुत्तोंके गलेमें रस्सी बाँधकर धारण करनेवालों के अन्तरकी जाननेवालेको नम० है और मृगोंकी कामनावाले व्याधोंके अन्तर स्थित आपको नम० है ॥ २७ ॥

नमः श्वभ्यः श्वपतिभ्यश्च वो नमो नमो भ्रुवाय
च रुद्राय च नमः शुर्षाय च पशुपतये च नमो
नीलघ्रीवाय च शित्तिकण्ठाय च ॥ २८ ॥

इसका कुत्स ऋ०, आर्षीज० छं०, रुद्र दे० है । मंत्रार्थ (श्वभ्यः, नमः, च, श्वपतिभ्यः, वः, नमः, च, भ्रुवाय, नमः, च, रुद्राय, नमः, च, शुर्षाय, नमः, च, पशुपतये, च, नीलघ्रीवाय, नमः, च, शित्तिकण्ठाय) कुक्कुरों के अन्तरमें स्थितको नम० है और कुक्कुरोंके अधिपति किरातोंके

अन्तरमें स्थित आपको नम० है और जिनसे सब जगत् उत्पन्न होता है उनको नम० है और दुःख दूर करनेवाले देवको नम० है और पापका नाश करनेवालेको नम० है और माणियोंके अधिपति को नम० है और नीलवर्ण श्वावालेको नम० है और नीलकण्ठ वाले को नम० है ॥ २८ ॥

नमः कपर्दिने च व्युत्केशाय च नमः सहस्राक्षाय च शतधन्वने च नमो गिरिशयाय च शिपिविष्टाय च नमो मीढुष्टमाय च पुंमते च ॥ २९ ॥

इसका कुत्स ऋ०, पु० ज० छं०, रुद्र दे० है । मंत्रार्थ— (कर्पादिने, च, व्युत्केशाय, नमः, च, सहस्राक्षाय, च, शतधन्वने नमः, च, गिरिशयाय, शिपिविष्टाय, नमः, च, मीढुष्टमाय, च, पुंमते, नमः) जटाजूटधारीको भी नम० है, पुण्ड्रकेशको नम० है और सहस्रलोचन इंद्ररूपको नम० है और बहुत धनुष धारण करनेवालेको नम० है और पर्वतपर शयन करनेवालेको और सब प्राणियोंके अन्तरमें व्यापक विष्णुरूपको नम० है और मेघरूपसे वृषिकर्ताको और बाणधारीको नम० है ॥ २९ ॥

नमो ह्रस्वाय च वामनाय च नमो वृद्धाय च वर्षीयसे च नमो वृद्धाय च सृष्टे च नमोऽष्टयाय च प्रथमाय च ॥ ३० ॥

इसका कुत्स ऋ०, वि० भि० छं०, रुद्र दे० है । मंत्रार्थ (ह्रस्वाय, च, नमः, च, वामनाय, च, वृद्धाय, च, वर्षीयसे, नमः, च, वृद्धाय, च, सृष्टे, नमः, च, आष्टयाय, च, प्रथमाय, नमः) अल्पशरीर को भी नम० है और संकुचित अवयवमें व्याप्त वामनरूपको नम० है और बड़े शरीरवालेको और अतिवृद्धको नम० है और अधिक अवस्थावालेको और विद्याग्नियथादि गुणयुक्त ब्रह्मणियोंके साथ वर्तनेवाले युवाको नम० है और जगत्में प्रथम प्रकट होनेवाले को और सबमें प्रथम ब्रह्मरूपको नमस्कार है ॥ ३० ॥

नमो आशवे चाजिराय च नमः शीघ्राय च

शीर्ष्याय च नम ऊर्ष्याय च वावस्वन्याय च नमो
नादेयाय च द्वीप्याय च ॥ ३१ ॥

इसका कुत्स ऋ०, स्वराढार्षी पं० छ० रुद्र दे० है। मंत्रार्थ (आश्वे,
च, च, अजिराय, नमः, च, शीघ्रयाय, च, शीर्ष्याय च, नमः,
च, ऊर्ष्याय, च, अवस्वन्याय, नमः, च, नादेयाय, च, द्वीप्याय,
नमः,) जगद्व्यापकको और गतिशील गंगादि तीर्थरूपको नम०
है और वेगवाली वस्तुमें विद्यमान और जलप्रवाहमें विद्यमान
आत्मश्लाघी को नम० है और जलतरंगमें वर्तमान वा भूखण्डास
आदि पहाड़ोंमें वर्तमान और स्थिर जलोंमें विद्यमानको नमस्कार
है और नदीमें वर्तमानको नमस्कार है और द्वीपमें होनेवाले व्यास-
रूपको नमस्कार है ॥ ३१ ॥

नमो ज्येष्ठाय च कनिष्ठाय च नमः पूर्वजाय
चापरजाय च नमो मध्यमाय चापगल्भाय
च नमो जघन्याय च बुध्न्याय च ॥ ३२ ॥

इसका कुत्स ऋ०, स्व० त्रि० छ०, रुद्र दे० है। मंत्रार्थ—
(च, ज्येष्ठाय, च, कनिष्ठाय, नमः, च, पूर्वजाय, च, अपरजाय,
नमः, च, मध्यमाय, च, अपगल्भाय, नमः, च, जघन्याय, च,
बुध्न्याय, नमः) और ज्येष्ठरूपको और कनिष्ठरूपको नमस्कार
है [अर्थात् सृष्टि के आरम्भ में प्रथम उत्पन्न होने से ज्येष्ठरूप
तिसके भीतर भी विद्यमान और उसके पीछे जो कुछ उत्पन्न
होरहा है उस सबके हृदयमें भी विद्यमान होने से कनिष्ठरूप है]
और जगत् की आदि में हिरण्यगर्भरूप से उत्पन्न और प्रलय
काल में कालाग्निरूप से होनेवाले को नमस्कार है और सृष्टि
संहार के अन्तर देवतिर्यगादिरूप से होनेवाले को नम०, और
अपगल्भ अव्युत्पन्न इन्द्रिय इन्द्रियादिप्रकाशरहित अण्डरूपको
नम० और गवादिके पीछे होनेवाले स्वेदज कृमि कीटादि में
वर्तमानको नम० है और वृक्षादि की मूल में पोषकरूप से वर्त-
मानको नमस्कार है ॥ ३२ ॥

नमस्सोभ्याय च प्रतिसूर्याय च नमो याम्याय
 च क्षेम्याय च नमः श्लोक्याय चावसान्याय च
 नम उर्वर्याय च खल्याय च ॥ ३३ ॥

इसका कुत्स ऋ०, आ० त्रि० छं०, रुद्र दे० है। मंत्रार्थ (सोभ्याय, च, नमः, प्रतिसूर्याय, नमः, च, याम्याय, च, क्षेम्याय, नमः, च, श्लोक्याय, च, अवसान्याय, नमः, च, उर्वर्याय, च, खल्याय, नमः) गन्धर्वनगर में होनेवालेको भी नम० है और विवाहादिकार्यमें हाथमें बंधे मंगलसूत्रमें विद्यमानको नम० और पापियोंको दुःखदेनेवाले यममें वर्त्तमानको और क्षेममें होनेवालेको नम० और इस संसारमें यशःप्रचार के कारणभूत और वेदोंमें स्थितको नम० है और उपजाऊ भूमिमें उत्पन्नहुए धान्यादिमें भी विद्यमानको नम० है और धान्य-निकालनेके स्थानमें होनेवालेको नमस्कार है ॥ ३३ ॥

नमो वन्याय च कक्ष्याय च नमः श्रवाय च
 प्रतिश्रवाय च नम आशुपेणाय चाशुरंधाय च
 नमः शूराय चावभेदिने च ॥ ३४ ॥

इसका मनापति ऋ०, स्वराडार्पी त्रि० छं०, रुद्र दे० है। मंत्रार्थ (वन्याय, च, नमः, कक्ष्याय, नमः, च, श्रवाय, च, प्रतिश्रवाय, नमः, च, आशुपेणाय, च, आशुरंधाय, नमः, च, शूराय, च, अवभेदिने, नमः) वनमें वृक्षादिस्वरूपको भी नम० है, और तृण-वल्लीमें होनेवालेको नम० है, और शब्दरूपको नम० है और प्रतिध्वनिमें विद्यमानको नम० है और शीघ्र चलनेवाले रथोंकी श्रेणीमें विद्यमानको नम० है और युद्धविशारदोंके हृदयमें विद्यमानको और शत्रुका हृदय वेधनेवाले शस्त्रमें भी विद्यमानको नम० है।

नमो विलिम्बे च कवचिने च नमो वर्धिमणे च
 वरूथिने च नमः ध्रुताय च श्रुतमेनाय च नमो
 दुन्दुभ्याय चाहन्याय च ॥ ३५ ॥

इसका कुत्स ऋ०, स्वराडार्पी त्रि० छं०, रुद्र देवता है।

मंत्रार्थ—(च, विलिमने, नमः, कवचिने, नमः, च, वामिणे, नमः, च, वरूथिने, नमः, च, धुताय, च, ध्रुतसेनाय, च, नमः, हुन्दुभ्याय, च, आहनन्याय, नमः) और शिखाणधारी को नम० है और कवचधारी को नम० और मंत्रमय कवचधारी को नम० है और चौदह भुवनवासी को नमस्कार है और प्रसिद्ध को नम० है और गसिद्ध सेनावाले को भी नम० है और रणके वाजे में विद्यमान को और वाजे के दण्डे आदि में विद्यमान को नमस्कार है ॥३५॥

नमो धृष्णधे च प्रमृशाय च नमो निषङ्गिणे
चेपुधिमते च नमस्तीक्ष्णेषवे चायुधिने च नमः
स्वायुधाय च सुधन्वने च ॥ ३६ ॥

इसका कुत्स ऋ०, स्व० त्रि० छं०, इन्द्र दे० । मंत्रार्थ (च, धृष्णांवे, च, प्रमृशाय, नमः, च, निषङ्गिणे, नमः, च, इपुधिमते, नमः, च, तीक्ष्णेषवे, च, आयुधिने, नमः, च, स्वायुधाय, च, सुधन्वने) और प्रगल्भरूप अपने पक्षकी रक्षा करनेवालेको नम० है और विचारशील पंडितरूपको नम० है और खड्गधारीको नम० है और तारकसधारीको नम० है और तीक्ष्णवाणधारी को और अन्य आयुधधारीको नम० है और शोभन आयुध विशुल धारीको और पिनाकधनुषधारीको नमस्कार है ३६ ॥

नमः स्रुत्याय च पथ्याय च नमः काव्याय च
नीप्याय च नमः कुल्याय च सरस्याय च नमो
नादेयाय च वैशन्ताय च ॥ ३७ ॥

इसका कुत्स ऋ०, नि०, त्रि०, छं०, रुद्र दे० है । मंत्रार्थ—(च, स्रुत्याय, च, पथ्याय, नमः, च, काव्याय, च, नीप्याय, नमः, च, कुल्याय, च, सरस्याय, नमः, च, नादेयाय, च, वैशन्ताय, नमः) और मुक्तिदाताको और मुक्तिमार्ग में दर्शन देने वालेको नम० है और दुर्गम मार्गमें दर्शन देनेवालेको और संसारवृत्त स्वरूपको नमस्कार है और नहरके मार्गमें स्थितको और सरोवरोंमें विद्यमानको नम० है और नदीमें जतरूप से

स्थितको नमस्कार है ॥ ३७ ॥

नमः कूप्याय चायट्याय च नमो वीङ्घ्याय
चातप्याय च नमो मेघ्याय च विद्युत्याय च
नमो वर्ष्याय चावर्ष्याय च ॥ ३८ ॥

इसका कुत्स ऋ०, भु० पं० अं०, रुद्र दे० है। मंत्रार्थ—(च, कूप्याय, च, अवध्याय, नमः, च, वीङ्घ्याय, च, आतप्याय, नमः, च, मेघ्याय च, विद्युत्याय, नमः, च, वर्ष्याय, च, अवर्ष्याय, नमः) और कूपमे आत्मारूपसे विराजमानको० और गर्तजल में विराजमानको नमस्कार है और महापकाशमें स्थितको० और धूपमें विद्यमानको नमस्कार है और मेघमें विद्यमानको० और विजली में विराजमानको नमस्कार है और वर्षाकी धारा में स्थितको० और वृष्टिके प्रतिबन्धमें स्थितको नमस्कार है ॥ ३८ ॥

नमो वात्याय च रेभ्याय च नमो वास्तव्याय
च वास्तुपाय च नमो सोमाय च रुद्राय च नमः-
स्तात्राय चारुणाय च ॥ ३९ ॥

इसका कुत्स ऋ०, स्वराटार्पी पं० अं०, रुद्र दे० है। मंत्रार्थ (च, वात्याय, च, रेभ्याय, नमः, च, वास्तव्याय, च, वास्तुपाय, नमः, च, सोमाय, च, रुद्राय, नमः, च, तात्राय, च, अरुणाय, नमः) और वायुपवाहमे विराजमानको० और प्रलयकी पवनमें रहनेवालेको नमस्कार है और वास्तुगृहमें विराजमानको० और गृहभूमिके देवताको नम० है और चन्द्रमामें स्थितको और दुःख नाशकको नम० है और सायंकालके सूर्यमें स्थितको नम० है और प्रभातकालीन सूर्यमें स्थितको नमस्कार है ॥ ३९ ॥

नमः शङ्खे च पशुपतये च नम उग्राय च भीमाय
च नमोऽग्नेवर्षाय च दूरेवर्षाय च नमो हस्त्रे च
हनीयसे च नमो वृक्षेभ्यो हरिकेशेभ्यो नमः-
स्ताराय ॥ ४० ॥

इसका परमे० वा प० देवा० ऋ०, भु० श० अं०, रुद्र दे० है।

मंत्रार्थ- (शत्रुवे, नमः, च, पशुपतये, नमः, च, उग्राय, च, भीमाय, नमः, च, अग्नेवधाय, च, दूरेवधाय, नमः, च, हन्त्रे, नमः, हनीयसे, नमः, हरिकेशेभ्यः, वृक्षेभ्यः, नमः, ताराय, नमः) कल्याणरूप वेदवाणी वालेको नमस्कार है और प्राणियोंके पालकको नम० है और शत्रुओंके मारनेको कठिन आयुध उठाये कठिन अन्तःकरणवाले को० और शत्रुमयोत्पादक भयानक को नम० है और सन्मुख के शत्रुका वध करनेवालेको० और दूरके शत्रुका वध करनेवाले को नम० है और मारनेवालेके रूपमें स्थित स्यावर पदार्थ के लयकारीको नम० है और अतिशय हन्ता सदाको मृत्युका अभाव करनेवालेको नम० है हरे पक्षेवाले कल्पतरुरूपको नम० संसारके तारनेवालेको नमस्कार है ॥ ४० ॥

नमः शम्भवाय च मयोभवाय च नमः शंकराय

च मयस्कराय च नमः शिवाय च शिवतराय च ॥ ४१ ॥

इसका परम० प्र० वा० देवा अ०, स्व० वृ० ज्ञ०, रुद्र दे० है । मंत्रार्थ- (शम्भवाय, नमः) इसलोकके कल्याणकारी जिन से सुख होता है अथवा सुखरूप संसाररूप मुक्तिरूपको नम० है (च, मयोभवाय, च, शंकराय, नमः) और संसारके सुखदाता पारलौकिक कल्याणको नम० है और लौकिक सुखदेनेवालेको नम० है (च, मयस्कराय, च, शिवाय, नमः) और मोक्षसुख देनेवालेको नम० है और कल्याणरूप निष्पापको नम० है (च, शिवतराय) और भक्तोंके अत्यन्त कल्याणकारक तथा निष्पाप करनेवालेको नमस्कार है ॥ ४१ ॥

नमः पाथ्याय चावार्याय च नमः प्रतरणाय

च उत्तरणाय च नमस्तार्थ्याय च कूर्याय च

नमः शष्प्याय च फेन्याय च ॥ ४२ ॥

इसका परम० प्र० दे० अ०, निचृ० नि० ज्ञ०, रुद्र दे० है । मंत्रार्थ- (च, पाथ्याय, च, अवार्याय, नमः, च, प्रतरणाय, च, उत्तरणाय, नमः, च, तीर्थ्याय, च, कूर्याय, नमः, च, शष्प्याय,

च, फेन्याय, नमः,) और समुद्रके पारमें भी विद्यमानको० और सागरके इस पारमें भी विद्यमानको नम० है जहाजमें विद्यमानको और डोंगेमें भी विद्यमानको नम० है और सागरादिके गर्भमें विद्यमानको० और जलपणालीमें प्रकट होनेवालेको नम० है और गंगादिके तटमें उत्पन्न कुश अकुरादिमें विद्यमानको नम० है और सागरादिके फेनमें होनेवालेको नम० है ॥ ४२ ॥

नमः सिकृत्याय च प्रवाहाय च नमः किंशिलाय च क्षयणाय च नमः कपादिने च पुलस्तये च नमः हरिण्याय च प्रपथ्याय च ॥ ४३ ॥

इसका परमेशी प्रजापतिर्वा देवा ऋ०, जगती छ०, रुद्र दे० है । मंत्रार्थ—(च, सिकृत्याय, च, प्रवाहाय, नमः, च, किंशिलाय, च, क्षयणाय, नमः, च, कपादिने च, पुलस्तये, च, हरिण्याय, च, प्रपथ्याय, नमः) और तीर्थरजराको और प्रवाहकूपको नमस्कार है और नदी आदिके भीतर घुसकरादिमें विद्यमानको और स्थिरजलमें विद्यमानको नम० है और जटाजूटयुक्त व प्रजलमें विद्यमानको और तटारहित ऊपरभागमें विद्यमानको और बहुत सेवितमार्ग में विद्यमानको नम० है ॥ ४२ ॥

नमो ब्रज्याय च गोष्ठ्याय च नभस्तल्प्याय च गेहाय च नमो हृदय्याय च निवेण्याय च नमः काट्याय च गहरेष्टाय च ॥ ४४ ॥

इसका परमेशी ऋ०, आपी त्रि० छ०, रुद्र दे० है । मंत्रार्थ—(च, ब्रज्याय, च, गोष्ठ्याय, नमः, च, तल्प्याय, च, गेहाय, नमः, च, हृदय्याय, च, निवेण्याय, नमः, च, काट्याय, च, गहरेष्टाय) और गोचारणस्थानमें विद्यमान और ब्रजमें विद्यमानको नम० है और शपशय्यारूपको और घरमें देवतावासविराजमानको नम० है और हृदयमें जीवरूपसे स्थितको और हिमसमूहमें विराजमानको नम० है और दुर्गमें मार्गमें विराजमानको और गिरिगुहामें विराजमानको नम० है ॥ ४४ ॥

नमः शुष्क्याय च हरित्याय च नमः पाथस-
व्याय च रजस्याय च नमो लोप्याय चोल्प्याय
च नम ऊर्ष्याय च सूर्ष्याय च ॥ ४५ ॥

इसका परमैष्टी प्रनापतिर्वा ऋ० निचूदा त्रि० छं०, रुद्र दे० है।
मंत्रार्थ—(च, शुष्क्याय, च, हरित्याय, नमः, च, पाथसव्याय,
च, रजस्याय, नमः, च, लोप्याय, च, उल्प्याय, नमः, च, ऊर्ष्याय,
च, सूर्ष्याय, नमः) और सूत्रे काष्ठादिमें विराजमानको और
हरेपत्तेआदिमें विराजमानको नम० है और धूलिमें विराजमान
को और रजोगुणमें विद्यमानको नम० है और अगम्य देशमें
विराजमानको और बलवजादि तृणमें विराजमानको नम० है
और उर्वरभूमिमें विराजमानको नमस्कार है और महापलयकी
अग्निमें विराजमानको नम० है ॥ ४५ ॥

नमः पूर्णाय च पर्णशदाय च नम उद्गुरमा-
णाय चाभिघ्नते च नम आखिदते च प्रखिदते
च नम इपुकृद्भ्यो धनुष्कृद्भ्यश्च नमो नमो
वः किरिकेभ्यो देवानां हृदयेभ्यो नमो विचि-
न्वत्केभ्यो नमो विक्षिण्त्केभ्यो नम आनिर्हतेभ्यः ॥ ४६ ॥

इसका परमैष्टी ऋ०, स्वराट् प्रकृति छं०, रुद्र दे०। मंत्रार्थ—
(च, पूर्णाय, च, नमः, च, उद्गुरमाणाय, च, अभिघ्नते, नमः,
च, आखिदते, च, प्रखिदते, नमः, इपुकृद्भ्यः, च, धनुष्कृद्भ्यः
वः, नमः) और पर्णमें विद्यमानको और पर्णपतित वर्णस्थित देशरूप
में विद्यमानको नम० है और निरन्तर उद्यमियों और शत्रुओंके
संहारकों नम० है और अभक्तोंको सदा दुःखदाता त्रिविधतापके
नाशकों और त्रिविधतापके उत्पन्नकर्त्ताको नम० है वाणके उत्पन्न
करनेवालोंको और धनुषके रचनेवाले आपको नमस्कार है (देवानां,
हृदयेभ्यः, किरिकेभ्यः, वः, नमः, विचिन्वत्केभ्यः, नमः, विक्षिण्त्के-
भ्यः, नमः, आनिर्हतेभ्यः) जो देवताओंके हृदयस्वरूप प्रधान
आग्नि वायु सूर्यके हृदयरूप सृष्ट्यादि द्वारा जगत्को सृजन करते

हैं ऐसे आपको नमस्कार है जो देवताओंका हृदयस्वरूप है जो
 सृष्टिआदिसे जगत्का पालन करते हैं जो धर्मात्मा और पापात्माओं
 को पृथक् करते हैं उन अग्नि वायु सूर्य के हृदयको नमस्कार है,
 विविध पापोंको दूर करनेवाले अग्निआदिको नमस्कार है अर्थात्
 जो देवताओंका हृदयस्वरूप विचित्ररत्न सृष्टिआदिसे जगत्का संहार
 करते हैं अग्नि वायु सूर्यके हृदयस्वरूप हैं उनको चारंवार नमो है
 सृष्टिकी आदिमें होनेवाले रुद्रावतारको नमस्कार है ॥ ४६ ॥

द्रापे अन्धसस्पते दरिद्र नीललोहित । आसा-
 म्प्रजानामिषाम्पशूनाम्माभेर्मा रोङ् मो च नः
 किञ्चुनाममत् ॥ ४७ ॥

इसका परमे० मजा० ऋ०, भु० गा० वृ० छं०, रुद्र दे० है ।
 मंत्रार्थ—(द्रापे, अन्धसः, पते, दरिद्र, नीललोहित, नः, आसाम्,
 मजानां, पशां, पशूनां, मा, भेः, मा, रोक्, च, किञ्चन, मा, आम-
 मत्) हे पापियोंकी दुर्गति करनेवाले हे सोमके पालक अद्वितीय
 होनेसे सहायशून्य हे नील और लोहित शुक्लकृष्ण उभयात्मक
 शिव ! हमारे इन पुत्र पौत्रादिको इन पशुओंको मत भय दो तथा
 मजापशुओंका भंग मत करो और किसीप्रकार भी हमें तथा हमारी
 प्रजा पशुको मत रूण करो सबप्रकार मजापशुमें मंगल करो ४७

इमा रुद्राय त्वसे कपर्दिने क्षयद्वीराय प्रभरामहे
 महे मतीः । यथा शमसद्विपदे चतुष्पदे विश्व-
 म्पुष्टं ग्रामे अस्मिन्नततुरम् ॥ ४८ ॥

इसका कुत्स ऋ०, आर्षी ज० छं० रुद्र देवता है । मंत्रार्थ (यथा,
 द्विपदे, चतुष्पदे, शं, अस्मिन्, ग्रामे, विश्वं, पुष्टं, अनातुरम्, असत्,
 इमाः, मतीः, त्वसे कपर्दिने, क्षयद्वीराय, रुद्राय, प्रभरामहे)
 जिसप्रकार पुत्रादिमें गवादिपशुओंमें सुखकी प्राप्ति हो तथा इस
 ग्राममें सम्पूर्ण प्राणिसंग्रह पुष्ट उपद्रवरहित हो उसीप्रकार हम
 इन अथर्षी बुद्धियों को महावली जाटिल शूरवीरोंके निवासभूत
 रुद्रादेवताके निमित्त समर्पण करते हैं ॥ ४८ ॥

या ते रुद्र शिवा तनूः शिवा विश्वाहा भेषजी ।

शिवा रुद्रस्य भेषजी तया नो मृद जीवसे ॥ ४९ ॥

इसका परमे० प्रजा० ऋ०, आर्ष्यनु० छं० रुद्र दे० । मंत्रार्थ (हे रुद्र, या, ते, शिवा, विश्वाहा, शिवा, भेषजी, रुद्रस्य, शिवा, भेषजी तनूः, तया, नः जीवसे, मृद) हे शंकर जो आपका शान्त निरन्तर कल्याणकारी औपधीरूप संसारकी व्याधि निवृत्त करने वाला तथा शरीरव्याधिकी समीचीन औपधीरूप शरीर वा शक्ति है उस शक्तिसे हमको जीवनके लिये सुखी करो ॥ ४९ ॥

परिं नो रुद्रस्य हेतिर्वृणक्तु परिं त्वेषस्य दुर्मति-
रघायोः अघस्थिरा मघवद्भयस्तनुष्व मीद्व-
स्तोकाय तनयाय मृद ॥ ५० ॥

इसका परमे० प्रजा० ऋ०, आ० त्रि० छं०, रुद्र दे० है । मंत्रार्थ—(रुद्रस्य, हेतिः, नः, परिवृणक्तु, त्वेषस्य, अघायोः, दुर्मतिः, परि, मीद्वः, मघवद्भयः, स्थिरा, अघतनुष्व, तोकाय, तनयाय, मृद) रुद्रके सम्पूर्ण आयुष्य हमको परित्याग करै पापियों पर क्रोधित अर्थात् कोपनस्वभाव, दण्डदेनेकी इच्छावाली दुर्मति हमको सब प्रकार त्याग करै हे अभिलषित फलदा । हविरूप धनसे युक्त यजमानोंके भय दूरकरनेको दृढ धनुषोंको व्याहीन करो हमारे पुत्र पौत्रादिको सुख दो ॥ ५० ॥

मीदुष्टम शिवतम शिवो नः सुमना भव ।

परमे वृक्ष आयुधन्निधाय कृत्तिं वसूतान आचर

पिनाकम्बिभ्रदागहि ॥ ५१ ॥

इसका परमे० म० ऋ०, नि० छं०, रुद्र देवता है । मंत्रार्थ—(मीदुष्टम, शिवतम, नः, शिवः, सुमनाः, भव, परमे, वृक्षे, आयुधं, निधाय, कृत्तिं, वसूतानः, आचर, पिनाकं, विभ्रत्, व्यागहि) हे अतिशय अभिलषित फलदाता अत्यन्त कल्याणकर्त्ता हमको शान्त सुन्दरमनवाने होओ दूरस्थितवा जैसे वृक्षपर अपना त्रिशूल (५१) मृगचर्म धारणाकेये भागमन कीजिये पिनाक धनुषको

धारण किये आगमन कीजिये ॥ ५१ ॥

विकिरिद्र विलोहित, नमस्ते अस्तु भगवः ।

यास्ते सहस्रं छे हेतयोन्पमस्मन्निवपन्तु ताः ॥ ५२ ॥

इसका पर० ऋ०, आर्ष्यनु० छं०, रुद्र देवता है। मंत्रार्थ—
(विकिरिद्र, विलोहित, भगवः, ते, नमः, अस्तु, ते, याः, सहस्रं,
हेतयः, ताः, अस्मत्, अन्यम्, निवपन्तु) हे अनेक उपद्रव नष्ट
करनेवाले हे शुद्धस्वरूप भगवन् ! आपको नमस्कार हो तुम्हारे
जो सहस्रों शस्त्र हैं वह हमको छोड़कर और कहीं उपद्रवियों पर
पड़ें ॥ ५२ ॥

सहस्राणि सहस्रशो वाहोस्तव हेतयः ।

तासामीशानो भगवः पराचीना मुखा कृधि ॥ ५३ ॥

इसका पर० ऋ०, निचु० छं०, रुद्र देवता है। मंत्रार्थ—(भगवः,
तव, वाहोः, सहस्राणि, सहस्रशः, हेतयः, ईशानः, तासाम्, मुखा,
पराचीना, कृधि) हे भगवन् ! पदभर्षसम्भन्न ! आपके मुजाओं
में बहुत मकार के सहस्रों खट्वाणुतादि आयुध हैं, जगत के पाति
आप उन संहारकारी आयुधों के मुखों को हमसे पराङ्मुख करो ५३

असंख्याता सहस्राणि ये रुद्रा अधिभूम्याम् ।

तेपां छे सहस्रयोजनेव धन्वानि तन्मसि ॥ ५४ ॥

इसका पर० ऋ०, विराडा० छं० रुद्र देव० । मंत्रार्थ—(ये,
असंख्याताः सहस्राणि, रुद्राः, भूम्याम्, अधि, तेषाम्, धन्वानि,
सहस्रयोजने, अतन्मसि) जो असंख्य सहस्रों रुद्र भूमिके ऊपर
स्थित हैं उनके धनुष सहस्र योजनदूर फैल्ये हैं ॥ ५४ ॥

अस्मिन्महत्स्पर्णवेन्तरिक्षे भवा अधि ।

तेपां छे सहस्रयोजनेव धन्वानि तन्मसि ॥ ५५ ॥

इसका पर० ऋ०, भुरिगा०, छं०, रुद्र देवता है। मंत्रार्थ
(अस्मिन्, अन्तरिक्षे, महाति, अर्णवे, अधिभवाः, तेषां, धन्वानि,
सहस्रयोजने, अतन्मसि) इस अन्तरिक्षमें और बड़े सागर अर्थात्
आकाशांगानामसे प्रसिद्ध तत्तत्र-पुत्ररूप धारामवाहमें आश्रय

करके जो रुद्र स्थित हैं उनके सम्पूर्ण धनुष सहस्र योजन दूर
ज्यारहित करके हम निर्भय होते हैं ॥ १५ ॥

नीलग्रीवाः शितिकण्ठा दिवं रुद्रा उपश्रिताः।

तेषां सहस्रयोजनेषु धन्वानि तन्मासि ॥ १६ ॥

इसका पर० ऋ०, निचू० छं०, रुद्र दे० है। मंत्रार्थ (नील-
ग्रीवाः, शितिकण्ठाः, रुद्राः, दिवं, उपश्रिताः, तेषां, धन्वानि,
सहस्रयोजने, अवतन्मासि) नीलग्रीव श्वेतकण्ठवाले विपभक्षणसे
कितना एक कण्ठ श्वेत और कितना एक नील है ऐसे जो रुद्र ध्रुलोक
में आश्रय किये हुए हैं उनके सब धनुषोंको सहस्रयोजन दूर ज्यारहित
कर हम निर्भय होते हैं ॥ १६ ॥

नीलग्रीवाः शितिकण्ठाः शर्वा अधः क्षमाचराः।

तेषां सहस्रयोजनेषु धन्वानि तन्मासि ॥ १७ ॥

इसका पर० ऋ०, निचू० छं०, रुद्र दे० है। मंत्रार्थ (नील-
ग्रीवाः, शितिकण्ठाः, शर्वाः, अधः, क्षमाचराः, तेषां, धन्वानि,
सहस्रयोजने, अवतन्मासि) नीलीगर्दनवाले श्वेतकण्ठवाले जो
शर्वनामक रुद्र नीचे पातालमें वर्तमान हैं उनके सब धनुष सहस्र-
योजन दूर ज्यारहित करके हम निर्भय होता है ॥ १७ ॥

ये वृक्षेषु शपिञ्जरा नीलग्रीवा विलोहिताः।

तेषां सहस्रयोजनेषु धन्वानि तन्मासि ॥ १८ ॥

इसका पर० ऋ०, निचू० छं०, रुद्र दे० । मंत्रार्थ (ये,
शपिञ्जराः, नीलग्रीवाः, विलोहिताः, वृक्षेषु, तेषां, धन्वानि,
सहस्रयोजने, अवतन्मासि) जो हरितवर्ण नीलग्रीवावाले विशेष
रक्षणें वृक्षोंमें वर्तमान हैं उनके सम्पूर्ण धनुष सहस्र योजन दूर
ज्यारहित करके अभय होते हैं ॥ १८ ॥

ये भूतानामधिपतयो विशिखासः कपर्दिनः।

तेषां सहस्रयोजनेषु धन्वानि तन्मासि ॥ १९ ॥

इसका पर० ऋ०, निचू० छं०, रुद्र दे० । मंत्रार्थ (ये, भूतानां
अधिपतयः, विशिखासः, कपर्दिनः, तेषां, धन्वानि, सहस्रयोजन,

अवतन्मसि) जो देवविंशकोंके अधिपति हैं तथा शिखाहीन
मुण्डिताशिर हैं जो जटाजूटसे युक्त हैं उनके सम्पूर्ण धनुष सहस्र
योजन दूर ज्यारहित करके निर्भय होते हैं ॥ ५९ ॥

ये पथाम्पश्चि रक्षय ऐलवृदा आयुर्धुवः । तेषां च
सहस्रयोजनेव धन्वानि तन्मसि ॥ ६० ॥

इसका पर० ऋ०, आर्ष्यनु० छं०, रुद्र दे० । मंत्रार्थ—(ये,
पथाम्, पथिरक्षयः, ऐलवृदाः, आयुर्धुवः, तेषाम्, धन्वानि सहस्र-
योजने, अवतन्मसि) जो लौकिक वैदिक मार्गोंके अधिपति मार्गों
के पालक राज्यशासनकारी जीवनपर्यन्त युद्ध करनेमें रहते हैं उनके
सब धनुष सहस्रयोजन दूर ज्यारहितकरके निर्भय होते हैं ॥ ६० ॥

ये तीर्थानि प्रचरन्ति सृकाहस्ता निपक्षिणाः ।
तेषां च सहस्रयोजनेव धन्वानि तन्मसि ॥ ६१ ॥

इसका पर० ऋ०, निचु० छं०, रुद्र दे० । मंत्रार्थ—(सृकाहस्ताः,
निपक्षिणाः, तीर्थानि, प्रचरन्ति, तेषां, धन्वानि, सहस्रयोजने, अव-
तन्मसि) जो आयुध विशेष ढालको हाथमें लिये तथा तद्गधा-
रण किये काशी मयागादि तीर्थोंमें फिरते हैं उनके सम्पूर्ण धनुष
सहस्रयोजन दूर ज्यारहित करके निर्भय होते हैं ॥ ६१ ॥

ये क्षेत्रेषु विविध्यन्ति पात्रेषु पिबन्तो जनान् ।
तेषां च सहस्रयोजनेव धन्वानि तन्मसि ॥ ६२ ॥

इसका पर० ऋ०, विराडार्ष्यनु० छं०, रुद्र देवता है । मंत्रार्थ
(ये, अन्नेषु, जनान्, विविध्यन्ति, पात्रेषु, पिबन्तो, तेषाम्, धन्वानि
सहस्रयोजने, अवतन्मसि) जो अन्नभोजन करनेमें प्राणियोंको
विशेषकरके ताड़न करते हैं अर्थात् धातुकी विषमता पर रोगोंको
उत्पन्न करते हैं पात्रोंमें जल दूधआदि पीतहुए जनोंको कुटिसत जल
आदिसे रोगग्रसित करते हैं उनके सम्पूर्ण धनुषोंको सहस्रयोजन
दूर ज्यारहित करके अभय होते हैं ॥ ६२ ॥

य एतावन्तं द्यु मूर्धा च दिशो रुद्रा पितं-
स्थिरे । तेषां च सहस्रयोजनेव धन्वानि तन्मसि ॥ ६३ ॥

इसका पर० ऋ०, निचू० छं०, रुद्र दे० । मंत्रार्थ--(च, ये, रुद्राः, पतावन्तः, च. मूयाथेसः, दिशः, वितस्थिरे, तेषाम्, घन्नानि, सहस्र-योजने, अवतन्मसि) और जो रुद्र इन दशों दिशाओंमें और इन कहेहुओंमें भी अधिक सपूर्ण दिशाओंमें आश्रित हैं उनके घनुषों को सहस्रयोजनकी दूरीपर व्यारहित करके समय होते हैं ॥ ६३ ॥

नमोस्तु रुद्रेभ्यो ये दिवि येषां वर्षमिषंभः ।
तेभ्यो दश प्राचीर्दश दक्षिणा दश प्रतीचीर्दशो-
दीचीर्दशोऽर्वाः । तेभ्यो नमो अस्तु ते नोवन्तु
ते नो मृडयन्तु ते यन्दिष्मो यश्च नो द्वेष्टि
तमेषाञ्जम्भे दधमः ॥ ६४ ॥

इसका परमे० ऋ०, नि० छं०, रुद्र दे० है । मंत्रार्थ--(ये, दिवि, येषाम्, वर्षम्, इषम्, तेभ्यः, रुद्रेभ्यः, नमः, तेभ्यः, दश, प्राचीः, दश दक्षिणाः, दश प्रतीचीः, दशोदीचीः, दशोर्वाः, नमः, ते, नः, अवन्तु, ते, नः, मृडयन्तु, ते, यम्, दिष्मः, च, यः, नः, द्वेष्टि, तम्, येषाम्, जम्भे, दधमः) जो रुद्र धुलोकमें विद्यमान हैं जिन रुद्रों के वृष्टि ही बाण हैं उन रुद्रोंके पूर्व दिशामें दश अंगुली होकर अर्थात् हाथ जोड़कर दक्षिण में दश अंगुली होकर पश्चिममें दश अंगुली होकर उत्तरमें दश अंगुली होकर ऊर्ध्व में दश अंगुली अर्थात् करजोड़ प्रार्थना करताहूँ उनको नमस्कारहो, वे रुद्र हवारी रक्षा करें, वे हमको सुखी करें वे रुद्र जिससे हम द्वेष करते हैं और जो हमसे द्वेष करताहै उसको इन रुद्रोंके हाटमें स्थापन करते हैं ॥ ६४ ॥

नमोस्तु रुद्रेभ्यो येन्तरिक्षे येषां षातृ इषंभः ।
तेभ्यो दश प्राचीर्दश दक्षिणा दश प्रतीचीर्दशो-
दीचीर्दशोऽर्वाः । तेभ्यो नमो अस्तु ते नोवन्तु
ते नो मृडयन्तु ते यन्दिष्मो यश्च नो द्वेष्टि-
तमेषाञ्जम्भे दधमः ॥ ६५ ॥

इसका पर० ऋ०, वृत्तिः छं०, रुद्र दे० । मंत्रार्थ--(रुद्रेभ्यः,

नमः, अस्तु, ये, अन्तरिक्षे, येषाम्, इषवः, वातः) उन रुद्रोंको नमस्कार हो, जो अन्तरिक्षमें विद्यमान हैं, जिनके बाण पवन है अर्थात् पवनद्वारा जो सृजन पालन और आधी आदिसे संहार करते हैं उनको नमस्कार है शेषपूर्ववत् ॥ ६९ ॥

नमोस्तु रुद्रेभ्यो ये पृथिव्यां येषामन्नमिषवः ।

तेभ्यो दश प्राचीर्दश दक्षिणा दशपृथ्वीर्दशो-

दीचीर्दशोऽर्वाः । तेभ्यो नमो अस्तु ते नोषन्तु

ते नो मृडयन्तु ते यन्धिष्मो यश्च नो द्वेष्टि

तमेपाञ्जम्भे दधमः ॥ ६६ ॥

इसका परम० ऋ० पृ० छं० रुद्र दे० है । मंत्रार्थ--(रुद्रेभ्यः, नमः, ये, पृथिव्याम्, येषाम्, इषवः, अन्नम्) उन रुद्रोंको नमस्कार है जो रुद्र पृथ्वीमें स्थित हैं जिनके बाण अन्न हैं जो अन्नद्वारा ही सृजन पालन और मिथ्याहार विहारसे रोग उत्पन्न कर प्राणियोंका संहार करते हैं उनको नमस्कार है शेषपूर्ववत् ॥ ६६ ॥

इति शक्यपञ्चवेदान्तगीत वाजसनेयिसंहिताका सातवादा योऽथ

अध्याय समाप्त

अथ सप्तदशोऽध्यायः ।

सोलहवें अध्यायमें शतरुद्रीका होम कहकर अब सप्तहवें अध्याय में चित्पारिपेक आदिके मंत्रोंको कहते हैं ।

॥ हरिः ॐ ॥ अम्सन्नूर्जम्पर्वते शिश्रियाणामद्भ्य

ओपधीभ्यो वनस्पतिभ्यो अधि सम्भृतमर्यः ।

तान् इषमूर्जन्यत्त मरुतः सधरणाः अस्मधस्ते

क्षुन्मधि तु ऊर्ष्यन्धिष्मस्तन्ते शुर्गच्छतु ॥ १ ॥

इस कं० में ३ मंत्र हैं, सबका मेधातिथि ऋ०, छन्द १ आ० त्रि०, २ दै० वृ०, ३ या वृ०, और दे० १-मरुत २-अश्मा, ३-धुक है । मंत्रार्थ--(मरुतः, सधरणाः, अश्मन्, पर्वते, शिश्रियाणाम्, ऊर्जम्, अद्भ्यः ओपधीभ्यः, वनस्पतिभ्यः, अधि,

सम्भृगम्, पयः, ताम्, इपम्, ऊर्जम्, नः, घत्) हे महद्गण !
 प्रसिद्धिदाता तुम पापाणमें विन्व्याचल हिमालयादि पर्वतोंमें
 आश्रित सारभूत वनका हेतु जलोंसे ओषधियोंसे वनस्पति अश्व-
 त्यादि से अधिक सिद्ध तथा गौद्वारा सम्पादित दूध अर्थात् मेघ
 जनित जलरूप और गौसे उत्पन्न दुग्धरूप प्रसिद्ध अन्न और रस
 को हमारे निमित्त स्थापन कीजिये अर्थात् हमें दीजिये (आस्मिन्
 ते, जुर्) हे मस्तरूप ! सर्वभक्षक अग्ने ! तुमको जुधा मास ही
 अर्थात् बहुत इवि भोगो (अरमन्, ते, ऊर्क. मयि) हे मस्तर !
 तुम्हारा सारभाग मेरे विषे स्थित हो, हे अग्ने (ते, शुक, तं,
 ऋच्छतु यं, द्विष्मः) तुम्हारा क्रोध उस मनुष्यको प्राप्त हो जिस
 के साथ हम द्वेष करते हैं अर्थात् जो कोई हमारा शत्रु हो तुम्हारा
 दाह उसको प्राप्त हो ॥ १ ॥

इमा मे अग्ने इष्टका धेनवः सन्त्येका च दश
 च दश च शतञ्च शतञ्च सहस्रेञ्च सहस्रेञ्चा-
 युतञ्च युतञ्च नियुतञ्च नियुतञ्च प्रयुतञ्च अर्बुदञ्च
 न्यर्बुदञ्च समुद्रञ्च मध्यञ्चान्तञ्च परार्द्धञ्चैता
 मे अग्ने इष्टका धेनवस्सन्त्यमुत्रामुष्मिललोके ॥ २ ॥

इसका मेधातीथि ऋ०, नि०, वि०, छं०, अग्नि दे० । मं०
 (अग्ने, इमाः, इष्टकाः, मे, धेनवः, सन्तु, एका, च, दश च, शतं,
 च, शतं, च, सहस्रं च, स, सं, च, अयुतं, च, अयुतं, च, नियुतं,
 च, नियुतं च, प्रयुतं, च, प्रयुतं, च, अर्बुदं, च, न्यर्बुदञ्च, समुद्रः,
 च, मध्यञ्च, अन्तः, च, परार्द्धः, अग्ने- एताः, इष्टकाः, अमुत्र, च,
 अमुष्मिल, लोके, मे, धेनवः, सन्तु) हे अग्नि देवता यह जो
 पांच विधिमें स्थापित इष्टका हैं तुम्हारे मसादसे इसलोकमें मेरे
 निमित्त अभिमत फल देनेवाली गोरूप हों उनकी संख्या कहते हैं
 जो एक ही दशसे गुणा करनेपर दशसंख्या और दशगुणा करने
 से सौ संख्या और सौको दशगुणा करनेसे ही सहस्र होता है,
 और सहस्रको दशगुणा करनेसे अयुत संख्या होती है (१००००)

और अयुक्तको दशगुणा करनेसे लाख १००००० संख्या और
 नियुक्तको दशगुणा करनेसे दशलाख १०००००० संख्या होती है
 और इसको दशगुणा करनेसे करोड़ १००००००० संख्या होती
 है इसको दशगुणा करनेसे अर्बुद और इसका दशगुणा करनेसे न्य-
 र्बुद (अब्ज) और इसका दशगुणा करनेसे सर्व और र्खा का
 दशगुणा करनेसे निखर्व इसका दशगुणा करनेसे महापद्म इसका
 दशगुणा शङ्ख इसका दशगुणा समुद्र और इसका दशगुणा मध्य
 और इसका दशगुणा करनेपर अन्त और इसका दशगुणा करनेसे
 परार्द्ध संख्या होती है हे अग्ने ! यह इष्टका दूसरे जन्ममें और
 दूसरे लोकमें मेरी कामदुधा गौएं हों, अर्थात् इष्टका परार्द्ध संख्या
 तक एकप्रस्थायी होती हैं और कामदुधा हैं इसकारण प्रार्थना है
 कि हमको इसलोक परलोक और परजन्म किसी कालमें भी
 कामनारूप दुधदानसे कातर न करें ॥ २ ॥

ऋतये स्थ ऋतावृधे ऋतुष्टा स्थ ऋतावृधे ।

घृतश्वपुतो मधुश्वपुतो विराजो नाम कामदुघा

अक्षीपमाणाः ॥ ३ ॥

इसका मेधां ऋ० विराटार्पी पं० छं०, अग्नि दे० है मंत्रार्थ—
 हे इष्टके! तुम (ऋतावृधः, अतवः स्य, ऋतावृध०, ऋतुष्टाः, घृतश्वपुतः,
 मधुश्वपुतः, विराजः, नाम, कामदुघाः, अक्षीपमाणाः, स्य) सत्य
 वा यज्ञकी बढ़ानेवाली वसन्तादिरूप हो, यज्ञकी वृद्धि करनेवाली
 वसन्तादि ऋतुओंमें स्थित हो, तथा घृतकी क्षरण करनेवाली मधु
 की क्षरण करनेवाली, विराज नामसे प्रसिद्ध कामना पूर्ण करने
 वाली, क्षय रहितहो, मुझे सब कामना दा ॥ ३ ॥

समुद्रस्य त्वार्धकृपाग्ने परिव्ययामसि । पावको

अस्मभ्यं शिवो भव ॥ ४ ॥

इसका मे० ऋ०, भु० गा० छं०, अग्नि देवता है । मंत्रार्थ—
 (आने; समुद्रस्य, अर्धकृपा, त्वा, परिव्ययामसि, अस्मभ्यम्,
 पावकः, शिवः, भव) हे अग्ने ! जलके शैवालद्वारा तुमको सब

ओरसे वेष्टन करताहूँ हमारे निमित्त शोधक कल्याणकारी होओ ४
हिमस्य त्वा जरायुणाग्ने परिर्व्ययामसि ।

पावको अस्मभ्यं शिवो भव ॥ ५ ॥

इसका मे० ऋ० भु० गा० छं० अग्नि देवता है । मंत्रार्थ—
(अग्ने, हिमस्य, जरायुणा, त्वा, परिर्व्ययामसि, अस्मभ्यम्,
पावकः, शिवः, भव) है अग्निदेव ! हिमके जरायुवत् उत्तीर्ण
स्थान शैवालसे तुमको सब ओरसे वेष्टन करताहूँ, हमारे निमित्त
शोधक कल्याणकारी हूजिये ॥ ५ ॥

उप जमन्नुप वेतसेवंतर नदीप्या । अग्ने पित्त-
मपामसि मण्डूकि ताभिरागहि सेमन्नो यज्ञ-
स्पावकवर्णं शिवं कृधि ॥ ६ ॥

इसका मे० ऋ० आर्षी० त्रि० छं० अग्नि देवता है । मंत्रार्थ—
(अग्ने, जमन्, उपावतर, वेतसे, उप, नदीपु आ, अपाम्, पित्तम्
असि, मण्डूकि, ताभिः, आगहि, सा, इमम्, अस्माभिः, यज्ञम्,
पावकवर्णम्, शिवं, कृधि) है अग्ने ! पृथ्वीके ऊपर आओ वेतस
शाखाको अवलम्बन करो, सब नदियोंमें शिवारको अवलम्बन
करो, हे अग्ने तुम जलोंके तेजःस्वरूप हो, हे मण्डूकी ! तुम भी
जलोंको पित्तस्वरूप हो, इसकारण पूर्वोक्त जलोंके साथ आगमन
करो, अर्थात् जिनका अग्नि पित्त है जिससे तुम उत्पन्न हो, जो
तुम अग्निकी शान्तिके निमित्त इधर उधर लेजाईजाती हो, सो
तुम इस हमारे चयन लक्षणवाले यज्ञको अग्नि की समान तेज-
स्वी फलदायक करो ॥ ६ ॥

अपामिदं न्ययनं समुद्रस्य निवेशनम् ।

अन्यास्ते अस्मत्तपन्तु हेतयः पावको अस्म-
भ्यं शिवो भव ॥ ७ ॥

इसका मंत्रा ऋ०, आर्षी० वृ०, छं०, अग्नि दे० । मंत्रार्थ—
(इदम्, अपाम्, न्ययनम्, समुद्रस्य, निवेशनम्, ते, हेतयः अस्मत्,
अन्यास्ते, तपन्तु, अस्मभ्यम्, पावकः, शिवः, भव) यह चित्तमे

स्थित अग्निका स्थान जलोंकी प्राप्तिका साधन समुद्रका गृहरूप है हे अग्ने ! आपकी ज्वाला हमारे विरोधियोंको ताप दें क्लेश दें हमारे निमित्त शोधक और कल्याणकारक हों ॥ ७ ॥

अग्ने पावक रोचिपा मन्द्रया देव जिहया ।

आ देवान् यक्षि यक्षि च ॥ ८ ॥

इसका वसुयुक्तापि, आ०, गा०, छं०, अग्नि दे० है । मन्त्रार्थ— (पावक, देव, अग्ने, रोचिपा, मन्द्रया, जिहया, देवान्, आवक्षि च, यक्षि) हे शोधक ! देव अग्ने तुम ज्वालासूत्र आहवनीयरूप और आनन्दस्वरूप होता की वाणीरूपसे स्थित तुम देवताओंको आवाहन करो और यज्ञन करो ॥ ८ ॥

स नः पावक दीदिवो अग्ने देवाथे इर्हावह । उप-

यज्ञथे हविश्च नः ॥ ९ ॥

इसका मेधा० ऋ०, नि०, गा० छं०, अग्नि दे० । मन्त्रार्थ (पावक, दीदिवः, अग्ने, सः, देवान्, ना, इह, आवह, च, नः हविः, यज्ञम् उप) हे शोधक ! दीप्तिमान् अग्निदेव ! वह तुम देवताओंको हमारे इस यज्ञमें दुनाओं और हमारी हवि यज्ञके समीप देवताओंको प्राप्त कराओ ॥ ९ ॥

पावकया चित्तयन्त्या कृपा क्षामन् रुच

उपसो न भानुना । तूर्वक्षया मन्नेतशस्य नूरण

आ यो घृणेन तं तृपाणो अजरः ॥ १० ॥

इसका भारद्वाज ऋ० निचू० ज० छं० अग्नि दे० है । मन्त्रार्थ— (यः, पावकया, चित्तयन्त्या, कृपा, क्षामन्, रुचे, नः, उपसः, भानुना, यः, तृपाणः, अजरः, एतशस्य, यामन्, रुचे, तूर्वेन, न, घृणे, नु, आ) जो अग्नि पवित्रकरणेवाला दृढ़ चयन करने वाला सामर्थ्य से पृथ्वीपर शोभाको प्राप्त होता है, जैसे उपःकाल अपने मकाशसे शोभा देता है, जो पूर्णहुतिके पानकी इच्छा करने वाला जरारहित अग्नि गमनमें कुशल घोड़ेसे कार्य लेनेवाले युद्ध में शत्रुओंको मारतेहुएकी समान दीप्तिसे निश्चय ही सज्जान

शोभा देता है, उस अग्निको आकर्षण करते हैं ॥ १० ॥

नमस्ते हरसे शोचिषे नमस्ते अम्बुर्विषे ।

अन्यास्ते अस्मत्तपन्तु हेतयः पावको अस्मभ्यं

शिवो भव ॥ ११ ॥

इसका लोपामुद्रा ऋ०, भु० वृ० छं० अग्नि दे० है । मंत्रार्थ—
हे अग्ने ! (ते, हरसे, शोचिषे, नमः, ते, अर्विषे, नमः, अम्बु,
ते, हेतयः, अस्मत्, अन्यान्, तपन्तु, अस्मभ्यं, पावकः, शिवः भव)

तुम्हारी सब रसोंको आकर्षण करनेवाली तेजःस्वरूप ज्वालाको
नमस्कार है । तुम्हारे पदार्थ प्रकाशक तेजको नमस्कार हो, आप
की ज्वाला हमसे दूसरोंको तपाओ, हमको शोधक कल्याणकारक हो

नुपदे वेदं नुपदे वेद्वर्हिपदे वेद्वनसदे वेद

स्वविदे वेद ॥ १२ ॥

इस कं० में ५ भं० हैं, सबका लोपामु० ऋ०, छं०, १ । ५
दौ० वृ० २-३-४-६० पं० और देवता सबका अग्नि है । मंत्रार्थ—
यह अग्नि (नुपदे वेद, अम्बुपदे, वेद, वर्हिपदे, वेद, वनसदे, वेद
स्वविदे, वेद) मनुष्योंमें जठराग्नि रूपसे स्थित प्राणरूप है उस
की प्रीतिके निमित्त यह आहुति दीजाती है, सो सम्यक रूप से
गृहीत हो, जो अग्नि समुद्रादि जलके मध्यमें चढ़वाग्नि रूपसे
स्थित है, उसका आहुति देते हैं, भलीप्रकार गृहीत हो, जो अग्नि
यज्ञीय कुशादिके ऊपर निवास करते हैं, उनकी प्रीतिके निमित्त
यह आहुति दीजाती है भलीप्रकार गृहीत हो, जो अग्नि वृक्षसमूह
में दावाग्नि रूपसे स्थित है, उसकी प्रीतिके निमित्त यह आहुति दी
जाती है भलीप्रकार गृहीत हो, जो अग्नि स्वर्लोकके प्रधान अभिष्ट
सूर्य नामसे मसिद्ध है उसकी प्रीतिके निमित्त यह आहुति देते हैं,
भलीप्रकार गृहीत हो ॥ १२ ॥

ये देवा देवानां यज्ञियां यज्ञियांनाथं सम्बत्स-
रीणमुपभागमासते । अहुतादौ हविषां यज्ञे
अस्मिन्त्स्वयमिष्यन्तु मधुनो घृतस्य ॥ ११ ॥

इसका लोषामुद्रा ऋ०, नि० ज० छं०, प्राण देवता है । मंत्रार्थ-
(ये, देवाः, अहुतादः, अस्मिन्, यज्ञे, मधुनः, घृतस्प, हविषः,
स्वयं, पिबन्तु, यज्ञियानां, देवानां, यज्ञियाः, सम्बत्सरीणम्, भागं
उपासते) जो देवता बिना स्वाहाकार किये अन्नको भक्षण करते
हैं, वे प्राणरूप देवता इस चयनरूप यज्ञमें मधु, घृत अर्थात् मधु
घृत दधिरूप हविका भाग स्वयं ही स्वाहाकारके बिना पान करें
जो कि यजन करनेयोग्य देवताओंके मध्यमें यज्ञयोग्य दीप्तिमान
हैं वे सम्बत्सरमें होनेवाले यज्ञके भागका सेवन करते हैं ॥ १३ ॥

ये देवा देवेष्वधि देवत्वमायन्थे ब्रह्मणा पुर
एतारो अस्य । येभ्यो न कृते पथते धाम किञ्चन
न ते दिवो न पृथिव्या अधि स्नुपु ॥ १४ ॥

इसका लोषामुद्रा ऋ०, आ० ज० छं०, प्राण दे० । मंत्रार्थ
(ये, देवाः, देवेषु, अधिदेवत्वम्, आयन्, ये, अस्य, पुरः, एतारः,
येभ्यः, ऋते, किञ्चन, धाम, न, पथते, ते, न, दिवः, न, पृथि-
व्याम्, स्नुपु, अधि) माणादि देवताओंने इन्द्रादि देवताओंमें
जो अधिप्रातृत्व प्राप्त किया है अर्थात् देवगणोंमें प्रधान देवत्व पाया
है जो प्राण इस जलिके आगे गमन करते हैं जिन पाणोंके बिना
कोईभी शरीर चेष्टा नहीं करसकता वे प्राण न पृथ्वीके न पृथ्वी
में हैं किन्तु मत्पेक इन्द्रियमें वर्तमान हैं ॥ १४ ॥

प्राणदा अपानदा व्यानदा वर्चोदा वरिवोदाः ।
अन्याधस्तै अस्मत्पन्तु हेतयः पाचको अस्म-
भ्यश्च शिवो भव ॥ १५ ॥

इसका लोषामुद्रा ऋ०, विरा० पं०, छं०, अग्नि दे० है ।
मंत्रार्थ- (प्राणदाः, अपानदाः, व्यानदाः, वर्चोदाः, वरिवोदाः,
अस्माकं, पाचकः, शिवः, भव, ते, हेतयः, अस्मत्, अन्यात्,
तपन्तु) हे अग्ने ! तুম प्राण देनेवाले अपानदेनेवाले सर्व शरीर
वर्षी व्यानवायु देनेवाले चलदाता धनके देनेवाले होओ, हमको
शोधक कल्याणकारी होओ ज्वालारूप आयुध हमसे दूसरों

ताप देयं ॥ १५ ॥

अग्निस्तिग्मेन शोचिषा यासद्विष्वन्यत्रिणम् ।

अग्निर्नो वनते रुचिम् ॥ १६ ॥

इसका भर० ऋ०, नि० गा० छं०, अग्नि दे० । मंत्रार्थ (अग्निः, तिग्मेन, शोचिषा, विश्वं, अत्रिणं, नियासत्, अग्निः, नः, रायम् वनते) अग्नि तीक्ष्ण तेजसे सम्पूर्ण यज्ञवित्तकारी राक्षसादिको दूरकर अग्नि हमको धनदेय ॥ १६ ॥

य इमा विश्वा भुवनानि जुह्वदपिहोता न्यसी-
दत्पिता नः । स आशिषा द्रविणमिच्छमानः

प्रथमच्छद्वरान् आविवेश ॥ १७ ॥

इसका भुवनपुत्र विश्वकर्मा ऋ०, नि०, त्रि० छं० विश्वकर्मा दे० है । मंत्रार्थ- यः, आषिः, होता, नः, पिता, इमा, विश्वा, भुवनानि, जुह्वन् न्यपीदत्, सः, प्रथमच्छन्, आशिषा, द्रविणम्, इच्छमानः, अवरान्, आविवेश) जो अनीन्द्रियद्रष्टा सर्वज्ञ संहार-रूप होमका कर्ता हम सम्पूर्ण प्राणियोंका पालन करनेवाला है जो इन सम्पूर्ण लोकोंका संहारकाता हुआ स्वयं स्थित हुआ वह परमेश्वर प्रथम एक अद्वितीय रूपको छ्दादन करता मैं बहुतरूप होकर भक्त होऊँ इस अभिलाषासे जगद्रूप धनको इच्छा करता हुआ अभिव्यक्त उपाधिवाले मायाके विकारयुक्त जीवोंमें प्रवेश-करणया ॥ १७ ॥

किंत्वेस्विदासीदधिष्ठानप्रारम्भणकृतमस्त्विवत्क-

थासीत् । यतो भूमिञ्जनयन् विश्वकर्मा चित्था-

सौणोन्महिना विश्वचक्षाः ॥ १८ ॥

इसका विश्वकर्मा ऋ०, भु० पं० छं० विश्वक० देवता है । मंत्रार्थ-(स्विद, अधिष्ठानम्, किम्, आसीत्, आरम्भणम्, कथा, कथमत्, आसीत्, यतः, विश्वचक्षाः, विश्वकर्मा, भूमिम्, याम् जनयत्, महिना, विशौणोत्) प्रश्न है कि चावाभूमिका निर्माण करतेमें इस परमात्माका रहनेका आश्रय क्या था ? घट

को बनानेमें मृत्तिकाकी समान उपादानकारण रूप जगन्निर्माण की सामग्री, क्रिया बतानेवाली वेदवाणी क्या थी ? जिससे अतीत अनागत वर्तमानकालको एकसाथ देखनेवाले विश्वकर्ता परमात्माने इस विस्तृत भूलोक और धुलोकको सृजन करके अपनी बड़ी सामर्थ्यसे विशेष आच्छन्न किया है, आप सर्वदर्शी भावसे सर्वत्र विराजमान हैं ॥ १८ ॥

विश्वतश्चक्षुरुत विश्वतो मुखो विश्वतो वाहुरुत
विश्वतस्पात् । सम्ब्राह्म्यान्धर्मति सम्पतत्रै-
र्षीवाग्मी जनयन् देवं एकः ॥ १९ ॥

इसका भुवनपुत्र विश्व० आपि, भु०, त्रि०, छं०, विश्वकर्मा देवता है । मंत्रार्थ—(विश्वतश्चक्षुः, उत, विश्वतो मुखः, विश्वतो वाहुः उत, विश्वतस्पात्, एकः, देवः, वावाग्मी, जनयन्, वाहुभ्याम्, सन्धर्मति, पतत्रैः, सम्) सबओर नेत्रवाला और सबओर मुख वाला सबओर भुजावाला और सबओर चरणसे युक्त एक अद्वितीय परमात्मा धुलोक और भूलोकको अधिष्ठानशून्य होकर प्रकट करता हुआ अपनी भुजाओंसे संयोगको प्राप्त होता है ॥ १९ ॥

किंश्चिद्वनंश्च उ स वृक्ष आसं यतो वावापु-
थिवी निष्ठतक्षुः । मनीषिणो मनसां पृच्छन्ते दु-
तश्चदुष्यातिप्रदुर्वनानि धारयन् ॥ २० ॥

इसका भुवनपुत्र विश्व० ऋ०, भु० त्रि० छं०, विश्वकर्मा दे० मंत्रार्थ—मक्ष (श्वित्, वनम्, किम्, आस, उ, सा, वृक्षः, कं, आस, यतः, वावापुथिवी, निष्ठतक्षुः, मनीषिणा, भुवनानि, धारयन्, यत्, अध्येतिष्ठत्, तत्, मनसा, इत्, उ, पृच्छन्ते) कहे तो वह कारणरूप वन किस प्रकारका था और वह कार्यरूप वृक्ष कौन था जिस वनवृक्षसे विश्वकर्माने स्वर्ग और पृथ्वी अलंकरण की है हे विद्वानो ! मनका निग्रहकरनेवालों सब भुवनोंको धारण करते हुए विश्वकर्माने जो स्थान अधिष्ठित किया उसको मनसे आलोचनाकर उस प्रसिद्धको पूछो ॥ २० ॥

या ते धामानि परमाणि यावमा या मध्यमा
विश्वकर्मन्तुतेमा । शिक्षासखिभ्यो हविषि
स्वधावः स्वयं यजस्व तन्व्यं वृधानः ॥ २१ ॥

इसका मु० वि० ऋ०, आर्षी त्रि० छं० विश्व० दे० । मंत्रार्थ
(स्वधावः, विश्वकर्मन्, ते, या, परमाणि, या, अवमा, उत, या,
मध्यमा, धामानि, इमा, धामानि, सखिभ्यः, आशिक्ष, हविषि,
तन्वम्, वृधानः, स्वयम्, यजस्व) स्वधावान् बहुत अन्नसे युक्त
सब जगत्के कर्त्ता ईश्वर आपके जो उत्कृष्ट जो निकृष्ट और जो
मध्य धेणीके स्थान हैं इन ऊपर नीचे और मध्यके लोकोंको
अन्न यजमानोंका सबप्रकारसे दीजिये। तथा यजमानकी दीहुई
हविके उपस्थित होनेमें अपने शरीरको वृद्धिको प्राप्त करते आप
ही यजन कीजिये हम यजन करतेहैं यह हम कैसे कहसकतेहैं कौन
मनुष्य तुमको यजन करनेको समर्थ है ! इससे मैं कहताहूँ स्वयं
यजन करो ॥ २१ ॥

विश्वकर्मन् हविषा वावृधानः स्वयं यजस्व
पृथिवीमृत याम् । सुद्यन्त्वन्पे अभितः सपत्ना
इहास्माकंमघवा सूरिरंस्तु ॥ २२ ॥

इसका मु० वि० ऋ०, निचृदा० त्रि० छं०, विश्वक० देवता
है । मंत्रार्थ—(विश्वकर्मन्, हविषा, वावृधानः, पृथिवीम्, उत,
याम्, स्वयं, यजस्व, अभितः, अन्ये, सपत्नाः, सुद्यन्तु, इह, मघवा
अस्माकं, सूरिः, अस्तु) हे परमात्मन् ! मेरे दियेहुए हविरूप
अन्नसे प्रसन्नहुए आप मेरे यज्ञमें पृथिवीके आश्रित जीवोंको
और सुलोकके आश्रित जीवोंको मेरे ऊपर अनुग्रह कर स्वयं ही
यजन करा, और तुम्हारे मसादसे सब औरसे दूसरे शत्रु वा का-
मादि मोहको प्राप्त हो, इस यज्ञमें इन्द्र यज्ञद्रष्टा ब्रह्मा हमको आत्म
ज्ञानके उपदेशक हों ॥ २२ ॥

वाचस्पति विश्वकर्माणामृतयं मनोजुवं वाजं अघा
हुंभे । स नो विश्वानि हवनानि जोषामिभ्वः ।

शंभूरथसे साधुकर्मा ॥ २३ ॥

विश्वकर्मन्हविषा वद्धेनेन त्रातारमिन्द्रमकृणोर-
वृद्धयम् । तस्मै विश्वाः समनमन्त पूर्वोद्यमुग्रो
विह्वयो यथासत् ॥ २४ ॥

इन दोनोंकी व्याख्या अ० ८ मं० ४५, ४६ में होगई है ॥

चक्षुषः पिता मनसा हि धीरौ घृतमेने अजन
नमनमाने । यदेदन्ता अददहन्त पूर्वे आदि-
दद्यावापृथिवी अप्रयेताम् ॥ २५ ॥

इसका भु० वि० ऋ०, आ० त्रि० छं० वि० क० देवता है ।
मंत्रार्थ—(यदा, इत्, पूर्वे, अन्तः, अददहन्त, आत्, इत्, द्यावापृ-
थिवी, अप्रयेताम्, चक्षुषः, पिता, मनसा, धीरः, हि, एने, नमन
माने, घृतम्, अजनयत्) जिससमय पूर्वमहापियोंने द्यावा भूमिके
अन्तर्दिशाओंको दृढ़ किया, इसके अनन्तर ही द्यावापृथिवी विश्वा
युक्त हुई तब सम्पूर्ण व्योतिको पालन करनेवाला मनसे धीर होता
ही इन मममान द्यावापृथिवीमें घृतजलको उत्पन्न करताहुआ २५

विश्वकर्मा विमना आद्रिहाया धाता विधाता
परमोत् सन्दृक् । तेषांष्टिमानि समिषा भदन्ति
यत्रा सप्त ऋषीन्पर एकमाहुः ॥ २६ ॥

इसका भु० वि० ऋ० आर्षी त्रि० छं० विश्वक० दे० । मंत्रार्थ
(यत्, सप्त, ऋषीन्, परम्, एकम्, आहुः, विश्वकर्मा विमनाः,
आत्, विहायाः, धाता, विधाता, उत्, परमः, सन्दृक्, तेषाम्,
इष्टानि, इषा, सम्मदन्ति) जिस लोकमें सप्त ऋषियोंको विश्व-
कर्माके साथ एक कहतेहैं जिनका जगन्निर्माता श्रेष्ठमन सम्पूर्ण
कर्मका ज्ञाता और आकाशमें व्यापक, धारण पोषण स्थिति करने
वाला सबका उत्पादक और सबसे उत्कृष्ट परमात्मा सम्पू्क देखने
वाला है उस लोकमें उन पुरुषोंके अभिलाषित वस्तु आहुतिके
रसभूत अन्नके संग आनन्दसे मोदयुक्त होकर पुष्ट होते हैं ॥ २६ ॥

यो नः पिता जनिता यो विधाता धामानि

वेद भुवनानि विश्वा । घो देवानान्नामघा एक
एव तथै सम्पृश्नम्भुवना यन्त्यन्या ॥ २७ ॥

इसका भु० वि० अ० निचृदा० त्रि० छं० विश्वक० दे०
मंत्रार्थ--(यः, नः, पिता, जनिता यः, विशाता, विश्वा, धामानि
भुवनानि, वेद, यः, एकः, देवानां, नामघाः, अन्या, भुवना, सम्पृश्नं
ते, यन्ति) जो विश्वकर्मा परमेश्वर हमारा पालक उत्पादक है
जो विशेषकर धारण करनेवाला है सम्पूर्ण स्थान और प्राणियों
को जानता है जो एक होकर भी देवताओंके अनेक नामोंको धारण
करता है और भक्तजन प्रश्नोत्तर करतेहुए उन परत्मामामें प्रवेश
करते हैं ॥ २७ ॥

त आयंजन्त द्रविणथै समस्प्रा ऋषयः पूर्वं
जरितारो नभूना । अमूर्ते मूर्ते रजसि निपत्ते
ये भूतानि समकृष्वन्तिमानि ॥ २८ ॥

इसका भु० वि० अ० निचृदा० त्रि० छं० विश्वकर्मा दे० ।
मंत्रार्थ (ते, जरितारः, पूर्वं, ऋषयः, अस्मै, द्रविणं, समायजन्त,
नभूना, ये, अमूर्ते, मूर्ते, रजसि निपत्ते, इमानि भूतानि, सम, अकृष्वन्)
वे स्तुतिकरनेवाले विश्वकर्माके रचे पूर्वकालीन ऋषि इस भूत
समूहको जलरूप धन सम्यक् प्रकारसे देतेहुए अधिकतासे कामना
को देतेहुए, जो ऋषी सत्रह अवयववाले लिंगशरीरोंसे भलीप्रकार
मेरित अन्तरिक्ष लोकमें स्थितहो इन प्राणियोंको रचते हुए २८

परो दिवा पुर एना पृथिव्या परो देवेभिरंसु-

दुर्धदस्ति । कथं स्वित् मप्रथमन्दध्र आपो

पत्रं देवाः समपश्यन्त पूर्वं ॥ २९ ॥

इसका भुव० वि० अ०, आर्षी त्रि० छं०, विश्वकर्मा दे० है ।
मंत्रार्थ--(यत्, अस्ति, दिवः, परः, एना, पृथिव्या, परः, देवेभिः,
असुरैः, परः, स्वित्, आपः, प्रथमं, कं, गर्भम्, दधे, कास्वित्,
यत्र, पूर्वं, देवाः, समपश्यन्त) जो ईश्वरका तत्त्व हृदयकमलमें
विद्यमान है वह पुत्रोंसे भी दूर अर्थात् दुर्धेय है, इस पृथ्वीसे भी

दूर है और जलोंने पहले किसके गर्भको धारण किया यह तो देखो कि उसने प्रथम जलको उत्पन्न किया जिस समय उसको प्रथम गर्भमें धारण किया वह गर्भ कैसा आश्चर्यरूप है जहां प्रथम के देवता तथा महर्षि जगत्को देखगे हूय ॥ २९ ॥

तमिद्गर्भप्रथमन्दध्र आपो यत्र देवास्तुमग-
च्छन्त विश्वे । अजस्य नाभावध्येकमपितं यस्मि-
न्विश्वानि भुवनानि तस्थुः ॥ ३० ॥

इसका भु० वि० ऋ०, आर्षि त्रि० छं०, विश्वकर्मा देवता है । मंत्रार्थ—(आपः, प्रथमं, तमित्, गर्भं, दधिरे, यत्र, विश्वे, देवाः, समगच्छन्त, अजस्य, नाभौ, एकं, अपिगम् यस्मिन्, विश्वानि, भुवनानि, अधितस्थुः) जलोंने पहले उसको ही गर्भ में धारण किया क्योंकि गर्भमें सम्पूर्ण देवता एकत्र होकर वर्तते हैं उस गर्भका आधार क्या है ? जन्मरहित परमेश्वरकी नाभिस्थानीय मध्यमें एक अविभक्त अनन्यभूत किंचित् बीजगर्भरूप स्थापित किया जिसमें सम्पूर्ण भूतसमूह स्थित हुए, अर्थात् वह सबका आश्रय है उसका कोई आश्रय नहीं है ॥ ३० ॥

न तं विदाथ य इमा जजानान्पृष्णाम्कमन्तर-
म्वभूव । नीहारेण प्रावृता जल्प्या चासुतृप
उक्थशासश्चरन्ति ॥ ३१ ॥

इसका भु० वि० ऋ०, भु० पं० छं०, विश्वकर्मा देवता है । मंत्रार्थ—[उपदेश करते हैं] (यः, इमा, जजान, पृष्णाम्कम्, अन्तरम्, अन्यत्, वभूव, तं, न, विदाथ, नीहारेण, च, जल्प्याः, प्रावृताः, असुतृपः उक्थशासः, चरन्ति) जिस परमात्माने इस सब जगत्को उत्पन्न किया है और जो अहंकारादिसे युक्त जीवोंके अन्तरमें, वास्तवमें अहंकारको छोड़नेपर जाननेयोग्य ईश्वरतत्त्व है उसको तुम नहीं जानते हो कारण कि कुहरसदृश अब्रानसे और भैं देवता हैं मनुष्य हैं, यह मेरा गृहक्षेत्र है, इत्यादि असत् वातांसे आच्छादित हुए किसभिकारसे हो गाणपोषणकी चिन्तामें लगे ईश्वरतत्त्वके न वि-

चारनेवाले परलोकके भोग पानेको सकाम यज्ञोंमें स्तुति करते थे प्राणी विचरते हैं ॥ ३१ ॥

त्रिंशकर्मं ह्यजनिष्ट देव आदिङ्गन्धर्वो अभवद्
द्वितीयः । तृतीयः पिता जनितापधीनामपाद्गर्भं
व्यदधात् पुरुत्रां ॥ ३१ ॥

इसका भु०, वि०, ऋ०, ब्रा० उ० छं०, विश्व० दे० । मंत्रार्थः
ब्रह्माण्डके मध्यगणोंकी सृष्टिकहेतेहै ब्रह्माण्डके बीचमें मयम(विरव-
कर्मा, देवः, अजनिष्ट, आत्, इत्, द्वितीयः, गन्धर्वः, अभवत्)
देवतिथगादि जगत्का भेद करनेवाला सत्यलोकवासी, धनुर्मुख
देव गार्धुभूतहुआ, अर्थात् आदित्यके अन्तर पुरुपरूपसे एकट
हुआ अनन्तर दूसरी सृष्टिमें गन्धर्व पृथ्वीको धारण करनेवाला
अग्नि अथवा गानाविशामें चतुरदेवयोनि, एकट हुआ (तृतीयः,
ओपधीनाम्, जनिता, पिता, अपाम्, गर्भम्, पुरुत्रा, व्यदधात्)
तीसारा ओपधियोंका उत्पादक पालक पर्जन्यरूप हुआ वह पर्ज-
न्य उत्पन्न होनेही आहुतिके परिणामभूत जल्लोके गर्भको बहुत
प्रकारसे धारण करताहुआ ॥ ३२ ॥

आशुः शिशानो वृषभो न भीमो घनाघनः
क्षोभणश्चर्पणीनाम् । संक्रन्दनो निमिष एकः
वीरः शतश्रु सेना अजयत्साकभिन्द्रः ॥ ३३ ॥

इसका मतिरथ ऋ०, आर्षी वि० छं० इन्द्र देवता है । मंत्रार्थ-
(आशुः, शिशानः, वृषभः, न भीमः, घनाघनः, चर्पणीनाम्, क्षो-
भणः, संक्रन्दनः, अनिमिषः, एकवीरः, इन्द्रः, साकम्, शतश्रुसेनाः
अजयत्) शीघ्रगामी वज्रनाशककारी वर्षने के स्वभावकी उपमा
वाला भयकारी शत्रुओंका अतिशय घातक मनुष्योंके क्षोभका हेतु
बारंबार गर्जन करनेवाला, देवता होनेसे पत्नक न लगानेवाला,
अत्यन्त सावधान अद्वितीय वीर इन्द्र एकसाथ ही सौ सौ शत्रु
सेनाको जीतगाहुआ ॥ ३३ ॥

संक्रन्दनेनानिमिषेण जिष्णुना युत्कारेण दुश्चय-

वृत्तेन वृष्णना । तदिन्द्रेण जयत् तत्सहस्रं
युधो नर इपुहस्तेन वृष्णा ॥ ३४ ॥

इसका अतिरथ ऋ०, विराट् ब्रा० छं० इन्द्र दे० है मंत्रार्थ-
(युधः, नरः, वृष्णानां, संक्रन्दनेन, युत्कारेण, अनामिपेण, इपु-
हस्तेन, जिष्णुना, दुःशयवनेन, वृष्णा, इन्द्रेण, तत्, जयत्, तत्,
सहस्रम्) है युद्ध करनेवाले मनुष्यों ! प्रगल्भ मयरहित शब्द
करनेवाले, बहुत युद्ध करनेवाले एकचित हाथमें बाण धारणाकेए
जयशील अत्रेय कामनाओंके वर्णनेवाले, इन्द्रके मयावसे उस शत्रु
सेनाका जय करो और उस सेनाको वशमें काके बिनष्ट करो ३४

स इपुहस्तैस्सनिपट्त्रिभिर्वशी सस्रष्टा सयुध
इन्द्रो गृणेत् । सस्रष्टजित्सोमपा बाहुशर्धुग्र-
धन्वा प्रतिहिताभिरस्ता ॥ ३५ ॥

इसका अतिरथ ऋ०, आर्षी मि० छं० इन्द्र देवता है मंत्रार्थ-
(सः, वशी, इपुहस्तैः, निपट्त्रिभिः, सस्रष्टा, सः, गृणेत्, युधः, सः
इन्द्रः, सस्रष्टजित्, सोमपाः, बाहुशर्धा, उग्रधन्वा, प्रतिहिताभिः,
अस्ता) वह अितेन्द्रिय बाण हाथमें लिये धनुषधारियोंसे युद्धके
निमित्त संसर्ग करनेवाला वह शत्रुसमूहोंसे युद्ध करनेवाला है वह
इन्द्र युद्धके निमित्त इकट्ठ हुए शत्रुओंको जीतनेवाला यजमानोंके
यज्ञमें सोमपान करनेवाला बाहुओंके बलसे युक्त उत्कृष्ट धनुषवाला
अपने धनुषसे छोड़े हुए बाणोंसे शत्रुओं पर चलताहै, वह इन्द्र
हमारी रक्षा करे ॥ ३५ ॥

वृहस्पते परिदीया रथेन रक्षोहा मित्रान् अप-
वार्यमानः । प्रभञ्जन्सेनाः प्रमृणो युधा जयन्त-
स्माकमेष्यहिता रथानाम् ॥ ३६ ॥

इसका अतिरथ ऋ०, आर्षी मि० छं० वृह० दे० है । मंत्रार्थ-
(वृहस्पते, रक्षोहा, रथेन, परिदीया, मित्रान्, अपवार्यमानः,
सेनाः, प्रभञ्जन्, युधा, प्रमृणो, जयन्त, अस्माकं, रथानां, अविना
एधि) 'वाग्दे, वृहती'-वाणीके पति व्याकरणकर्त्ता होनेसे इन्द्र

स्नाकृ० सेनां अवतुं प्रयुत्सु ॥ ३९ ॥

इसका अतिरथ ऋ०, नि० त्रि० छं० इन्द्र दे० है । मंत्रार्थ-
(अदयः, वीरः, शमन्युः, दुश्च्यवना, पृतनापाद्, अपुध्यः, इन्द्रः
युत्सु, गोत्राणि, सहसा, अभिगाहमानः, अस्माकम्, सेनाः, प्रा-
वतु) शत्रुओं पर दपारहित, विक्रान्त अनेक प्रकारके क्रोधयुक्त,
जिसका कोई व्यवित न करसके अजेय संग्राममें सेनाको सहकर
तिरस्कार करनेवाला जिसके संग कोई युद्ध नहीं करसकता, सो
इन्द्र युद्धोंमें अशुभकुत्तोंको एकसाथ ही विलोडित करता हुआ,
हमारी सेनाकी रक्षा करे ॥ ३९ ॥

इन्द्रं आसन्ननेता बृहस्पतिर्दक्षिणा यज्ञः पुर, एतु
सोमः । देवसेतानामभिभञ्जतीनाञ्जयन्तीना-
मरुतो यन्त्वग्रम् ॥ ४० ॥

इसका अतिरथ ऋ०, ब्राह्मणु० छं० इन्द्रादय दे० है । मंत्रार्थ-
(बृहस्पतिः, इन्द्रः, आसाम्, अभिभञ्जतीनाम्, जयन्तीनाम्, देव
सेतानाम्, नेता, यज्ञः, सोमः, दक्षिणा, पुरः, एतु, मरुतः अग्रम्
यन्तु) बृहस्पति-इन्द्र इन शत्रुओंको मर्दन करनेवाली विजयशील,
देवसेनाओंके शिक्तक हैं, यज्ञपुरुष विष्णु, सोम, दक्षिणा, आर्ष-
गमय करे, गणदेवता सेनाके अग्रभागमें गमन करे ॥ ४० ॥

इन्द्रस्य वृष्णो वरुणस्य राज्ञां आदित्यानां मरुताः
शर्धे उग्रम् । महामनसां भुवनव्ययानां घोषां
देवानाञ्जयन्तामुदस्थात् ॥ ४१ ॥

इसका अतिरथ ऋ०, आ० त्रि० छं०, इन्द्रादिदे० है । मंत्रार्थ-
(महामनसाम्, भुवनव्ययानाम्, जयन्तां, देवानां, आदित्यानाम्,
मरुतां, वृष्णाः, इन्द्रस्य, राज्ञः, वरुणस्य, उग्रम्, शर्धेः, घोषाः, उद-
स्थात्) महानुभाव, लोकनाशकसामर्थ्यवाले, विजयपानेवाले,
देवता, आदित्य, मरुत, कामनाकी धर्षा करनेवाले इन्द्र और
राजा वरुणको उग्रसंज्ञका जयशब्द मरुतद्वारा ॥ ४१ ॥

उद्धर्षेयं मघवन्नायुघान्युत्सत्त्वन्तां मामकानां

मनांसि । उद्धृद्महन् वाजिनां वाजिनान्युद्ध-
धानां जयतां यन्तु घोषाः ॥ ४२ ॥

इसका अम० श्रु० ब्रा० उ० छ० इन्द्र देवता है । मन्त्रार्थ (मघबन्, आयुधानि, उद्धृष्य) हे इन्द्र अपने शत्रुओंको मन्त्रिकार हर्षितकरो (मामकानां, सत्वानां, मनांसि, उत्) मेरे वीरोंके मनोको हर्षित करो (वृद्महन्, वाजिनां, वाजिनानि, उत्) हे वृधनाशक ! घोड़ोंकी शीघ्रगतियोंको उत्तम करो (जयतां, रथानां, घोषाः, उद्यन्तु) विजयशील रथोंके जयघोष उच्चारण कियेजायँ ४२

अस्माकमिन्द्रः समृतेषु ध्वजेष्वस्माकं या इष-
वस्ता जयन्तु । अस्माकं वीरा उत्तरे भवन्त्व-
स्मान् उ देवा अबताहवेषु ॥ ४३ ॥

इसका अम० ऋ०, नि० आ० मि० छ०, इन्द्रादि दे० है मन्त्रार्थ (ध्वजेषु, समृतेषु, इन्द्रः, अस्माकम्, अस्माकम्, याः, इषवः, ताः, जयन्तु) पताकाओंसे पताकाओंके मिलनेपर इन्द्र हमारी रक्षाकरे और हमारे जो बाणहैं वह शत्रुओंको नष्ट करनेमें जयपावें (अस्माकं, वीराः, उत्तरे, भवन्तु) हमारे शूर शत्रुओंके वीरोंसे उत्तम हों (उ, देवाः, आहवेषु, अस्मान्, अबत) और देवता संग्रामोंमें हमारी रक्षा करे ॥ ४३ ॥

अमीषांश्चित्तमप्रतिलोभयन्ती गृहाणाङ्गान्यप्ये-
परेहि । अभिप्रेहि निर्देह हृत्सु शोकैरन्धेना-
मित्रास्तमसा सचन्ताम् ॥ ४४ ॥

इसका अम० श्रु०, ब्रा० उ० छ०, इन्द्रादय देवता है । मन्त्रार्थ--(अप्ये, अमीषां, चित्तं, मसिलोभयन्ती, अङ्गानि, गृहाणा, परेहि, अभिप्रेहि) हे शत्रुओंके प्राणोंको कष्ट देनेवाली व्याधि हम वैरियोंके चित्तको मोहित करती हुई और वैरियोंके शरीरोंको ग्रहण करती हुई दूर पलीजा, सब ओरसे शत्रुओंको पकड़कर चला (हृत्सु, शोकैः, निर्देह) उनके हृदयोंको शोकसे दग्धकर (अभिप्राः, अन्धेन, तमसा, सचन्ताम्) हमारे वैरीगाढ़ अन्धकारसे व्याप्त हों ४४

अवसृष्टा परापत शरव्ये ब्रह्मसंश्रिते ।

गच्छामिशान्प्रपद्यस्य मामीपां कञ्चनोच्छ्रियः ॥४५॥

इसका अर्थ ० ऋ०, आ० अ० छ०, इपु देवता है। मंत्रार्थ (ब्रह्मसंश्रितं, शरव्यं, अवसृष्टा, परापत) वेदमंत्रोंसे तीक्ष्ण किये हुए हे वाणरूप ब्रह्मास्त्र ! हमारे छोड़ेहुए तुम वैरिसेनापर गिरो (अमिशान्, गच्छ, प्राद्यस्य) वैरियोंपर पहुँचो और उनके शरीरोंमें प्रवेश करो (अमीपां, कञ्चन, मा, उच्छ्रियः) इनमेंसे किसीको भी शेष न छोड़ो ॥ ४५ ॥

प्रेता जयता नर इन्द्रो वः शर्म यच्छतु । उग्रा वः

सन्तु वाहवोऽनाधृष्या यथासंथ ॥ ४६ ॥

इसका अर्थ ० ऋ०, वि० आ० अ० छ०, योधा दे० है। मंत्रार्थ (नरः, प्रेत, जयत) हे हमारे वीरपुरुषों वैरिसेनाके ऊपर शीघ्र-जाओ और जय पाओ (इन्द्र, वः शर्म, यच्छतु) इन्द्र तुमको वियरूप सुख दें (वः, वाहवः, उग्राः, सन्तु) तुम्हारे भुजदण्ड शस्त्रवृत्तानमें समर्थ हों (यथा, अनाधृष्याः, असंथ) जिसप्रकारकि तुम किसीसे तिरस्कार न पाओ ॥ ४६ ॥

असौ या सेना मरुतः परेषामभ्यैति न ओजसा

स्पर्धमाना । तां गृह्णत तमसापव्रतेन यथामी

अन्यो अनपन्नजानन् ॥ ४७ ॥

इसका अर्थ ० ऋ०, नि० आ० छि० छन्द, मरुत् दे० है। मंत्रार्थ--(मरुतः, या, असौ, परेषाम्, सेना, ओजसा, स्पर्धमाना नः, आ--अभ्यैति, ताम्, अपव्रतेन, तमसा, गृह्णत, यथा अमी, अन्यान्यम्, न, जानन्) हे मरुत् देवताओं ! जो यह वैरियोंकी सेना बलसे ईर्ष्या करतीहुई हमारे सामनेको आ रही है, उसको अकर्मण्यभावके अन्धकारसे ढकदो कि जिसमें वह वैरिसेना के पुरुष एक दूसरे को न पहिचानें और परस्पर शस्त्र चलाकर नष्ट होजायें ॥ ४७ ॥

यत्र वाणाः सम्पतन्ति कुमारा विशिखा इव ।

तत्र इन्द्रो बृहस्पतिरदितिः शर्म यच्छतु विश्वाहा
शर्म यच्छतु ॥ ४८ ॥

इसका अण० ऋ०, पंक्ति छ०, बृहस्पति अदिति दे० है। मंत्रार्थ (यज्ञ, धाणाः, विशिखाः, कुमाराश्च, सम्पत्तानि) जिस युद्धमें वैरि-
के चलाये हुए बाण फैली हुई शिखावाले बालकोंकी समान गिरते हैं
(तव, बृहस्पतिः, अदितिः, इन्द्रः, तः शर्म, यच्छतु) उस युद्धमें
बृहस्पति अदिति और इन्द्र हमको विजयमुख दें (विश्वाहा,
शर्म, यच्छतु) वह सकल वैरियोंका नाशक कल्याण दें ॥ ४८ ॥

मर्माणि ते वर्मणाच्छादयामि सोमस्त्या राजा-
मृतेनानुषस्ताम् । उरोर्वरीणो वरुणस्ते कृणोतु
जयन्तुन्त्वानुं देवा मन्दन्तु ॥ ४९ ॥

इसका अण० ऋ०, नि०, छ० सोम वरुण देवता हैं। मंत्रार्थ
(ते, मर्माणि, वर्मणा, छादयामि) पुरोहित कहता है कि—हे यज्ञ-
मान ! तेरे मर्मस्थानोंको कवचसे ढकता हूँ (राजा, सोमः, त्वा,
अमृतान, अनुवसाम्) ब्राह्मणोंका राजा सोम तुझको मृत्युको
दृष्टानेवाले कवचसे आच्छादन करे (वरुणः, ते, उरोः, वरीयधः,
कृणोतु) वरुण तेरे कवचको बड़ेसे बड़ा करे (देवाः, जयन्तम्,
त्वा, अनुमदन्तु) अन्य देवता विजय पातहुए तुझको उत्सा-
हित करें ॥ ४९ ॥

उदेनमुत्तरान्न्याग्ने घृतेनाहुत । रायस्पोषेण
संसृज मजया च बहुङ्कृधि ॥ ५० ॥

इसका अण० ऋ०, अनु० छ०, अभिन दे० है। मंत्रार्थ—(घृतेन
आहुत, अग्ने, एनम्, उत्तराम्, नय) होम करता हुआ कहे कि—हे
घृतसे उत्तम अग्ने ! इस यज्ञमानको ऐश्वर्य वा मनकी उत्तमता पर
पहुँचाओ (रायस्पोषेण, संसृज) धनकी पुष्टिसे युक्त करो (च,
मजया, बहुम्, कृधि) और पुत्रपौत्र आदि सन्तानसे बहुत कुटुम्ब-
वाला करो ॥ ५० ॥

इन्द्रे मन्त्ररात्रेय सजातानामसृष्टी । समेन

वर्चसा सृज देवानाम्भागदा असत् ॥ ५१ ॥

इसका अण० ऋ०, अनु० छं०, इन्द्र दे० है। मंत्रार्थ (इन्द्र, इमम्, प्रतराम्, नय) हे इन्द्र ! इस यजमानको बड़े पेशवय पर पहुँचाओ (सजातानां, वशी, असत्) प्रतिवालोंको बशमें करनेवाला हो (एनम्, वर्चसा, संसृज) इसको तेजसे संयुक्त करो (देवानाम्, भागदा, असत्) देवताओंको भाग देनेवाला हो ५१

यस्य कुर्मो गृहे एविस्तमग्ने चर्द्धया त्वन् । तर्ध्वं
देवा अधिब्रुवन्तपञ्च ब्रह्मणस्पतिः ॥ ५२ ॥

इसका अण० ऋ०, अनु० छं०, लिङ्गोक्त दे० है। मंत्रार्थ— (अग्ने, यस्य, गृहे, हविः, कुर्मः, तम्, त्वम्, चर्द्धय) हे अग्निदेव ! जिसके घरमें पुरोडाशका हवि करते हैं, उस यजमानको तुम वदाओ (देवाः, तस्मै, अधिब्रुवन्) देवता उस यजमानको सनसे अधिक कहें (अयं, ब्रह्मणः, पतिः, च) यह यजमान वैदिक कर्मका स्वामीभी हो ॥ ५२ ॥

उदुत्वा विश्वेदेवा अग्ने भरन्तु चिस्तिभिः ।

स नो भव शिवस्त्वथ सुप्रतीको विभावसुः ॥ ५३ ॥

इसकी व्याख्या १२ वें अध्यायके ३१ वें मंत्रमें होगई ॥ ५३ ॥

पञ्च दिशो देवीर्दुर्मन्वन्तु देवीरपामतिन्दुर्म-
तिम्याधमानाः । रायस्पोपे यज्ञपतिमाभजन्ती

रायस्पोपे अधि यज्ञो अस्यात् ॥ ५४ ॥

इसका अण० ऋ०, त्रि० छं०, दिक् दे० है। मंत्रार्थ— (देवीः, पञ्च, देवीः, दिशः, अमतिम्, दुर्मतिम्, अपवाधमानाः, रायस्पोपे, यज्ञपतिम्, आभजन्तीः, यज्ञम्, अवन्तु) इन्द्र, यम, वरुण, सोम और ब्रह्मसे सम्बन्ध रखनेवाली, पूर्व, पश्चिम, उत्तर, दक्षिण और मध्य यह पाँच दिशाएँ हमारी बुद्धिकी मन्दता और पापबुद्धिकी नष्ट करती हुई और धनकी पुष्टिमें यजमानका भागी करती हुई, हमारे यज्ञकी रक्षा करें (यज्ञः, रायः, पोपे, अधि, अस्यात्) हमारा यह धनकी पुष्टिमें अधिक वृद्धि पावै ॥ ५४ ॥

समिद्धे अग्नावधिं मामहान उक्थपं३ ईड्यो
गृभीत । तसं घर्मम्पंगिगृह्या यजन्वोर्जा ययज्ञ-
मयंजन्त देवाः ॥ ५५ ॥

इसका अम० ऋ०, त्रि० छ० अग्नि दे० है । मंत्रार्थ—(देवाः,
यत्, तप्तम्, घर्मम्, पंगिगृह्या, ययम्, अयजन्त, ऊर्जा, अयजन्त,
ईड्यः, उक्थपत्रः, गृभीतः, मामहानः, अग्नौ, समिद्धे, अधि)
द्रव्या आदिके स्थानमें वरण किये हुए अध्वर्यु आदि जब मज्ज्वलित
[३७ वें अध्यायमें वर्णित] प्रवर्गको ग्रहण करके यजपुरुषका
पूजन करते हैं और जब हविष्य अन्नसे यजन करते हैं तब स्तुति
के योग्य यज्ञ उबथ शस्त्रवाला यज्ञ प्राप्त होता है, देवताओंका परमपूजक
यजमान अग्निके मज्ज्वलित होनेपर तेजस्वी होता है ॥ ५५ ॥

दैव्याय घर्मे जापद्रे देवश्रीः श्रीमनाः शतपयाः ।
पंगिगृह्या देवा यज्ञमायन्देवा देवेभ्यो अध्वर्यन्तो
अस्थुः ॥ ५६ ॥

इसका अम० ऋ०, बृह० छ० अग्नि दे० है । मंत्रार्थ—(देव
श्रीः, श्रीमनाः, शतपयाः, दैव्याय, घर्मे, जापते) हवि देनेके द्वारा
देवताओंकी सेवा करनेवाला, यजमानमें मन रखनेवाला,
भक्तोंको धन देनेके निमित्त मन करनेवाला दूध आदि
संरुद्धों प्रकारकी सामग्रीवाला यज्ञ देवताओंके हितकारी
वर्षा आदिके द्वारा वा यज्ञके द्वारा जगत्का रक्षक हमारी दीहुई
श्रीतिपर हविको स्वीकार करनेवाले अग्निके निमित्त होता है (देवाः
पंगिगृह्या, ययम्, आयन्) ऋत्विज् उस अग्निको पाकर यज्ञको
प्राप्त करते हैं (देवाः, देवेभ्यः, अध्वर्यन्तः अस्थुः) दीप्तिमान्
ऋत्विज् देवताओंके निमित्त यज्ञ करनेकी इच्छासंस्थित होते हैं ५६

वीतथ हविः शमितथ शमिना यजद्वयं तुरीयो
यज्ञो घर्मं हव्यमेति । ततो वाका आशिषो
नो जुपन्ताम् ॥ ५७ ॥

इसका अम० ऋ०, बृह० छ०, हवियं ह देवता है । मंत्रार्थ—

(तुरीयः, यज्ञः, यज्ञ, इव्यम्, वीतं, शमिता, यजध्वै, शमितं, हविः, पंति, ततः, आशिपः, वाका, नः, जुपन्ताम्) चौथा यज्ञ, जिसमें हवनयोग्य देवताओंके गिय और परमशान्तरूप अश्वर्यु के द्वारा हवनकारने के निमित्त संस्कार किया हुआ हवि प्राप्त होता है, इसमें यज्ञसे उठे हुए अमाष्ट अर्धके कहनेवाले तीनों वेदोंके वचन हमको फनीभूत हों ॥ ५७ ॥

सूर्यरश्मिर्हरिकेशः पुरस्तात्सविता ज्योतिरुद-
यान् अजस्रम् । तस्य पूषा प्रसवे याति विद्या-
न्सम्पश्यन् विश्वाभुवनानि गोपाः ॥ ५८ ॥

इसका अम० ऋ०, त्रि० छ०, अग्नि दे० है । मंत्रार्थ (सूर्य-
रश्मिः, हरिकेशः, सविता, ज्योतिः, पुरस्तात्, उदयान्) सूर्य जिस
की किरण हैं, कणकवर्ण ज्वालारूप केशवाला, प्राणियोंको अ-
पने २ व्यापारमें लगानेवाला ज्योतिरूप अग्नि पूर्वदिशासे प्रकट
होता है (गोपाः, विद्वान्, पूषा, तस्य, प्रसवे, विश्वा, भुवनानि,
सम्पश्यन्, अजस्रम्, याति) धर्मरक्षक विद्वान् सूर्य उस प्रकाशज्योति
की आशामें रहकर सकल भुवनोंको देखता हुआ निरन्तर चलता है ५८

विमानं एव दिवो मध्यं आस्त आपमिवान्
रोदसी अन्तरिक्षम् । स विश्वाचीः अभिषष्टे
घृताचीरन्तरा पूर्वमपरच्छ क्रेतुः ॥ ५९ ॥

इसका विश्वायसु ऋ०, त्रि० छ०, आदित्य दे० है । मंत्रार्थ-
(एव, विमानः, दिवः, मध्ये, आस्ते) यह जगतकी रचनेकी
शक्तिवाला सूर्य स्वर्गके मध्यमें स्थित है (रोदसी, अन्तरिक्षं,
अपमिवान्, सः, विश्वाचीः, घृताचीः, अभिषष्टे) पृथिवी स्वर्ग
और अन्तरिक्षको सब ओर तेजसे परिपूर्ण करता हुआ वह सूर्य
वेदी और जुबेको देखता है (पूर्व, अग्रं, अन्तरा, क्रेतुः, च) इस
लोक और अन्य लोकोंमें स्थित मनुष्योंके चित्तको भी जानता है ५९

उक्षा समुद्रो अरुणः सुपर्णः पूर्वस्य योनिर्मितु-
राधिदेश । मध्यं दिवो निर्हितः पृश्निरश्मा

विचक्रमे रजसस्थात्पन्तौ ॥ ६० ॥

इसका अम० ऋ०, वि० छ०, आदित्य दे० है । मंत्रार्थ (उक्षा, समुद्रः, अश्वाः, सुपर्णः, दिवः, मध्ये, निहितः, पृश्निः, अरुणः, पूर्वस्थ, पितुः, योनि, आश्रयेश, विचक्रमे) वर्षासे सींचनेवाले, आससे गीला करनेवाले, आकाशमें व्याप्त, श्रेष्ठ गतिवाले, दुलोकमें स्थित, विचित्रवर्ण अनेकों प्रकारकी किरणोंसे व्याप्त उदयके समय अरुणवर्ण सूर्यने पूर्वदिशाके विषै स्वर्गस्थान में प्रवेश किया और विचरण किया (रजसः, अन्तौ, पाति) वह ब्रह्माण्डकी सब ओरसे रक्षा करता है ॥ ६० ॥

इन्द्रं विद्वां अशीवृधन्समुद्रं च सङ्घिरः । रथी-
तमं च रथीनां वाजां च सत्पतिं पतिम् ॥ ६१ ॥

इसकी व्याख्या अ० १२ मं० ५६ में हो चुकी ॥ ६१ ॥

देवहृयज्ञ आ च वक्षस्मुम्नहृयज्ञ आ च वक्षत् ।

यक्षदग्निर्देवो देवाँ आ च वक्षत् ॥ ६२ ॥

इसका विधृति ऋ०, अनु० छ०, यज्ञ दे० है । मंत्रार्थ (देवहः, यज्ञः, आवक्षत् च, यक्षत्,) देवताओंको बुलानेवाला यज्ञ देवताओंको बुलावे और यजन करे (मुम्नहः, यज्ञः, आवक्षत्) धन पुत्र आदि सकल सुखोंको प्रकट करनेवाला यज्ञ देवताओंको बुलावे (च, देवः, अग्निः, देवान्, आवक्षत्, च) और देवता अग्नि देवताओंको आवाहन करे और यजन करे ॥ ६२ ॥

वाजस्य मा प्रसव उद्ग्राभेणोदग्रभीत् । अथा

सपत्नानिन्द्रो मे निग्राभेणाधरान् अकः ॥ ६३ ॥

इसका विधृति ऋ० धन० छ०, इन्द्र दे० है । मंत्रार्थ (इन्द्रा, वाजस्य, प्रसवः, उद्ग्राभेण, मा, उदग्रभीत्) इन्द्र अन्नही उत्पत्ति और दानके द्वारा मुझको अनुगृहीत करे (अथा, निग्राभेण, मे, सपत्नान्, अधरान्, अकः) और मेरे शत्रुओंको माँगनेकी इच्छा से नीचां करो ॥ ६३ ॥

उद्ग्राभंश्च निग्राभश्च ब्रह्म देवा अशीवृधन् ।

अथां सपत्नानिन्द्राग्नीं मे विपूचीनां व्यस्यताम् ६४
 इसका विधृति ऋ०, अनु० छ०, इन्द्राग्नी दे० है । मंत्रार्थ--
 (देवाः, उदग्राभं, च, निग्राभं, च, ग्रह, अवीवृधन्,) देवता
 हमको चढ़ाई और हमारे शत्रुओंको निन्दा और यज्ञसाधक वेदों-
 को मृष्टि दें (अथा, इन्द्राग्नी, मे, सपत्नान्, विपूचीनान्, व्यस्य-
 ताम्) और इन्द्र तथा अग्नि देवता मेरे शत्रुओंको अनेकगतिवाला
 करके विनष्ट कर दें ॥ ६४ ॥

ऋमध्वमग्निना नाकुप्रव्यथे हस्तेषु विभ्रंतः ।

दिवस्पृष्टं स्वर्गत्वा मिथ्रा देवेभिराध्वम् ॥ ६५ ॥

इसका विधृ ऋ०, अनु० छ०, अग्नि दे० है । मंत्रार्थ--(उरव्यं
 हस्तेषु विभ्रतः, अग्निना, नाकं, क्रमध्वम्) हे ऋत्विजों! उवा-
 पात्रमें संस्कार की हुई आग्निकों हाथोंपर धारण करते चित्त अग्नि
 के साथ स्वर्गलोकको जाओ (दिवः, पृष्टम्, स्वः, गत्वा, देवेभिः
 मिथ्राः, आध्वम्) स्वर्गके ऊपर ब्रह्मलोकमें जाकर देवताओंके
 साथ होकर स्थित होओ ॥ ६५ ॥

प्राचीमनुप्रदिशम्प्रेहिं विद्वानग्नेरग्ने पुरो अं-
 ग्निर्भवेह । विश्वा आशा दीधानो विभाहो भ्रौ
 धेहि द्विपदं चतुष्पदं ॥ ६६ ॥

इसका विधृ० ऋ०, त्रि० छ०, अग्नि दे० है । मंत्रार्थ--(अग्ने,
 विद्वान्, प्राचीम्, प्रदिशं अनु गेहि) हे उवापात्रमें स्थित अग्ने!
 अपने अधिकारको जाननेवाले तুম श्रेष्ठ दिशाकी ओरका ध्यान
 देकर जाओ (इह, अग्नेः, पुरः, भव) यहाँ अग्नि के अग्रगामी
 बगो (विश्वाः, आशाः, दीधानः, विभाहि) सकल दिशाओंको
 मकाशित करते हुए विशेष प्रदीप्त होओ (नः, द्विपदं, चतुष्पदं,
 ऊर्ध्वं, धेहि) हमारे पुत्रादि परिवार और गौ आदि पशुओंको
 अन्न दो ॥ ६६ ॥

पृथिव्या अहमुदन्तरिक्षमारुहमन्तरिक्षादिवृमा-

रुहम् । दिवो नाकस्य पृष्ठात्सृज्योतिरगामुहम् ६७

इसका विष्ट० ऋ०, पिपीलिकामध्या वृहती छ०, अग्नि दे० है, मंत्रार्थ—(अहं, पृथिव्याः, अन्तरिक्षं, आरुहम्) मैं यजमान पृथ्वीसे ऊँचा होता हुआ अन्तरिक्षपर चढ़ा हूँ (अन्तरिक्षात्, दिवं, आरुहम्) अन्तरिक्षसे ऊपर स्वर्गलोकमें चढ़ गया हूँ, (अहं, दिवः, नाकः, पृष्ठात्, स्वः, ज्योतिः, अध्यगाम्) मैं स्वर्गके दुःखरहित स्थानसे ऊपर सूर्यमण्डलको प्राप्त हुआ हूँ ॥ ६७ ॥

स्वर्यन्तो नापेक्षन्त आद्याथ रोहन्ति रोदंसी ।

यज्ञं ये विश्वतो धारथ सुविद्वाथ सो विते निरे ॥ ६८ ॥

इसका विष्ट० ऋ०, अनु० छ०, अग्नि देवता है। मंत्रार्थ—(ये, सुविद्वांसः, विश्वतो धारम्, यज्ञम्, विते निरे, रोदंसी, धाम्, भारोहन्ति, स्वर्यन्तः, नः, अपेक्षन्ते) जो भक्तिज्ञानसे सम्पन्न योगीजन सब जगत्को धारण करनेवाले यज्ञको करते हैं, जरा मृत्यु शोक आदिको रोकनेवाले स्वर्गपर चढ़ते हैं और स्वर्गमें गमन करते हुए कृतकृत्य होनेसे पुत्र पौत्रादिकी अपेक्षा नहीं करते हैं ॥ ६८ ॥

अग्ने मेहि प्रथमो देवयता चक्षुर्देवानामुत मर्यानाम् ।
इयक्षमाणा भृगुभिः सजोपाः स्वर्यन्तु यजमानाः स्वस्ति ॥ ६९ ॥

इसका विष्ट० ऋ०, त्रि० छ०, अग्नि दे० है मंत्रार्थ—(अग्ने, देवयतां, प्रथमः, देवानां, उत, मर्यानाम्, चक्षुः, मेहि (हे अग्ने ! तुम देवताओंके चाहनेवाले यजमानोंमें मुख्य हो तथा देवता और मनुष्योंके चक्षुरूप हो इसकारण आधो (इयक्षमाणः, भृगुभिः, सजोपाः, यजमानाः, स्वास्ता, स्वः, यन्तु) यज्ञ करनेकी इच्छा वाले और महात्मा ब्राह्मणोंके साथ प्रीति करनेवाले यजमान कल्याण पूर्वक स्वर्गलोकको जायें ॥ ६९ ॥

नक्षोपा मा समनमा विरूपे ध्यापयेते शिशुमेकं
समीची । यात्रा क्षामा रुक्मो अन्तर्विभाति
देवा अग्निन्धारन्द्रविणोदाः ॥ ७० ॥

इसकी व्याख्या ११ वे अ० के २ मंत्रमें होगई ॥ ७० ॥

अग्नें सहस्राक्षं शान्तमूर्धच्छतन्ते गायानाः सहस्रं
युवनाः । त्वं साहस्रस्य राय ईशिपे तस्मै ते
विधेम वाजाय स्वाहा ॥ ७१ ॥

इसका विधृ० ऋ०, वि० पंक्ति छ०, अग्नि दे० है । मंत्रार्थ—
(सहस्राक्ष, शान्तमूर्धन, शान्ते, ते, शतां, गायानाः, सहस्रं, व्यानाः,
त्वं, सहस्रस्य, रायः, ईशिपे) हे अनन्तनेत्र और अनन्तमूर्धावाले
अग्ने ! आपके सैंकड़ों गाय हैं सहस्रों व्यानों हैं, तुम अनन्त धन
के स्वामी हो (तस्मै, ते, वाजाय, विधेम, स्वाहा) ऐसे यज्ञस्वरूप
आपको हम दान देते हैं श्रेष्ठ होम हो ॥ ७१ ॥

सुपर्णोऽसि गरुत्मान् पृष्ठे पृथिव्याः सीद ।
आसान्तरिक्षमापूण ज्योतिषा दिवमुत्तमान्
तेजसा दिशमुद्दृष्ट ह ॥ ७२ ॥

इसका विधृ० ऋ०, पंक्ति छ०, अग्नि दे० है । मंत्रार्थ—(सुपर्णः
गरुत्मान्, असि) हे अग्ने ! तुम श्रेष्ठ परोवाजे पक्षीरूप हो (पृ-
थिव्याः, पृष्ठ, सीद) पृथ्वीके ऊपर स्थित होओ (भासा, अन्त-
रिक्षं, आवृण) कान्तिसे अन्तरिक्षको पूर्ण करो (ज्योतिषा, दिवं,
उत्तमान) अपनी ज्योतिसे दुलोकको ऊँचा उदराओ (तेजसा,
दिशः, उद्दृष्ट) अपने तेजसे दिशाओंको दृढ़ वा दीप्त करो ७२

आजुहानः सुप्रतीकः पुरस्तादग्ने स्वं योनिमा-
सीद साधुया । अस्मिन्मध्ये अद्युस्तरस्मिन्वि-
श्वेदेवा यजमानश्च सीदत ॥ ७३ ॥

इसका विधृ० ऋ०, वि० छ०, अग्नि दे० है । मंत्रार्थ—(अग्ने,
आजुहानः, सुप्रतीकः, पुरस्तात्, स्वं, साधुया, योनि, आसीद)
हे अग्ने ! आवाहन कियेहुए तुम प्रसन्नमुख होकर पूर्व दिशामें
अपने श्रेष्ठ स्थानपर स्थित हूजिये (विश्वेदेवाः, यजमानः च,
अस्मिन्, उत्तरास्मिन्, मध्ये, अधिसीदत) हे विश्वेदेवाओं तुम
और यजमान इस परमश्रेष्ठ अग्निके साथ उगम स्थानपर यज्ञ

शालामे स्थित होओ ॥ ७३ ॥

तांश्चैतानि तुर्यरेणस्य चित्रांमाहं वृणे सुमतिं
विश्वजन्याम् । यामस्य कण्वो अदुहत्प्रपीनांश्च
सहस्रधारां पयसा मूर्ध्नि गाम् ॥ ७४ ॥

इसका कण्व ऋ०, वि० छ०, सविता दे० है। मंत्रार्थ—(वरेण्य
स्य, सवितुः, तां, चित्रां, विश्वजन्त्यां, सुमतिं, अहं, आवृणे) मर्षि-
नायोग्य प्रेरक ईश्वरकी, उस अनेकोप्रकारके फल देनेमें तमर्ष
सर्वोद्देष्टारिणी श्रेष्ठ बुद्धिको मैं स्वीकार करताहूँ (कण्वः, अस्य,
यां, प्रपीनां, सहस्रधारा, पयसां, मूर्ध्नि, गां, अदुहत्) ज्ञानीने इस
प्रेरक परमात्माकी जिस अतिपुष्ट अनन्तधारावाली अमृतद्वारा सर्व
सिद्धि देनेवाली बुद्धिको दुहा ॥ ७४ ॥

विधेम ते परमे जन्मन्त्रने विधेम स्तोमैरवरे
सधस्ये । यस्माद्योनैरुदारिथ्या यजे तम् त्वे
हवींश्चि जुहुरे समिद्धे ॥ ७५ ॥

इसका गृत्समद ऋ०, त्रि० छ०, अग्नि दे० है। मंत्रार्थ—(अग्ने,
परमे, जन्मन्, ते, विधेम) हे अग्ने ! परमोत्तम जन्मवाले स्वर्ग
में तुम्हारे निमित्त हवि देतेहैं (अवरे, सधस्ये, स्तोमैः, विधेम)
उससे नीचे अन्तरिक्षमें विद्युत् रूपसे स्थितको स्तोत्र पढ़कर हवि देते
हैं (यस्मात्, योनेः, उदारिथ, ते, यजे) क्योंकि तुम इष्टका चित्ति-
रूप स्थानमें प्रकट हुए हो उन आपको मैं पूजताहूँ (समिद्धे, त्वे,
हवींश्चि, जुहुरे) और इसी कारण भलीभाँति प्रज्वलित तुम्हारे
विषे अतिवज हवियोंको होमगे हैं ॥ ७५ ॥

प्रेद्धो अग्ने दीदिहि पुरो नोऽजस्रया सूर्या

यविष्ट । त्वं च शश्वन्त उर्षयन्ति वाजाः ॥ ७६ ॥

इसका यविष्ट ऋ०, वि० अ० छ०, अग्नि दे० है। मंत्रार्थ—
(यविष्ट, अग्ने, अजस्रया, सूर्या, प्रेद्धः, नः, पुरः, दीदिहि) हे
अतिरूप अग्निदेव ! अस्त्रपट लाटोवाली ज्वालासे अत्यन्त प्र-
काशवान् तुम, हमारे आगे पदीत होओ (शश्वन्तः, वाजाः, त्वाम्)

उपयन्ति) निरन्तर होनेवाले अन्नरूप हवि तुमको अर्पित होगे ७६
 अग्ने तमयाध्वन्न स्तोत्रैः क्रतुन्न भद्रथि हृदि
 स्पृशाम् । ऋष्यां मा तु जीहिः ॥ ७७ ॥

इसकी व्याख्या १५ वें अध्यायके ४४ मंत्रमें होगई ॥ ७७ ॥

चित्तिञ्जुहोमि मनसा घृतेन यथा देवा इहागमं
 न्यीतहोत्रा क्रतावृषः । पत्ये विश्वस्य भूमनो
 जुहोमि विश्वकर्मणे विश्वाहादाभ्यथे हविः ॥ ७८ ॥

इसका अर्थ अ०, अतिजपती ह०, विश्वकर्मा दे० है मंत्रार्थ—

(मनसा, घृतेन, चित्त, जुहोमि) मन लगाकर घृतके द्वारा इस
 चित्तमें स्थित अग्निको आहुति देकर पसन्न करना हूँ (यथा,
 इह, वीतहोत्राः, क्रतावृषः, देवाः, आगमन्) जिसप्रकार इसयज्ञ
 में आहुतिकी अभिनापावाले सत्य वा यज्ञके हृदिकर्त्ता देवता
 प्रकट हों (विश्वाहाः, भूमनः, विश्वस्ये, पत्ये, विश्वकर्मणे, अदा-
 भ्यम्, हविः, जुहोमि) सकल दिगोंमें महान् जगत्पानि जगदुत्पा-
 दकके निमित्त स्वादयुक्त हवि देते हैं ॥ ७८ ॥

सप्त ते अग्ने समिधस्सप्तं जिह्वास्सप्त ऋषि-
 यस्सप्त धामं त्रिषाणि । सप्त होत्रास्सप्तधा
 त्वा यजन्ति सप्त योनीरापृणस्व घृतेन स्वाहा ॥ ७९ ॥

इसका अर्थ अ०, त्रि०, ह्रं०, अग्नि देवता है । मंत्रार्थ—

(अग्ने सप्त, समिधः) हे अग्ने ! आपकी शमी आदि सात समिधा
 हैं (सप्त, जिह्वाः) सात ज्वाला रूप जिह्वा हैं (सप्त, ऋषयः)
 सात ऋषि हैं (सप्त, त्रिषाणि, धाम) सात गायत्री आदि ह्रन्द
 रूप त्रिषधाम हैं (सप्त, होत्राः, त्वा, सप्तधा, यजन्ति) सात होता
 तुमको अग्निष्टोम आदि सात प्रकारके यज्ञोंसे पूजते हैं (सप्त, योनीः
 घृतेन, आपृणस्व, स्वाहा) तुम सात चित्तियोंको घृतसे पूर्य
 करो, श्रेष्ठ होम हो ॥ ७९ ॥

शुक्रज्योतिश्च त्रिज्योतिश्च सत्यज्योतिश्च

ज्योतिष्मांश्च शुक्रश्च ऋतुपाश्चात्पथिहाः ॥ ८० ॥

इसका सप्तमि ऋ०, उष्णिक् छं०, मरुत् देवता । मंत्रार्थ—
(शुक्रज्योतिः, न, त्रिज्योतिः, च, सत्यज्योतिः, च, ज्योतिष्मान्
च, शुक्राः, च, ऋताः, च, अत्यध्याः) शुद्ध तेजस्वी, विविध
ज्योतिवाले, सत्यप्रकाशमय, ज्योतिवान्ते दीप्तिमान् सत्य वा पद्म
की रक्षा करनेवाले और पापोंसे रहित मरुत्गण हमारे यज्ञमें आवैं
ईदृक् चान्यादृक् च सदृक् च प्रतिसदृक् च । मि-

तरच समितश्च सभराः ॥ ८१ ॥

इसका सप्तमि ऋ०, गाय० छं०, मरुत् दे० है । मंत्रार्थ—
(ईदृक्, च, अन्यादृक्, च, सदृक्, प्रतिसदृक्, च मितः, च, समितः
च, सभराः) इस पुरोडाशको ग्रहण करनेवाले और दूसरे पुरोडाश
को देखनेवाले, समानदृष्टि और प्रत्येकको समान देखनेवाले और
मानको प्राप्त और सम्यक् एकीभावे मानको प्राप्त और समान
भावको धारण करनेवाले मरुत् देवता हमारे यज्ञमें आवैं ॥ ८१ ॥

प्रतश्च सम्यश्च ध्रुवश्च ध्रुवणश्च । धर्त्ता च वि-
धर्त्ता च विधारयः ॥ ८२ ॥

प्राण्यादि करके मंत्रको समान है । मंत्रार्थ—(आनः, च, सत्यः,
च, ध्रुवः, च, ध्रुगः, च, धर्त्ता, च, विधर्त्ता, च, विधारयः)
सत्यस्वरूप, सत्त्वस्तुम् प्रकट और स्थिर तथा धारणकर्त्ता, धर्त्ता
और विशेष धारणकरनेवाले और विविधप्रकारसे धारण करने-
वाले मरुत् देवता हमारे यज्ञमें आवैं ॥ ८२ ॥

क्रतुजिच्च सत्यजिच्च सेतुजिच्च सुपेणश्च ।

अग्निमित्रश्च दूरे अग्निमित्रश्च गणः ॥ ८३ ॥

इसका सप्त० ऋ०, उष्णिक् छं०, मरुत् दे० है । मंत्रार्थ (अत-
जित्, च, सत्यजित्, च, सेतुजित्, च, सुपेणः, च, अग्निमित्रः,
च, दूरेमित्रः, च, गणः) यज्ञको जीतनेवाले और सत्यको जीतने-
वाले एवं शत्रुसत्ताको जीतनेवाले और श्रेष्ठ सेनावाले मित्रोंके
समीप रहनेवाले और शत्रुओंसे दूर रहनेवाले और सत्को गिनने-
वाले मरुत् देवता हमारे यज्ञमें आवैं ॥ ८३ ॥

ईदृशांस एतादृशांस ऊपुणः सदृशांसः प्रतिसदृ-
शांस एतन्न । मितासंश्च सम्मितासो नो अथ
सभरसो मरुतो यज्ञे अस्मिन् ॥ ८४ ॥

इसका सप्त० ऋ०, जगती छं०, मरु० दे० है । मंत्रार्थ—(ईदृ-
शासः, उ, एतादृशासः, उ, सदृशासः, उ, प्रतिसदृशासः, न, मि-
तासः, उ, सम्मितासः, उ, सभरसः, मरुतः, अथ, नः, अस्मिन्
यज्ञे, एतन्न) इस लक्षणको देखनेवाले और इसप्रकारके देखनेवाले
और भली प्रकार देखनेवाले और समान देखनेवाले और प्रत्येक
को देखनेवाले और प्रमाणयुक्त और इकट्ठेहोकर प्रमाण करनेवाले
आदरपानेवाले मरुत् देवता आज हमारे इस यज्ञमें आवें ॥ ८४ ॥

स्वतन्वाँश्च मघासी च सान्तपनश्च गृहमेधी च ।

क्रीडी च शाकी चोज्जेपी ॥ ८५ ॥

इसका सप्त० ऋ०, स्वराङ्गा० छं०, मरु० दे० है । मंत्रार्थ—(स्वतवान्,
च, मघासी, च, सान्तपनः, च, गृहमेधी च, क्रीडी, च, शाकी, च,
उज्जेपी) स्वाधीनवनयुक्त और पुरोडाश भक्षण करनेवाले और
शत्रुओंको ताप देनेवाले और गृहधर्मसे युक्त और सदा क्रीड़ा
करनेवाले और समर्थ और सदा जयशील मरुत् देवता हमारे
यज्ञमें आवें ॥ ८५ ॥

उग्रश्च भीमश्च ध्वान्तश्च धुनिश्च सासहान्श्चा-
भियुग्वा च विक्षिपुः स्वाहा ॥

यह विमुञ्ज नामक मंत्र अध्याय ३९ का ७ वां मंत्र है, मस-
द्रवश इसकी व्याख्याभी यहाँ की जाती है । मंत्रार्थ—(उग्रः, च,
भीमः, च, ध्वान्तः, च, धुनिः, च, सासहान्, च, अभियुग्वा,
स्वाहा) उत्कृष्ट और भयंकर और शत्रुओंको अन्धाकरनेवाले और
शत्रुओंको कँपानेवाले और शत्रुओंको हरानेवाले और भक्तोंको
सुख देनेवाले और शत्रुओंको हटानेवाले इन मरुत्गणोंको आ-
हुति दी जाती है श्रेष्ठ होम हो ॥

इन्द्रन्दैवीविंशो मरुतानुचरमानोभवन्वथेन्द्र-

न्दैवीर्विशो मरुतोनुवर्तमानो भवन् । एवमिमं
यजमानन्दैवीश्च विशो, मानुषीद्यानुवर्तमानो
भवन्तु ॥ ८६ ॥

इसका सप्त० ऋ० शकरी छ०, मरु दे० है । मंत्रार्थ (दैवीः,
मरुताः, विशाः, इन्द्रश्च, अनुवर्तमानः, अभवन्) देवसम्बन्धी मरुत-
रूप प्रजा इन्द्रकी अनुगामिनी हुई (यथा, दैवीः, मरुताः, विशाः, इन्द्रः,
अनुवर्तमानः, अभवन्, एवं, दैवीः, च, मानुषीः, च, विशाः, इमं,
यजमानं, अनुवर्तमानः, भवन्तु) जिसप्रकार देवसम्बन्धी मरुतरूप
प्रजा इन्द्र की अनुगामिनी हुई इसीप्रकार देवलोक और मनुष्य-
लोककी प्रजा इस यजमानकी अनुगामिनी हों ॥ ८६ ॥

इमं स्तनमूर्जस्वन्तन्धयापाम्प्रपीनमग्ने सरि-
रस्य मध्ये । उत्संजुवस्य मधुमन्तमर्धन्तसमुद्रि-
यं सदन्माविशस्व ॥ ८७ ॥

इसका सप्त० ऋ०, त्रि० छ०, अग्नि दे० है । मंत्रार्थ (अग्ने,
सरिरस्य, मध्ये, इमं, ऊर्जस्वन्तं, अपां, गपीन्, स्तनम्, धय)
है अग्ने । भूलोकके मध्यमें वर्तमान तुम, इस श्रेष्ठरसवाले घृण-
धाराओंसे पूर्ण सुक्ररूप स्तनको पिपी (अर्धन्, मधुमन्तं, उत्सं
जुवस्व) है सब और गमन करनेवाले अग्ने । मधुरस्वादवाले
घृणसे युक्त सुक्ररूप कूपको सेवन करो (समुद्रियं, सदन्, आवि-
शस्व) चयनयागवाले धारमें प्रवेश करो ॥ ८७ ॥

घृतमिमिक्षं घृतमस्य योनिर्घृतेः श्रितो घृतम्बस्य
धाम । अनुष्वधमावह मादयस्य स्वाहा कृतं
घृपभ विक्षि हव्यम् ॥ ८८ ॥

इसका गृत्समद ऋ०, त्रि० छ०, अग्नि दे० है । मंत्रार्थ—(घृणम्
मिमिक्षे) मैं घृतको अग्निके घृणमें सींचना चाहता हूँ (घृतं,
अस्य, योनिः) घृत इस अग्निका उत्पत्तिस्थान है (घृतं, श्रिताः)
घृणमें आश्रित है (घृतं, उ, अस्य, धाम) घृत ही इसको तेज
करनेवाला है (अनुष्वधं, आवह, मादयस्व) हे अश्वर्यु ! दक्षिका

संस्कार करनेके अनन्तर अग्निका आवाहन करी वृषभ, स्वाहाकृतं, हविः, वत्ति) और कहो कि—हे कामवाओंको पूर्ण करनेवाले! स्वाहा कहकर होमाहुआ हवि देवताओंको प्राप्त कराओ॥

समुद्रादूर्म्मिमधुंमान् उदारदुपाधेशुना सममृतत्वमानत् । घृतस्य नाम गुह्यं यदस्ति जिह्वा देवानाममृतस्य नाभिः ॥ ८९ ॥

इसका वामदेव ऋ०, त्रि० छ०, अग्नि दे० है । मंत्रार्थ—(मधुमान्, ऊर्मिः, समुद्रात्, उदारत्) मधुरसवाली तरंग घृतरूप समुद्रसे उठी (अशुना, समु; अमृतत्वम् उपानत्) फिर प्राणयुक्त अग्निके साथ मिलकर अमृतत्वको प्राप्त हुई (यत्, घृतस्य, गुह्यं, नाम, देवानां, जिह्वा) जो उस घृतका गुप्तनाम श्रुतिमें पढ़ा है, वह देवताओंकी जिह्वा है (अमृतस्य, नाभिः, अस्ति) अमृतकी नाभि है अर्थात् जो पी खाता है वह दीर्घायु होता है ॥ ८९ ॥

वयज्ञाम प्रव्रवामाघृतस्यास्मिन्पञ्चे धारयामा नमोभिः । उपं ब्रह्माश्रृणवच्छस्यमानुचतुःशृङ्गोवमीद्गौर एतत् ॥ ९० ॥

इसका वामदेव ऋ०, त्रि० छ० अग्नि दे० है । मंत्रार्थ—(वयम् अस्मिन्, यज्ञं, घृतस्य, नाम, प्रव्रवाम) हम इस यज्ञमें घृतका नाम लेकर स्तुति करते हैं, क्योंकि—घृत देवताओंको प्यारा है (नमोभिः, धारयामः) अन्नोंके द्वारा यज्ञको धारण करते हैं (ब्रह्मा, शस्यमानं, उपशृण्वन्तः) ब्रह्मा नामधारी ऋत्विक् स्तुति कियेजाते हुए घृतके नामको सुने (चतुःशृंगः, गौरः, एतत्, अवमीत्) चार होता वाला गौरवर्ण यह घृत आहुतिके परिणामसे यहफल को मकट करता है ॥ ९० ॥

चत्वारिंशद्गुणैः प्रयो अस्य पादा द्वेःश्रीर्षे सप्त हस्तासो अस्य । त्रिधा बद्धो वृषभो रौरवीति महो देवो मर्त्यान् आविवेश ॥ ९१ ॥

इसका वामदेव ऋ०, विराट् आर्षी त्रि० छ०, यज्ञरूप देवता

काष्ठां भिन्दन्नुर्मिभिः पिन्वमानः ॥ ९५ ॥

ऋष्यादि पूर्ववत् । मंत्रार्थ--(घृतस्य, यद्वाः, धाराः, पतयन्ति) घृतकी बड़ी २ धाराएं सुवेस गिरतीहैं (सिन्धोः, शूयनासः; यात-ममयः, गाध्वने, इव) जैसे कि--नदीकी शीघ्रगमनवाली पवनसे चलायमान तारके विपमत्यानमें पहुँचीहैं (काष्ठाः, भिन्दन् ऊर्मिभिः, पिन्वमानः, अरुपः, वाजी, न) जैसे कि- संग्रामकीदिशाओंको विदीर्ण करताहुआ संग्रामभेदनके धमसे निकजेहुए पसीनोंसे पृथ्वीको सींचताहुआ क्रोधरहित उत्तम, घोड़ा गमनकरताहै ॥ ९५ ॥

अभिप्रवन्त समनेव योपाः कल्याण्यः स्मयमाना

सो अग्निम् । घृतस्य धारांस्समिधो नसन्त ता

जुषाणा इर्षति जातवेदाः ॥ ९६ ॥

ऋष्यादि पूर्ववत् । मंत्रार्थ--(घृतस्य, धाराः, समानाः कल्याण्यः, स्मयमानाः, योपाः, इव, अग्नि, अभिप्रवन्त) घृतकी धाराएं, समान मनवालीं रूपयौवनसम्पन्न भुसकुराती हुई स्त्रियोंकी समान अग्निके गति गमन करतीहैं (ताः, समिधः, नसन्त) वह धाराएं अग्निको दीप्त करनेवालीं अग्निको व्याप्त करतीहैं (जातवेदाः, जुषाणाः, इर्षति) मज्ञावाला अग्नि गसन्न होकर उन धाराओं की इच्छा करताहै ॥ ९६ ॥

कन्या इव बहुतुमेतया उ अज्यञ्जाना अभि-

चाकशीमि । यत्र सोमः सूयते यत्र यज्ञो घृतस्य-

धारां अभितर्पवन्ते ॥ ९७ ॥

ऋष्यादि पूर्ववत् । मंत्रार्थ--(यत्र, सोमः, सूयते, यत्र, यज्ञः) जहां सोमका अभिपत्र होगाहै, जहां सौत्रामणि आदि यज्ञ होता है (नत्, उ, घृतस्य, धाराः; अभिचाकशीमि) 'तहां' ही घृतकी धाराएं जातीहुई देखनाहूँ (इव, अजि, अज्यञ्जानाः, कन्याः, बहुतुं, पतये, पवने) जैसे कि सुन्दर रूपवती वा ऋतुधर्मको मकट कर-तीहुई कन्याएं पतिके समीप प्राप्त होनेको गमन करतीहैं ॥ ९७ ॥

अभ्यर्पत सुष्टुतिह्वयंवाजिप्रस्मासु भद्रा द्रधि-

गानि धत्त । इमं यज्ञन्नपत्त देवता नो घृतस्य
धारा मधुमत्पवन्ते ॥ ९८ ॥

इसका वाम०, त्रि० छ०, देवा दे० है । मंत्रार्थ- (सुष्टुति, गव्यं, अर्घ्यं, अभ्यर्षत्) हे देवताओं ! श्रेष्ठ स्तुतिवाने घृतयुक्त यज्ञमें आगमन करी (घृतस्य, धाराः, मधुमत्, पवन्ते) जहाँ घृतकी धाराएं मधुरस्वादवाली गिरती हैं (नः, इमं, यज्ञं, देवता, नयत्) हमारे इस यज्ञको देवलोकमें पहुँचाओ (अस्मासु भद्राः, द्रविणा-नि, धत्त) हमारे यहाँ कल्याण और अनेकों प्रकारके धनोंको स्थापन करो ॥ ९८ ॥

धामन्ते विश्वम्भुवनमधिश्चितमन्तः समुद्रे दृष्ट-
न्तरायुषि । अपामनीके समिधे य आभृतस्तम-
श्याम् मधुमन्तन्त ऊर्मिमम् ॥ ९९ ॥

इसका वाम० ऋ०, त्रि० छ०, अग्नि दे० है । मंत्रार्थ- (समुद्रे, हृदि, अन्तरायुषि, विश्वम्, भुवनम्, ते, धामन, अधिश्चितम्) हे अग्ने ! जो समुद्र में हृदयमें तथा आयुमें अर्थात् ब्रह्माके जीवन-पर्यन्त जितने गाणिसमूह हैं वह सब तुम्हारी विभूति का आश्रय करके स्थित हैं (यः, ऊर्मिः, समिधे, अपां, अनीके, आभृतः, तं, मधुमन्तं, ते, ऊर्मिमम्, अश्याम्) जो घृतकी तरंग अमुरोंसे युद्ध करके जलोके भीतरसे लाई गई आपकी कृपासे उस रसयुक्त तुम्हारी तरंगको भक्षण करके अर्थात् हमको देवभाव प्राप्त हो ९९

इति यजुर्वेदान्तर्गत माध्यन्दिनीय शाखाका माण्डूकीय संहिता

सप्तम अध्याय समाप्त.

अथ अष्टादशोऽध्यायः ।

सत्रद्वे अध्यायमें चित्ति आरोहण आदि के मंत्र कहे अब अठारहवें अध्यायमें वसोर्धारादि मंत्र कहे जायेंगे । यहाँ से २९ कण्डिकापर्यन्त के मंत्रोंको पढ़ता हुआ बड़े सुवे में घृत लेकर नि-रन्तर धारापातसे छोड़ता हुआ हवन करे, इसी को वसोर्धारा कहते हैं चाजंश्च मे प्रसूचश्च मे प्रयतिश्च मे प्रसितिश्च

मेधीतिश्च मे क्रतुश्च मे स्वरश्च मे श्लोकश्च मे
श्रवश्च मे ध्योतिश्च मे ज्योतिश्च मे स्वश्च मे यज्ञेन
कल्पन्ताम् ॥ १ ॥

इसका देवा ऋ०, शक्वरी छ०, अग्नि दे० है । मंत्रार्थ (यज्ञेन, मे, वाजः, कल्पन्ताम्, च, मे, प्रसवः, च, मे, प्रयतिः, च, मे, गतिगिः, च) इस यज्ञके फलसे देवता मेरे निमित्त अन्नको सिद्ध करें अर्थात् दें और मुझको देने और भोजन करनेकी आज्ञाभी दें मुझको शुद्धि भी मुझको अन्नकी उत्पत्ति भी दें (च, मे, धीतिः, च, मे, क्रतुः, च, मे, स्वरः, च, मे, श्लोकः) मेरे निमित्त ध्यान विचार और मुझको धेष्ट संकल्प वा यज्ञ भी और मुझको सुन्दरशब्द और स्तुति भी दें (च, मे, श्रवः, च, मे, श्रुतिः, च, मे, ज्योतिः, च, मे, स्वः) मुझको वेदमंत्रोंके ध्वनिकी सामर्थ्य और मुझे ब्राह्मणभागके सुननेकी शक्ति और मुझे प्रकाश तथा मेरे निमित्त स्वर्ग भी दें अर्थात् मुझको यज्ञके फलसे यह सब पदार्थ प्राप्त हों ॥ १ ॥

माणश्च मेपानश्च मे व्यानश्च मेसुश्च मे चित्तश्च
मे आधीतश्च मे वाक् च मे मनश्च मे चक्षुश्च
मे श्रोत्रश्च मे दक्षश्च मे बलश्च मे यज्ञेन कल्प-
न्ताम् ॥ २ ॥

इसका देवा० ऋ०, नि० अतिज० छ०, अग्नि दे० है । मंत्रार्थ (च, मे, माणः) और मेरे निमित्त प्राणवायु (च, मे, अपानः) और मेरे निमित्त अथोरायु (च, मे, व्यानः) और निमित्त सब शरीरमें विचरनेवाला वायु (च, मे, असुः) और मुझको महत्ति वाला वायु (च, मे, चित्तम्) और मुझको मानस संकल्प (च, मे, अधीतम्) और मुझको वाही ज्ञान (च, मे, वाक्) और मुझको वाणीकी सामर्थ्य (च, मे, मनः) और मुझको मन (च, मे, चक्षुः) और मुझको दृष्टि (च, मे, श्रोत्र) और मुझको सुननेकी शक्ति (च, मे, दक्षः) और मेरे निमित्त ज्ञानकी

ऋषी (च, मे, बलम्) और मुझको बल (यज्ञेन, कल्पन्ताम्)
यज्ञफलसे प्राप्त हो ॥ २ ॥

ओजश्च मे सहश्च मे आत्मा च मे तनूश्च मे
शर्म च मे वर्म च मेऽङ्गानि च मेऽस्थीनि च
मे पदंऽपि च मे शरीराणि च म आयुश्च मे
जरा च मे यज्ञेन कल्पन्ताम् ॥ ३ ॥

इसका देवा ऋ०, भु० शक्व० छ०, अग्नि दे० है। मंत्रार्थ
(च, मे, ओजः, च, मे, सहः) मुझ बलकी कारण शरीरकी
आठवीं धातु ओज और देहबल (च, मे, आत्मा, च, मे, तनूः)
मुझे आत्मज्ञान और सुन्दर शरीर (च, मे, शर्म, च, मे, वर्म)
मुझे सुख और कवच (च, मे, अङ्गानि, च, मे, अस्थीनि)
मुझे पुष्ट अङ्ग और अस्त्रियोंकी दृढ़ता (च, मे, पदंऽपि, च, मे,
शरीराणि) मुझे अंगुलियोंके पोरुओंकी दृढ़ता और देहकी नी-
रोगता (च, मे, आयुः, च, मे, जरा, यज्ञेन, कल्पन्ताम्) मुझे
सुखमय आयु और वृद्धावस्थापर्यन्त आयुयज्ञके फलसे देवता दे ३

व्यैष्ट्यं च मे आधिपत्यं च मे मन्युश्च मे
भामंश्च मेऽमश्च मेऽम्भंश्च मे जेमा च मे
महिमा च मे वरिमा च मे पृथिमा च मे धर्षिमा
च मे द्राधिमा च मे वृद्धं मे वृद्धिश्च मे यज्ञेन
कल्पन्ताम् ॥ ४ ॥

इसका देवा ऋ०, नि० अत्यष्टि छ०, अग्नि दे० है। मंत्रार्थ
(च, मे, व्यैष्ट्यं, च, मे, आधिपत्यम्) मुझे वडाई और मभुता
(च, मे, मन्युः, च, मे, भामः) मुझे दोषोपर कोप और अनु-
चित अपराध पर कोप (च, मे, अमः, च, मे, अम्भः) मेरे अर्थ
गंभीरता और श्रेष्ठ जल (च, मे, जेमा, च, मे, महिमा) मेरे
निमित्त जीतनेकी शक्ति और प्रतिष्ठा (च, मे, वरिमा, च, मे,
प्रधिमा) मुझे सन्तानादिकी अधिकता तथा स्थान आदिका
विस्तार (च, मे, धर्षिमा, च, मे, द्राधिमा) मुझे दीर्घजीवी-

पना और वंशपरम्पराकी प्राप्ति (च, मे, वृद्धं, च, मे, वृद्धिः यज्ञेन, कल्पन्ताम्) मेरे निमित्त अधिक अन्नादि तथा विद्यादि गुणोंकी धनति यज्ञके फलसे प्राप्त हो ॥ ४ ॥

सत्यञ्च मे धृदा च मे जगच्च मे धनञ्च मे
यिष्वध मे महश्च मे क्रीडा च मे मोदश्च मे
जातञ्च मे जनिष्यमाणञ्च मे सूक्तञ्च मे
सुकृतञ्च मे यज्ञेन कल्पन्ताम् ॥ ५ ॥

इसका देवा ऋ०, वि० शकरी छ०, अग्नि दे, हैमंत्रार्थ-(च, मे, सत्यं, च, मे धृदा) मेरे अर्थ यथार्थ भाषण तथा परलोकपर विश्वास (च, मे, जगत्, च, मे, धनम्) गौ आदि पशु तथा सुवर्ण आदि धन (च, मे, विश्वं, च, मे, महः) सुभै स्यावर पदार्थ एवं प्रकाश (च, मे, क्रीडा, च, मे, मोदः) सुभै क्रीडा एवं क्रीडाके देखनेका आनन्द (च, मे, जातं, च, मे, जनिष्यमाणं) सुभै पुत्रसे उत्पन्न सन्तान और होनेवाली अपत्य सन्तान (च, मे, सूक्तं, च, मे, सुकृतं, यज्ञेन, कल्पन्ताम्) सुभै शुभदायक ऋचाओंका समूह और पाठ करने से शुभअष्टय यज्ञके फलसे प्राप्त हो ५

ऋतञ्च मेऽमृतञ्च मेऽयुक्षमञ्च मेऽनामयञ्च मे
जीवातुश्च मे दीर्घायुश्च मेऽनमिष्रञ्च मेऽभयञ्च
मे सुखञ्च मे शयनञ्च मे सूषाञ्च मे सुदिनञ्च
मे यज्ञेन कल्पन्ताम् ॥ ६ ॥

इसका देवा ऋ०, भुरिगतिशक० छ०, अग्नि देवताहै मंत्रार्थ (च, मे, ऋतं, च, अमृतं) सुभै यज्ञादि कर्म तथा इसका स्वर्गादिफल (च, मे, अयक्षमं, च, मे, अनामयत्) रोगका नाश तथा साधारण व्याधिका अभाव (च, मे, जीवातुः, च, मे, दीर्घायुत्वम्) आयु बढ़ानेवाली औषध तथा दीर्घायु (च, मे, अनमिष्रम्, च, मे, अभयम्) शत्रुओंका अभाव और निर्भयता (च, मे, सुखं, च, मे, शयनम्) सुभै सुख तथा सेन (च, मे, सूषाः, च, मे, सुदिनं यज्ञेन कल्पन्ताम्) सुभै सन्ध्यावन्दनादियुक्त सप्रभात और यज्ञ-

नादियुक्त दिन यज्ञके फलसे प्राप्त हो ॥ १ ॥

यन्ता च मे धर्ता च मे क्षेमश्च मे धृतिश्च मे
विश्वंश्च मे महश्च मे संविच्च मे ज्ञात्रंश्च मे
सुश्च मे पृसुश्च मे सीरंश्च मे लयश्च मे यज्ञेन
कल्पन्ताम् ॥ ७ ॥

इसका देवा ऋ०, नि० अतिजग० छ०, अग्नि दे० है मंत्रार्थ—
(च, मे, यन्ता, च, मे, धर्ता) मुझे गुरु आदि नियन्ता एवं प्रजा
पालनकी शक्ति (च, मे, क्षेमः, च, मे, धृतिः) मेरे निमित्त वर्त्त-
मान धनकी रक्षा तथा आपसिमें चित्तकी स्थिरता (च, मे, विश्वं
च, मे, महः) सबकी अनुकूलता और पूजा सत्कार (च, मे,
संविच्च, च, मे, ज्ञात्रं) वेद शास्त्रादिका ज्ञान और विज्ञानकी शक्ति
(च, मे, सूः, च, मे, प्रसुः) आश्वा देनेकी सामर्थ्य एवं पुत्रादि
को उत्पन्न करनेकी सामर्थ्य (च, मे, सीरं, च, मे, लयः, यज्ञेन,
कल्पन्ताम्) मुझे हल आदिके द्वारा अन्नकी प्राप्ति और खेतीके
विघ्नोंका नाश इस यज्ञके फलसे देवता दें ॥ ७ ॥

ज्ञश्च मे मयश्च मे प्रियश्च मेऽनुकामश्च मे
कामश्च मे सौमनसश्च मे भगश्च मे द्रविणश्च
मे भद्रश्च मे श्रेयश्च मे वसीयश्च मे यशश्च मे
यज्ञेन कल्पन्ताम् ॥ ८ ॥

इसका देवा ऋ०, वि० शकरी छ०, अग्नि दे० है। मंत्रार्थ—
(च, मे, ज्ञः, च, मे, मयः) मुझे शारीरिक सुख तथा परलोकका
सुख (च, मे, प्रियम्, च, मे, अनुकामः) प्रीति उत्पादक वस्तु तथा
सहज यत्न साध्य पदार्थ (च, मे, कामः, च, मे, सौमनसः)
विहित विषयभोगका सुख एवं मनको स्वस्थ करनेवाले बान्धव
(च, मे, भगः, च, मे, द्रविणम्) सौभाग्य तथा धन (च, मे,
भद्रं, च, मे, श्रेयः) इमलोकका कल्याण तथा परलोकका कल्याण
(च, मे, वसीयः, च, मे, यशः, यज्ञेन, कल्पन्ताम्) निवासयोग्य
धनसे पूर्ण घर तथा कीर्ति भी इस यज्ञके फलसे देवता दें ॥ ८ ॥

उर्कं च मे सूत्रतां च मे पयश्च मे रसश्च मे
 घृतश्च मे मधु च मे सग्धिश्च मे सर्पातिश्च मे
 कृपिश्च मे वृष्टिश्च मे जैत्रञ्च म औद्भिद्यञ्च मे
 यज्ञेन कल्पन्ताम् ॥ ९ ॥

इसका देवा ऋ०, शक्वरी छ० अग्नि दे० है । मंत्रार्थ—(च, मे, उर्क, च, मे, सूत्रता) मुझ अन्न तथा सच्ची और प्रियवाणी (च, मे, पयः, च, मे, रसः) दूध तथा दूधका सार (च, मे, घृतं च, मे, मधु) घी तथा सहद (च, मे, सग्धिः, च, मे, सर्पातः) वान्धवोंके साथ खान पान (च, मे, कृपिः, च, मे, वृष्टिः) धान्य की सिद्धि एवं अन्न उत्पन्न होनेके अनुकूल वर्षा (च, मे, जैत्र, च, मे औद्भिद्यम्, यज्ञेन, कल्पन्ताम्) जयकी शक्ति तथा आम्नादि वृत्तोंकी उत्पत्ति भी मुझ यज्ञके फलसे देवता दें ॥ ९ ॥

रधिश्च मे रायश्च मे पुष्टश्च मे पुष्टिश्च मे विभु
 च मे प्रभु च मे पूर्णश्च मे पूर्णतरश्च मे कुपश्च
 मे अक्षितश्च मे सप्तश्च मे क्षुश्च मे यज्ञेन
 कल्पन्ताम् ॥ १० ॥

इसका देवा ऋ०, नि० शक्वरी छ०, अग्नि दे० है । मंत्रार्थ—(च, मे, रायिः, च, मे, रायः) मुझको सुवर्ण तथा मौक्तिक आदि मणि (च, मे, पुष्ट, च, मे, पुष्टिः) धनकी पुष्टि तथा शरीरकी पुष्टि (च, मे, विभु, च, मे, प्रभु) व्यापकताकी शक्ति एवं पेश्वर्य (च, मे, पूर्ण, च, मे, पूर्णतरं) धन पुत्रादिकी अधिकता तथा हाथी घोड़ा आदिकी अधिकता (च, मे, कुपश्च, च, मे, अक्षितं) यज्ञसे रहित धान्य तथा अक्षय अन्न (च, मे, अन्नं, च, मे, क्षुद यज्ञेन, कल्पन्ताम्) भात आदि सिद्धान्न तथा भोजन पचानकी शक्ति भी यज्ञके फलसे देवता दें ॥ १० ॥

विश्वश्च मे वेद्यश्च मे भूतश्च मे भविष्यश्च मे
 सुगश्च मे सुपृथग् च म ऋदश्च म ऋदिश्च मे
 कलसश्च मे कलसिश्च मे अतिश्च मे यज्ञेन

कल्पन्ताम् ॥ ११ ॥

इसका देवा ऋ० भुरिक् शक्वरी छ०, अग्नि दे० है । मंत्रार्थ-
(च, मे, वित्तं, च, मे, वधम्) और मुक्तको पूर्वमास धन तथा धामै
मासव्य धन भी (च, मे, भूतं, च, मे भविष्यत्) पूर्वमास क्षेत्रादि
एवं भविष्यत्में मास होनेवाले क्षेत्रादि भी (च, मे, सुगं, च, मे,
सुपथ्यम्) सुखगम्य देश एवं परमपथ्य पदार्थ (च, मे, ऋद्धं
च, मे, ऋद्धिः) बड़ेभारी यज्ञका फल तथा यज्ञ आदिकी समृद्धि
(च, मे, वल्लभं, च, मे, वल्लभिः) कार्यसाधक अपरिमित धन तथा
कार्यसाधनकी शक्ति (च, मे, मतिः, च, मे, सुमतिः, यज्ञत, क-
ल्पन्ताम्) पदार्थमात्रका निश्चय तथा दुर्घट कार्यका निश्चय इस
यज्ञके फलसे देवता दें ॥ ११ ॥

वृहस्पश्च मे यवाश्च मे मापाश्च मे तिलाश्च
मे मुद्गाश्च मे खल्वाश्च मे मियङ्गवश्च मेऽण-
वश्च मे श्यामाकाश्च मे नीवाराश्च मे गोधू-
माश्च मे मसूराश्च मे यज्ञेन कल्पन्ताम् ॥ १२ ॥

इसका देवा ऋ०, भु० अग्निशक्व० छ०, अग्नि दे० है । मंत्रार्थ
(च, मे, व्रीहयः, च, मे, यवा) मुक्त चावलों के धान तथा जौ
(च, मे, मापाः, च, मे, तिलाः) उड़द तथा तिन (च, मे,
मुद्गाः, च, मे, खल्वाः) मूँग तथा चने (च, मे, मियङ्गवः, च,
मे, अणवः) कंगनी चना (च, मे, श्यामाकाः, च, मे, नीवाराः)
समा कांदो तथा बने के मुन्यन्त नीवारादि (च, मे, गोधूमाः,
च, मे, मसूराः, यज्ञेन, कल्पन्ताम्) गेहूँ और मसूर इस यज्ञ के
फल से देवता दें ॥ १२ ॥

अश्माश्च मे मृत्तिकाश्च मे गिरयश्च मे पर्व-
ताश्च मे सिकताश्च मे वनस्पतयश्च मे हिर-
ण्यश्च मेऽर्पश्च मे श्यामश्च मे लोहश्च मे
सीसंश्च मे श्रपुं च मे यज्ञेन कल्पन्ताम् ॥ १३ ॥

इसका देवा ऋ० भुरि० अतिश० छ० अग्नि देवता है । मंत्रार्थ (च, मे अश्मा, च, मे, मृत्तिका) मुझै सुन्दर पापाण तथा श्रेष्ठ मृत्तिका (च, मे, गिरयः, च, मे, पूर्वताः) गोवर्द्धनादि छोटे पर्वत तथा हिमालयादि पहाड़ (च, मे, सिकताः, च, मे, वनसायः) सुन्दर रेती तथा बिनाफून आए फलदायक वृक्ष (च, मे, दिग्गयं, च, मे अयः) सुवर्ण तथा लोहा (च, मे, श्यामं, च, मे, लोहम्) ताँवा काँसा आदि तथा फौलाड़ (च, मे, सीसं, च, मे, प्र०, यज्ञन, कल्पन्ताम्) सीसा धातु तथा राँगाइस यज्ञके फल से देवता दें ॥ १३ ॥

अग्निश्च मे आपश्च मे वीरुषश्च मे ओषध-
यश्च मे कृष्टपच्यार्च मे अकृष्टपच्यार्च मे
ग्राम्यार्च मे पशवं आरण्यार्च मे वित्तश्च मे
वित्तश्च मे भूतश्च मे भूतिश्च मे यज्ञं
कल्पन्ताम् ॥ १४ ॥

इसका देवा ऋ०, नि० अष्टि छ० अग्नि दे० है मंत्रार्थ (च, मे, अग्निः, च, मे, आपः) मुझै पृथिवीके अग्निकी अनुकूलता तथा अन्तरिक्षक जनकी अनुकूलता (च, मे, वीरुषः, च, मे, ओषधयः) भइतृण आदि तथा पकतेही मूखनेवाली औषध (च, मे, कृष्टपच्यार्च, च, मे, अकृष्टपच्यार्च) इल चनाकर उत्पन्न होनेवाले तथा अन्न हलगेते उत्पन्न होनेवाले अन्न (च, मे, ग्राम्यार्च, च, मे, पशवः) गौ भैंस आदि ग्राम्यपशु तथा हाथी आदि वनक पशु (च, मे, वित्तं च, मे, वित्ति) पूर्वलब्धन तथा होनहार धनकी कामना (च, मे, भूतं, च, मे, भूतिः, यज्ञं, कल्पन्ताम्) विद्यमान पुत्रादि तथा अपना उपार्जन किया हुआ धन इस यज्ञके फल से हमको देवता दें ॥ १४ ॥

वसुं च मे वसुतिश्च मे कर्मं च मे गार्त्तिकश्च
मेऽर्थश्च मे एमंश्च मे इत्या च मे गार्त्तिकश्च मे

यज्ञेन कल्पन्ताम् ॥ १५ ॥

इसका देवा ऋ०, विराडा० वृ० छ०, अग्नि दे० है मंत्रार्थ—
(च, मे, वसुः, च, मे, वसतिः) मुझै गौ आदि धन तथा निवा-
सस्थान (च, मे, कर्म, च, मे, शक्तिः) अग्नि होनादि कर्म तथा
उसके अनुष्ठानकी शक्ति (च, मे, अर्थाः, च, मे, एमः) इच्छित
पदार्थ तथा प्राप्तियोग्य पदार्थ (च, मे, इत्या, च, मे, गतिः) इष्ट
प्राप्तिका उपाय एवं इष्टप्राप्ति (यज्ञेन, कल्पन्ताम्) यज्ञके फल से
प्राप्त हों ॥ १५ ॥

अग्निश्च म इन्द्रश्च मे सोमश्च म इन्द्रश्च मे स-
विता च म इन्द्रश्च मे सरस्वती च म इन्द्रश्च मे
पूषा च म इन्द्रश्च मे बृहस्पतिश्च म इन्द्रश्च
मे यज्ञेन कल्पन्ताम् ॥ १६ ॥

इसका देवा ऋ०, नि० या० प० छ०, अग्नि दे० है । मंत्रार्थ
(च, मे, अग्निः, च, मे, इन्द्रः) मुझै अग्नि और इन्द्र (च, मे,
सोमः, च, मे, इन्द्रः) सोम तथा इन्द्र (च, मे, सविता, च, मे,
इन्द्रः) सविता और इन्द्र (च, मे, सरस्वती, च, मे, इन्द्रः) सर-
स्वती तथा इन्द्र (च, मे, पूषा, च, मे, इन्द्रः) पूषा तथा इन्द्र (च,
मे, बृहस्पतिः, च, मे, इन्द्रः) बृहस्पति तथा इन्द्र (यज्ञेन, कल्पा-
न्ताम्) यज्ञके फलसे प्राप्त हों ॥ १६ ॥

मित्रश्च म इन्द्रश्च मे वरुणश्च म इन्द्रश्च मे
धाता च म इन्द्रश्च मे त्वष्टा च म इन्द्रश्च मे
मरुतश्च म इन्द्रश्च मे विश्वे च मे देवा इन्द्रश्च मे
यज्ञेन कल्पन्ताम् ॥ १७ ॥

इसका देवा ऋ० वि० शक्व० छ०, अग्नि दे० है । मंत्रार्थ (च,
मे, मित्रः, च, मे, इन्द्रः) मुझै मित्र एवं इन्द्र देवता (च, मे,
वरुणः, च, मे, इन्द्रः) वरुण तथा इन्द्र (च, मे, धाता, च, मे, इन्द्रः)
धाता तथा इन्द्र (च, मे, त्वष्टा, च, मे, इन्द्रः) त्वष्टा तथा इन्द्र

च, मे, मरुतः, च, मे, इन्द्रः) मरुत तथा इन्द्र (च, मे, विश्वेदेवा
च, मे, इन्द्रः, यज्ञेन, कल्पन्ताम्) विश्वेदेवा तथा इन्द्र इस यज्ञके
फलसे अनुकूल भावसे प्राप्त हों ॥ १७ ॥

पृथिवी च म इन्द्रश्च मेऽन्तरिक्षं च म इन्द्रश्च
म यौरचं म इन्द्रश्च मे समाश्च म इन्द्रश्च
मे नक्षत्राणि च म इन्द्रश्च मे दिशाश्च म इन्द्रश्च
मे यज्ञेन कल्पन्ताम् ॥ १८ ॥

इसका देवा आ०, भु० शक्र० छ०, अग्नि दे० है । मंत्रार्थ
(च, मे, पृथिवी, च, मे, इन्द्रः) सुभं पृथ्वी तथा इन्द्र (च,
मे, अन्तरिक्षम्, च, मे, इन्द्रः) अन्तर्लोक तथा इन्द्र (च, मे,
यौः, च, मे, इन्द्रः) स्वर्ग तथा इन्द्र (च, मे, समाः, च,
मे, इन्द्रः) वर्षाका अधिष्ठात्री देवता तथा इन्द्र (च, मे, नक्षत्राणि
च, मे, इन्द्रः) नक्षत्र तथा इन्द्र (च, मे, दिशाः, च, मे, इन्द्रः,
यज्ञेन कल्पन्ताम्) दिशा और इन्द्र यज्ञके द्वारा अनुकूलतासे प्राप्त हों

अधेशुश्च मे रश्मिश्च मेऽदाभ्यश्च मेऽधिप-
तिश्च म उपाधेशुश्च मेऽन्तर्यामश्च म ऐन्द्रवा-
यवश्च मे मैत्रावरुणश्च म आश्विनश्च मे प्रति
पृथानश्च मे शुक्रश्च मे मन्थी च मे यज्ञेन
कल्पन्ताम् ॥ १९ ॥

इसका देवा अ०, नि० अत्य० छ०, अग्नि दे० है । मंत्रार्थ-
(च, मे, अंशुः, च, मे, रश्मिः) सुभं अंशु तथा रश्मि नापक
ग्रह (च, मे, अदाभ्यः, च, मे, अधिपतिः) अदाभ्य तथा अन्याह,
ग्रह (च, मे, उपांशुः, च, मे, अन्तर्यामः) उपांशु तथा अन्तर्याम
ग्रह (च, मे, ऐन्द्रवायवः, च, मे, मैत्रावरुणः) ऐन्द्रवायव तथा
मैत्रावरुण ग्रह (च, मे, आश्विनः, च, मे, प्रतिपस्थानः) आश्विन
तथा प्रतिपस्थान ग्रह (च, मे, शुक्रः, च, मे, मन्थी, यज्ञेन,
कल्पन्ताम्) शुक्र और मन्थी ग्रह यज्ञके द्वारा अनुकूलतासे प्राप्त हों ॥

से प्राप्त हों ॥ १९ ॥

आग्नेयणश्च मे वैश्वदेवश्च मे ध्रुवश्च मे वैश्वानरश्च मे ऐन्द्राग्नेश्च मे महावैश्वदेवश्च मे मरुत्वतीयाश्च मे निष्केवल्यश्च मे सावित्रश्च मे सारस्वतश्च मे पात्नीवितश्च मे हारियोजनश्च मे यज्ञेन कल्पन्ताम् ॥ २० ॥

इसका देवा ऋ०, स्वराट् अतिधृति छ०, अग्निं देवता है ।
 मंत्रार्थ- (च, मे, आग्नेयणः, च, मे, वैश्वदेवः) सुभै आग्नेयण
 और वैश्वदेव (च, मे, ध्रुवः, च, मे, वैश्वानरः) ध्रुव तथा
 वैश्वानर (च, मे, ऐन्द्राग्नेः, च, मे, महावैश्वदेवः) ऐन्द्राग्नि
 तथा महावैश्वदेव (च, मे, मरुत्वतीयाः, च, मे, निष्केवल्यः)
 मरुत्वतीय तथा निष्केवल्य (च, मे, सावित्रः, च, मे, सारस्वतः)
 सावित्र तथा सारस्वत (च, मे, पात्नीवितः, च, मे, हारियोजनः)
 पात्नीवित एवं हारियोजनग्रह (यज्ञेन, कल्पन्ताम्) यज्ञके द्वारा
 अनुकृततासे प्राप्त हों ॥ २० ॥

सुवदश्च मे चमसाश्च मे वायव्यानि च मे द्राणकलशश्च मे आवाणश्च मेऽधिपत्रणे च मे पूतभृच्च मे आधवनीयश्च मे वेदिश्च मे वर्हिश्च मेऽवभृच्च मे स्वगाकारश्च मे यज्ञेन कल्पन्ताम् ॥ २१ ॥

इसका देवा ऋ०, विराट्धृति छ०, अग्निदे० है । मंत्रार्थः (च, मे, सुवः, च, मे, चमसाः) मेरे अर्थ जुहू तथा चमस (च, मे, वायव्यानि, च, मे, द्राणकलशः) वायव्यपात्र एवं द्राणकलश (च, मे, आवाणः, च, मे, अधिपत्रणे) आवा एवं काष्ठफलक (च, मे, पूतभृत्, च, मे, आधवनीयः) सोमपात्र पूतभृत् तथा आधवनीय (च, मे, वेदिः, च, मे, वर्हिः) वेदी एवं कृशा (च, मे, अवभृत्, च, मे, स्वगाकारः, यज्ञेन, कल्पन्ताम्) अनुभृत्स्वगानि तथा शम्पवाक पात्र यज्ञके द्वारा प्राप्त हों ॥ २१ ॥

अग्निश्च मे घर्मश्च मेर्कश्च मे सूर्यश्च मे
प्राणश्च मे भ्रमश्च मे पृथिवी च मे दितिश्च
मेदितिश्च मे चौश्च मेहुलयः शक्वरयो दिशश्च
मे यज्ञेन कल्पन्ताम् ॥ २२ ॥

इसका देवा ऋ० मुरि० शक्व० छ०, अग्नि देव० है । मंत्रार्थि
(च, मे, अग्निः, च, मे, घर्मः) मुझ अग्निष्टोम और भ्रमर्घ
(च, मे, अर्कः, च, मे, सूर्यः) मुझ पुरोडाशका, यज्ञ और सूर्य
का चरु (च, मे, प्राणः, च, मे भ्रमः) मुझ प्राण और अन्न
भ्रमर्घ (च, मे, पृथिवी, च, मे, दितिः, च, मे, अदितिः) मुझ
पृथिवी दिति और अदिति देवता (च, मे, चौः, च, मे अहुलयः) मुझ
धुलोक और विराट् पुरुषते अवयव (च, मे, शक्वरयः, च, मे
दिशः, यज्ञेन, कल्पन्ताम्) मुझ शक्तिये और पूर्वादिशाओंकी
अनुकूलता इस यज्ञके फलसँ प्राप्त हो ॥ २२ ॥

व्रतश्च मे ऋतवश्च मे तपश्च मे सम्बत्सरश्च
मेऽहोरात्रे ऊर्ध्वीवे वृहद्रथन्तरे च मे यज्ञेन
कल्पन्ताम् ॥ २३ ॥

इसका देवा ऋ०, पंक्ति०, छ०, अग्नि देव० है । मंत्रार्थि—(च,
मे, व्रतं, च, मे, ऋतवः) मुझ नियम तथा ऋतुएँ (च, मे,
तपः, च, मे, सम्बत्सरः, च, मे, अहोरात्रे) मुझ तप, सम्बत्सर
तथा दिन रात (च, मे, ऊर्ध्वीव, च, मे, वृहद्रथन्तरे, यज्ञेन,
कल्पन्ताम्) मुझ जानु तथा वृहद्रथन्तर साम इस यज्ञके फलसँ
देवता दें ॥ २३ ॥

एकां च मे तिस्रश्च मे तिस्रश्च मे पञ्चं च मे
पञ्चं च मे सप्तं च मे सप्तं च मे नवं च मे नवं
च मे एकादशं च मे एकादशं च मे त्रयोदशं
च मे त्रयोदशं च मे पञ्चदशं च मे पञ्चदशं च
मे सप्तदशं च मे सप्तदशं च मे नवदशं च मे
नवदशं च मे एकविंशतिश्च मे एकविंशतिश्च

तिश्च मे त्रयोविंशतिश्च मे त्रयोविंशतिश्च
 मे पञ्चविंशतिश्च मे पञ्चविंशतिश्च मे
 सप्तविंशतिश्च मे सप्तविंशतिश्च मे नव-
 विंशतिश्च मे नवविंशतिश्च मे एकात्रि-
 ष्शतिश्च मे एकात्रिंशत्त्वं मे त्रयस्त्रिंशत्त्वं
 मे यज्ञेन कल्पन्ताम् ॥ २४ ॥

इसका देवा ऋ०, पूर्वाद्धिका संकृति तथा उत्तराद्धिका विराट्
 संकृति छंद, अग्नि देवता है । यहाँसे अयुग्मस्तोम होमके मंत्र
 हैं, जोकि-संब कामनाओंके दाता हैं । मंत्रार्थ—(च, मे, एका,
 च, मे, तिस्रः) मुझे एक और तीन (च, मे, तिस्रः, च, मे,
 पंच) मुझे तीन तथा पाँच (च, मे, पंच, च, मे, सप्त) पाँच तथा
 सात (च, मे, सप्त, च, मे, नव) सात तथा नौ (च, मे, नव,
 च, मे, एकादश) मुझे नौ और ग्यारह (च, मे, एकादश, च,
 मे, त्रयोदश) ग्यारह और तेरह (च, मे, त्रयोदश, च, मे, पंच
 दश) तेरह और पन्द्रह (च, मे, पञ्चदश, च, मे, सप्तदश) पं-
 द्रह और सत्रह (च, मे, सप्तदश, च, मे, नवदश) सत्रह तथा
 उन्नीस (च, मे, नवदश, च, मे, एकाविंशतिः) उन्नीस तथा इ-
 क्कीस (च, मे, एकाविंशतिः, च, मे, त्रयोविंशतिः) इक्कीस तथा
 तेईस (च, मे, त्रयोविंशतिः, च, मे, पञ्चविंशतिः) तेईस तथा
 पच्चीस (च, मे, पञ्चविंशतिः, च, मे, सप्तविंशतिः) पच्चीस तथा
 सत्ताईस (च, मे, सप्तविंशतिः, च, मे, नवविंशतिः) सत्ताईस तथा
 उनतीस (च, मे, नवविंशतिः, च, मे, एकात्रिंशत्) उनतीस तथा
 इकतीस (च, मे, एकात्रिंशत्, च, मे, त्रयस्त्रिंशत्, च, मे, त्रयस्त्रिं-
 शत्, यज्ञेन, कल्पन्ताम्) मुझे इकतीस, तैंसीस तथा फिर तैंसीस
 इन संख्याओंसे कहेजानेवाले संसारके सकल उत्तम पदार्थ मुझे
 इस यज्ञके फलसे देवता प्राप्त करवें ॥ २४ ॥

चतस्रश्च मेऽष्टौ च मेऽष्टौ च मे द्वादश च मे
 द्वादश च मे पौर्णश च मे पौर्णश च मे विंशति-

तिश्च मे विंशतिश्च मे चतुर्विंशतिश्च मे
 चतुर्विंशतिश्च मेऽष्टाविंशतिश्च मेऽष्टा-
 विंशतिश्च मे द्वात्रिंशच्च मे द्वात्रिंशच्च
 मे पट्त्रिंशच्च मे पट्त्रिंशच्च मे चत्वारि-
 ंशच्च मे चत्वारिंशच्च मे चतुश्चत्वारि-
 ंशच्च मे चतुश्चत्वारिंशच्च मेऽष्टाचत्वारि-
 ंशच्च मे यज्ञेन कल्पन्ताम् ॥ २५ ॥

इसका देवा ऋ०, उत्कृति छ०, अग्नि दे० है । मंत्रार्थ (च, मे, चत्वारः, च, मे, अष्टौ) मुझै चार तथा आठ (च, मे, अष्टौ, च, मे, द्वादश) आठ तथा बारह (च, मे, द्वादश, च, मे, षोडश) बारह तथा सोलह (च, मे, षोडश, च, मे, विंशतिः) सोलह तथा बीस (च, मे, विंशतिः, च, मे, चतुर्विंशतिः) बीस तथा चौबीस (च, मे, चतुर्विंशतिः, च, मे, अष्टाविंशतिः) चौबीस तथा अट्ठाईस (च, मे, अष्टाविंशतिः, च, मे, द्वात्रिंशत्) अट्ठाईस तथा बत्तीस (च, मे, द्वात्रिंशत्, च, मे, पट्त्रिंशत्) बत्तीस तथा छत्तीस (च, मे, पट्त्रिंशत्, च, मे, चत्वारिंशत्) छत्तीस तथा चालीस (च, मे, चत्वारिंशत्, च, मे, चतुश्चत्वारिंशत्) चालीस तथा चौवालीस (च, मे, चतुश्चत्वारिंशत्, च, मे, अष्टचत्वारिंशत्, च, मे, अष्टचत्वारिंशत्, यज्ञेन, कल्पन्ताम्) चौवालीस अठ्तालिस तथा फिर अठ्तालिस । इन सब संख्याओंसे कहेजानेवाले पदार्थ यज्ञके द्वारा देवना मुझै दें ॥ २५ ॥

ऽपविंश्च मे ऽप्वी चं मे दित्यवाद् चं मे दित्यौही
 चं मे पञ्चाविंश्च मे पञ्चावी चं मे त्रिवत्सश्च
 मे त्रिवत्सा चं मे तुर्यवाद् चं मे तुर्यौही चं मे
 यज्ञेन कल्पन्ताम् ॥ २६ ॥

इसका देवा ऋ०, ग्राह्णी वृहती छ०, अग्नि दे० है । मंत्रार्थ (च, मे, त्र्यविः, च, मे, त्र्यवी) मुझै देह वर्षका बल्लहा तथा देह वर्षकी बल्लिया (च, मे, दित्यवाद्, च, मे, दित्यौही) दो

वर्षका बछड़ा तथा दो वर्षकी बछिया (च, मे, पंचाभिः, च, मे
 पञ्चावी) ढाई वर्षका वृष तथा ढाई वर्षकी गौ (च, मं, त्रिवत्सः,
 च, मे, त्रिवत्सा) तीन वर्षका वृष तथा तीन वर्षकी गौ (च,
 मे, तुर्यवाट, च, मे, तुर्याही, यज्ञेन, कल्पन्ताम्) साढ़े तीन वर्ष
 का वृष तथा साढ़े तीन वर्षकी गौ यज्ञके फलसे देवता दें ॥ २६ ॥

पृष्ट्वाद् च मे पशूही च म उक्षा च मे वशा च
 म ऋषभश्च म वेइच मेऽनृवांश्च मे धेनुश्च मे
 यज्ञेन कल्पन्ताम् ॥ २७ ॥

इसका देवा ऋ०, नि० द्रा० उ० छ०, अग्नि दे० है । मंत्रार्थ
 (च, मे, पृष्ट्वाद्, च, मे पशूही) चार वर्षका वृष तथा चार वर्ष
 की गौ (च, मं, उक्षा, च, मे, वशा) सेचनेमें समर्थ वृष तथा
 वन्ध्या गौ (च, मे; ऋषभः, च, मे, वेइत्) तरुण वृष तथा
 गर्भघातिनी गौ (च, मं अनृवान्, च, मं, धेनुः, यज्ञेन, कल्प-
 न्ताम्) बोझा उठानेमें समर्थ वृष तथा नईव्याही हुई गौ यज्ञके
 फलसे देवता भुक्त दें अर्थात् मैं सब प्रकारके बैल तथा गौओंको
 पालनेवाला राजें ॥ २७ ॥

वाजाय स्वाहा प्रसवाय स्वाहापिजाय स्वाहा
 ऋतये स्वाहा घसवे स्वाहाहर्षतये स्वाहानहे
 मुग्धाय स्वाहा मुग्धाय चैनधिशिनाय स्वाहा
 धिनधिशिनं आन्त्यायनाय स्वाहान्त्याय भौव-
 नाय स्वाहा भुवन्स्पतये स्वाहाधिपतये स्वाहा
 पूजापतये स्वाहा इयन्ते राणिमन्त्राय युन्तासि
 यमंन ऊर्जे त्वा वृष्ट्यै त्वा पूजान्त्वान्त्वाधिपत्याया ॥ २८ ॥

इसका देवा ऋ०, आर्चीवृह० छ०, अग्नि दे० है । अब सकल
 कामनाप्रद नामग्रह होम कहते हैं । मंत्रार्थ (वाजाय, स्वाहा) अधिक
 अन्नउत्पादक चैत्रमासके निर्मित अष्टहोम हो (प्रसवाय, स्वाहा)
 वैशाखके मिमित्त अष्ट होम हो (अपिजाय, स्वाहा) जलक्रीडाने

रतिदायक ज्येष्ठके अर्घ्य श्रेष्ठ आहुति हो (क्रतवे, स्वाहा) याग-
 रूप आपाद के निमित्त० (वसेवे, स्वाहा) चातुर्मासकी यात्रा
 के निषेधक श्रावणके नि० (अहर्षतये, स्वाहा) तपाकारक भाद्र-
 मासके निमित्त० (मुग्धाय, अन्हे, स्वाहा) तुषारसे मोहकारक
 आश्विनके नि० (अमुग्धाय, वैशिशिनाय, स्वाहा) योद्धा घटने
 से विनाशी कार्तिकके निमित्त० अदिनेंशिनै, आन्त्यायनाय, स्वाहा)
 विनाशरहित अम्तमें स्थित विष्णुरूप मार्गशीर्षिके० (अन्त्याय,
 भौवनाय, स्वाहा) स्वरूपमें होनेवाले लोकोंके पोषक पौषमास
 के नि० (भुवनस्य, पतये, स्वाहा) सम्पूर्ण प्राणियोंके पालक
 माघमास के निमित्त० (अधिपतये, स्वाहा) वर्षान्तके कारण
 अधिक पालक फाल्गुनके नि० (मजापतये, स्वाहा) बारहों
 मासके अधिष्ठात्री देवता, प्रजापतिके निमित्त यह आहुति दी जाती
 है । हे प्रजापति अग्ने ! (इयम्, ते, राष्ट्र, यमना, मित्राय यन्ता,
 असि) यह यज्ञस्थान तुम्हारा राज्य है अग्निष्टोमादि कर्मोंमें
 सबके नियन्ता तुम सत्कारूप इस यजमानके प्रेरक हो (ऊर्ने,
 त्वा, वृष्यै, त्वा, मजानाम्, आधिपत्याय, त्वा) अधिक अन्नके
 निमित्त, तुमको अभिषिक्त करताहूँ, वर्षाके निमित्त तुमको अभि-
 षिक्त करताहूँ और मजाओपर प्रभुता पानेके निमित्त तुमको
 अभिषिक्त करताहूँ ॥ २८ ॥

आयुर्व्यज्ञेन कल्पतामृगो यज्ञेन कल्पताञ्च
 क्षुर्व्यज्ञेन कल्पताथ ओत्रं यज्ञेन कल्पतां वाग्
 यज्ञेन कल्पताममनो यज्ञेन कल्पतामात्मा यज्ञेन
 कल्पतामृह्मा यज्ञेन कल्पताञ्ज्योतिर्व्यज्ञेन
 कल्पताथ स्वर्व्यज्ञेन कल्पताम्पुष्टं यज्ञेन कल्पतां
 यज्ञो यज्ञेन कल्पताम् । स्तोमश्च यजुश्च ऋक्
 च सामं च बृहद्यं रथन्तुश्च । स्वर्देवा अग-
 न्मामृता अमृतं पूजागतेः पूजा अष्टम वेद
 स्वाहा ॥ २९ ॥

इसका देवा ऋ०, विराट् विकृति छ०, अग्नि दे० है। मंत्रार्थ कल्पहोम (यज्ञेन, आयुः, कल्पताम्) यज्ञके फलसे आयु बढ़े (यज्ञेन, माणः, कल्पताम्) यज्ञफलसे माण बलिष्ठ हो (यज्ञेन, चक्षुः, कल्पताम्) यज्ञसे नेत्रोंकी ज्योति बढ़े (यज्ञेन, श्रोत्रं, कल्पताम्) यज्ञफलसे श्रवणशक्ति उत्तम हो (यज्ञेन वाक् कल्पताम्) यज्ञफलसे वाणी उत्तमहो (यज्ञेन, मनः, कल्पताम्) यज्ञफलसे मन स्वच्छ हो (यज्ञेन आत्मा कल्प०) यज्ञफलसे आत्मा बली हो (यज्ञेन, ब्रह्म, कल्प०) यज्ञफलसे वेद प्रसन्न हो (यज्ञेन, ज्योतिः, कल्प०) यज्ञफलसे परमात्मज्योति प्राप्त हो (यज्ञेन, स्वः, कल्पताम्) यज्ञफलसे स्वर्ग प्राप्त हो (यज्ञेन, पृष्टं, कल्पताम्) यज्ञके प्रभावसे सर्वोपरि सुख प्राप्त हो (यज्ञेन, यज्ञः कल्पताम्) यज्ञके प्रभावसे महायज्ञ करनेकी सामर्थ्य प्राप्त हो (स्तोमः, यजुः, ऋक्, च, साम, च, वृद्धय, च, रथन्तरम्, च, देवाः स्वः, अगन्म) वृद्धय पञ्चदश आदि स्तोम, यजुर्मंत्र, ऋचा और गीतमन्त्र और वृद्धयसाम और रथन्तर सामभी यज्ञके फल से प्रसन्न हों, हम इस यज्ञके फलसे देवभाव पाकर स्वर्गकी प्राप्तहुए (अमृताः अभूम) अमरहुए (प्रजापतेः, प्रजाः अभूम) हिरण्यगर्भकी प्यारी सन्तानहुए (वेद, स्वाहा) इन सब देवताओंको यह आहुति दी गई, भलीप्रकार गृहीत हो यहाँ तक वसोर्धारा मंत्र हुए ॥ २९ ॥

वाजस्ये नु प्रसवे मानरम्पद्मीमदिष्टिहाम व-
चसा करामहे । यस्यामिदं विश्वम्भुवन्माविधेश
तस्यान्तो देवस्संवितां धर्मसाविपत् ॥ ३० ॥

अब वाजपेय सम्बन्धी सात मंत्र कहते हैं, इस मन्त्रकी व्याख्या अध्याय ९ मं० ५ में होगी ॥ ३० ॥

विश्वे अथ प्रकृतो विश्वं कुंती विश्वे भवन्तुग्नयः
समिद्धाः । विश्वे नो देवा अवसा संभन्तु वि-

इयंमस्तु द्रविणं वाजो अस्मे ॥ ३१ ॥

इसका लुशोधानाक ऋ०, त्रि० छ०, विश्वेदेवा देवता है ।
मंत्रार्थ—(अथ, विश्वे, मरुतः, आगमन्तु) आज इस यज्ञमें संपूर्ण मरुत् देवता आवें (विश्वे, ऊनी, विश्वेदेवाः, नः, अवसा, विश्वे, अग्नयः, समिदाः, भवन्तु) सम्पूर्ण रुद्र आदित्य आदि गण देवता इस निमित्तसे आवें, सम्पूर्ण देवता हमारे हविक्तो ग्रहण करनेके निमित्त आवें, गार्हपत्य आदि सब अग्नि पदीप्त हों (विश्वं, द्रविणं, वाजः, अस्तु) गौ, भूमि, सुवर्ण आदि सम्पूर्ण धन और अन्न हमको प्राप्त हों ॥ ३१ ॥

वाजो नःसप्त प्रदिशश्चतस्रो वा परावतः । वाजो
नो विश्वेदेवेर्द्विसाताग्रिहावन्तु ॥ ३२ ॥

इसका लुशोधानाक ऋ०, अनु०, छ० अन्न देवता है । मंत्रार्थ (वाजः, सप्त, प्रदिशः, वा, परावतः, चतस्रः, इह, धनस तौ, वाजः, नः, विश्वैः, देवैः, अस्तु) हमारा अन्न सात दिशा अर्थात् भू आदि तीन लोक और पूर्वादि चारदिशा तथा दूर स्थित महः आदि चार लोकोंको पूर्ण करे, इस लोकमें धनाविभागका समय आनेपर अन्न हमारी सम्पूर्ण देवताओं सहित रक्षा करे ॥ ३२ ॥

वाजो नोः अथ प्रसुवाति दानं वाजो देवान्
ऋतुभिः कल्पयाति वाजो हि मा सर्ववीरज्ज-
जान् विश्वा आशा वाजपतिर्जयेयम् ॥ ३३ ॥

इसका लुशो० ऋ०, त्रि० छ०, अन्न दे० है । मंत्रार्थ (अथ, वाजः, नः, दानं, प्रसुवाति) आज अन्नका अधिष्ठात्री देवता हमको दानके निमित्त प्रेरणा करे (वाजः, ऋतुभिः, देवान्, कल्पयाति) अन्न ऋतुओंके साथ देवताओंको यथास्थानपर कल्पना करे (वाजः, हि, मा, सर्ववीरम्, जजान) अन्नहो सुभक्तो पुत्र पीनादियुक्त करे (वाजपतिः, सर्वाः, आशाः, जयेयम्) अन्नका स्वामी हुआ मैं सब दिशाओंको वशीभूत करने में समर्थ होऊँ ३३

वाजः पुरस्ताद्गत मद्ध्यतो नो वाजो देवान्
हविषां वर्द्धयाति । वाजो हि मा सर्ववीरश्चकार
सर्वा आशा वाजपतिर्भवेयम् ॥ ३४ ॥

इसका लुशो० त्रि० छ०, अन्न दे० है । मंत्रार्थ—(वाजः, नः,
पुरस्तात्, उत, मध्यतः) अन्न हमारे आगे और मध्यमें स्थित
है (वाजः, हविषा, देवान्, वर्द्धयाति) अन्न हविसे देवताओंको
वृद्ध करताहै (वाजः, हि, मा, सर्ववीरं, चकार) अन्नने ही शुभ
को पुत्र पौत्रादिसे युक्त किया (वाजपतिः, विश्वाः, आशाः,
भवेयम्) अन्नका स्वामी हुआ मैं सब दिशाओंको जीतने में
समर्थ होऊँ ॥ ३४ ॥

सम्नां सृजामि पयसा पृथिव्यास्सम्नां सृजाम्य

द्भिरोपधीभिः । सोऽहं वाजं सनेयमग्ने ॥ ३५ ॥

इसका लुशो० ऋ०, त्रि० छ०, अग्नि दे० है । मंत्रार्थ (अग्ने
पृथिव्याः, पयसा, मा, संसृजामि) हे अग्ने पृथिवीके रससे अपने
को संयुक्त करताहूँ (अद्भिः, औपधीभिः, मा, सग्) जलों और
औपधियोंसे अपनेको संयुक्त करताहूँ (सः, अहं, वाजं, सनेयम्)
वह मैं अन्नकी उपासना करताहूँ अथवा हे अग्ने ! जो मैं औप-
धिजलसे हवनद्वारा तुमको संयुक्त करताहूँ वह मैं अन्नका उपा-
सक हूँ ॥ ३५ ॥

पथः पृथिव्यास्पय औपधीषु पयो दिव्यन्तरिक्षे

पयोधाः । पयस्वतीः प्रदिशास्सन्तु मर्त्याम् ॥ ३६ ॥

इसका लुशो० ऋ०, विराट् छ०, अग्नि दे० है । मंत्रार्थ
(पृथिव्यां, पयः, धाः) हे अग्ने ! पृथ्वीपर हमारे देनेके अर्ध रस
को धारण करो (औपधीषु, पयः) औपधियोंमें रस डालो (दिवि,
पयः) धुलोकमें रसको स्थापन करो (मर्त्यां, प्रदिशाः, पयस्वतीः,
सन्तु) आहुति देनेसे मेरे अर्ध दिशा विदिशाएँ रसयुक्त हों ॥ ३६ ॥

देवस्पं त्वा सवितुः प्रमवेरिवनोर्वाहुभ्याम् ।

पूषणो हस्ताभ्यां सरस्वत्यै वाचो यन्तुर्धन्त्रेणाग्नेः

साम्राज्येनाभिषिञ्चामि ॥ १७ ॥

इसका लुशो० ऋ०, आर्षीपंक्ति छ०, लिंगोक्त दे० है । यजमान के अभिषेकका मंत्र मंत्रार्थ—(सवितुः, देवस्य, प्रसवे, अश्विनोः, वाहुभ्यां, पूष्णः, इत्याभ्यां, सरस्वत्यै, वाचः, यन्तुः, यन्त्रेण, अग्नेः साम्राज्येन, त्वा, अभिषिञ्चामि) सवितादेवकी आज्ञामें वर्तमान में अश्विनीकुमारकी वाहु और पूषा देवताके हाथोंसे, तथा सरस्वतीकी वाणीसे प्रजापतिके नियमवश अग्निके चक्रवर्त्तीपनेसे हे यजमान तुम्हारा अभिषेक करता हूँ ॥ १७ ॥

ऋतासाहृतर्धामाग्निर्गन्धर्वस्तस्योपधयोऽप्सर-
रसो मुदो नाम । स न इदम्व्रह्म क्षत्रम्पातु तस्मै
स्वाहावाद् ताभ्यः स्वाहा ॥ १८ ॥

इसमें २ मंत्र हैं । दोनों का लुशो० ऋ०, विराट् उ० छ०, देवता १ म का गन्धर्व और २ यका अप्सरस है । होमके मंत्र मंत्रार्थ—(ऋतापाद्, ऋतधामा, गन्धर्वः, अग्निः, सः, नः, इदं ब्रह्म, क्षत्रं, पातु) सत्यवक्ता अविनाशी धामवाला पृथ्वीका धारक गन्धर्व नामक अग्नि, हमारी इस ब्राह्मणजाति और क्षत्रियजाति की रक्षार्थ (तस्मै, स्वाहावाद्) उसको यह आहुति देतेहैं भली-प्रकार गृहीत हो (मुदः, नाम, ओपधयः, तस्य, अप्सरसः, ताभ्यः, स्वाहा) प्राणियोंको प्रतन्न करनेवालों मुद नामक ओपधियें गन्धर्वनामा अग्नि की अप्सरा अर्थात् भोगने योग्यहैं वह भी हमारी रक्षार्थ उन ओपधियोंको यह आहुति देताहूँ, भलीप्रकार गृहीत हो ॥ १८ ॥

सुध्विहो विश्वसामासूर्यो गन्धर्वस्तस्य मरीच-
योऽप्सरसं आयुवो नाम । स न इदम्व्रह्म क्षत्रम्पा-
तु तस्मै स्वाहावाद् ताभ्यः स्वाहा ॥ १९ ॥

इसमें १ मंत्र है । ऋ० दोनोंका लुशो०, छ० १ का आर्षी वृहती २ यका साम्नी वृ०, देवता १ म का गन्धर्व २ य का अप्स-
रस है । मंत्रार्थ—(सहितः, विश्वसामा, सूर्यः, गन्धर्वः) दिन

रागको मिलानेवाला और जिसकी सब सामंजस स्तुति करते हैं
ऐसा सूर्यरूप गन्धर्व है (सः, नः, ब्रह्म, क्षत्रं, पातु) वह हमारी
ब्राह्मणजाति और क्षत्रियजातिकी रक्षाकरै, (तस्मै, स्वाहावाट्)
उसको आहुति देते हैं भलीप्रकार ग्रहण कीजाय (आयुवः, नाम,
मरीचयः, तस्य, अप्सरसः, ताभ्यः, स्वाहा) परस्पर मिलनेके
स्वभाववाली आयुव नामक किरणें उसकी अप्सरा हैं वह हमारी
रक्षाकरै उनको आहुति देते हैं ॥ ३९ ॥

सुपुष्पः सूर्यपराश्मिश्चन्द्रमां गन्धर्वस्तस्य नक्ष-

त्राप्यप्सासो भेकुरयो नाम । स न हृदम्ब्रह्म

क्षत्रम्पातु तस्मै स्वाहावाट् ताभ्यः स्वाहा ॥ ४० ॥

इसमें २ मंत्र हैं । ऋ० दोनोंका लुशो०, छं १० म का प्राजा-
पत्या त्रि० २ य का आर्ची गा०, दे० क्रमसे गन्धर्व और अप्स-
रस है । मंत्रार्थ—(सुपुष्पः, सूर्यपराश्मिः, चन्द्रमां, गन्धर्वः,) यज्ञ
के द्वारा सुख देनेवाली सूर्यकी किरणोंसे किरणोंवाला चन्द्रमा
नामक भूमिका धारक होनेसे गन्धर्व है (सः, नः, इदं, ब्रह्म क्षत्रं,
पातु) वह हमारी इस ब्राह्मणजाति और क्षत्रिय जातिकी रक्षा
करै (तस्मै, स्वाहावाट्) उसको आहुति दी जाती है (भेकुरयः,
नाम, नक्षत्राणि, तस्य, अप्सरसः, ताभ्यः, स्वाहा) कान्ति करने
से भेकुरिनामक नक्षत्र उसकी अप्सरा हैं वह हमारी रक्षा करै
उनकी पीतिके निमित्त आहुति देते हैं ॥ ४० ॥

इषिरो विश्वव्यचा घातो गन्धर्वस्तस्यापो अ-

प्सरस ऊज्जो नाम । स न हृदम्ब्रह्मक्षत्रम्पातु तस्मै

स्वाहावाट् ताभ्यः स्वाहा ॥ ४१ ॥

इसमें २ मंत्र हैं । ऋ० दोनोंका लुशो०, छं० क्रमसे आर्ची
वृह० आर्ची गा० है, दे० क्रमसे गन्धर्व तथा अप्सरस है । मंत्र
(इषिरः, विश्वव्यचाः, वायुः, गन्धर्वः) शीघ्रगामी सर्वव्याप्त
भूमिको धारण करनेसे गन्धर्व नामक वायु है (सः, नः, इदं,
ब्रह्म, क्षत्रं, पातु) वह हमारी इस ब्राह्मणजाति और क्षत्रियजाति

की रक्षा करै (तस्मै, स्वाहावाद्) उसको आहुति दीजाती है (ऊर्गः, नाम्, आपः, तस्य, अप्सरसः ताभ्यः, स्वाहा) प्राणियों को जीवित देनेवाले रस नामक जल उसकी अप्सरा हैं वह हमारी रक्षा करै, उनके निमित्त आहुति देते हैं ॥ ४१ ॥

भुज्युः सुपर्णो यज्ञो गन्धर्वस्तस्य दक्षिणा अप्सरसं
स्तावा नाम । स न इदमग्रहं क्षत्रम्पातु तस्मै

स्वाहावाद् ताभ्यः स्वाहा ॥ ४२ ॥

इसमें २ मंत्र हैं । दोनोंका लुशो०, छ० क्रमसे आर्षी गा० साम्नी अनु०, देवता पूर्ववत् है । मंत्रार्थ—(भुज्युः, सुपर्णः, यज्ञः, गन्धर्वः) प्राणियों का पालक स्वर्ग में गमन करनेवाला पृथ्वी को धारण करने से गन्धर्व नामक यज्ञ है (सः, नः इदं, अग्र, क्षत्रं, पातु) वह हमारी इस ब्राह्मणजाति तथा क्षत्रियजाति की रक्षा करै (तस्मै, स्वाहावाद्) उसको आहुति दीजाती है (स्तावा, दक्षिणाः, तस्य, अप्सरसः) यज्ञ और यजमान की स्तुति करनेवाली स्तावा नामक दक्षिणा उस यज्ञ की अप्सरा हैं वह हमारी रक्षा करै (ताभ्यः, स्वाहा) उनको आहुति देते हैं ॥ ४२ ॥

प्रजापतिर्विश्वकर्मा मनो गन्धर्वस्तस्य ऋक्
सामान्यंप्सरस एष्टयो नाम । स न इदमग्रहं

क्षत्रम्पातु तस्मै स्वाहावाद् ताभ्यः स्वाहा ॥ ४३ ॥

इसमें २ मंत्र हैं । आ० दोनोंका लुशो०, छन्द क्रमसे साम्नी जग० आर्षी गाय० है, देवता पूर्ववत् । मंत्रार्थ—(प्रजापतिः, विश्वकर्मा, मनः, गन्धर्वः) प्रजापालक सब कृष्ण करनेवाला मनरूप गन्धर्व है (सः, नः, इदं, अग्र, क्षत्रं, पातु) वह हमारी इस ब्राह्मणजाति और क्षत्रियजाति की रक्षा करै (तस्मै, स्वाहा वाद्) उसको आहुति देते हैं (एष्टयो, नाम, ऋक्सामानि, तस्य, अप्सरसः) अभीष्ट देने से एष्टि नामवाली ऋक् और साम उसकी अप्सरा हैं वह हमारी रक्षा करै, उनको आहुति देने हैं ॥ ४३ ॥

स नो भुवनस्य पते प्रजापते यस्य त उपरि
गृहा यस्य वेद । अस्मै ब्रह्मणेऽस्मै क्षत्राय महि
शर्मं यच्छ स्वाहा ॥ ४४ ॥

इसका लुशो० ऋ०, मस्तारपंक्ति छ०, प्रजापति देवता है ।
मंत्रार्थ—(भुवनस्य, पते, प्रजापते, यस्य, ते, उपरि, गृहाः, वा,
यस्य, इह, सः, नः, अस्मै, ब्रह्मणे, अस्मै, क्षत्राय, महि, शर्म,
यच्छ, स्वाहा) हे संसार का पालन करनेवाले प्रजापते ! जिन
आपके स्वर्गलोक में घर हैं, अथवा जिन आपके इस लोक में घर
हैं ऐसे आप हमारी इस ब्राह्मणजाति और इस क्षत्रियजाति के
निमित्त महान् सुख को दीजिये, इस दीहुई आहुति को
स्वीकार कीजिये ॥ ४४ ॥

समुद्रोऽसि नभस्वात्तार्द्रदानुः शम्भूर्मयोभूर्-
भि मां वाहि स्वाहां मारुतोऽसि मरुतांगणः
शम्भूर्मयोभूर्भि मांवाहि स्वाहाऽवस्थूर्मि
दुवस्वाक्शम्भूर्मयोभूर्भि मां वाहि स्वाहा ॥ ४५ ॥

इसमें ३ मं० हैं । ऋ० सबका लुशो०, छ० १ मका नि०
गाप० २ । ३. य का आर्षो ७०, दे० सबका वायु है । मंत्रार्थ--
(समुद्रः, नभस्वान्, आर्द्रदानुः, शम्भूः, मयोभूः, असि) हे
वायो तुम अगाधजलसे आर्द्र आकाशचारी वर्षासे पृथ्वीको भीला
करनेवाले इसलोक को सुख देनेवाले तथा परलोकका सुख देने-
वाले हो (मा, अभि, वाहि) मेरे सन्मुख होकर चलो वा मेरे
अनुकूल रहो (मारुतः, मरुतां, गणः, असि) हे वायो ! तुम
अन्तरिक्षचारी और भुकजपोति आदि मरुद्गण हो (शम्भूः,
मयोभूः, मा, आभि, वाहि, स्वाहा) तुम इसलोक और परलोकों
का सुखदेते हो मेरे सन्मुख अपना वहनरूपप्रकाश करो इस आहुति
को स्वीकार करो (अवस्थूः, असि) हे वायो जगत्के रक्षक हो
(दुवस्वाक्, शम्भूः, मयोभूः, मा, अभि, वाहि, स्वाहा) अन्न
के उत्पादक इसलोक तथा परलोक का सुख देनेवाले हो मेरे

सन्मुख अपना बहनरूप प्रकाश करा इस आहुति को स्वीकार करो ॥ ४५ ॥

यास्मै ऽअग्ने सूर्ये रुचो पिचमातन्वन्ति गरिम
भिः । ताभिर्नो अद्य सर्वाभी रुचे जनाप नस्कृधि ४६
इसकी व्याख्या अ० १३ मं० २२ में होगई ॥ ४६ ॥

या वां देवाः सूर्ये रुचो गोध्वध्वेषु धा रुचः ।
इन्द्राग्नी ताभः सर्वाभी रुचन्तो धत्त बृहस्पते ४७
इसकी व्याख्या अ० १३ मं० २३ में होगई ॥ ४७ ॥

रुचन्तो धेहि ब्राह्मणेषु रुचथ राजसु नस्कृधि ।

रुचं विश्वेषु शूद्रेषु मयि धेहि रुचा रुचम् ॥ ४८ ॥

इसका लुगो० ऋ०, अनु० छ०, अग्नि दे० है। घी की आहुति देय मंत्रार्थ—(नः, ब्राह्मणेषु, रुचं, धेहि) हे अग्ने ! हमारे ब्राह्मणों में कान्तिको स्थापन करो (नः, राजसु, रुचं, कृधि) हमारे क्षत्रियोंमें कान्तिको (विश्वेषु, शूद्रेषु, रुचम्) वैश्य और शूद्रों में कान्तिको स्थापन करो (मयि, रुचा, रुचं, धेहि) मुझमें कान्तिके साथ अविच्छिन्न कान्तिको स्थापन करो ॥ ४८ ॥

तत्त्वां यामि ब्रह्मणा वन्दमानस्तदाशास्ते यजं

मानो हविर्भिः । अहं वन्दमानो वरुणेह वोद्ध्यु-

रुशथ्समान आयुः प्रमोषीः ॥ ४९ ॥

इसका श्रुतः शेष ऋ०, त्रि०, छ०, वरुण दे० है मंत्रार्थ (वरुण, यजमानः, हविर्भिः, तत्, आशास्ते) हे स्तुति क्रियेहुए वरुण ! यजमान हवियोंके द्वारा जोकुछ याचना करताहै (तत्, ब्रह्मणा, वन्दमानः, त्वा, यामि) वह वेदके द्वारा स्तुति करताहुआ ध्यापको शरण जाकर याचना करताहूँ (उरुशंस, इह, अहं वन्दमानः, वोधि) हे परम भाराध्यदेव ! यहां क्रोध न करोहुए तुम मेरी प्रार्थनाको जानो (नः, आयुः, मा, प्रमोषीः) मेरी आयुको मत नष्ट होनेदो ॥ ४९ ॥

स्वर्ण घर्मः स्वाहा स्वर्णार्कः स्वाहा स्वर्ण
शुक्रः स्वाहा स्वर्ण ज्योतिः स्वाहा स्वर्ण सूर्यः
स्वाहा ॥ ५० ॥

इसमें १ मं० है । ऋषि सबका शुनःशेष, छन्द १ । ३ । ४ । ५
का दै० त्रि०, २ का दै० पंक्ति, देवता सबका अग्नि है । मंत्रार्थ
(स्वः, न, घर्मः, स्वाहा) दिन की समान आदित्य देवता की
मीति के निमित्त यह आहुति देते हैं, भलीप्रकार गृहीत हो (स्वः,
न, अर्कः, स्वाहा) सूर्य की समान अग्नि को आदित्य में स्थापन
करता हूँ, उसकी मीति के निमित्त दीहुई आहुति गृहीत हो
(स्वः, न, शुक्रः, स्वाहा) दिन की समान शुक्रवर्ण आदित्य
के निमित्त दीहुई आहुति भलीप्रकार गृहीत हों (स्वः, न, ज्योतिः,
स्वाहा) स्वर्गदाता अग्नि को अग्नि में स्थापन करता हूँ उसकी
मीति के अर्थ दीहुई आहुति भलीप्रकार गृहीत हो (स्वः, न,
सूर्यः, स्वाहा) सम्पूर्ण देवताओं के रूप की समान सूर्य को उत्तम
करता हूँ अर्थात् भ्रान्ति से अनेकत्व की प्रतीति होती है वास्तव
में एक सूर्य ही नाना रूप है ॥ ५० ॥

अग्निं युनाज्म शश्वसा घृतेन दिव्यं सुपर्ण
वयसा वृहन्तम् । तेन वयङ्गमेम व्रजस्य विष्टपथं
स्वो रुहाण अधि नाकमुत्तमम् ॥ ५१ ॥

इसका शुनःशेष ऋषि त्रि० छ०, अग्नि दे० है । मंत्रार्थ (दिव्यं,
सुपर्ण, वयसा, वृहन्तं, अग्नि, शश्वसा, घृतेन, तेन, व्रजस्य विष्टपं,
वयं, गमेम) स्वर्गमें वर्तमान सुन्दर गतिवाले धुपंसे बड़े हुए अग्नि
को वक्र और घृतेसे सयुक्त करता हूँ, इससे हम आदित्यके लोक-
को जायें (आधि, स्वः, रुहाणाः, उत्तमं, नाकम्) उसके ऊपर
स्वर्गमें जाते हुए उत्तम दुःखरहित लोकमें गमन करें ॥ ५१ ॥

इमौ ते पक्ष्वावजरी पत्रत्रिणौ याभ्यां रक्षाः
स्यपृथ्व्यस्यग्ने । ताभ्यां पतेम नृकृतान्मु
यत्र ऋषयो जग्मुः प्रथमजाः पुंजाः ॥ ५२ ॥

इसका शुनःशेष ऋ०, विराट् प्रा० अ० छ०, अग्नि दे० है ।
 मंत्रार्थ—(अग्ने, ते, इमौ, पत्नौ, अजरौ, पतत्रिणौ) हे अग्ने !
 तुम्हारे यह दोनों दहिने बाएँ पर जरारहित चढ़नेवाले हैं
 (याभ्यां, रक्षांसि, अपहंसि) जिनसे तुम राज्ञसों को नष्ट करते
 हो (ताभ्यां, उ, सुकृतां, लोकं, पतम) उनसे ही हम पुण्यात्माओं
 के लोक को गमन करें (यत्र, प्रथमजाः, पुराणाः, ऋषयः,
 जग्मुः) जहाँ प्रथम उत्पन्न पुरातन ऋषि गये हैं ॥ ५२ ॥

इन्द्रुर्दक्षः ऽग्नेन ऋताया हिरण्यपक्षः शकुनो
 भुरण्युः । महान्मधस्थे ध्रुव आनिपत्तो नमस्ते
 अस्तु मां हिंसीः ॥ ५३ ॥

इसका शुनः० ऋ०, आर्षीप० छ०, अग्नि दे० है । मंत्रार्थ
 (इन्द्रुः, दक्षः, ऽग्नेनः, ऋताया, हिरण्यपक्षः, शकुनः, भुरण्युः, महान्,
 ध्रुवः, मधस्थे, आनिपत्तः, ते, नमः, अस्तु, मा, मां हिंसीः) हे
 अग्ने ! तुम चन्द्रमाकी समान आनन्दके दाता, उत्साहयुक्त आकाश
 में बाजकी समान वेगसे गमन करनेवाले, सत्यसम्पन्न सुवर्णमय
 पक्षवाले पक्षीकी समान फैले पक्षवाले जाठराग्निरूपसे पोषक
 बड़े प्रभाववाले स्थिर ब्रह्माके स्थानमें स्थित, आपको दारदार
 नमस्कारदां, मुझे किसी प्रकारकी पीढ़ान देकर मेरी रक्षा करना ३

दिवो मूर्धासि पृथिव्यानाभिर्होषामोपधीनाम् ।
 विश्वायुः शर्ममप्रथा नमं स्पथे ॥ ५४ ॥

इसका शुनः० अ०, परोक्षिणक छ०, अग्नि दे० है । मंत्रार्थ
 (दिवः, मूर्धा, पृथिव्याः, नाभिः, अपां, ओपधीनां, ऊर्क, विश्वायुः,
 शर्म, सपथाः, असि) हे अग्ने तुम स्वर्गके मस्तकरूप हो, पृथिवीके
 नाभिरूप हो अर्थात् सब तुमसे ही जीवित रहते हैं, तुम जल तथा
 औपधियोंके सार हो, विश्वभरके जीवन हो, सबके शरणदाता
 तथा सब मार्गोंमें वर्तमान हो (पथे, नमः) स्वर्गके मार्गरूप
 आपको प्रणाम है ॥ ५४ ॥

विश्वस्य मूर्द्धन्यधितिष्ठसि श्रितः समुद्रे ते हृद-
यमस्वायुरपो दत्तोदधिभिन्त द्विषस्पृज्जन्वा-
दन्तरिक्षात् पृथिव्यास्ततो नो वृष्ट्याव ॥ ५५ ॥

इसका शुनः० ऋ०, महापंक्ति जगती छ०, अग्नि दे० है ।
मंत्रार्थ—(श्रितः. विश्वस्य, मूर्द्धन्य, अधितिष्ठसि) हे सूर्यरूप अग्ने
तुम सुपुम्नाम व्यासङ्ग सवके शिरसे स्थित हो (ते, हृदयं, समुद्रे)
तुम्हारा हृदय समुद्रमें है (आयुः, अम्भु) जीषन जनोंमें है क्योंकि
जल से वृत्त पुष्ट होकर उनसे अग्नि प्रकट होती है (दिवः, पृज्-
न्वात्, अन्तरिक्षात्, पृथिव्याः, ततः, वृष्ट्या, नः, अप) दुलोक
से, मेघ से, अन्तरिक्ष से, भूमि से जहाँ जल हो तहाँ से लाकर
वर्षा के द्वारा हमारी रक्षा करो (उदधि, भिन्त) मेघ को विदीर्ण
करो (अपः, दत्त) जलोंको दो ॥ ५५ ॥

इष्टो यज्ञो भृगुभिराशीर्हो वसुभिः । तस्य न
इष्टस्य पूतस्य द्रविण्णदागमेः ॥ ५६ ॥

इसका गालव ऋ०, उष्णिक् छ०, यज्ञ देवता है । मंत्रार्थ—
(द्रविण, नः, इष्टस्य, पूतस्य, तस्य, इह, आगमेः) हे धन !
हमारे मित्र और मेरी इस यज्ञमान के यहाँ आओ (आशीर्दाः,
यज्ञः, भृगुभिः, वसुभिः, इष्टः) इच्छित वस्तु देनेवाला यज्ञ नाहण
और देवताओं के द्वारा पूर्ण किया गया ॥ ५६ ॥

इष्टो अग्निराहुतः पिपर्तु न इष्टश्च हविः । स्व-
मेदन्देवेभ्यो नमः ॥ ५७ ॥

इसका गालव ऋ०, गायत्री छ०, अग्नि देवता है । मंत्रार्थ—
(इष्टः, अग्निः, हविः, आहुतः, नः, इष्टे, पिपर्तु) यज्ञ के द्वारा
पूजित अग्नि हवि के द्वारा तृप्त किया हुआ हमारे मनोरथ को पूर्ण
करे (इदं, नमः, देवेभ्यः, स्वगाः) यह हवि सब देवताओं के
निमित्त हो, स्वयं पहुँचनेवाला है ॥ ५७ ॥

यदाकृतात्ममसुसोऽदृदो वा मनसो वा सम्भृत-
वचक्षुपो वा । तदनु मेतं सुकृतासु लोकं यश्च

ऋषयो जग्मुः प्रथमजाः पुराणाः ॥ ५८ ॥

इसका विश्वकर्म ऋ०, जगती छ०, अग्नि दे० है । मंत्रार्थ (तव, अनु. सृकृतां, लोकं, उ, मेत) हे ऋत्विजों ! तम उस मजापतिके कियेहुए कर्मको सम्पादन करके पुण्यात्माओंके लोकको अवश्य प्राप्त होओ (यत् संभृतं, आकूणात्, या, हृदः, वा, मनसः, वा, चक्षुषः, समसृजोत्) जो कर्म पूर्ण सामग्री से युक्त है, तथा जो मजापतिके अभिप्राय वा हृदयसे वा मनसे, अथवा चक्षु आदि इन्द्रियोंसे ग्रहणाने रचा है, उसके करनेसे पवित्र लोकको गमन करो (यत्र, प्रथमजाः, पुराणाः, ऋषयः, जग्मुः) जिसलोकमें प्रथम उत्पन्न पुरातन ऋषि गये हैं ॥ ५८ ॥

एतच्छ्रुत् सधस्थ परिं ते ददामि यमावहाच्छ्रेष्ठधि-
ज्जातवेदाः । अन्वागन्ता यज्ञपतिर्व्योमन् तच्छ्रु-
त् स्म जानीत परमे व्योमन् ॥ ५९ ॥

इसका विश्वकर्म ऋ०, त्रि०, छ० अग्नि दे० है । मंत्रार्थ (सधस्थ, जातवेदाः, यं, शेषधि, आवहात्) हे देवताओंके स्थान भूतस्वर्ग ! सर्वज्ञ अग्निने सुखके खजानेरूप यज्ञकेफलको जिसे सौंपा है (एतं, ते, परिददामि) इस यज्ञमानको तुम्हारे अर्पण करता हूँ (यज्ञपतिः, यः, अन्वागन्ता) हे देवताओं ! यज्ञके समाप्त होनेपर यह यज्ञमान तुम्हारे पास आवैगा (अत्र, परमे, व्योमन्, तं, जानीत, स्म) इस उत्तम परम विस्तारवाले स्वर्गमें प्राप्तहुए उस यज्ञमानको तुम जानो, अर्थात् स्वर्गमें पहुँचने पर सत्कार करो ॥ ५९ ॥

एतज्जानाथ परमे व्योमन् देवाः सधस्था विद-
रूपमस्य । यदागच्छत्पृथिविर्देवपानैरिष्टापूर्त्त-
ः श्रुत्वाथाविरसै ॥ ६० ॥

इसका विश्वकर्म ऋ०, त्रि०, छ०, अग्नि देवता है । मंत्रार्थ— (परमे, व्योमन्, सधस्थाः, देवाः, एतं, जानाथ) उत्तम स्थान स्वर्ग में रहनेवाले हे देवताओं ! इस यज्ञमानको जानो (अस्य,

रूपं, विद्) इसके रूप को जानो (यदा, देवयानैः, पयिभिः, आगच्छात्) जब देवयान भागों से आगमन करे (इष्टापूर्ते, अस्मै, आविः, कृषवाय) तब श्रांत स्मार्त्त कर्म के फल इस यजमान के निमित्त प्रकाशित करो ॥ ६० ॥

उद्वुद्धयस्वाग्ने प्रतिजागृहि त्वमिष्टापूर्ते सध-
स्तृजेथामयधं । अस्मिन्सुपस्थ अद्भ्युत्तरस्मि-
न्विश्वे देवा यजमानश्च सीदत ॥ ६१ ॥

इसकी व्याख्या अ० १९ कण्डिका ५४ में होगई ॥ ६१ ॥

येन चर्हसि सहस्रं येनाग्ने सर्ववेदसम् । तेनेमं
यज्ञानां नय स्वर्देवेषु गन्तवे ॥ ६२ ॥

इसकी व्याख्या अ० १९ कण्डिका ५५ में होगई ॥ ६२ ॥

मस्तरेणं परिधिनां सुचा वेद्यां च चर्हिषां ।

अचेमं यज्ञानां नय स्वर्देवेषु गन्तवे ॥ ६३ ॥

इसका विश्वकर्मा ऋ०, अनु० छ०, अग्नि दे० है । मंत्रार्थ-
(नः, मस्तरेण, परिधिना, सुचा, वेद्या, चर्हिषा, अचा, इमं, यज्ञं,
गन्तवे, स्वः, नय) हे अग्ने हमारे सुक्का आधार दर्भ का घुहा,
वाहुमात्र के तीन काठ, जुहु आदि, वेदी, कुशा, ऋचा आदि से
सम्पन्न इस यज्ञ को देवताओं में भाग करने के निमित्त स्वर्ग
को लेजाओ ॥ ६३ ॥

यद्दत्तं यत्पर्वादानं यत्पूर्त्तं याञ्च दक्षिणाः ।

तद्दग्निर्वैश्वकर्म्मणः स्वर्देवेषु नो दधत् ॥ ६४ ॥

इसका विश्व० ऋ०, नि० अनु० छ०, अग्नि दे० है ।
मंत्रार्थ-(वैश्वकर्म्मणः, अग्निः, नः, तत्, स्वः, देवेषु, दधत्)
विश्वकर्माका अग्नि हमारे उस दानको स्वर्गलोकमें देवताओंमें
स्थापन करे (यत्, दत्तं, यत्, परादानं, यत्, पूर्त्तं, च, याः, दक्षिणाः)
जो कि -जामाता आदि को दिया है, जो परोपकारके निमित्त
दुःखितोंको दिया है, जो स्मृतिके अनुसार कुपोत्सर्जन आदि
किया है और जो यज्ञकी दक्षिणा हैं ॥ ६४ ॥

यत्र धारा अनपेता मधोर्घृतस्य च याः ।
 तदग्निर्वैश्वकर्म्मणः स्वदेवेषु नो दधत् ॥ ६५ ॥

इसका वि० ऋ०, नि० अनु० छ०, अग्निदे० है। मंत्रार्थ-
 (वैश्वकर्म्मणः, अग्निः, तत्, स्वः, देवेषु, नः, दधत्) विश्व-
 कर्मासम्बन्धी अग्नि तहां स्वर्गमें देवताओंमें हमको स्थापन करै
 (यत्र, मधोः, घृतस्य, च, याः, धाराः, अनपेताः) जहां शब्द
 की घृतकी और दूध ही आदि की धाराएं क्षीण न होती हुई
 स्थित हैं ॥ ६५ ॥

अग्निरस्मि जन्मना जातवेदा घृतम्मे चक्षुरमृत-
 तंमऽआसन् । अर्कस्त्रिधातू रजसो विमानो-
 ऽजस्रो घृमो हविरस्मि नाम ॥ ६६ ॥

इसका देवश्रवा देववात ऋ०, मि० छ०, अग्नि देवता है।
 मंत्रार्थ-(जातवेदाः, अर्कः, त्रिधातुः, रजसः, विमानः, अजस्रः,
 अग्निः, अजन्मा, अस्मि) सब सृष्टिका स्वामी, अर्चनीय यज्ञ,
 त्रिदेवस्वरूप, जल का निर्माता अविनाशी अग्नि उत्पात्तिसे ही मैं
 हूँ (मे, चक्षुः, घृतं) मेरी आँखें घृत हैं घृत होमनेवाले को देखता
 हूँ (मे, आस्य, अमृतम्) मेरे मुख में हविरूप अमृत है (घर्मः,
 नाम, हविः, अस्मि) मेघरूप और नाम से पुरोडाशादिक
 भी मैं हूँ ॥ ६६ ॥

ऋचोः नामास्मि यजूंषि नामास्मि सामानि
 नामास्मि । ये ऽअग्नयः पाञ्चजन्या अस्याम्पृ-
 थिव्यमधि तेषामसि त्वमुत्तमः प्र नो ज्जीवातवे
 सुव ॥ ६७ ॥

इसमें २ मंत्र हैं। दोनों का देवश्रवा देववात ऋ०, छन्द क्रम
 से ऋची जगती और अनुष्टुप् है, देवता क्रमसे आत्मा और
 अग्नि है। मंत्रार्थ-(ऋचः, नाम, अस्मि) ऋग्वेद नामवाला हूँ
 (यजूंषि नाम) यजुर्वेद नामक अग्नि हूँ (सामानि, नाम, अस्मि)
 सामवेद नामक मैं हूँ (अस्यां, पृथिव्यां, अधि, ये, पाञ्चजन्याः,

अग्नयः, तेषां, त्वं, उरामः, असि) इस पृथिवी पर जो मनुष्यों के हितकारी अग्नि हैं, हे यज्ञाग्ने तुम उनमें श्रेष्ठ हो (नः, जीवा-
तवे, प्रभुव) हमारे चिरजीवनके निमित्त आज्ञा दो ॥ ६७ ॥

वार्त्रहत्यायु शर्वसे पृतनापाहाय च । इन्द्र त्वा
वर्त्तयामसि ॥ ६८ ॥

इसका विश्वामित्र ऋ०, नि० गा० छ० इन्द्र देवता है इसका
पाठ करै । मंत्रार्थ—(इन्द्र, वार्त्रहत्याय, च, पृतनापाहाय, शर्वसे,
त्वा, आवर्त्तयामसि) हे इन्द्र ! वृत्रासुरके मारनेवाले, शत्रुसेना
का तिरस्कार करनेमें समर्थ, बलदर्शनके निमित्त तुम्हारा चार-
वार आवाहन करते हैं ॥ ६८ ॥

सहदानुम्पुरुहूतक्षिपन्तमहस्तमिन्द्र सम्पिण्ड-
णारुम् । अभिवृत्रं वर्द्धमानुम्पियारुम्पादमिन्द्र
नवसां जघन्य ॥ ६९ ॥

इसका विश्वामित्र ऋ०, आर्षी त्रि० इन्द्र, इन्द्र दे० है ।
(पुरुहूत, इन्द्र, क्षिपन्तं, कुणारुं, सहदानुं, महस्तं, सम्पिण्ड)
अनेकोंबार भक्तोंसे आवाहन किये हुए हे इन्द्र निकट बसनेवाले,
दुर्वचन कहनेवाले शत्रुको हाथोंसे राहिन करके खूण करो (इन्द्र,
वर्द्धमाने, पियारुं, वृत्रं, अपादं, अभिजघन्य) हे इन्द्र ! वृद्धि
को प्राप्त होते देवताओंको मारनेवाले वृत्रासुर वा पापको गति
हीन करके मारो ॥ ६९ ॥

विनं इन्द्रमृधो जहि नीचा यच्छ पृतन्यतः ।

यो अस्मान् अभिदासत्यधरङ्गमया तमः ॥ ७० ॥

इसकी व्याख्या अ० ८ मं० ४४ में हुई ॥ ७० ॥

सृगो न भीमः कुचरो गिरिष्ठाः परावत आजं-

गन्थापरस्याः । सृकथं सथंशायं पविमिन्द्र ।

तिग्मं विशन्नून्ता हि विमृधो नुदस्व ॥ ७१ ॥

इसका जय ऋ०, त्रि० छं० इन्द्र देवता है । मंत्रार्थ— (इन्द्र,
भीमः, कुचरः, गिरिष्ठाः, सृगः, न, पास्याः, परावतः, आजघन्य)

हे इंद्र ! भयानक दीखनेवाले डरावनी चालचाले पर्वतकी गुफामें
सोनेवाले सिंहकी समान अग्निद्वर स्थानोंसे आओ (सृकं, तिरमं
पति, संशय, शून्य, विताडिह) शत्रुके शरीरमें प्रवेश करनेवाले
तक्षिण सत्साहमरे वज्रको पैना करके शत्रुओंको विशेषरूपसे ता-
ड़ना करो (मृधः, नुदस्व) संग्रामोंको विशेष प्रेरणा करो वा
दूर करो ॥ ७१ ॥

वैश्वानरो न ऊनय आ प्रयातु पगावतः अग्निर्नः
सुष्टु नीरुप ॥ ७२ ॥

इसका जय ऋ० गायत्री छ०, वैश्वानर देवता है । मंत्रार्थ-
(वैश्वानरः, अग्निः, नः, सुष्टुतीः, उप, नः, ऊनये, परावतः
मयातु) सब माणियोंका हितकारी अग्नि देवता हमारी सुन्दर
स्तुतियोंको सुननेके निमित्त और हमारी रक्षा करनेकी दूर
देशसे आवै ॥ ७२ ॥

पृष्टो दिवि पृष्टो अग्निः पृथिव्याम्पृष्टो विश्वा
ओपधीराभिवेश । वैश्वानरः सहसा पृष्टो अ-
ग्निस्स नो दिवा स रिपस्पातु नक्तम् ॥ ७३ ॥

इसका कुत्स ऋ०, त्रि० छ०, वैश्वानर देवता है । मंत्रार्थ-
(वैश्वानरः, अग्निः, दिवि, पृष्टः) सब प्राणियोंका हितकारी
अग्नि देवता शुलोकमें आदित्यरूपसे पूजागया अर्थात् य' आदि-
त्यरूप क्या है, इस प्रकार सुमुखुओंने मर्शन करके विचार किया
(पृथिव्यां, पृष्टः) अन्तरिक्षमें जलके अमिल्लापियोंने बूझाकि
जो विजलीरूपसे मकाश करता है यह कौन है ! (विश्वाः, औपधीः,
आभिवेश) जो सकल औपधोंमें प्रवेश करगया (सः, पृष्टः)
वह बूझागया कि-जीवनके कारणरूप ताप पाक प्रकाश आदि-
से प्रजाओंका उपकार करनेवाला यह कौन है (सहसा, पृष्टः)
जो बलपूर्वक अध्वर्युसे मयःहुआ मनुष्योंसे बूझागया कि-यह
कौन है जो अरणी काठमें से निकाला जाता है (सः, दिवा, नक्तम्,
नः, रिपः, पातु) वह अग्नि दिन रात बधवा कण्ठसे हमारी रक्षा

करे अथवा सर्वत्र अग्नि मूर्ध विद्यत् रूप परमात्मा है वह सदा हमारी रक्षा करे ॥ ७३ ॥

अश्याम तद्धाममग्ने तद्योती अश्याम रयिध
रयिवस्सुवीरम् । अश्याम वाजंमभि वाजयन्तो
श्यामं द्युम्नमजराजरन्ते ॥ ७४ ॥

इसका भरद्वाज ऋ०, त्रि० छ०, अग्नि देवता है । मंत्रार्थ (अग्ने, तव, ऊती, तं, कामं, अश्याम) हे अग्ने ! तुम्हारी रक्षा से हम उस आभलापाको प्राप्त हों (रयिधः, सुवीरं, रयि, अश्याम) हे धनवन् आपकी कृपासे हम सुन्दर पुत्र और श्रेष्ठधनको पावें (वाजयन्ता, वाजं, अभि, अश्याम) अग्नि का पूजन करते हुए हम तुम्हारी कृपासे अन्नको सब ओर से पावें (अजर, ते, अजरं, द्युम्न, अश्याम) हे जरारहित ! तुम्हारे जीर्ण न होनेवाले यश को पावें अर्थात् सदा यशस्वी हों ॥ ७४ ॥

यद्यन्ते अद्य ररिमाहिकाममुत्तानहस्ता नमसो-
पसद्य । यजिष्ठेन मनसा यक्षि देवानस्त्रेधना
मन्मना विप्रो अग्ने ॥ ७५ ॥

इसका उत्कील ऋ०, त्रि० छ०, अग्नि दे० है । मं०—(अग्ने, उत्तानहस्ताः, यद्यं, नमसा, उपसद्य, अद्य, यजिष्ठेन अस्त्रेधना, मन्मना, मनसा, कामं हविः, ते, ररिमा) हे अग्ने ! दानके निमित्त खुले हुए हैं हाथ जिनके ऐसे हमने नमस्कारपूर्वक निकट जाकर आज यज्ञ करनेमें तदार अग्न्यगनि एकाग्र देवताओंकी महिमा और आत्माके स्वरूपको जाननेवाले रु।धान मनसे इच्छित हविको आपके अर्पणदिया (विप्रः, देवान्, यक्षि) हे अग्ने ! बुद्धिमान् तुम देवताओंको वृत्त करो ॥ ७५ ॥

धामच्छट्ग्निरिन्द्रो बृह्मा देवो बृहस्पतिः ।

सचेतसो विश्वे देवा यज्ञम्प्रावन्तु नः शुभे ॥ ७६ ॥

इसका उत्कील ऋ०, धानु० छ०, विश्वेदेवा दे० है । मंत्रार्थ (धामच्छत्, सः, देवः, अग्निः, इन्द्रः, ब्रह्मा, बृहस्पतिः, सचेतमः,

विश्वेदेवाः, नः, यज्ञं, शुभे, प्रावन्तु) लोकोंकी न्यूनताको पूर्ण करनेवाले, रीतोंको भरनेवाले वा परमधाममें विराजमान, दिव्य गुणधारी, अग्नि, देवराज इन्द्र, चतुर्मुख ब्रह्मा, देवगुरु बृहस्पति तथा परम बुद्धिमान् विश्वेदेवा वा सम्पूर्ण देवता हमारे यज्ञको इष्टस्थान स्वर्गमें स्थापन करें ॥ ७६ ॥

त्वं यंचिष्ट दाशुषो नृः पाहि शृणुधी गिरः ।

रक्षां तोफमुत्तमना ॥ ७७ ॥

इस मंत्रकी व्याख्या अ० १३ मं० १२ में होगई है, जिसका सरल भाव यह है कि—हे नित्यतरुण अग्नि देव तुम हमारी स्तुति प्रार्थनाके वचनोंको सुनो यजमानके वंश और सम्बन्धियों की बिना याचनाके ही रक्षा करो ॥ ७७ ॥

इति श्री यजुर्वेदान्तर्गत माध्यन्दिनीय शाखाका मापात्रवाद सहित
अष्टादश अध्याय समाप्त.

अथ एकोनविंशोऽध्यायः ।

॥ हरिः ओं ॥ स्वाद्दीन्त्वां स्वादुनां तीव्रान्ती-
त्रेणामृतांममृतेन मधुमतीम्मधुमता सृजामि
सथं सोमैः । सोमोऽश्विभ्यां पच्यस्व सर-
स्वत्यै पच्यस्वेन्द्राय सुत्राग्नें पच्यस्व ॥ १ ॥

अब तीन अध्यायोंमें सौत्रामणि यज्ञके मंत्र कहेजायेंगे, इस यज्ञको धनसमृद्धि, पशुवृद्धि और ब्रिनेहूप राज्यको फिर चाहने-वाले करते हैं, सोमरस बनानेके मंत्र । मंत्रार्थ—(स्वाद्वीं, तीव्रां, अमृतां, मधुमतीं, त्वा, स्वादुना, तीव्रेण, अमृतेन, मधुमता, सो-नेन, संसृजामि) हे अन्नरस ! अतिस्वादु तीव्र अमृतकी समान मधुर और गुणकारी मीठे रससे भरेहूप तुझको, स्वादु तीव्र अमृतसमान मधुररस भरे सोमके साथ मिनाताहूँ (सोमः, असि) हे सोमिमैले अन्नरस तुम सोम हो (अश्विभ्यां, पच्यस्व) दोनों अश्विनीकुमारोंके निमित्त पको (सरस्वत्यै, पच्यस्व) सर-

स्वतीके निमित्त पाचित होओ (सुत्राग्ने, इन्द्राय, पच्यस्व)
रक्षा करनेवाले इन्द्रके निमित्त पाचित होओ ॥ १ ॥

परीतो पिञ्चता सुतथे सोमो य वंत्तमथे
हविः । दधन्वापो नर्या अप्सवन्तरासुपाव
सोममद्रिभिः ॥ २ ॥

इसका भरद्वाज ऋ०, दृशती छ०, सोम दे० है । मंत्रार्थ—(यः, सोमः, हविः, वा, यः, नर्यः, दधन्) हे ऋत्विजो ! जो सोम श्रेष्ठ हवि है और जो सोम मनुष्योंका हितकारी होताहुआ यजमान को धारण करताहै (अप्सु, अन्तः, सोमं, अद्रिभिः, आसुपाव) जलोमें बर्धमान जिस सोमको पत्थरोंसे अश्वर्षुने अभिपुत्र किया है (सुतं, इतः, परिपिञ्चत) उस अभिपुत्र सोमको इसपौके दूध से सींचो अर्थात् देवताओंके श्रेष्ठ हविमें गौ का दूध मिलाओ रे

वायोः पूतः पवित्रेण प्रत्यर्कसोमो अतिद्रुतः ।

इन्द्रस्य युज्यस्सखा । वायोः पूतः पवित्रेण प्रा-

र्कसोमो अतिद्रुतः । इन्द्रस्य युज्यः सखा ॥ ३ ॥

इसमें २ मं० हैं । दोनोंका आभूति ऋ०, गायत्री छ०, सोम दे० है । मंत्रार्थ—(प्रत्यर्क, अतिद्रुतः, सोमः, वायोः, पवित्रेण पूतः) अधोमुख शीघ्रतासे निकला हुआ सोम वायु देवताके पवित्रसे शुद्ध हुआ (इन्द्रस्य, युज्यः, सखा) इन्द्रका योग्य सखा है अर्थात् हे सोम तुम शीघ्र इस पात्रमें प्रवेश करसकते हो वायु देवताके अनुग्रहसे तुम पवित्रके द्वारा पवित्र होतेहो, इन्द्रके योग्य प्यारे सखा हो (प्राहू, अतिद्रुतः, सोमः, वायोः, पवित्रेण, पूतः, सोमः, इन्द्रस्य, युज्यः, सखा) पूर्वमुख निकला हुआ सोम वायुके पवित्रसे पवित्र हुआ जोकि—इन्द्रका योग्य सखाहै अर्थात् हे सोम तुम शीघ्र ही इस पात्रमें से निकलसकते हो, वायुदेवताके अनुग्रहसे तुम पवित्र के द्वारा पवित्र होते हो ॥ ३ ॥

पुनाति ते परिक्षुतथे सोमथे सूर्यस्य दुहिता ।

वारिण शश्वता तना ॥ ४ ॥

के भोज्य पदार्थों को सम्पादन करो (ये, वहिपः, नमः, उक्ति, यजन्ति) जो कुशासनपर वैडेहूप हविरूप अन्न को लेकर मंत्रो-
 खारण करते हुए होमते हैं (उपयामगृहीतः, असि) हे सोम !
 तुम उपयामात्र में गृहीत हो (आश्विभर्षाः, त्वा) अश्विनीकु-
 मारों की पीति के निमित्त तुमको ग्रहण करता हूँ (एपः, ते,
 योनिः) यह तुम्हारा स्थान है (तेजसे, त्वा) तेज के निमित्त
 तुमको यहाँ सम्पादन करता हूँ (सरस्वत्यै, त्वा) हे पयोग्रह !
 तुमको सरस्वती देवता की पीति के निमित्त ग्रहण करता हूँ
 भीर्षाय, त्वा) हे दूसरे पयोग्रह ! वीरता पाने के निमित्त तुमको
 यहाँ स्थापन करता हूँ (सुशाम्णे, इन्द्राय, त्वा) हे तुर्गाय पयो-
 ग्रह ! रक्षक इन्द्र देवता की पीति के निमित्त तुमको ग्रहण करता
 हूँ (वनाय, त्वा) यह तुम्हारा स्थान है वज्र के निमित्त तुमको
 स्थापन करता हूँ ॥ ६ ॥

नाना हि वांन्वेवहितुध सदस्कृतम्मा सधसं-
 क्षाधाम्परमे व्योमन् । सुरा त्वमासि शुष्मिणी
 सोम एष मा मा हिंस्रीः स्वां योनिमा
 विशन्ती ॥ ७ ॥

इसका आभूति ऋ०, जगती छ०, सुरासोम दे० है । अभि-
 मंत्रण करे । मंत्रार्थ - (हि, वां, देवहित, नाना, सदः, कृतं) हे
 सुरासोम क्योंकि तुम दीनोके, देवताओंके हितकारी पृथक्स्थान
 किये गए हैं (परमे, व्योमन्, मा, संसृताधाम्) इसकारण आ-
 काशकी समान विशाल हवनस्थानमें संयोग मतकरो, क्योंकि
 आहवनीयमें दूध और दक्षिणाग्निमें सुरा होमीजाती है अतः अलग
 रहे (त्वं, शुष्मिणी, सुरा, आसि) हे सुरारस तुम बलवान् देव
 ताओंके स्वीकार करने योग्य रसयुक्त हो (एपः, सोमः, स्वां
 योनिं, प्रविशन्ती, सोमं, मा, हिंस्रीः) यह सोमशान्तदे इसकारण
 अपने स्थान दक्षिणाग्निमें प्रवेश करते हुए सोमको पीड़ा मत दो ७

उपयामगृहीतोऽस्यामिध्वनन्तेजः । सरस्वतं विप्यं

मैन्द्रम् बलम् । उप ते योनिर्मादाय त्वानन्दाय
त्वा महसे त्वा ॥ ८ ॥

इसका आधृति ऋ०, वि० आ० प० छ०, सोमदे० है ।
मंत्रार्थ—(उपयामगृहीतः, अस्ति) उपयामपात्र में गृहीत हो (तेजः,
आश्विनम्) तेजःस्वरूप तुमको अश्विनीकुमारकी प्रीतिके निमित्त
ग्रहण करता हूँ (एषः, ते, योनिः) हे मधम सुराग्रह ! यह
तुम्हारा स्थान है (मोदाय, त्वा) आनन्दके निमित्त तुमको यहाँ
स्थापन करता हूँ (वीर्यं, सारस्वतं) हे द्वितीय सुराग्रह ! वीर्यस्वरूप
तुमको सरस्वती देवताकी प्रीति के निमित्त उपयामपात्रमें ग्रहण
करता हूँ (आनन्दाय, त्वा,) हे द्वितीय सुपाग्रह आनन्दकी प्राप्ति
के निमित्त तुमको इस स्थान में स्थापन करता हूँ (बलं, ऐन्द्रम्)
हे तृतीयसुराग्रह बलकी प्राप्तिके निमित्त इन्द्रदेवताकी प्रसन्नता
के अर्थ उपयामपात्रमें तुमको ग्रहण करता हूँ (महसे, त्वा)
हे तृतीयसुराग्रह ! महस्वको पानेकी कामनासे तुमको यहाँ
स्थापन करता हूँ ॥ ८ ॥

तेजोऽसि तेजो मयि धेहि वीर्यमासि वीर्यं मायि
धेहि बलमसि बलममयि धेह्योजोऽस्योजो मयि
धेहि मन्युरासि मन्युं मायि धेहि सहोऽसि सहो
मायि धेहि ॥ ९ ॥

इसमें ९ मंत्र हैं । सबका आधृति ऋ०, है, छन्द १ । १ का
आसुरी जगती, २ । १ । १ का आसुरीत्रि०, ४ का प्राजा० अनु०
और देवता १ । २ । ३ । ५ । ६ का सुरासोम तथा ४ का सुरा
हैं । मंत्रार्थ—(तेजः, अस्ति, तेजः, मयि, धेहि) हे दूध ! तेजको
बढ़ानेवाले हो, मुझमें तेजको धारण करो (वीर्यं, अस्ति, वीर्यं,
मयि, धेहि) तुम वीरताहो मुझमें वीरताकी स्थापन करो (बलं,
असि, बलं, मयि, धेहि) तुमबलहो मुझमें बलको धारणकरो
(ओजः, अस्ति, मयि, ओजः, धेहि) हे सुरास ! तुम कान्ति हो
मुझमें कान्तिको स्थापन करो (मन्युः, अस्ति, मन्युं मयि, धेहि) तुम

अंकार हो मुझमें सद्भावके अंकारको धारण करो (सहः, अग्नि, सहः, मयि, धेहि) तुमबल हो मुझमें बल स्थापन करो ॥ ९ ॥

या व्याघ्रं विपूचिकोभौ घृकञ्च रक्षति श्वेनस्प-
त्त्रिणथे सिथेहथेसमम्यात्वथेहसः ॥ १० ॥

इसका हैमवर्चि ऋ०, अनु०, विपूचिकां दे० है । नाभिसे ऊपर नीचे इसको पढ़कर अध्वर्यु और प्रतिगस्थाता यजमानको श्वेनपिच्छसे पवित्र करे । मंत्रार्थ—(या, विपूचिका; व्याघ्रं, च, घृकं, उभौ, रक्षति) जो सर्वत्र फ़ूँननेवाला उदररोग व्याघ्र और भेड़ियोंके समूहकी रक्षा करता है (श्वेनं, पतात्त्रिणं, सिहम्) श्वेन पत्नी और सिंहकी रक्षा करता है (सा, इमं, अहसा, पातु) वृह इस यजमानकी पापरूप व्याधिसे रक्षा करे अर्थात् सिंह भेड़िये आदिकी विपूचिका रोग नहीं होता है, तैसेही हमारे इस यजमानको भी न हो ॥ १० ॥

यदापिपेप मातरंस्पुत्रा प्रमुदिता धयन् । एतत्
दग्नेऽनृणो भवाम्पहतौ पितरौ मया । सम्बृचं
स्थ सम्मांभद्रेणं पंक्त विपृचंस्थ विमां पाप्मनां
पृक्त ॥ ११ ॥

इसमें १ मं० है । सबका हैमवर्चि ऋ०, १ का वृहती २ । ३ का मि० छन्द है । देवता १ का अग्नि, २ का पयोग्रह, ३ का सुराग्रह है । १ से अध्वर्यु यजमान को अग्नि दिखावै, मंत्रार्थ—(प्रमुदितः, धयन्, अहं, यत्, मातरं, आपिपेप, अग्ने, तत्, एतत्, अनृणः, भवामि) अति प्रसन्नता से स्तन पीतेहुए पुत्ररूप में जो माता को चरणों से ताड़ित किया है अग्ने ! वह मैं यह तुम्हारी साक्षी में तीनों ऋणों से मुक्त होता हूँ (मया, पितरौ, अहतौ) मुझ से माता पिता पीड़ित नहीं हुए अर्थात् जो पुत्र मृत्युपरकार नहीं करसकता वही मा चाप का हस्ता है । पयोग्रह को स्पर्श करे (सम्बृचः, स्थ, मा, भद्रेण, सम्पृक्तम्) हे पयोग्रह संयोजक हो इसकारण मुझको कल्याण से संयुक्त करो । सुरा

शत्रु को स्पर्श करे—(निपृनः, स्प, मा, पापना, निपृहृक्त) हे
हराग्रद ! तुम वियोजक हो इसकारण मुझको पाप से अलग करो ॥

देवा यज्ञमंतन्वत भेषजन्निपजाश्विना । वाचा

सरस्वती भिषगिन्द्रायिन्द्रियाणि दधतः ॥ १२ ॥

यहाँ से २० कण्डिका ब्राह्मणका है—संस्काररदिग रसको पीनेसे
इन्द्रके वन, वीर्य, गधामताको अमुरोंने हारलिया तब जो रात दिन
त्यज्य मद्य को सुरा कहकर पीते हैं, उनके पणित होनेमें तो कुञ्ज
भी मन्देह नहीं है अतएव श्रुति कहती है—(देवाः, भेषजं, यज्ञं,
अन्वत) देवताओंने इन्द्रके भौषधरूप सौत्रामणि यज्ञको विस्तृत
किया (भिषजा, अश्विना, सास्वती, वाचा, वीर्याणि, दधतः)
वैद्य अश्विनीकुमार और प्रथीरूप सरस्वती वाणीके द्वारा इन्द्रमें
सामर्थ्य-धारण कीगई ॥ १२ ॥

दक्षायै रूपं शप्याणि प्रायणीयस्य तो-
क्यस्य । क्रयस्य रूपं सोमस्य लाजाः सोमांशु-
शान्तो मधु ॥ १३ ॥

(शप्याणि, दीक्षायै, तोकमानि, प्रायणीयस्य, रूपं, लाजाः,
क्रयस्य, सोमस्य, रूपं, मधु, सोमांशवः) नए उत्पन्न हुए घीदि
इस यज्ञकी दीक्षाके निमित्त आवश्यक होते हैं, गवीन प्रकट जो
प्रायणीय इष्टकारूप जानने खिले मोलालिये-सोमका रूप है, मीठी
खीले सोमके खण्ड हैं ॥ १३ ॥

आनिध्यरूपमासंरम्महावीरस्य नग्नहुः । रूपमुप-
सदांमेनात्तिष्ठो रात्रीः सुरा सुता ॥ १४ ॥

(मामरं, आनिध्यरूपम्) आतिथ्यके-निमित्त घीदि श्यामाक
लाजा आदिमिनाहुआ चूर्ण है (नग्नहुः, महावीरस्य) २६
वस्तुओंका मिनकर बनाहुआ नग्नहु पदार्थ महावीरस्यानी है
(तिस्रः, रात्रीः, आस्तुता, सुरा, उासदां, रूपम्) नीगरात अभि-
पण किया हुआ सुगरस उपमद नामक इष्टिका रूप है ॥ १४ ॥

सोमस्य रूपं क्रीतस्य परिशुत् परिपिच्यते ।

अश्विभ्यान्पुत्रंभेषु जामिन्द्राग्निन्द्रथ सरस्वत्या १५

(इन्द्राय, ऐन्द्रं, भेषजं, सरस्वत्या, अश्विभ्यां, दुग्धं, परि-
 द्युत्, परिपिच्यते) इन्द्रके निमित्त इन्द्रमन्वन्वी औपध, सरस्वती
 और अश्विनीकुमारोंके लिये दहादुग्धा दूध अभिषु। मदीपधि
 रस सुराके संग गीत दिन सोबाजावाहै वह (क्रीतस्य, सोमस्य,
 रूपम्) क्रयकियेदुष् सोमका रूप है अर्थात् सोमके साथ परिपेक
 करनेको अश्विनीकुमार, सरस्वती और इन्द्रके निमित्त भिक्ष २
 गकारके रूपकी अवश्यकताहै ॥ १५ ॥

आसन्दी रूपथ राजासन्धै वेधे कुमारी सुरा-
 धानी ।। अन्तर उत्तरवेद्या रूपकारोत्तरो
 भिषक् ॥ १६ ॥

(आसन्दी, राजासन्धै) यजमानके अभिषेक की चौकी सोम
 की मचिकाका रूप है (सुराधानी, कुम्भी, वेधै) सुरा रखनेकी
 कलशी सोमकी वेदीका रूप है (अन्तरः, उत्तरवेद्याः, रूपम्)
 दोनों वेदियोंका मध्यभाग उत्तरवेदीका रूप है (कारोत्तरः, भिषक्)
 सुरापावनकी चननी इन्द्रकी औपांघौ ॥ १६ ॥

वेद्या वेदिः समाप्यते वर्हिषां वर्हिरिन्द्रियम् ।

यूपेन यूपं आप्यते प्रणीतो अग्निगृणिना । १७ ।

(वेद्या, वेदिः, समाप्यते) वर्तमान वेदीके द्वारा सोमकी
 वेदी भलेपकार प्राप्त होताहै (वर्हिषा, वर्हिः, इन्द्रियम्) वर्त-
 मान कुशासे सोम सम्बन्धी कुशाप्राप्त हातीहै तथा बल प्राप्त होताहै
 (यूपेन, यूपः, आप्यते) वर्तमान यूपसे सोम सम्बन्धी यूप प्राप्त
 होताहै (अग्निना, प्रणीतः, अग्निः) वर्तमान अग्निसे प्रणीत
 नामक अग्नि प्राप्त होताहै ॥ १७ ॥

द्विर्दानं पटुश्विनारुनीध्रं यत्सरस्वतो । इन्द्रा-

येन्द्रथ सदैस्कृतम्पत्नीशालुह्वार्षपत्यः ॥ १८ ॥

(यत्, अश्विना, द्विर्दानं) जो अश्विनी कुमार हैं वह द्वि-
 धान है (यत्, सरस्वती, आग्नीधम्) जो सरस्वतीहै वह आग्नीध्र

है (इन्द्राय, ऐन्द्रं, सदः, पत्नीशालं, कृतं, गार्हपत्यः) इन्द्रके निमिरा जो इन्द्रकी देवताशाला स्थान पत्नीशाल नामक रवा-
गया वह गार्हपत्य है ॥ १८ ॥

प्रैषेभिः प्रैषानाम्रोत्याप्रीभिर्गुप्रीर्णस्य । मया-
जेभिर्नुयाजान्धपट्कारेभिराहुतीः ॥ १९ ॥

(प्रैषभिः, प्रैषान्, आम्रोति) भेजनेरूप प्रैषनामक यज्ञकर्मों

से प्रैषों को पाता है (आप्रीभिः, यज्ञस्य, आप्रीः) प्रयाज याज्यों

से यज्ञ की प्रसन्न करनेवाली क्रियारूप प्रयाजों को पाता है

(प्रयाजेभिः अनुयाजान्) प्रयाजों से उत्तम यज्ञकर्मरूप प्रयाजों

को, अनुयाजों से अनुकूल यज्ञ पदार्थरूप अनुयाजों को पाता है

(वपट्कारेभिः, आहुतीः) वपट्कारों से वपट्कारों को और

आहुतियों से आहुतियों को पाता है ॥ १९ ॥

पशुभिः पशूनाम्रोति पुरोडाशैर्द्विधाध्व्या ।

छन्दोभिः सामधेनीर्याज्याभिर्ध्वपट्कारान् ॥ २० ॥

(पशुभिः, पशून्, आम्रोति) पशुओं से पशुओं को पाता है

(पुरोडाशैः, द्विधाध्वे, आम्रोति) पुरोडाश नामक दवियों से

दवियों को प्राप्त होता है (छन्दोभिः, सामधेनीः) छन्दों से

छन्दों को, सामधेनियों से सामधेनियों को प्राप्त होता है (या-

ज्याभिः, वपट्कारान्) याज्यों से याज्यों को वपट्कारों से वपट्-

कारों को प्राप्त होता है ॥ २० ॥

धानां कर्मभः सक्तवः परीवापः पयो दधि ।

सोमस्य रूपं हविषं आमिक्षा वाजिनमधु ॥ २१ ॥

(धानाः, कर्मभः, सक्तवः, परीवापः, पयः, दधि, सोमस्य,

रूपम्) भुनेद्रूप धान्य खिले, उदमन्थ, सत्तू, हविष पंक्ति, दूध,

दही सोम का रूप है (आमिक्षा, मधु, वाजिनं, हविषः) गरम

दूध में दही डालनेपर होनेवाला गाढ़ाभागरूप आमिक्षा, शहत

और अन्न हविका रूप है अर्थात् सोमकी सामग्री है ॥ २१ ॥

धानानां रूपं कुवंलम्परीवापर्यं गोधूमाः ।

सक्तूनां रूपम्बदरसुषुवाकाः करम्भस्य ॥ २२ ॥

(कुबलं, धानानां, रूपं) इस यज्ञ में कोमल वेरू के फल पूर्वोक्त धान की खिलोंका रूप है (गोधूमाः, परिवापस्य) गेहूं हविष्पंक्ति का रूप है (बदरं, सक्तूनां, रूपं) बदरीफल सत्तुओं का रूप है (उपवाकाः, करम्भस्य) जो करम्भे का रूप है ॥२२॥

पयसो रूपं यद्यदा दध्नो रूपं कर्कन्धूनि । सोमस्य

रूपं वाजिनं सौम्यस्य रूपमामिक्षा ॥ २३ ॥

(यत्, यवाः, पयसः, रूपं) जो यव है वह दूध का रूप है (कर्कन्धूनि, दध्नः, रूपं) बड़े बदरीफल दही का रूप है (वाजिनं, सोमस्य, रूपं) अन्न सोम का रूप है (आमिक्षा, सौम्यस्य) दधि मिला गरम दूध सोम में पकेहुए चरुका रूप है ॥ २३ ॥

आश्रावयेति स्तोत्रियाः प्रत्याश्रावो अनुरूपः ।

यजेति धार्यायूपम्रगाथा ये यजामुहाः ॥ २४ ॥

शास्त्रसम्पत्ति कहते हैं—(आश्रावय, इति, स्तोत्रियाः) सुनाओ यह शब्द स्तोता हैं (प्रत्याश्रावः, अनुरूपः) पीछे सुनायाजाता है यह उत्तर गीत ऋचावाले अनुवाक का रूप है (यज, इति, धार्यायूपं) यजन-करो यह शब्द धार्या का रूप है (येयजामुहाः, मगाथाः) येयजामहे यह शब्द मगाथा का रूप है ॥२४॥

अर्द्धैरुचैरुच्यथानां रूपम्पदैराप्नोति निविदः ।

प्रणवैः शस्त्राणां रूपम्पर्यसा सोमं आप्यते ॥२५॥

(अर्धैः, उच्यथानां, रूपं, आप्यते) अर्द्ध ऋचाओं से उच्यों का रूप पायाजाता है (पदैः, निविदः, आप्नोति) मत्येक पदों से न्यूंखों को पाता है (प्रणवैः, शस्त्राणां रूपं) प्रणवों से शस्त्रों का रूप पायाजाता है (पयसः, सोमः) दूध से सोम प्राप्त होता है ॥ २५ ॥

अश्विभ्यां प्रातः सवनमिन्द्रं गैन्द्रमाद्व्यान्दिनम् ।

वैश्वदेवस्य सरस्वत्या तृतीयमासस्य सवनम् ॥ २६ ॥

सवनसम्पत्तिको कहते हैं—(अश्विभ्यां, प्रातः, सवनं) अश्विनी

कुमरोंके द्वारा प्रातःसवन मिलाता है (इन्द्रेण, ऐन्द्रं माध्यन्दि-
नम्) इन्द्रके द्वारा इन्द्रदेवतावाला माध्यन्दिन सवन प्राप्त होता है
(सरस्वत्या, वैश्वदेवं, वृगीषं, आप्तम्) सरस्वतीके द्वारा विश्वे-
देवाका तीसरा सवन प्राप्त हुआ अर्थात् तीनोंकालमें इन देवताओं
की आराधना करनी चाहिये ॥ २६ ॥

वायव्यैर्वायव्यान्पामोति सनेन द्रोणकलशम् ।

कुम्भीभ्यामम्भृणौ सुते स्थालीभिः स्थालीरामोति ॥

(वायव्यैः, वायव्यानि, आमोति) वायव्य सोमपात्रोंके द्वारा
वायव्य पात्रोंको पाता है (सनेन, द्रोणकलशम्) कलशको चनान
के बेलके पात्रसे द्रोणभरके कलशको पाता है (कुम्भीभ्यां, अम्भृणौ
सुते) सौ छिद्रवाली भारी और दक्षिणाग्निपरके सुराधानी पात्र
से पूतभृत् और आधवगीयको सोमाभिपव होनेपर पाता है (स्था-
लीभिः, स्थालीः, आमोति) स्थालियों के द्वारा स्थालियों का
प्राप्त होता है ॥ २७ ॥

यजुर्भिराप्यन्ते ग्रहा ग्रहैः स्तोमाश्च विष्टुतीः ।

छन्दोभिरुक्था शस्त्राणि साम्नांश्च भृथ आप्यते ॥ २८ ॥

(यजुर्भिः, ग्रहाः, आप्यन्ते) यजुर्भ्रोंके द्वारा ग्रह प्राप्त होते हैं
(ग्रहैः, स्तोमाः, विष्टुतीः, च) ग्रहोंके द्वारा स्तोम और अनेकों
प्रकारकी स्तुति सम्पन्न होती है (छन्दोभिः, उक्थाः, शस्त्राणि)
छन्दोंसे उक्थ और कथन करनेयोग्य स्तुतियों सम्पन्न होती है (साम्ना
अवभृथः, आप्यते) सामसे अवभृथ प्राप्त होता है ॥ २८ ॥

इडाभिर्भुक्षानामोति सूक्तवाकेनाशिषः शंयुनां

पत्नीसंयाजान्तसमिष्टयजुषां सुधेस्थाम् ॥ २९ ॥

(इडाभिः, भुक्षान्, आमोति) अन्नोंसे मध्य पदार्थोंको पाता
है (सूक्तवाकेन, आशिषः) सूक्तवाक्योंके द्वारा आशीर्वादोंको पाता
है (शंयुना, पत्नीसंयाजान्) शंयुहोमसे शंयुको और पत्नीसंयाज
से पत्नीसंयाजोंको पाता है (समिष्टयजुषां, संस्थाप) यजुःसमूह
से संस्थाको पाता है ॥ २९ ॥

वृतेन द्दक्षामामोति द्दक्षयामोति दक्षिणाम् ।

दक्षिणां श्रद्धामामोति श्रद्धया सत्यमाप्पते ॥ ३० ॥

(व्रतेन, दीक्षां, आमोति) हुनशेषभक्षणरूप चार रात्रिके व्रत से दीक्षाको पाताहै (दीक्षया, दक्षिणां, आमोति) दीक्षासे दक्षिणा को पाताहै (दक्षिणा, श्रद्धां) दक्षिणा से आस्तिक्यबुद्धि को (श्रद्धया, सत्यं, आप्पते) और आस्तिक्यबुद्धिरूप श्रद्धाके द्वारा सत्यस्वरूप परमात्माको पाताहै ॥ ३० ॥

एतावद्रूपं यज्ञस्य यद्वैर्ब्रह्मणा कृतम् । तदेत-

त्सर्वमामोति यज्ञे सौत्रामणी सुते ॥ ३१ ॥

(यत्, देवैः, ब्रह्मणा, कृतम्) जो देवताओंने और ब्रह्मा मजा पणिके कियेहै (यज्ञस्य, एतावत्, रूपम्) उस यज्ञका इतना ही रूप है (सौत्रामणीसुते, यज्ञे, तत्, एतत्, सर्वं, आमोति) सौत्रामाणि यज्ञमें सुरासोमका अभिषवण होनेपर वह यज्ञ याग संपूर्ण प्राप्त होताहै । अर्थात् जो मद्यपान करतेहैं वह भ्रष्ट होजातेहैं उनका तेज बल बुद्धि नष्ट होजाताहै, जैसे कि-स्वर्गके अधिपति इन्द्रका जातारहा, तब वह सौत्रामाणिके द्वारा चिकित्सा से ठीक हुआ, इसकारण पुरुषको चाहिये कि-मद्यपानादि नीचकर्मोंसे बचै यही इस प्रकारका औपचार्य उपदेश है ॥ ३१ ॥

सुरावन्तर्म्वाहिपदं सुवीरं यज्ञं हिन्वन्ति

महिषा नमोभिः । दधानाः सोमंन्द्रिचि देवतां

सुमंद्मेन्दुं यजमानाः स्वर्काः ॥ ३२ ॥

इसका हैमवर्चि ऋ०, त्रि० छ०, अग्नि सरस्वती इन्द्र दे० हैं । अध्वर्यु होम करै । मंत्रार्थ—(नमोभिः, दिवि, देवतासु, सोमं, देवानाः, महिषाः, वरिषदं, सुरावन्तं, सुवीरं, यज्ञं, हिन्वन्ति) नमस्कार वा श्रद्धा के द्वारा स्वर्ग में स्थित देवताओं में सोम को धारण करतेहूए मदान् ऋत्विज् कुशासनपर बैठेहूए देवताओं से युक्त सुरारसवाले और जिसमें श्रेष्ठ ऋत्विज हैं ऐसे सौत्रामाणि यज्ञ को प्राप्त कराते हैं; इस यज्ञ में (स्वर्काः, इन्द्रं, यजमानाः,

मंत्रार्थ—(सोम्यासः, पितरः, शनायुषा, पवित्रेण, मा. पुनन्तु)
 सौम्यमूर्ति पितर पूर्य आयु दनवान् पवित्रे से मुझ को पवित्र करै
 (पितामहाः, मा, पुनन्तु) पितामह मुझको पवित्र करै (प्रपि-
 तामहाः, पुनन्तु) प्रपितामह पवित्र करै (पितामहाः, शनायुषा,
 पवित्रेण, मा, पुनन्तु) पिता के पिता शनायु देनेवाले पवित्रे से
 मुझे पवित्र करै (प्रपितामहाः, पुनन्तु) प्रपितामह मुझको अति
 पवित्र आनन्दयुक्त सौ वर्ष की आयुसे पवित्र करै (विश्वं, आयुः,
 व्यश्नवे) इस प्रकार मैं संपूर्ण आयु को पाऊँ ॥ ३७ ॥

अग्ने आर्यंषि पवसु आसुथोर्जेमिपंश्च नः ।

आरे वाधस्य दुच्छुनाम् ॥ ३८ ॥

इसका प्रजापति ऋ०, गाय० छ०, अग्नि दे० है । मंत्रार्थ—
 (अग्ने, आर्यंषि, पवसे) हे अग्ने ! तुम आपही आयु मातृकराने-
 वाले क्रमोंको करतेहो (नः, इपं, ऊर्जे, आसुव) हमको धान
 आदि भन्न आदिही आदिरस दीजिए (आरे दुच्छुनां, वाधस्य)
 दूर स्थित दुष्ट कुनोंकी समान दुर्जनोको बाधां दो, जिससे हम उन
 के आक्रमणसे बचें ३८ ॥

पुनन्तु मा देवजनाः पुनन्तु मनसा धियः ।

पुनन्तु विश्वा भूतानि जातवेदः पुनीहि मा ॥ ३९ ॥

इसका वैवांगस ऋ०, अनु० छ०, देवजनशीविश्वभूतजातवेदस
 दे० है । मंत्रार्थ—(देवजनाः, मा, पुनन्तु) देवजनोंकी भक्तजन
 मुझको पवित्र करै (मनसा, धियः, पुनन्तु) मनसहिण बुद्धि
 वा मनको पवित्र करै (विश्वाभूतानि, पुनन्तु) सकल प्राणी
 मुझको पवित्र करै (जातवेदः, मा, पुनीहि) हे अग्ने ! तुम भी
 मुझको पवित्र करो ॥ ३९ ॥

पवित्रेण पुनीहि मा शुक्रेण देव दीधत् ।

अग्ने शक्या क्रतुरनु ॥ ४० ॥

इसका प्रजापति ऋ०, गाय० छ०, अग्नि दे० है । मंत्रार्थ
 (देव, अग्ने, दीधत्, शुक्रेण, पवित्रेण, मा, पुनीहि) हे देव

अग्ने ! दीप्तिमान् तुम शुद्ध पवित्रसे सर्व त् शुद्धज्पोगि के द्वारा मुझको पवित्र करो (क्रतून्, अनु, क्रत्वा) हमारे यज्ञको देखकर आने उवननादिकमौसे पवित्र करो ॥ ४० ॥

यंसे पवित्रंमर्चिष्यग्ने वितंतमन्तरा ।

ब्रह्म तेन पुनातु मा ॥ ४१ ॥

इसका मजापति ऋ० गयाश्री छ०, यत्नाग्नि दे० है । मंत्रार्थ— (अग्ने, ते, अर्चिषि, अन्तरा, यत्, ब्रह्म, पवित्रं, वितंतं, तेन, मा, पुनातु) हे अग्ने ! तुम्हारी ज्वालाके मध्यमें जो नयीरूप शुद्ध ब्रह्म विस्तृत है उसके प्रभावसे मुझको पवित्र करो ॥ ४१ ॥

पवंमानस्सो अयं नः पवित्रेण विधर्षणिः ।

यः पोता स पुनातु मा ॥ ४२ ॥

इसका मजापति ऋ०, गाय० छ०, वायु देवता है । मंत्रार्थ— (यः, विधर्षिणः, पवंमानः, नः, पोता) जो देव किये न किये को जाननेवाला स्वयं पवित्र और दूसरोंको पवित्र करनेवाला है (सः, अयं, पवित्रेण, मा, पुनातु) वह आज पवित्रसे मुझे पवित्र करे ॥ ४२ ॥

उगाभ्यान्देव सविताः पवित्रेण सवेन च ।

माम्पुनीहि विश्वतः ॥ ४३ ॥

इसका मजापति० ऋ० गाय० छ०, सूर्य दे० है । मंत्रार्थ— (देव, सविताः, उगाभ्यां, पवित्रेण, च, सवेन, मां, विश्वतः, पुनीहि) हे देव सबके मेरक ! तुम, दोनोंसे अर्थात् शुद्ध करनेवाले पवित्रके द्वारा और आत्माके द्वारा मुझको सब ओरसे पवित्र करो क्योंकि—तुम्हारी आज्ञासे यज्ञसिद्धि हाती है ॥ ४३ ॥

वैश्वदेवी पुनती देव्यागायस्यामिमा ब्रह्मव्यस्त-

न्वावीनष्टाः । तथा मदन्तस्सध्रमादेषु वपथं

स्याम पतयो रघीणाम् ॥ ४४ ॥

इसका मजाप० ऋ०, त्रि० छ०, वैश्वदेवी दे० है । मंत्रार्थ— (देवी, पुनती, वैश्वदेवी, आगता) नानामकारके अवतारोंसे क्रीड़ा

करनेवाले महानारायणकी शक्ति, पवित्र करती हुई, विश्वभरको
मकाशिंग करनेवाली परानामक मातृ हुई (यस्यां, इमाः, बह्वचः
तन्वः, ननिपृष्टाः) जिसमें दीखने हुए यह बहुतसे शरीरधारी स्तुति
करनेवाले हैं (तथा, सदमाधेषु मद्दन्तः, धयं, रयीणां, पतयः, स्याम)
उस पराशक्तिसे यज्ञध्यानोंमें आनन्द पाते हुए हम धनोंके स्वामी हैं
ये समानाः समनसः पितरो यमराज्ये । तेषां-

ल्लोकः स्वधा नमो यज्ञो देवेषु कल्पताम् ॥ ४५ ॥

इसका प्रजा० ऋ० अनु० छ० पितर दे० है । असव्य दक्षिण
मुख होकर यजमान एकवार लिये घृतको जुहूसे अग्निमें होमै ।
मंत्रार्थ—(ये, समानाः, समनसः, पितरः, यमराज्ये) जो जाति
मर्यादा आदिसे समान सपिण्डपितर यमलोकमें वर्तमान हैं (तेषां
लोकः, स्वधा, नमः, यज्ञः, देवेषु, कल्पताम्) उन पितरोंके लोक
में स्वधा नामक अन्न दृष्टिगोचर हो अथवा स्वधा अन्न और नम-
स्कार प्राप्त हो, पितृयज्ञ वसु रुद्र आदित्य देवताओंको तृप्त करनेमें
समर्थ हो ॥ ४५ ॥

ये समानाः समनसो जीवा जीवेषु मामाकाः

तेषां श्रीः अस्मिन् कल्पतामस्मिन्ल्लोके शतं समाः ॥

इसका प्रजा० ऋ० अनु० छ०, श्री दे० है । यजमान उपवीती होकर
उत्तरवेदीमें आहुति देय । मंत्रार्थ—(ये, जीवेषु, समानाः, समनसः,
मामाकाः, जीवाः) जो प्राणियोंमें समदर्शी मनस्वी हमारे सपिण्ड
पितर हैं (तेषां, श्रीः, अस्मिन्, लोके, शतं, समाः, मयि, कल्पताम्)
उनकी लक्ष्मी इस भूलोकमें सौ वर्ष पर्यन्त सुभूमै रहै ॥ ४६ ॥

हेसृतीऽअंशृणवास्पितृणासहन्तेवानामुत मर्त्या

नाम् । ताभ्यामिदं पित्र्यमेजत्समेति यदध्वरा पि-

त्वरंस्मातरंञ्च ॥ ४७ ॥

इसका प्रजा० ऋ० त्रि० छ०, देवयान पितृयान मार्ग दे० है
दूधका होम करै । मंत्रार्थ—(अहं, मर्त्यानां, देवानां, उत, पितृणां
दे, सृती, अशृणवम्) मैंने मरणधर्मी प्राणियोंके देवताओंके और

पितरोंके गमन करनेयोग्य दो मार्गोंको सुनाहै (यत्, पितरं, च, मातरं, अन्तरां, इदं, एतत्: विद्वं, ताभ्यां, समेति) जो सुलोक और भूलोकके मध्यमें वर्तमान है। यह क्रियावात् अंगत् उन्नं दोनों मार्गोंसे प्राप्त होताहै ॥ ४७ ॥

इदं हविः प्रजननम् अस्तु दशवीर्यं सर्वं गणं स्वस्तये । आत्मसनि प्रजासनि पशुसनि लोकसन्धभणुसनि अग्निः पूजाम्बहुलात्मं करोत्षन्नम्पयो रेतो अस्मासु धत्त ॥ ४८ ॥

इसका प्रजा० ऋ०, व्यवसानाष्टि०, यजमानाशीः दे० है । दूध पियै । मंत्रार्थ--(इदं, प्रजननं, दशवीर्यम्) यह प्रजाको उत्पन्न करनेवाला तथा दशप्राण और दश इन्द्रियोंको उन्नति देनेवालाहै (सर्वगणं) सय अहोंको पुष्टिदाता (आत्मसनि) आत्माका प्रसन्नकर्ता (प्रजासनि) प्रजाको उन्नतिदाता (पशुसनि) पशुवृद्धिकारी (लोकसनि) लोकमें प्रतिष्ठादायक (अभयसाने) बलदेकर शमयकरनेवाला (हविः, मे, स्वस्तये, अस्तु) वह हवि मुझै कल्याणदायक हो (अग्निः, मे, मंत्रां, बहुला, करोतु) अग्नि देवतामेरी प्रजाको बहुत करै (अस्मासु, षन्नं, पयो, रेतः, धत्त) हमारे विषमन्न, दूध और वीर्यको धारण करै ॥ ४८ ॥

उदीरतामघं उत्परोस उन्नमद्यमाः पितरं सोम्यासः । असुं य ईयुरवृका क्रतुजास्ते नोवन्तु पितरो हवेषु ॥ ४९ ॥

इसका शंख ऋ०, त्रि० छ०, पितर दे० है । पितरोंका उपस्थान करै । मंत्रार्थ--(अघरे, उत्, परासः, उत्; मध्यमाः, सोम्यासः, उदीरताम्) इस लोकमें स्थित पितर और परलोकमें स्थित पितर और मध्यलोकमें स्थित सोमभागी पितर क्रमसे ऊपरके लोकको प्राप्त हो (ये, असुं, ईयुः, ते, अटकाः, अतज्ञाः, पितरः, हवेषु, नः, भवन्तु) जो पितर प्राणरूपको प्राप्त हैं वह शशुरहित होनेसे निरपेक्ष सत्यके ज्ञाता, स्वाध्यायनिष्ठ पितर आइवानों में हमारी

रक्षा करै ॥ १९ ॥

अङ्गिरसो नः पितरो नवम्वा अथर्वाणो भृगवः-
सोम्यासः । तेषां वयं सुमतौ यज्ञियानामपि
भद्रे सोमनसे स्याम ॥ ५० ॥

इसका शंख ऋ० वि० छ०, पितर दे० है । मंत्रार्थ- (नव-
वा, सोम्यासः, अङ्गिरसः, अथर्वाणः, भृगवः, नः, पितरः) स्तुति
के योग्य वा नवीनगतिवाले, सोमसम्पादक, अङ्गिरावंशी अथर्व
वंशी, भृगुवंशी हमारे पितर अर्थात् जो इससमय पितृलोक धाम
को प्राप्त हुए हैं (तेषां, यज्ञियानां, सुमतौ, भद्रे, सोमनसे, अपि,
वयं, स्याम) उन यज्ञमें पूजनीय पितरोंकी सुन्दर बुद्धिमें तथा
कल्याणकारक सुन्दर मनमें भी हम हों अर्थात् इनकी बुद्धि और
मन हमारा कल्याण करने में लगे ॥ ५० ॥

ये नः पूर्वे पितरः सोम्यासोऽनूहिरे सोमपृथिं
वशिष्टाः । तेभिर्यमः संशरराणो हवीष्यु-
शन्नुशद्भिः प्रतिक्रामन्तु ॥ ५१ ॥

इसका शंख ऋ०, नि० वा० उ० छ०, पितर दे० है । मंत्रार्थ-
(ये, सोम्यासः, वशिष्टाः, नः, पूर्वे, पितरः, सोमपृथिं, अनूहिरे)
जिन सोमसम्पादक वशिष्टवंशी हमारे पूर्व पितरोंने सोमपान के
निमित्त देवताओंका आवाहन किया था, वह ही इससमय सोम-
पानके निमित्त आमंत्रित हुए हैं (उशन्, यमः, तेभिः, उशद्भिः,
संशरराणः, प्रतिक्रामं, हवीषि, अन्तु) सोमकी इच्छावाला पितृ-
पति उन सब पितरोंके सहित प्रसन्न होता हुआ हमारी दी हुई
हवियोंको यथेष्ट भक्षण करै ॥ ५१ ॥

त्वथ सोम प्रचिकितो मनीषा त्वथ रजिष्म-
नुनेषि पन्थाम् । तव प्रणीतो पितरो न इन्दो
देवेषु रक्षमभजन्तु धीराः ॥ ५२ ॥

इसका शंख ऋ०, ग्राह्यो उ० छ०, पितर दे० है । मंत्रार्थ
(सोम, त्वं, प्रचिकितः) हे सोम ! तुम कान्तियुक्त वाचेतनता-

युक्तहो (त्वं, मणीषा, रजिष्ठं, पन्थां, अनुनेपि) तुम अपनी बुद्धिके द्वारा अतिसरल-देवयानमार्गको मास करातेहो (इन्दो, नः, धीराः, पितरः, तव, मणीषी, देवेषु, रत्नम्, अभजन्त) हे सोम ! हमारे धैर्यवान् पितरोंने तुम्हारे आश्रयसे देवताओंमें श्रेष्ठ यज्ञ फलको पायाहै ॥ ५२ ॥

त्वया हि नः पितरः सोम पूर्वं कर्माणि चक्रुः
पवमान धीराः । वन्वन्नघातः परिधीरपोर्णुहि
वीरेभिरश्वैर्मघवा भवानः ॥ ५३ ॥

इसका शंख ऋ०, आर्यां त्रि० छ०, सोम दे० है । मंत्रार्थ—
(पवमान, सोम, नः, धीराः, पितरः, त्वया, कर्माणि, चक्रुः)
हे शुद्ध करनेवाले सोम ! हमारे धीर पितरों ने तुम्हारे द्वारा यज्ञादि कर्मों को किया, इसकारण मार्थना करते हैं कि—(वन्वन्न, अघातः, परिधीन, अपोर्णुहि) इस कर्म में लगेहुए वात आदि के उपद्रवों-से रहित तुम उपद्रवकारियों को दूर करो (वीरेभिः, अश्वैः, नः, मघवा, आभव) वीर अश्वों के द्वारा हमको सब ओर से धन देनेवाले हूजिये ॥ ५३ ॥

त्वय्य सोम पितृभिः संविदानोऽनु घावापृथिवी
आतंतन्ध । तस्मै ते इन्दो हविषा विधेम वृष्ये
स्थाम पतंगो रयीणाम् ॥ ५४ ॥

इसका शंख ऋ०, नि० त्रा० उ० छ०, पितर दे० है । मंत्रार्थ
(सोम, पितृभिः, संविदाना, त्वं, घावापृथिवी, अन्वाततन्ध)
हे सोम पितरोंके साथ सम्वाद करतेहुए तुमने स्वर्ग और पृथिवी
को विस्तारित कियाहै (इन्दो, तस्मै, ते, हविषा, विधेम) हे
सोम ! उन तुम्हारे अर्थ हविकेद्वारा विधानकरतेहैं (वयं, रयीणां,
पतयः, स्थाम) हम धनोंके स्वामी हों ॥ ५४ ॥

वाह्विष्यः पितर ऊत्यर्वाग्निमाचो हृव्या चक्रुमा-
जूपद्वाम् । त आगताधसा शन्तमेनाथा श
योररपो देघात ॥ ५५ ॥

इसका ऋष्यादि पूर्ववत् है । बार्हस्पद पितरोंका उपस्थान । मंत्रार्थ (बार्हस्पदः, पितरः, ते, ऊत्या, अर्वाक, आगत) हे कुशासनपर विराजमान होनेवाले पितरों ! वह तुम रक्षाके निमित्त कल्याण बुद्धिसे समीप आइये (वः, इमा, इव्या, चक्रम) तुम्हारे यह हाथ हमने संस्कृत किये (आत्रपध्यम्) तुम इनको सेवन करो (अयं, शन्तमेन, अवसा, ना, शंयो, अरपः, दधात) और परमसुखदायक अन्न से वृष्ट होकर हमको सुख, अभय और पापका अभाव धारण करो ५५

आहस्पितृदन्तसुविद्वान् अविस्ति नपातञ्च
विक्रमणञ्च विष्णोः बार्हस्पदो ये स्वधया सुतस्य

। भजन्त पितृवस्त इहागमिष्ठाः ॥ ५६ ॥

इसका शंख ऋ०, आर्षी त्रि० छ०, पितर दे० है । मंत्रार्थ- (अहं, सुविद्वान्, पितृन्, आअविस्ति) मैं कल्याण देनेवाले पितरोंको अभिमुख जानता हूँ (विष्णोः, नपातं, च, विक्रमणं, च, ये, बार्हस्पदः, पितरः, स्वधया, सुतस्य, पितृवः, भजन्ते, ते, आगमिष्ठाः) व्यापक और अस्पृष्ट देवयान मार्गको और अनेक प्रकार के गमनवाले कि-जहाँसे लौटकर आना पड़ता है उस पितृयान मार्गको मैं जानता हूँ जो कुशासनपर बैठनेवाले पितर स्वधा अन्नके साथ अभिषुत सोमपानको सेवन करते हैं वह यहाँ आगमन करें ॥ ५६ ॥

उपहृताः पितरस्सोम्यासो बर्हिष्येषु निधिषु
प्रियेषु । त आगमन्तु त इह श्रुवन्त्वधिभ्रुवन्तु
सेवन्स्वस्मान् ॥ ५७ ॥

इसका शंख ऋ०, भुरिगर्षी पंक्ति छ०, पितर दे० है । मंत्रार्थ (पितरः इह, आगमन्तु) हे पितरों इस यज्ञमें आगमन करो, (प्रियेषु, बर्हिष्येषु, निधिषु, उपहृताः, सोम्यासः, ते, श्रुवन्तु) प्रिय कुशासनपर स्थित निधिकी समान स्यापितृ हवियोंके निमित्त बुलायेहुए जो सोमके योग्य पितर हैं, वह हमारे आवाहनको सुनें (ते, अधिभ्रुवन्तु, ते, अवन्तु) वह पितामोंको पुनःसे जो करना

चाहिये सो कहें, वह हमारी रक्षा करें ॥ ५७ ॥

आयन्तु नः पितरस्सोम्यासोऽग्निष्वात्ताः पृथि-
भिर्देवयानैः । अस्मिन्यज्ञे स्वधया मदन्तोऽधिभु-
वन्तु तेऽवन्तस्मान् ॥ ५८ ॥

इसका शंख ऋ०, स्व० ब्राह्मी गाय० छ०, पितर दे० है । अग्नि-
ष्वात्त पितरोंका उपस्थान करे । मंत्रार्थ—(सोम्यासः, अग्निष्वात्ताः
नः, पितरः, देवयानैः, पृथिभिः, आयन्तु) सामंते योग्य अग्नि
करके स्वादिता हमारे पितर देवयान मागोंसे श्राद्ध (अस्मिन्,
यज्ञे, स्वधया, मदन्तः, अधिभुवन्तु, ते, अस्मान्, अवन्तु) इस
यज्ञमें स्वधाताम अन्नसे प्रसन्न होते हुए मानसिक उपदेश दें और
हमारी रक्षा करें ॥ ५८ ॥

अग्निष्वात्ताः पितर एह गच्छत सदः सदः
सदत सुप्रणीतयः । अस्ता हवीषि प्रयतानि
वृद्धिष्यां रुधिषि सर्ववीरन्दधातन ॥ ५९ ॥

इसका शंख ऋ०, नि० ब्रा० अनु० छ०, पितर दे० है मंत्रार्थ
(अग्निष्वात्ताः पितरः, इह, आगच्छत) हे अग्निष्वात्त, पितरों
हमारे इस यज्ञमें आओ (सुप्रणीतयः, सदः, सदः, सदत) सुन्दर-
नीतिवाले तुम प्रत्येक सभास्थानमें विराजो (वृद्धिषि, प्रयतानि,
हवीषि, आ, अत) कुशाश्रोंपर नियमसे स्थापित हवियोंको सब
प्रकार से भक्षण करो (अय, सर्ववीरं, रुधि, आदधातन) और
सकल वीर पुत्रादि तथा धनको सब आरसे लाकर धायनकरो ५९

ये अग्निष्वात्ता ये अनग्निष्वात्ता मर्त्ये ऋषिः
स्वधया मादयन्ते । तेभ्यः स्वराहसुनीतिमेतां
यथावशन्तन्वह्कल्पयन्ति ॥ ६० ॥

इसका शंख ऋ०, ब्रा० उ० छ०, पितर दे० है । मंत्रार्थ—
(ये, अग्निष्वात्ताः ये, अनग्निष्वात्ताः, दिनः, मध्ये, स्वधया,
मादयन्ते) जिन पितरोंका विधिपूर्वक अग्निदाह-करके अधीर्षदै-
हिक कर्म हुआ और जिनका अग्निसे दाह नहीं हुआ है और धु-

लोकमें अपने उत्पन्न कर्मके भागसे मत्सन्न रहते हैं (स्वराट्, तेभ्यः यथावकाशं, एगान, असुनीति, तन्वं, कल्पयाति) स्वर्गपति धर्म-राज उन पितरोंको इच्छानुसार इस मनुष्य-सम्बन्धवाले प्राण युक्त शरीरको देता है, अर्थात् यमकी आज्ञासे उनको स्वकर्मानुसार पवनाश्रित शरीर मिलता है और वह अपने पुत्रादिके शास्त्रोक्त आवाहनमें जाते हैं, उनकेतिमिच्छा दियाहुआ अन्न विश्वेदेवाओं के द्वारा मूक्षमभावसे प्राप्त होता है ॥ ६० ॥

अग्निष्वात्तान्तुमतो हवामहे नाराशंसो
सोमपीथं य आशुः । ते नो विप्रांसःसुहवा भवन्तु
व्यथे स्याम पतयो रथीणाम् ॥ ६१ ॥

इसका शंख ऋ०, आपीं त्रि०, छं०, पितरः दे० हैं । मंत्रार्थ— (ऋतुमता, अग्निष्वात्तान, हवामहे) ऋतुमान् अग्निष्वात्त नामक पितरोंको हम बुनाते हैं (यं, नाराशंसो, सोमपीथं, आशुः) जो पितर चमसपात्र में सोमपान को भोजन करते हैं (ते, वि-प्रांसः, नः सुहवाः, भवन्तु) वह वेदाध्ययनसम्पन्न पितर हमारे सुखसे बुनानयोग्य हों (व्यथे, रथीणां, पतयः, स्याम) हम धनों के स्वामी हों ॥ ६१ ॥

आच्यं जानुं दक्षिणतो निपथे मं यज्ञमभिगृणीत
विश्वे । मा हिंसिष्ट पितरः केनचित्तो यत्
आगः पुरुपता करांम ॥ ६२ ॥

इसका शंख ऋ०, नि० त्रि० छं०, पितर देवता है । मंत्रार्थ— (पितरः, विश्वे, जानुः, आआच्य, दक्षिणतः, निपथ, इमं यज्ञं, अभिगृणीत) हे पितरों ! तुम सब वामजंघाको सबभकार श्रुता कर दक्षिणमुख बैठकर इस यज्ञकी प्रशंसा करो (केनचित्, नः, मा, हिंसिष्ट) चित्तकी चंचलतावश किसीभकारका अपराध होने से हमारे ऊपर क्रोध मग करो (यत्, पुरुपता, वः, आगः, वपं, करांम) यथांके-मनुष्य स्वभाववश तुम्हारा अपराध हमसे भूल से बतजाता है, इसको क्षमा करना ॥ ६२ ॥

आसीनासो अरुणीनामुपस्थे रुचिन्वत्त दाशुपे
मर्त्याय । पुत्रेभ्यः पितरस्तस्य वस्यः प्रपच्छत
त इहोर्जन्दधात ॥ ६३ ॥

इसका शांख ऋ०, ब्रा० उ० छ०, पितर दे० है । मंत्रार्थ
(पितरः, अरुणीनां, उपस्थे, आसीनासः, दाशुपे, मर्त्याय, रुचिं,
धत्त) हे पितरों ! तालऊनके आसनोंपर वा अरुणवर्ण सूर्यकी
किरणोंमें स्थित सूर्यलोककी गोदमें बैठेहुए हविर्देनेवाले यजमान
को धनदो (पुत्रेभ्यः, तस्य, वसुतः, प्रपच्छत) इसके पुत्रोंको
इसका-धनदो (तो, इह, ऊर्ज, दधात) वह इस यजमानके यज्ञमें
आनन्दरस दें ॥ ६३ ॥

यमग्ने कव्यवाहन त्वच्चिन्मन्यसे रुचिम् ।

तन्नो गीर्भिः श्रुचार्यन्देव्यप्रापनया युजम् ॥ ६४ ॥

इसका शांख ऋ०, आर्षी अनु० छ०, अग्नि दे० है । मंत्रार्थ
(कव्यवाहन, अग्ने, त्वं, चित्, यं, रुचिं, मन्यसे) हे पितरोंको
अन्न पहुँचानेवाले अग्ने ! तुम भी जिस हविरूप धनको उत्तम
जानते हो (नः, तं गीर्भिः, श्रुचार्यं, युजं, देवता, आपनया) हमारे
उस वपट्टकार आदि वाणियोंसे सुनेयोग्य उचित हविको देवता-
ओंके अर्थ सब ओरसे पहुँचाओ ॥ ६४ ॥

यो अग्निः कव्यवाहनः पितृन्यक्षतृतावृषः ।

प्रेतुं हव्यानि वोचति देवेभ्यश्च पितृभ्य आ ॥ ६५ ॥

इसका ऋ० आदि पूर्ववत् है । मंत्रार्थ—(यः, कव्यवाहनः, अग्निः
ऋतावृषः, पितृन्, यक्षत्) जो कव्य पहुँचानेवाला अग्नि सत्य
वा यज्ञको बढ़ानेवाले पितरोंका यजन करताहुआ (उ इत्, देवेभ्यः
च, पितृभ्यः, हव्यानि, आ, वोचति) वही अग्नि देवताओंके
और पितरोंके अर्थ हवियोंको सब ओरसे नतलाताहै ॥ ६५ ॥

त्वमग्ने ईडितः कव्यवाहनावाडुहव्यानि सुर-

भीणि कृत्वा । प्रादाः पितृभ्यः स्वधया ते अक्ष-

न्नुदि त्वन्देव प्रपता हव्यं धिपि ॥ ६६ ॥

इसका शंख ऋ०, नि० त्रि० छ०, अग्नि दे० है । मंत्रार्थ—
(कव्यबाहन, अग्ने, इदितः, त्वं, इव्यानि, सुरभीणि, कृत्वी, अ-
वाह) हे कव्य पहुँचानेवाले अग्निदेव ! अर्थात्त्वजोसे स्तुति किये
हुए तुम दैवियोंको मनोहर गन्धयुक्त करके पहुँचाते हो (स्वधया
पितृभ्यः, प्रादाः) पितृमंत्रोंसे पितरोंको दो (ते, अक्षर) उन
पितरोंने भक्षण किया (देव, त्वं, मयता, इर्वीपि, अद्धि) हे देव !
तुम शुद्ध हाँवोंको भक्षण करो ॥ ६६ ॥

ये च्छ पितरौ ये च्च नेह यांश्च विद्य यान् उ च्च न
प्रविद्य । त्वं वेत्थ यति ते जातवेदः स्वधाभि-
र्यज्ञथ सुकृतञ्जुपस्व ॥ ६७ ॥

इसका शंख ऋ०, प्रा० उ० छ०, अग्नि दे० है । मंत्रार्थ—(ये,
पितरः, इह, च, इह, न) जो पितर इस लोकमें हैं जो पितर इस लोकमें
नहीं हैं अर्थात् स्वर्गमें हैं, (च, यान्, विद्यः, च, यान्, न, प्रविद्यः) और
जिन पितरोंको हम जानते हैं, और जिनको स्मरण न होनेसे नहीं
जानते हैं (जातवेदः, ते, यति, त्वम्, उ, वेत्थ) हे अग्ने ! वह
पितर जितने हैं तुम ही जानते हो (स्वधाभिः, सुकृतं, जुपस्व)
पितरोंके यज्ञद्वारा श्रेष्ठ अन्नको सेवन करो ॥ ६७ ॥

इदम्पितृभ्यो नमो अस्त्यथ ये पूर्वांसो य उप-
रास ईयुः । ये पार्थिवे रजस्यानिपंशु ये वा
नूनथ सुवृजनामु विक्षु ॥ ६८ ॥

इसका शंख ऋ०, प्रा० उ० छ०, पितर दे० है । मंत्रार्थ—
(अथ, इदं, नमः, पितृभ्यः, अस्तु) आज यह अन्न पितरोंके नि-
मित्त हो (ये, पूर्वांसः, ये, उ, परासः, ईयुः) जो पहिले स्वर्गमें जा
चुके हैं जो कृगकृत्य होकर परब्रह्मको प्राप्त हुए हैं (ये, पार्थिवे, रजः,
निपना) जो पृथिवीपर होनेवाली अग्निरूप ज्योतिमें स्थित हैं वा
स्वर्गमें स्थित हैं (वा, ये, नूनं, सुवृजनामु, विक्षु) अथवा जो पितर
अवश्य ही धर्मरूप वनयुक्त मन्त्रों में देह धारण किये
वर्षमान हैं, उन पितरोंके निमित्त हम अन्न देते हैं । अथवा ।

जो (पूर्वासः) यजमानसे पूर्व उत्पन्न ज्येष्ठ भ्रातृपितामहादि (ईयुः) पितृलोकको प्राप्तहुए हों, जो (उपरासः) यजमानका जन्म होनेके उपरान्त उत्पन्न हुए छोटे भ्राता पुत्र आदि पितृलोक को प्राप्तहुए हैं (पार्थिवे, रजसि, आनिपत्ता) रजोगुणकार्यमें हवि स्वीकार करनेको आकर बैठे हैं उनको आहुति देते हैं ॥ ६८ ॥

अथा यथा नः पितरं परासः प्रत्नासो अग्न
ऋतमा शुषाणाः । शुचीदयन्दीधितिमुकथशासः

क्षामा भिन्दन्तो अरुणीरपवन् ॥ ६९ ॥

इसका शंख ऋ०, आ० त्रि० छ०, अग्नि दे० है । मंत्रार्थ (अग्ने, नः, परासः, प्रत्नासः, ऋतं, आशुषाणाः, पितरः, यथा अथा, शुचि, दीधिति, इत्, अयन्) हे अग्ने ! हमारे उत्तम पुरा-
तन यज्ञको पानेवाले पितर जैसे देहयानाके अनन्तर निर्मलका-
न्तिवाले सूर्यमण्डलरूप देवयानमार्गको ही प्राप्तहुए (उक्थशासः,
क्षामा, भिन्दन्तः, अरुणीः, अपवन्) यज्ञोंमें शस्त्रनामक स्तोत्रोंको
पढ़नेवाले और पृथ्वीको वेदीके निमित्त खोदतेहुए अर्थात् सब सा-
मग्री से यज्ञ करतेहुए हमभी सूर्यसम्बन्धी ज्योतिर्मार्गको पावें ६९

उशन्तस्तवानिधीमद्युशन्तः समिधीमहि । उश-
न्नुशन्त आवह पितृन्हविये अत्तवे ॥ ७० ॥

इसका शंख ऋ०, अनु० छ०, अग्नि दे० है । मंत्रार्थ (उशन्तः,
त्वा, निधीमहि) हे अग्ने ! तुम्हारी इच्छा करतेहुए हम तुमको
स्थापन करते हैं (उशन्तः, समिधीमहि) यज्ञकी इच्छासे तुमको
प्रज्वलित करते हैं (उशन्, उशतः, पितृन्, हविये, अत्तवे, आवह)
चाहते हुए तुम हवि चाहनेवाले पितरोंको हवि भक्षण करने के
निमित्त बुलाओ ॥ ७० ॥

अपान्केनेन नमुचेः शिर इन्द्रोदवर्त्सयः । विश्वा
यदजयः स्पृधः ॥ ७१ ॥

इसका शंख ऋ०, गाय० छ०, इन्द्र दे० है । मंत्रार्थ (इन्द्र,
यत्, विश्वाः, स्पृधः, अजयः) हे इन्द्र जब तुमने संपूर्ण संग्राम

जीते (अपां, फेनेन, नमुचेः, शिरः, उद्धर्तयः) तब जलोंके भाग से नमुचि दैत्यका शिर काटा अर्थात् पापरूप नमुचिको गारकर बल धारण किया ॥ ७१ ॥

सोमो राजामृतं सुत ऋजीपिणाजहान्मृत्युम्
ऋतेन सत्यमिन्द्रियं विपानं शुक्रमन्थस इन्द्र-
स्येन्द्रियमिदम्पयोमृतम्मधुं ॥ ७२ ॥

इसके अशिव-सरस्वती-इन्द्र ऋ०, महावृहती छ०, सोम दे० है । यहांसे पयोग्रहका सपस्थानकरै । मंत्रार्थ—(सुतः, राजा, सोमः, अमृतम्) अभिपुत्र वनस्पतियोंका राजा सोम, अमृतरूप होताहै (ऋजीपिण, मृत्युं, अजहात्) नीरस स्थूल सोमलगाके चूर्णसे स्थूलभागको त्यागा अर्थात् स्थूलभागको अलग करनेपर यह रस-भाग अमृतरूपहै (ऋतेन, सत्यं) इस सत्यवा यज्ञकेद्वारा सत्यरूप परमात्माको जाना (इन्द्रस्य, इदं, अन्थसः, शुक्रं, इन्द्रियं, विपानं, इन्द्रियं, अमृतं, मधु, पयः) इन्द्रका यह अन्न वा सोम सम्बन्धी शुद्ध वीषिदायक पान बलकारक अजर अमरता देने-वाला मीठा दूध है ॥ ७२ ॥

अद्भयः क्षीरं व्यपिवत्क्रुद्धाङ्गिरसो धिया ।
ऋतेन सत्यमिन्द्रियं विपानं शुक्रमन्थस इन्द्र-
स्येन्द्रियमिदम्पयोमृतम्मधुं ॥ ७३ ॥

इसका ऋषि छन्द पूर्ववत् और ग्रह देवता है । मंत्रार्थ—(आङ्गिरसः, क्रुद्ध, धिया, अद्भयः, क्षीरं, अपिवत्) अङ्गों के रस को माण ऐसे पीता है, जैसे हंस बुद्धि के द्वारा जलोंमें से दूध को पीता है (ऋतेन, सत्यं, शेषं पूर्ववत्), इस सत्य से सत्य जानाजाता है, शेष पूर्व मंत्र की समान, जानना ॥ ७३ ॥

सोममद्भयो व्यपिवत्क्रुद्धसाहसः शुचिषत् ।
ऋतेन सत्यमिन्द्रियं विपानं शुक्रमन्थस
इन्द्रस्येन्द्रियमिदम्पयोमृतम्मधुं ॥ ७४ ॥

इसका ऋष्यादि पूर्ववत् । मंत्रार्थ—(शुचिषत्, हंसः, अद्भयः,

छन्दसा, सोमं, व्यपिषत्) निर्मल आकाश में विचरनेवाले
आदित्य ने जल मिले सोम को जलोंमें से वेद के द्वारा वा किरणों
के द्वारा अलग करके को पिया । शेष पूर्ववत् ॥ ७४ ॥

अथात्परिष्कृतो रसम्व्रह्मणा व्यपिषत्स्रम्वयः
सोमं प्रजापतिः । ऋतेन सत्यमिन्द्रियं विपानं

शुक्रमन्धसु इन्द्रस्येन्द्रियमिदम्पयोमृतम्मधु ॥ ७५ ॥

इसका ऋषि अश्वि-सरस्वती-इन्द्र, अतिजगती छन्द, प्रह
देवता है । मंत्रार्थ—(प्रजापतिः, परिष्कृतः, अथात्, रसं, सोमसु,
पयः, विविच्य, व्यपिषत्) प्रजापति ने परिष्कृत अन्न से रसरूप
सोमरूप दूध को गायत्रीलक्षण से विचारकर पिया (स्रमं)
क्षत्रिय को षष्ठ में किया । शेष पूर्ववत् ॥ ७५ ॥

रेतो मूत्रं विजहाति योनिं प्राविशदिन्द्रियम् ।

गर्भो जरायुणा वृत उल्बं जहाति जन्मना । ऋते

न सत्यमिन्द्रियं विपानं शुक्रमन्धसु इन्द्रस्ये-

न्द्रियमिदम्पयोमृतम्मधु ॥ ७६ ॥

इसका अतिशक्वरी छ० है, ऋषि आदि पूर्ववत् । मंत्रार्थ—
(इन्द्रियं, योनिं, प्रविशत्, रेतः, मूत्रम्, विजहाति) इन्द्रिय योनि
में प्रवेश करता हुआ वीर्य को छोड़ता है तथा अन्यत्र मूत्र को
त्यागता है, अर्थात् एक ही मार्ग से कार्यवश भिन्न १ वस्तु निक-
लती है, इस वीर्य से गर्भस्थिति होती है (जरायुणा, आवृतः,
गर्भः, जन्मना, उल्बं, जहाति) भिखली से ढका हुआ वह गर्भ
जन्म लेकर उस भिखली को त्याग देता है, तब भूमिपर आता
है । शेष पूर्ववत् ॥ ७६ ॥

दृष्ट्वा रूपे व्याकरोत्सत्यानृते प्रजापतिः । अ-

श्रंसामनृते दधाच्छ्रद्धां सत्ये प्रजापतिः ।

ऋतेन सत्यमिन्द्रियं विपानं शुक्रमन्धसु

इन्द्रस्येन्द्रियमिदम्पयोमृतम्मधु ॥ ७७ ॥

ऋषि आदि पूर्ववत् । मंत्रार्थ—(प्रजापतिः, रूपे, सत्यानृते,

दृष्ट्वा, व्याकरोत्) प्रजापति ने मूर्तिमान् सत् और असत् को देखकर विचारपूर्वक दोनों को पृथक् २ स्थापन किया । (प्रजापतिः, अनृते, अश्रद्धां, अदधात्) उस परमात्मा ने अनृत मिथ्याभाषण में नास्तिकतारूप अश्रद्धा को स्थापन किया (सत्ये, श्रद्धां, अदधात्) सत्य में आस्तिक्यवृद्धिरूप श्रद्धा को स्थापन किया । शेष पूर्ववत् ॥ ७७ ॥

वेदेन रूपे व्यपिषत्सुतासुतौ पूजापतिः । ऋतेनः

सत्यमिन्द्रियं विपानंश्च शुक्रमन्धसु इन्द्रस्ये-

न्द्रियमिदम्पयोमृतम्मधुं ॥ ७८ ॥

इसका महादृष्टी छ०, ऋष्यादि पूर्ववत् । मंत्रार्थ—(प्रजापतिः, सुतासुते, रूपे, वेदेन, व्यपिषत्) प्रजापति प्रेरित अप्रेरित धर्मा-धर्मके रूपोंको ज्ञानकेद्वारा अथवा वेदके द्वारा विचारकर पीयाहुप अथवा प्रजापतिने सुत असुत दोनों प्रकारके पदार्थोंको अपना भरण जानकर भक्षण किया । शेष पूर्ववत् ॥ ७८ ॥

दृष्ट्वा परिस्रुतो रसंश्च शुक्लेण शुक्रं व्यपिषत्

पयः सोमंस्पूजापतिः । ऋतेन सत्यमिन्द्रियं

विपानंश्च शुक्रमन्धसु इन्द्रस्येन्द्रियमिदम्पयो-

मृतम्मधुं ॥ ७९ ॥

इसका अतिजगती छ०, ऋ०, दे० पूर्ववत् । मंत्रार्थ—(प्रजापतिः, परिस्रुताः, रसं, दृष्ट्वा, शुक्लेण, पयः, सोमं, शुक्रं, व्यपिषत्) प्रजापतिने परिस्रुतके रसको देखकर शुद्ध मंत्रसे दुग्ध और सोमको पवित्र करके पीया अथवा प्रजापतिरूप सूर्यमें परिस्रुतका रस दुग्ध और सोम देखकर ही उसको किरणोंसे स्वच्छ करके पीया । शेष पूर्ववत् । इन मंत्रोंमें सोमकी शुद्धि कही सब ही सोम पीते हैं, क्योंकि—यद्यपि सोम एकलताका नाम है परन्तु अन्न दूध आदि में उसका सार रहता है, उसको ग्रहण करने की रीति कही ॥ ७९ ॥

सीसेन तन्त्रम्मनसा सनीपिणं ऊर्णामूत्रेण

कृव्यां वयन्ति । अश्विनां यज्ञं सविता सर-

स्वतीन्द्रस्य रूपं वरुणो भिपूज्यन् ॥ ८० ॥

इसका मन्त्रा० ऋ०, जगती छं० देवता पूर्ववत् । अत्र एक २ मंत्रसे दो २ आहुति देय । मन्त्रार्थ—(अश्विना, सविता, सरस्वती, वरुणः, मनीषिणः, कवयः, इन्द्रस्य, रूपं, भिपूज्यन्, मनसा, यज्ञं, वयान्ति) अश्विनीकुमार नियन्तादेव सरस्वतीवरुण बुद्धिमान् बीतेहुपको देखनेवाले इन्द्रके रूपको रोगरहित करतेहुए मनसे विचारकर सौत्रामणि यज्ञको सम्पन्न करते हैं (सीसेन, ऊर्णासूत्रेण, तन्त्रम्) सीसे धातुसे अंगदको और उनके मुतसे पटको धुते हैं ॥ ८० ॥

तदस्य रूपममृतं शचीभिस्त्रिस्तो दधुर्देवताः

सरराणाः । लोमानि शर्ष्यैर्बहुधा न तोक्मभि-

स्त्वगस्य मां ससंभवन्त लाजाः ॥ ८१ ॥

ऋष्यादि पूर्ववत् । मन्त्रार्थ—(तिस्रः, देवताः, सरराणाः, अस्य, तत्, अमृतं, रूपं, शचीभिः, सन्दधुः) दोनों अश्विनीकुमार और सरस्वती तीनों देवताओंने सम्यक् प्रकार कीड़ा करतेहुए इस इन्द्रके उस मरण धर्मरहित रूपको कर्मके द्वारा सन्धान किया वा एक वाक्य होकर यज्ञका स्वरूप निर्माण किया (अस्य, लोमानि, शर्ष्यैः, न, त्वक्, तोक्मभिः, बहुधा, न, लाजाः, मांसं, सम्भवन्) इस इन्द्रके रोमोंको जमेहुए धानोंसे सम्पन्न किया और त्वचाको जमेहुए यवाँसे अनेक प्रकारसे प्रकट किया तथा खीलेँ मांसरूप हुई अर्थात् मांसको पुष्ट किया [इस अध्यायमें यहाँसे समाप्तिपर्यन्त नकार चकारका अर्थ देताहै] ॥ ८१ ॥

तदश्विना भिपजा रुद्रवर्त्सनी सरस्वती वयान्ति

पेशो अन्तरम् । अस्थिं मज्जानं मांसैः कारो-

ः तुरेण दधतो गवांस्त्वचि ॥ ८२ ॥

ऋष्यादि पूर्ववत् । मन्त्रार्थ—(गवां, त्वचि, दधतुः) पृथ्वीकी त्वचा कहिये गह्वीके पकेहुए पात्रमें सोमको स्थापन करतेहुए (रुद्र वर्त्सिणी) रुद्रकी समान मार्गवाले (भिपजा, अश्विनी) गैद्य अश्विनी

कुमार (सरस्वती) वाग्देवी (अन्तरं, पेशः, वयति) शरीरान्त
वर्ती इन्द्रके रूपको परिपूर्ण करते हैं (मासरैः, अस्थि, न, कारो-
तरेण, मज्जानम्) शब्दादि चूर्णमयचरुके टपकावसे हड्डियोंको
और गलनबद्धसे मद्यमाको पूर्ण करते हैं ॥ ८२ ॥

सरस्वती मनसा पेशलं वसुना संत्याभ्या
वयति दर्शतं वपुः । रसं परिश्रुता न रोहितन्न-
ग्नहुर्दीरस्तसन्न वेमं ॥ ८३ ॥

ऋष्यादि पूर्ववत् । मंत्रार्थ—(नासत्याभ्यां, सरस्वती, मनसा,
पेशलं, वसु, दर्शतं, वपुः, वयति) अश्विनीकुमारोंके साथ सरस्वती
मन से विचारकर इन्द्रके सुपर्ण और रजतरूप धनको तथा दर्शनीय
रूपका उत्पन्न करते हैं (न, परिश्रुता, रोहितं) और परिश्रुत
सुरारससे रुधिरको इन्द्रके शरीर रञ्जनके निमित्त पूर्ण किया, अत
एव इन्द्रको वेदमें रोहित नामसे कहा है (धीरः, नग्नहुः, रसं,
न, तरसं, वेमं) शुद्धिको भरण करनेवाले सर्जको बालसे रसको
पूर्ण किया और तसका साधन बुननेका दण्ड हुआ ॥ ८३ ॥

पयसा शुक्रममृतं जनित्रुं सुरया सूत्राञ्जनय-
न्त रेतः । अपामंतिन्दुर्मतिस्वार्धमाना ऊर्ध्वदधुं

वातथे सव्वन्तद्वारात् ॥ ८४ ॥

ऋष्यादि पूर्ववत् । मंत्रार्थ—(पयसा, शुक्रं, अमृतं, जनित्रं,
रेतः, जनयन्त) तीनो देवताओंने निर्मल दूधके भागसे निर्मल
अमृतरूप जननशील वीर्यको उत्पन्न किया (आरात्, अमतिं,
दुर्मतिं, बाधमानाः, तत्, ऊर्ध्वं, वातं, सव्वं, सुरया, अपसूत्रात्)
समीप में स्थित होकर अज्ञान और दुर्मति को बाधा देते हुए उस
आमाशयमें अन्नको नाड़ीमें प्राप्त अन्न और पक्वाशयमेंके अन्न
को सुरारससे कल्पितकर मूत्रसे मूत्रको कल्पित करते हुए ॥ ८४ ॥

इन्द्रः सुधाम्ना हृदयेण सत्यम् पुरोडाशेन सविता
जंजान । यकृत्कलोमानं वरुणो भिषज्यन्मतं तले
वायव्यैर्न मिनाति पित्तम् ॥ ८५ ॥

ऋष्यादि पूर्ववत् । मंत्रार्थ—(सुत्रामा, इन्द्रः, हृदयेन) मत्तो प्रकार रसक पुरोडाशका अधिष्ठात्री देवता इन्द्र हृदयसे हृदयको प्रकट करताहै (सविता, पुरोडाशेन, सत्यम्, जनान) सविताने पुरोडाशसे इन्द्रके सत्यको उत्पन्न किया (वरुणः, भिषज्यन्, यकृत्, क्लोमानम्) वरुणने चिकित्सा करतेहुए हृदयको घाई और स्थित मांसपिंडरूप तिल्लीको और गलेकी नाड़ी को मगट किया (वायव्यैः, मतस्ने, न, पित्तं, मिनाति) सोम सम्बन्धी ऊर्ध्व पात्रोंसे हृदयकी दोनो ओरकी हडिडूयों और पित्तको कल्पित किया ॥ ८५ ॥

आन्त्राणि स्थालीर्मधु पिन्वमाना गुदाः पात्राणि सुदुघा न धेनुः । श्येनस्य पत्रं प्लीहा शचीभिरामन्दीनाभिरुदरं माता ॥ ८६ ॥

ऋष्यादि पूर्ववत् । मंत्रार्थ—(मधुः, पिन्वानाः, स्थालीः, आन्त्राणि, सुदुघा, धेनुः, न, पात्राणि, गुदाः) मधुसिक्त सकल स्थाली आँतके स्थानमें हुई, भलेप्रकार दूध देनेवाली आदित्य इष्टि और पात्र गुदास्थानापत्र हुए (न, श्येनस्य, पत्रं, प्लीहा) श्येनका पंख हृदयका वामभागहुआ (न, माता, आसन्दी, शचीभिः, नाभिः, उदरम्) और माता स्थान आसन्दी “चौकी” कर्माँके द्वारा नाभि स्थान और उदररूप हुई ॥ ८६ ॥

कुम्भो वनिष्ठुर्जनिता शचीभिर्यस्मिन्नग्रे योन्याङ्गर्भो अन्तः । प्लाशिव्यक्तः शतधार उत्सो वुहेन कुम्भी स्वधाम्पितृभ्यः ॥ ८७ ॥

ऋष्यादि पूर्ववत् । मंत्रार्थ—(जनिता, कुम्भः, शचीभिः, वनिष्ठः, जनिता) रसका साधन घड़े कर्माँ करके स्थूल आँतको उत्पन्न करताहै (यस्मिन्, योन्याम्, अन्तः, अग्रे, गर्भः, शतधारः, उत्सः व्यक्तः, प्लाशिः, न, कुम्भी, पितृभ्यः, स्वधां, दुहे) जिस कुम्भरूप योनिके भीतर प्रथम सोमरूप गर्भ स्थित हुआ कृपतुल्य घट स्पष्ट जननेन्द्रिय हुआ और सुराधानीपात्र ने पितरों के निमित्त स्वधा

अन्नको मकट किया ॥ ८७ ॥

मुखं च सदस्य शिर इत्सतेन जिह्वा पवित्रं-
अश्विना सरस्वती । चप्यन्न पायुर्भिर्पगस्य ।

घालो वस्तिर्न शेषो हरसा तरस्वी ॥ ८८ ॥

ऋष्यादि पूर्ववत् । मंत्रार्थ—(सत्, अस्य, मुखं, सतेन, इत्, शिरः) सत् नामक पात्र इस इन्द्रका मुख हुआ, उसही पात्रसे शिरकी चिकित्सा हुई (पवित्रं, जिह्वा) पवित्र जिह्वा सम्पादक हुआ (अश्विना, सरस्वती, आसन्न) अश्विनीकुमार और सरस्वती मुखमें स्थित हुए (न, चप्यं, पायुः) और चप्य पायु इन्द्रिय हुई (बालः, अस्य, भिपक्) रसको छाननेका वस्त्र इसकी चिकित्सा हुई (वस्तिः, न, हरसा, तरस्वी, शेषः) गुदा तथा वेगसे वीर्यवान् पुरुषकी जननेन्द्रिय हुई ॥ ८८ ॥

अग्निभ्याञ्चक्षुर्मृतङ्गहाभ्याञ्छागेन तेजो ह-
विषां शृतेन । पक्ष्माणि गोधूमैः कुबलैरुतानि
पेशो न शुक्रमसितं वसाते ॥ ८९ ॥

ऋष्यादि पूर्ववत् । मंत्रार्थ—(अग्निभ्यां, ग्रहाभ्यां, अमृतं, चक्षुः) अश्विनीकुमार देवतावाले ग्रहों के द्वारा अविनाशी नेत्र कल्पित हुआ (छागेन, शृतेन, हविषा, तेजः) बकरी के दूध में पकेहुए हवि के द्वारा चक्षु का तेज कल्पित हुआ (गोधूमैः, प-क्ष्माणि) गेहूँओं से नेत्रों के नीचे के लोम (कुबलैः, उतानि) बरों से नेत्रों के ऊपर के लोम कल्पित हुए (शुक्रं, न, असितं, पेशः, वसाते) जो स्वेत और कृष्णरूप को अर्थात् नेत्रों में की सफेदी और कालिमां को ढकते हैं ॥ ८९ ॥

अग्निर्न मेपो नृसि वीर्याय प्राणस्य पन्थां अमृतो
ग्रहाभ्याम् । सरस्वत्युपवाकैर्व्यानन्नस्यानि वृद्धि-
र्धदरैर्जजान ॥ ९० ॥

ऋष्यादि पूर्ववत् । मंत्रार्थ—(आविः, न, मेपः, नासि, वीर्याय) भेड़ और भेडा नासिकामें बलका कारण हुए (ग्रहाभ्यां, प्राण-

स्य, पन्थाः, अमृतः) सरस्वती सम्बन्धी ग्रहोकेद्वारा पाणनायुका
मार्ग अभिनाशी हुआ (सरस्वती, उपवाकैः, व्यानं, जज्ञाण)
सरस्वती देवी ने जो के अंकुरों से व्यानवायु को मकट किया
(बहरीः, बर्हिः, नस्यानि) वेरों के द्वारा कुशा नासिका के लोम
हुई, अर्थात् इनकी उपयोगी क्रियाओं से बल मकट किया गया,
जिससे इन्द्र तेजस्वी हुआ ॥ ९० ॥

इन्द्रस्य रूपमृपभो बलाय कर्णाभ्यां श्रोत्रं म-
मृतहृदाभ्याम् । यथा न बर्हिभ्रुवि केसराणि
कर्कन्धुजज्ञे मधु सारघम्मखात् ॥ ९१ ॥

ऋष्यादि पूर्ववत् । (बलाय, इन्द्रस्य, रूपं, मृपभः) बलके
निमित्त इन्द्रका रूप अष्ट किया (कर्णाभ्यां, ग्रहाभ्यां, श्रोत्रं)
श्रोत्रसम्बन्धी ग्रहोके द्वारा त्रिकाणकेशब्दको सम्पन्न करनेवाली
श्रोत्र इन्द्रिय सम्पादित हुई (यवाः, न, बर्हिः, भ्रुवि, केसराणि)
जो और कुशा मौके बालोंको सम्पन्न करनेवाले हुए (मृखात्,
कर्कन्धु, सारघं, मधु, जज्ञे) मुखसे घेरकी समान मधुमासिका
सम्बन्धी शहदकी समान लारश्लेष्मा आदि मकट हुआ ॥ ९१ ॥

आत्मन्नुपधे न टकस्य लोम मुखे श्मश्रूणि न
व्याघ्रलोम । केशा न शीर्षन्यशसे श्रियै शिखा
सिंहस्य लोम त्विपिरिन्द्रियाणि ॥ ९२ ॥

ऋष्यादि पूर्ववत् । मंत्रार्थ—(आत्मन्, उपस्ये, न, लोम,
टकस्य) अपने शरीरमें उपस्य और अधोभागके रोम टकलोम
से कलित हुए (न, मुखे, श्मश्रूणि, व्याघ्रलोम) और मुखपर
जो दाढ़ीमूत्रोंके बाल हैं वह व्याघ्रलोमसे कलित हुए (न, शी-
र्षम्, यशसे, केशाः, श्रियै) और शिरमें यशके निमित्त जो बाल
हैं शोभाके निमित्त हैं (शिखा, त्विपिः) शिखा कान्ति है (इ-
न्द्रियाणि सिंहस्य, लोम) जो इन्द्रिये हैं सो सब सिंहके रोम हैं ॥

अङ्गान्यात्मनिपजा तद्विश्वनात्मानमंगैः समं-
थात्सरस्वती । इन्द्रस्य रूपं शतमानमायुश्च-

न्द्रेण ज्योतिरमृतन्दधानाः ॥ ९३ ॥

ऋष्यादि पूर्ववत् । मंत्रार्थ—(इन्द्रस्य, रूपं, शतमानं, आयुः, चन्द्रेण, ज्योतिः, अमृतं, दधानाः) इन्द्रके रूपको और सैकड़ों पुरुषोंसे पूजनीय वा सौवर्ष वा पूर्ण आयुको प्रसन्नतादायक चन्द्र सम्बन्धी ज्योतिके द्वारा अविनाशी सम्पादन करतेहुए (भिपजा, अश्विना, आत्मन्, अह्नानि) धिकित्सक अश्विनी कुमाराँने शरीरमें अह्नोको संयुक्त किया (सरस्वती, तत्, अत्मानं, अह्नैः, समघात्) और सरस्वतीने उस शरीरको अवयवों द्वारा सन्धान किया अर्थात् अश्विनीकुमार और सरस्वतीने पूर्वोक्त विधिसे अह्नो के द्वारा इस यज्ञशरीरको सम्पादन किया इसके द्वारा इन्द्र [यजमान] को सुखमय जीवन और अमृतत्व प्राप्त होताहै ॥ ९३ ॥

सरस्वतीयोन्पाद्गर्भमन्तरश्विभ्याम्पत्नी सुकृतम्बिभर्ति । अपाथ रसेन वरुणो न साम्नेन्द्रं धियै जनघन्नुषु राजा ॥ ९४ ॥

ऋष्यादि पूर्ववत् । मंत्रार्थ (सरस्वती, अश्विभ्यां, पत्नी, गर्भ, सुकृतं, योन्पां, अन्तः, विभर्ति) सरस्वती देवी अश्विनीकुमारके पत्नीत्वको स्वीकार करतीहुई इन्द्ररूप गर्भको सम्यक्प्रकारसे योनि के भीतर धारण करतीहै (न, अप्सु, राजा, वरुणः, अपां, रसेन, साम्ना, धियै, इन्द्रं, जनयन्) और जलोका देवता राजा वरुण जलोके सारभूत रसके द्वारा सामके प्रभावसे जगत्की शोभारूप वा ऐश्वर्यके निमित्त इन्द्रको जननकी समान पोषण करताहै अथवा पत्नी सरस्वती इसको धारण करतीहै, अश्विनीकुमारोंके द्वारा वरुण इस इन्द्रका पोषण करतेहैं [यहाँ इन्द्रपदसे ऐश्वर्यवान् यज्ञका वर्णन है, वासीष्ठी सरस्वतीहै, जिस वेदवाणीमें यह यज्ञ स्थापित होताहै ध्रुलोक और भूमिके अधिष्ठात्री देवता इसको स्थापन करते हैं अथवा अहोरात्र स्थापकहैं ॥ ९४ ॥

तेजः पशूनाथे हृदिरिन्द्रिषावत्पद्भिस्तु पर्यसा साग्धम्मथुं अश्विभ्यान्दुग्धभिपजा सरस्वत्या

सुतासुताभ्याममृतः सोम इन्दुः ॥ ९५ ॥

ऋष्यादि पूर्ववत् । मंत्रार्थ—भिषजा, अश्विभ्यां सरस्वत्या, इन्द्रियावत्, पशूनां, सारथं, मधु, हविः, परिश्रुता, पयसा, तेजः, दुग्धम्) चिकित्सा करनेवाले अश्विनीकुमार और सरस्वतीने वीर्यवान् पशुमम्बन्धी दुग्ध घृत और मधुमाक्षिकाओंके घनाणु शहदरूप हविको लेकर परिस्रुत् किये दूधसे इन्द्रके निमित्त तेज को दुहा (सुतासुताभ्यां, अमृतः, इन्द्रः, सोमः) सुत असुत दुग्ध से अमृतरूप ऐश्वर्यदायक सोमको निकाला, इसप्रकार अश्विनी कुमार और सरस्वती आदि ने अनेकों द्रव्योंसे रस छेकर इन्द्रका उपकार किया ॥ ९५ ॥

इति श्री यजुर्वेदान्तगतं माध्यन्दिनीयं शाखाका मापावृषादे संहितं
एकोनविंश अध्याय समाप्तः ।

अथ विंशोऽध्यायः ।

क्षत्रस्य योनिरासि क्षत्रस्य नाभिरसि । मा त्वां
हिंसीन्मां मा हिंसीः ॥ १ ॥

इसमें १ मं० है । दोनोंका प्रजापति ऋ०, १ का द्विपदा विराह गा० २का प्रा० गा० ७७०, १का आसन्दी २का कृष्णाजिन दे० है । इसको पड़ताहुआ चौकीके दो पायेदक्षिणवेदी पर और दो उत्तरवेदी पर रखै । मंत्रार्थ—(क्षत्रस्य, योनिः, असि) हे आसन्दी ! तुम क्षत्रिय जातिकी राजपदवी की उत्पत्तिस्वान-हो (क्षत्रस्य, नाभिः, असि) तुम क्षत्रिय जातिकी नाभि अर्थात् एकताके बन्धनकी निदान हो । फिर चौकी पर मृगचर्म बिछावै (त्वा, मा, हिंसीः) हे कृष्णाजिन आसन्दी तुमको पीडा न देय (मा, मां, हिंसीः) तुम मुझको पीडा मत दो ॥ १ ॥

निर्षसाद् घृतघृतो वरुणः पस्त्यास्तवा । सात्रो-

ज्याय सुक्रतुः । मृत्यो पाहि विद्योत्पाहि ॥ २ ॥

इसमें ३ मं० हैं । तीनोंका प्रजापति देवता आर्ची उष्णिक् ७०

यजमान दे० है । यजमान बैठे । १ मंत्रकी व्याख्या अ० १० मंत्र २७ में होगई, भावार्थ यह है कि—हे यजमान ! तुम इसपर बैठने के फलसे दण्ड पुरस्कारके द्वारा देशके अनिष्टको दूर करनेवाले न्यायपरायण और राजकार्यमें चतुर होकर प्रजाओंपर सन्नद्वेष को जानेमें समर्थ हूजिये । फिर यजमान वामचरणके नीचे चाँदी का मण्डलाकार रुक्मभूषण रक्खे (मृत्योः, पाहि) हे रुक्म अकाल मृत्युसे मेरी रक्षा करो । फिर दाहिने चरणके नीचे सुवर्ण का रुक्म रक्खे (विद्योः, पाहि) हे रुक्म ! विजलीके उत्पात से मेरी रक्षा करो ॥ २ ॥

देवस्य त्वां सवितुः प्रसवेऽश्विनोर्वाहुभ्याम्पूष्णो
हस्ताभ्याम् । अश्विनोर्भैषज्येन तेजसे ब्रह्मवर्च-
सायाभिपिञ्चामि सरस्वत्यै भैषज्येन वीर्याया
न्नाथायाभिपिञ्चामीन्द्रस्यैन्द्रियेण बलाय भियै
यशसेऽभिपिञ्चामि ॥ ३ ॥

इसमें १ मं० है । तीनोंका अश्विनोः अ०, १ का माजापत्या ए० १।२ का आर्चागाय० छ०, सबका लि० दे० है। अध्वर्यु यजमानका अभिषेक करावै । मंत्रार्थ—(सवितुः, देवस्य, प्रसवे, अश्विनोः, वाहुभ्यां, पूष्णः, हस्ताभ्यां, अश्विनोः, भैषज्येन, तेजसे, ब्रह्मवर्चसाय त्वा, अभिपिञ्चामि) हे यजमान ! सविता देवताकी आज्ञा होने पर अश्विनीकुमारकी भुजा और पूषा देवताके हाथोंसे तथा अश्विनीकुमारकी चिकित्साके द्वारा कान्ति और ब्रह्मतेजके निमित्त तुम्हें अभिषेक कराता हूँ । सरस्वत्यै, भैषज्येन, वीर्याय, अनाथाय अभिपिञ्चामि) सरस्वती करके सम्पादन की हुई औषधिसे पराक्रम और अन्नभक्षणकी सामर्थ्य के निमित्त तुमको अभिषेक कराता हूँ । (इन्द्रस्य, ऐन्द्रियेण, बलाय, भियै, यशसे, अभिपिञ्चामि) इन्द्रकी इन्द्रियशक्ति की सामर्थ्यसे बल समृद्धि और यशकी प्राप्ति के निमित्त तुमको अभिषेक कराता हूँ ॥ ३ ॥

कोसि कतुमोसि कस्मै त्या कार्पे त्वा । सुश्लो-

कृ सुमंगल सत्यराजन् ॥ ४ ॥

इसमें २ मंत्र हैं। दोनोंका प्रजा० ऋ०, १ का प्राजा० गा० २ का उष्टिगर्भा प्राजा० गा० छ०, दे० दोनोंका यजमान है। अर्धव्यु यजमानको स्पर्श करै। मंत्रार्थ—(कः, असि) हे यजमान ! तुम कौन प्रजापति हो (कतमः, असि) बहुगोंमें कौनसे हो (कस्मै, त्वा) प्रजापति पदकी प्राप्तिके निमित्त तुम्हारा अभिषेक करता हूँ (काय, त्वा) प्रजापतिकी प्राप्तिके निमित्त तुम्हारा अभिषेक करता हूँ, अर्थात् तुम कौन प्रधान पुरुष हो, तुमने किस देवताकी प्रसन्नताके अर्थ इस महान् अनुष्ठानका आरम्भ किया है, क देवताकी प्रसन्नताके अर्थ इस महान् अनुष्ठानका आरम्भ किया है, क देवताकी प्रसन्नताके अर्थ इस महान् अनुष्ठानका आरम्भ किया है, क देवताकी प्रसन्नताके अर्थ इस महान् अनुष्ठानका आरम्भ किया है। फिर यजमान नामस्मरण करै। (सुश्लोक, सुमङ्गल, सत्यराजन्) हे सुन्दर कीर्तिवाले, हे श्रेष्ठमङ्गलमय, हे सत्यराज्यके गभो आह्वय ॥ ४ ॥

शिरों मे श्रीर्षशो सुखन्त्रिषिः केशाश्च
इमथ्रुणि । राजा मे प्राणो अमृतं सत्राट्
चक्षुर्विराट्श्रोत्रम् ॥ ५ ॥

इसका प्रजा० ऋ०, अनु० छ० इन्द्रशरीरावय दे० है। यहाँ से ५ मंत्र पढ़कर यजमान अपने शरीरको स्पर्श करै। मंत्रार्थ (शिरः, श्रीः) मेरा शिर ब्रह्मतेजसे शोभायुक्त हो (सुखं, यशः) सुख वेदपाठसे यशःस्वरूप हो (केशाः, च श्मथ्रुणि, त्रिषिः,) शिर के बाल ढाढ़ीपूछेँ हृदयमें ब्रह्माग्निके प्रकाशसे कान्तिरूप हो (राजा, मे, प्राणाः, अमृतम्) तेजस्वी मेरा प्राण समाधि लाभसे अमृत हो (चक्षुः, सत्राट्) चक्षु इन्द्रिय दिव्य दृष्टि पानेसे सुशोभित हो (श्रोत्रं, विराट्) दूरश्रवणकी शक्तिसे धात्रेन्द्रिय विशेष विराजमान हो ॥ ५ ॥

जिह्वा में भद्रं वाह्महो मनो मन्युः स्वराट् ।

भामः सोदाः प्रमोदा अंगुलीरंगानि मित्रमे सहः ॥

ऋष्यादि पूर्ववत् । मंत्रार्थ—(मे, जिह्वा, भद्रम्) मेरी जीभ कल्याणरूप हो (वाक्, महः) वाणी वैदिक सिद्धान्तको कहनेसे

पूजित हो (मनः, मन्युः) मन अहं ब्रह्मास्मि के उच्चारणसे अहं भावयुक्त हो (मामः, स्वराट्) क्रोध अपनी मर्षादामें विराजमान हो (अहुलयः, मोदाः) अहुलिये करन्याससे आनन्दरूप हों, (अह्नानि, प्रमोदाः) अह्न अह्नयाससे परमानन्दरूप हों (मे, मित्रं, सद्ः) मेरे मित्र शत्रुनाशक हों ॥ ६ ॥

बाहू मे बलमिन्द्रियं हस्तौ मे कर्मवीर्यम् ।

आत्मा चक्षुशो मम ॥ ७ ॥

इसका प्रजा० ऋ०, गाय० छं० देवता पूर्ववत् । मंत्रार्थ—(मे बाहू, इन्द्रियं, बलम्) मेरी दोनों भुजा इंद्रिय बलिष्ठ हों (हस्तौ, कर्मवीर्यम्) मेरे दोनों हाथ देवार्चनादि करनेमें समर्थ हों (मम, आत्मा, उरः, चक्षुश्च) मेरा अन्तरात्मा हृदय भी संसारसे रक्षा करनेवाला हो ॥ ७ ॥

पृष्ठीर्मे राष्ट्रमुदरं मूर्ध्नि शीवाश्च श्रोणी ।

ऊरु अरत्नी जानुनी विशो मेऽङ्गानि सर्धतः ॥ ८ ॥

इसका प्रजा० ऋ०, नि० अनु० छं०, देवता पूर्ववत् है । मंत्रार्थ (मे, पृष्ठीः, राष्ट्रम्) मेरा पृष्ठदेश सबको धारण करनेवाले राष्ट्रकी समान हो (उदरं, मूर्ध्नि, शीवा, ऊरु, अरत्नी, श्रोणी, जानुनी, च, सर्वता, अह्नानि, मे, विशः) पेट, कंधे, गरदन, दोनों ऊरु, हाथ, दोनों थोर का कटिभाग दो जंघा और सब अंग मेरे प्रजासमान पोषणीय हों अर्थात् राष्ट्ररूप शरीरमें यह सब अंग निरूपद्रवहों ॥ ८ ॥

नाभिर्मे चित्तं विज्ञानं पायुर्मेऽपचितिर्भसत् ।

आनन्दनन्दावाण्डौ मे भग्नः सौभाग्यम्पसः ।

जंघाभ्याम्पुद्गयान्धर्माऽस्मि विशि राजा प्रतिष्ठितः ९

इसका प्रजा० ऋ०, नि० जगती छं०, पूर्ववत् दे० है मंत्रार्थ—(मे, नाभिः, चित्तं) मेरी नाभि भगवान्के ध्यानसे ज्ञानमय हो (मे, पायुः, विज्ञानम्) मेरी पायु इंद्रिय ज्ञानजनित संस्कारका आधार हो (भसत्, अपचितिः) मेरी स्त्री की योनि सन्तानको

उत्पन्न करनेमें समर्थ हो (मे; अणुही, आनन्दनन्दौ) मेरे अणु-
कोश आनन्दसे समृद्ध हो (पसः, भगः, सौभाग्यम्) मेरी जन-
नेन्द्रिय योगैश्वर्य और योगसम्पत्तिसम्पन्न हो (जंघाम्यां, प्रज्ञयां
धर्मः, अस्मि) जंघा और चरणोंसे धर्मरूप होऊँ, नकि-विषयासक्त
(विशिः, गतिष्ठितः, राजा) गजाओंमें गतिष्ठित राजा हूँ ॥ ९ ॥

गतिं क्षत्रे प्रति तिष्ठामि राष्ट्रे प्रत्यक्षेषु प्रति
तिष्ठामि गोषु । प्रत्यङ्गेषु प्रति तिष्ठाम्यात्मनप्रति
माणेषु प्रति तिष्ठामि पुष्टे प्रति द्यावापृथिव्योः
प्रति तिष्ठामि यज्ञे ॥ १० ॥

इसका प्रजा० ऋ०, अतिशकरी छ०, विश्वेदेवा दे० है ।
चौकीसे नीचे बिछे मृगधालापर उतरा मंत्रार्थ--(क्षत्रे, गति, तिष्ठामि)।
मैं क्षत्रियजातिमें गतिष्ठित होता हूँ (राष्ट्र, गति) राष्ट्रमें गतिष्ठित
होता हूँ (अक्षेपु, प्रति) घोड़ोंमें आधिपत्य पाता हूँ (गोषु,
प्रति) गौओंके विषयमें आधिपत्य पाता हूँ (अक्षेपु, प्रति) शरीर
के अवयवोंमें गतिष्ठा पाता हूँ (आत्मन्, गति) आरोग्यतासे
चित्तमें गतिष्ठित होता हूँ (माणेषु, प्रति) माणोंमें प्र० को पाता
हूँ (पुष्टे, प्रति) धनसम्पत्तिमें प्र० को पाता हूँ (द्यावापृथिव्योः
प्रतिष्ठामि) स्वर्ग और भूनोकती गति० को पाता हूँ (यज्ञे,
प्रतिष्ठामि) यज्ञके विषयमें गतिष्ठित होता हूँ ॥ १० ॥

त्रया देवा एकादश त्रयस्त्रिंशदाः सुराधसः ।

वृहस्पतिपुरोहिता देवस्य सवितुः सवे । देवा
देवैरवन्तु मा ॥ ११ ॥

इसका प्रजा० ऋ०, व्यवसानापत्ति छ०, विश्वेदेवा दे० है ।
ग्रहहोम करे । मंत्रार्थ--(सुराधसः, वृहस्पतिपुरोहिताः, त्रया,
एकादश, देवाः, त्रयस्त्रिंशदाः, देवाः, सवितुः, देवस्य, सवे, देवैः,
मा, अवन्तु) सुन्दर धनवाले वृहस्पति है पुरोहित जिनका ऐसे
प्रज्ञा विष्णु शिव तीनों देवता, ग्यारह देवता, तीस देवता अथवा
ग्यारहके निम्न तीस देवता सबके प्रेरक देवताकी आज्ञामें वर्त-

मान देवताओंके साथ वा ब्रह्मादिके साथ मेरी रक्षा करे ॥ ११ ॥

प्रथमा द्वितीयैर्दिवृतीयास्मृतीपैस्तृतीयाः सत्येन
सत्यं यज्ञेन यज्ञो यजुर्भिर्यजुष्षि सामभिस्सामान्यग्निर्ऋचः पुरोनुवाक्याभिः पुरोऽनुवाक्या
याज्याभिर्याज्या वपट्कारैर्वपट्कारा आहुतिभि
राहुतपो मे कामान्तसमर्दयन्तु भूः स्वाहा ॥ १२ ॥

इसका प्रजा० ऋ०, महुति छ०, विश्वेदेवा दे० है । मंत्रार्थ—
(प्रथमाः, द्वितीयैः) पहिले कहे हुए वसु देवता दूसरे रुद्र देवता-
ओंसे मिलकर मेरी रक्षा करे (द्वितीयाः, तृतीयैः) दूसरे तीसरे
के साथ (तृतीयाः, सत्येन) तीसरा आदित्य देवता सत्यरूप ब्रह्म
के साथ (सत्यं, यज्ञेन) ब्रह्म यज्ञके साथ (यज्ञः, यजुर्भिः) यज्ञ
यजुर्वेदके मंत्रोंके साथ (यजुष्षि, सामभिः) यजु साममंत्रोंके साथ
(सामानि, ऋग्भिः) साम ऋचाओंके साथ (ऋचः, पुरोऽनु
वाक्याभिः) ऋचाएं पुरोऽनुवाक्य मंत्रोंके साथ (पुरोनुवाक्याः
याज्याभिः) पुरोनुवाक्य याज्य मंत्रोंके साथ (याज्याः, वपट्कारैः)
याज्य हविःसमर्पणके मंत्रोंके साथ (वपट्काराः, आहुतिभिः)
वपट्कार आहुतियोंके साथ (आहुतयः, मे, कामान्, समर्दयन्तु)
आहुतियों मेरी कामनाओंको पूर्ण करे (भूः, स्वाहा) भुवनको
भलेमकार दी हुई आहुति स्वीकृत हो ॥ १२ ॥

लोमानि प्रयतिर्मम त्वङ् न आनतिरागतिः ।

मांसस्य उपनातवस्वस्थि मज्जा म आनतिः ॥ १३ ॥

इसका प्रजा० ऋ०, अनु० छ०, निद्रोक्त दे० है । यजमान
ग्रहणको भक्षण करे । मंत्रार्थ—: मम, लोमानि, प्रयतिः) मेरे
सम्पूर्ण रोम निशाल हों (मे, त्वङ्, आनतिः, आगतिः) मेरी
त्वचा ऐसी हो कि—जिसको सब झुककर गणाम करे और सब
संभोग आवे (मे, मांस, उपनातिः) मेरा मांस मांसियोंको नम-
स्कार करानेवाला हो (अस्थि, वसु) मेरी हड्डियों धनरूप हों
(मे, मज्जा, आनतिः) मेरी मज्जा हड्डीके भीतरका भाग जगत्

को नमन करानेवाजाहो, अर्थात् मेरे शरीरमेंकी सातोधातु जागृत
को बशमें करसकै ॥ १३ ॥

यद्देवा देवहेडनन्देवासश्चक्रमा व्रयम् । अग्नि-
र्मा तस्मादेनसो विश्वान्मुञ्चत्वथंहसः ॥ १४ ॥

इसका प्रजा० ऋ०, अनु० छ०, अग्नि दे० है । मास्तरकुंभ
को जनमें तैरात्रै । मंत्रार्थ—(देवाः, देवासः, वयं, यत्, देवहेडनं,
आचक्रम, तस्मात्, एनसः, विश्वात्, अंहसः, अग्निः, मां,
मुञ्चतु) हे मकाशवान् देवताओ ! हमसे जो देवताओंका अपराध
हुसा हो उस पापसे और सकल विघ्नरूप पापोंसे अग्नि देवता
मुझे मुक्त करै ॥ १४ ॥

यदि दिवा यदि नक्तमेनांसि चक्रमा व्रयम् ।

वायुर्मा तस्मादेनसो विश्वान्मुञ्चत्वथंहसः ॥ १५ ॥

इसका प्रजा० ऋ०, अनु० छ०, वायु दे० है । मंत्रार्थ—(वयं
यदि, दिवा, यदि, नक्तं, एनांसि, आचक्रम, वायुः, तस्मान्, एनसः
विश्वान्, अंहसः, मां, मुञ्चतु) हमने यदि दिनमें और यदि रात
में जो पाप कियेहो वायु देवता उस पापसे तथा सम्पूर्ण पापोंसे
मेरी रक्षा करै ॥ १५ ॥

यदि जागृद्यदि स्वप्न एनांसि चक्रमा व्रयम् ।

सूर्यो मा तस्मादेनसो विश्वान्मुञ्चत्वथंहसः ॥ १६ ॥

इसका प्रजा० ऋ०, अनु० छ०, सूर्य दे० है । मंत्रार्थ (वयं,
यदि, जाग्रत्, यदि, स्वप्ने, एनांसि, आचक्रम, सूर्यः, तस्मात्,
एनसः विश्वात्, अंहसः, मां, मुञ्चतु) हमने यदि जागते में
यदि सोतेमें कुछ पाप किये हैं सूर्य देवता उस सब पापसे और
सकल पापोंसे मुझको मुक्त करै ॥ १६ ॥

यद् ग्रामे यदरण्या यत्सभायां यदिन्द्रिये ।

यच्छूद्रे यदर्ये यदेनश्चक्रमा व्रयं यदेकस्याधिधर्माणि

तस्यांययजनमसि ॥ १७ ॥

इसका प्रजा० ऋ०, नि० अनु० छ०, लिङ्गोक्त दे० है मंत्रार्थ

(यत्, ग्रामे, यत्, अरण्ये, यत्, सभायां, यत्, इन्द्रिये, यत्, शूद्रे, यत् अर्थे, यत्, एतः, वयं, चक्रेम) जो ग्राममें, जो वनमें वृक्ष-च्छेदनरूप, जो सभामें असत्यभाषण आदि, जो सकल इन्द्रियों से परदोषकथन परनारीदर्शनादि वा जो देवताओंमें, जो दास-वर्गमें, जो वैश्योंमें जो पाप हमने किया है (यत्, एकस्य, अधि-धर्मणि, आचक्रेम) जो पाप परमीसहित यजमानके एककर्म में किया है (तस्य, अवयजनं, असि) उस सब पापको हे देवताओं वा कुम्भके हे अधिष्ठात्री देवता निवारण करनेवाले हो ॥ १७ ॥

यदापो अघ्न्या इति वरुणेति शपामहे ततो
वरुण नो मुञ्च । अवभृथ निचुम्पुण निचेरुःसि
निचुम्पुणः । अव, देवैर्वैवकृतमेतोऽयक्ष्यं व मर्त्यै-
र्मर्त्यैकृतम्पुरुराण्यो देव रिपस्याहि ॥ १८ ॥

इसका मजा० अ०, अनु० अं०, लिङ्गोक्त दे० है । वरुणकी मार्यना मंत्रार्थ—(वरुण, यत्, आपः, अघ्न्या, इति, शपामहे, वरुण, ततः, नः, मुञ्च) हे वरुण । जो जल स्वच्छ रखनेयोग्य हैं वा जो सोमलता काटनेयोग्य नहीं है उसको हमने जो आभि-सुप्त आदि किया है, हे, वरुण उस पापसे हमको मुक्त करो । कुम्भको जलमें डुबोवे । (निचुम्पुण, अवभृथ, निचेरुः, असि) हे मन्दगति जलाशय ! अवभृथ ! यद्यपि तुम अतिगमनशील हो (निचुम्पुण) तो भी मन्दगति होजाओ (देवैः, देवकृतं, एतः, अवयसि) क्योंकि मैंने ज्ञानेन्द्रियोंके द्वारा जानकर हविके स्वामी देवताओंका जो कुछ अपराध किया है वह इस जलाशयमें दूर किया (मर्त्यैः, मर्त्यैकृतं, अव) हमारे सहायक ऋतिवजों करके यज्ञका दर्शन करनेको आयेहुए मनुष्योंकी अवशारूप जो पाप बना वह हमने इस जलमें नष्ट करादिया (देव, पुरुराण्यः, रिपः प्राहि) हे यह ! विरुद्ध फल देनेवाले पापसे मेरी रक्षा करो १८
समद्रे ते हृदयमपस्वन्तः सन्त्वाविशन्तोपधी-
रुतापः । मुषित्रिया न आप ओषधयः सन्तु इ-

दुर्भित्रियास्तस्मै सन्तु योऽस्मान्दोष्टिः घञ्च
घृयन्दिपतः ॥ १९ ॥

इसमें ४ मं० हैं । जिनमें १ मं० संमुद्रेते इत्यादिसे यजमान
अवष्टयस्थानसे दो चरण चतै इसकी व्याख्या अ० ८ मं० २१
में होगई । दूसरे मंत्र सुभिप्रिया इत्यादिसे उत्तरमुख होकर जल
की अंजुलिलेय । तीसरे दुर्भिप्रिया इत्यादिसे जिधर शत्रु रहतेहों
उस दिशामें अंजुलिढालदेय, इसकी व्याख्या १। २२ में होगई १९
द्रुपदादिव मुमुक्षानः स्विन्नः स्नातो मलादिव ।

पूतस्पृषित्रेणोवाज्यमापः शुन्धन्तु मैत्रः ॥ २० ॥

इसका प्रजा० ऋ०, अनु० छ०, आप दे० है । पत्नी सहित
यजमान कर्मसमयमें धारण किये वस्त्रोंको त्यागै । मंत्रार्थ—(आपः
मा, एनसः, शुन्धन्तु) जल देवता सुभक्तों पापसे पवित्र करै (इव
द्रुपदात्, मुमुक्षानः) जैसे पुरुष सहजमें ही खड़ाऊँ से अलग हो
जातेहैं (इव, स्विन्नः, स्नातः, मलात्) अथवा जैसे किसीको
पसीना आरहा हो वह पुरुष स्नान करनेपर मैलसे मुक्त होजाता
है (वा, पवित्रेण, पूतं, आज्यम्) अथवा जैसे ऊनी वस्त्रमें छाना
हुआ घृत मलसे रहित होजाताहै ॥ २० ॥

उद्वयन्तमसृपस्त्रिः पश्यन्त उत्तरम् । देव-

देवत्रा सूर्यमाग्न्म ज्योतिरुत्तमम् ॥ २१ ॥

इसका प्रक्षय ऋ०, अनु० छ०, सूर्य दे० है । जलमेंसे निकलै
मंत्रार्थ—(तमसः, परि, उत्तमं, स्वाः, पश्यन्तः, वयं, देवत्रा, देवं
सूर्यं, उत्तमं, ज्योतिः, उदगन्म) अन्धकारमय लोकसे परमश्रेष्ठ
स्वर्गलोकको देखतेहुए हम देवलोकमें सूर्यदेवताको देखतेहुए श्रेष्ठ
महज्योतिको प्राप्त हुए ॥ २१ ॥

अपो अद्यान्वचारिपथ रस्मैन् समसृक्षमहि ।

पयस्वानग्न आगं प्रन्तन्मासथं सृज वक्षसा प्रजयां

च धनेन च ॥ २२ ॥

इसका प्रजा० ऋ०, पंक्ति छ०, अग्नि दे० है । यजमान आ-

हवनीयका उपस्थान करै। मंत्रार्थ—(अग्ने, अद्य, अपः, अन्वचारि-
पम्) हे अग्ने ! आज मैंने जलकर्मको पूर्ण किया अर्थात् अवभृथ
कर्मसे जलको विछोड़ा है (रसेन, समसृक्षमहि) जलके रसेसे
संयुक्त हुआ हूँ (पयस्वान्, आगमम्) जलवान् आया हूँ (तं, मा
वर्चसा, च, प्रजया, च, धनेन, संसृज) ऐसे मुझको तेजसे, पुत्र
पौत्रादिसे तथा सुवर्णादि धनसे संयुक्त करो ॥ २२ ॥

ऐशोस्पेधिपीमहिं समिधमि तेजोमि तेजो मयि
धेहि समावर्चस्ति पृथिवी समुपाः समु सूर्यः ।
समु विश्वमिदं जगत् । वैश्वानरज्योतिर्भूयासं
विभून्कामान्व्यश्नवै ऋः स्वाहा ॥ २३ ॥

इसमें ४ मंत्र हैं । सबका मन्त्रा० ऋ०, १ । २ का मन्त्रा० वृह०
१ । ४ का मन्त्रा० उद्विण्कृ छ०, २ । २ का समिध् देवता । ३ । ४
का अग्नि दे० है । आहुतिके निमित्त समिधा उठावै । मंत्रार्थ (पधः,
पधिपीमहि) हे समिध तुम प्रकाश करनेवाले हो । तुम्हारे अनु-
ग्रहसे मैं धनादिकी वृद्धिको पाऊँ । यह समिधा आहवनीयमें
छोड़नेको उद्यत होय (समिध, असि, तेजः, असि, मयि, तेजः,
धेहि) हे समिधा तुम पूर्ण प्रकाश करनेवाली हो तुम तेजःस्वरूप
हो, मुझमें तेजको धारण करो । समिधामें घी लगावै—पृथिवी,
समावर्चस्ति) पृथिवी प्रतिक्षण परिवर्तनशील है (उपाः, सम्)
प्रभातकाल आतेजाते रहतेहैं (सूर्यः, उ, सम्) सूर्य भी वार २
उदित और अस्त होतेहैं (इदं, विश्वम्, जगत्, उ, सम्) यह सब
संसारभी आवागमनशील है कृष्ण भी स्थिर नहीं है । उस
समिधाको अग्निमें होमै—(वैश्वानरज्योतिः, भूयासम्) सकल
कामनाओंको पानेके निमित्त मैं सकल प्राणियोंके हितकारी परमा-
त्माकी ज्योतिको माप्त हूँ (विभून्, कामान्, व्यश्नवै) बहुतसे मनो-
रथोंको पाऊँ (भूः, स्वाहा) सत्स्वरूप ब्रह्मको दी हुई यह आहुति
भलेप्रकार गृहीत हो ॥ २३ ॥

अभ्याद्वामि समिधमग्ने व्रतंपते त्वयि । व्रतधं ।

श्रुदावोपिमीन्धे त्वां दीक्षितो अहम् ॥ २४ ॥

इसका अश्वतराशी ऋ०, ति० अनु० छं० अग्नि दे० है ।
अग्न्याधान और ब्रह्मवरणके अन्तर यजमान आहवनीयाग्निमें
तीन समिधा छोड़ै । मंत्रार्थ—(व्रतपते, अग्ने, समिधं, त्वयि,
अभ्यादधामि) हे कर्मके पालक अग्ने ! यह समिधा तुममें स्था-
पन करता हूँ (दीक्षितः, अहं, व्रतं, च, श्रुदां उपैमि) यज्ञमें
दीक्षितहूआ मैं कर्म और धद्धाको प्राप्त होता हूँ (त्वा, इन्धे
च) और तुमको प्रदीक्षणी करता हूँ ॥ २४ ॥

यत्र ब्रह्मं च क्षत्रञ्च सम्पञ्चौ चरतः सहस्रल्लो-
कम्पुण्यम्प्रज्ञेपुं यत्र देवाः सहाग्निना ॥ २५ ॥

इसका अश्वतराशी ऋ०, अनु० छं०, अग्नि देवता है ।
मंत्रार्थ—(यत्र, ब्रह्म, च, क्षत्रञ्च, सह, सम्पञ्चौ, चरतः) जहाँ
ब्राह्मण और क्षत्रियजाति भी साथ एकमन होकर विचरतेहैं (यत्र
देवाः, अग्निना, सह) जहाँ देवता अग्निके साथ निवास करतेहैं
(तं, पुण्यं, लोकं, प्रज्ञेपम्) उस पवित्र स्वर्गलोकको मैं पाऊँ १५
यत्रेन्द्रश्च वायुश्च सम्पञ्चौ चरतः सह । तं-
ल्लोकम्पुण्यम्प्रज्ञेपुं यत्र सेदिर्न विद्यते ॥ २६ ॥

इसका ऋष्यादि २३ वें मंत्रकी समान है । मंत्रार्थ—(यत्र, इन्द्रः
च, वायुः, च, सह, सम्पञ्चौ, चरतः) जहाँ इन्द्र और वायु भी
साथ एकमन होकर विचरते हैं (यत्र, सेदिः, न, विद्यते) जहाँ
अन्न-पानके निमित्त दुःख नहीं है (तं, पुण्यं, लोकं, प्रज्ञेपम्) उस
पवित्र लोकको मैं प्राप्त होऊँ ॥ २६ ॥

अथशुनां ते अथशुः पृच्यताम्परुषा परुः ।

गन्धस्ते सोमं चतु मदाय रसो अच्युतः ॥ २७ ॥

इसका मजा० ऋ०, अनु० छं०, सुरा दे० है । इस मंत्र से
रसको मिलावै । मंत्रार्थ—(तं, अथुः, अथुना) हे महीपाधिरस !
तुम्हारा भाग सोमके भागसे मिलै (परुः, परुषा, पृच्यताम्)
तुम्हारा पर्व सोमके पर्वसे मिलै (तव, गन्धः, अच्युतः,) तुम्हारा

गन्ध अविनाशी हो (रसः, मदाय) रस र्हरणार्थके निमित्त हो
(सोमं, अयतु) सोमसे आर्लिंगन करो ॥ १७ ॥

सिञ्चन्ति परिपिबन्त्युत्सिञ्चन्ति पुनन्ति च
सुरार्थं चम्रै मदे किन्त्वो वदति किन्त्वः ॥ २८ ॥

ऋष्यादि पूर्ववत् । पवित्र किये रसको ग्रहण करै । मंत्रार्थ
(वभ्रूँ, सुरार्थं, मदे, किन्त्वः, किन्त्वः, वदति) बलकीधारक कपिलवर्ण
महोपधियोंके रसपानसे प्रसन्नतामें स्थित हृश्वा इन्द्र, तुम किस
के तुम किसके हो ऐसा कहगाहै (सिञ्चन्ति) इसकारण उसको
पात्रमें ऋत्विज सींचतेहैं (परिपिबन्ति) दूधसे सींचतेहैं (उत्सि-
चन्ति) ग्रहोंसे सींचते हैं (च, पुनन्ति) पावन सुवर्ण आदिसे
पवित्र करतेहैं ॥ २८ ॥

धानावन्तं करम्भिणामपूपवन्तमुक्थिनम् । इन्द्रं
मातज्जुपस्व नः ॥ २९ ॥

इसका विश्वामित्र ऋ०, गाय० छ०, इन्द्र दे० है । खीलोंका
होम करै—(इन्द्रः, मातः, नः, धानावन्तं, करम्भिणं, अपूपवन्तं,
उक्थिनं, जुपस्व) हे इन्द्र ! मातःकाल हमारी खीलों से युक्त
दही, सत्त और मालहूप आदिसे युक्त स्तुतिके साथ पुरोडाश
को सेवन करो ॥ २९ ॥

बृहदिन्द्राय गायतु मरुतो वृत्रहन्तमम् । येन
ज्योतिरजपन्नृतावृषो देवन्देवाय जागृवि ॥ ३० ॥

इसका वृमेध पुरुषमेध ऋ०, बृह० न०, इन्द्र दे० है । ब्रह्मा
इस मंत्रसे सामगान करै । मंत्रार्थ—(मरुतः, इन्द्राय, वृत्रहन्तमं
वृहत्साम, गायत) हे ऋत्विजों ! इन्द्रके निमित्त अति पापनाशक
वा वृत्रासुर नाशक बृहत्सामको गाओ (ऋतावृषः, येन, देवाय,
देवं, जागृवि, ज्योतिः, अजनयन्) यज्ञकी वृद्धि करनेवाले देवता
वा ऋत्विजोंने जिस सामगानसे इन्द्रके निमित्त दीप्तिमान जागते
हूप अविनाशी तेजको प्राप्ता कराया अर्थात् सामगानसे इन्द्रते
जस्वी होताहै ॥ ३० ॥

अध्वर्यो अद्रिभिः सुतं सोमं पवित्रं आनय ।

पुनाहीन्द्राय पातवे ॥ ३१ ॥

इसका मजा० ऋ०, णा० छ०; इन्द्र दे० है। दुग्धको अभि-
मंत्रित करे। मंत्रार्थ—(अध्वर्यो, अद्रिभिः, सुतं, सोमं, पवित्रं, आनय)
हे अध्वर्यु! तुम पत्थरोंमें अभिपुन सोमको पवित्रमें लाओ (इन्द्रस्य,
पातवे, पुनादि) इन्द्रके पीनेके लिये पवित्र करो ॥ ३१ ॥

यो भूतानामधिपतिर्यस्मिंल्लोका अधिधिताः ।

य ईशो महतो महास्तेन गृह्णामि त्वामहमाधि
गृह्णामि त्वामहम् ॥ ३२ ॥

इसका कौण्डिन्य ऋ०, पौं० छ०, ग्रह दे० है। ग्रहको ग्रहण
करे। मंत्रार्थ—(यः, भूतानां, अधिपतिः) जो प्राणियोंका पालन
करनेवाला है (यस्मिन्, लोकाः, अधिधिताः) भू आदि लोक
जिस परमात्माके आश्रयसे ठहरे हुए है (यः, महान् महतः, ईशे)
जो सबसे बड़ा और बड़ोंका भी नियन्ता है (अहं, तेन, त्वा, गृह्-
णामि) हे ग्रह उसी परमात्माकी आज्ञानुसारमें उस परमात्मा
के अनुग्रह से तुझको ग्रहण करता हूँ (अहं, त्वा, माधि, गृह्णामि)
मैं तुझको परमात्मभावको प्राप्त हुए अपनेमें ग्रहण करता हूँ ३२

उपयामगृहीतोस्यशिवभ्यान्त्वा सरस्वत्यै त्वे-

न्द्राय त्वा सुत्राग्णा एष ते योनिरश्विभ्यान्त्वा

सरस्वत्यै त्वेन्द्राय त्वा सुत्राग्णौ ॥ ३३ ॥

इसका व्याख्या अ० १० मं० २ में होगई ॥ ३३ ॥

प्राणपा मे अपानपाश्चक्षुष्वाः श्रोत्रपाश्च मे ।

वाचो मे विश्वभेषजो मनसोसि विलायकः ॥ ३४ ॥

इसका मजा० ऋ०, अनु० छ०, ग्रह दे० है। हुतशेषको सूँघे
वा भक्षण करे। मंत्रार्थ—(मे, प्राणपाः, अपानपाः, चक्षुष्वाः,
च, मे, श्रोत्रपाः, मे, वाचः, विश्वभेषजः, च, मनसः, विलायकः
असि) हे ग्रह वा हे परमात्मन ! तुम मेरे प्राणोंके रक्षक अपान
वायुके रक्षक, नेत्रोंके रक्षक, श्रोत्रोंके रक्षक, मेरी वाणीरूप, सकल

श्रौषधो मे मधान तथा मेर मनको विषयोसे हटाकर आत्मस्वरूप में स्थापन करनेवाले हो ॥ ३४ ॥

अश्विनकृगस्य ते सरस्वतिकृतस्येन्द्रेण सुत्रा-

मणां कृतस्य । उपहृत उपहृतस्य भक्षयामि ॥ ३५ ॥

इसका मजा० ऋ०, उपरिष्ठात् वृद्धी छ०, ग्रह दे० है । मंत्रार्थ— (उपहृतः, अश्विनकृगस्य, सरस्वतिकृगस्य, सुत्रामणा, इन्द्रेण, कृगस्य, उपहृतस्य, ते, भक्षयामि) हे ग्रह ! आज्ञा पायाहुभा में अश्विनी कुमारसे संस्कार कियेहुए, सरस्वतीके प्रस्तुत कियेहुए रक्षा करने वाने इन्द्रसे संस्कार किये वा देखेहुए और ऋत्विजोंसे आवाहन कियेहुए तुझको भक्षण करता हूँ ॥ ३५ ॥

समिद्ध इन्द्रं उपमामनीके पुरोरुचां पूर्वकृद्वा-

वृधानः । त्रिभिर्देवैस्त्रिंशता वज्रवाहुर्जघानं

वृत्रं वि दुरो विवार ॥ ३६ ॥

इसका आगिरस ऋ०, त्रि० छ०, इन्द्र दे० है । ग्यारह मंत्रों से इन्द्रनामक आग्निप्रिययाजयाज्य करे । मंत्रार्थ— समिद्धः, उपसां, अनीके, पुरोरुचा, पूर्वकृत्, त्रिभिः, त्रिंशता, देवैः, वावृधानः, वज्रवाहुः, इन्द्रः, वृत्रं, जघान) भलेनकारसे दीप्त उपःकालके मुख अर्थात् प्रातःकालके समय आगे चलनेवाले प्रकाशसे सूर्यरूपसे पूर्वदिशाको प्रकाशित करनेवाले तीन और तीस अर्थात् नैतीस देवताओंके साथ वृद्धि पानेवाले नक्षत्रवारी इन्द्रने वृत्रासुर वा मेघको ताड़न किया (दुरः, विववार) मघोंके सोतों वा दैत्यपुरीके द्वारको सूना किया वा खोला ॥ ३६ ॥

नराशंसः प्रति शूरो भिमो नूस्तनूपात्प्रति

यज्ञस्य धामं । गोभिर्वपावान्मघुना समञ्जन्वहिर-

ण्यैश्चन्द्री यजति प्रचेताः ॥ ३७ ॥

इसका आगिरस ऋ०, त्रि० छ०, तनूपात् दे० है । मंत्रार्थ— (नराशंसः, शूः, यज्ञस्य, धामं, प्रतिभिममानः, तनूपात्, गोभिः, वपावान्, मघुना, समञ्जन्, हिरण्यैः, चन्द्री, प्रचेताः, प्रतियजति)

तु विश्ववेदाः । वाधेतान्द्रेपो अभयं कृणोतु सुवी-
र्यस्य पतयः स्याम ॥ ५१ ॥

इसका गर्ग ऋ०, भुरिर् पंक्ति छं०, इन्द्र दे० है । मंत्रार्थ-
(सुदामा, स्ववान्, विश्ववेदाः, इन्द्रः, अयोभिः, सुमृडीकः, भवतु)
सुरक्षक, धनवान्, सर्वज्ञ इन्द्र अन्नोंके द्वारा सुखकारी हं (द्वेषः,
वाधतां) हमारे दुर्भाग्यको दूर करै (अभयं, कृणोतु) हमको
अभय देय (सुवीर्यस्य, पतयः, स्याम) हम श्रेष्ठ धनके स्वामी हों
अथवा सुपुत्रवान् हों ॥ ५१ ॥

तस्य वपथं सुमतौ यज्ञियस्यापि भद्रे सौमनसे
स्याम । समुत्रामा स्ववा २ ॥ इन्द्रोऽअस्मेऽआरा
च्चिद्द्वेषः सनुतर्णुयातु ॥ ५२ ॥

इसका गर्ग ऋ०, पंक्ति छं०, इन्द्र दे० है । मंत्रार्थ- (वयं,
तस्य, यज्ञियस्य, सुमतौ, स्याम) हम उस पथका सम्पादन करने
वाले इन्द्रकी सुमतिमें प्राप्त हों (भद्रे, सौमनसे, अपि) कल्याण
रूप श्रेष्ठ मनमें भी स्थित हों अर्थात् इन्द्र हमारे मनको सुमति
और कल्याणसे युक्त करै (सः, सुत्रामा, स्ववान्, इन्द्रः, अस्मे
आरात्, चित्, द्वेषः, सनुतः, युयातु) वह सुरक्षक, धनवान् इन्द्र
हम से दूर स्थितभी जोकुछ दुर्भाग्य हो उसको अन्तर्हित करके
दूर करै ॥ ५२ ॥

आमन्दैरिन्द्र हरिभिर्याहि मयूररोमभिः । मा
त्वा केचिन्नियमन्विन्न पाशिनोऽतिधन्वेष्व तान्
हहि ॥ ५३ ॥

इसका विश्वामित्र ऋ०, वृहती छं० इन्द्र देवता है । मंत्रार्थ-
इन्द्र, मन्दैः, मयूररोमभिः, हरिभिः, आयाहि) हे इन्द्र ।
गभीर दिनहिनाहट और मोरकी समान रोमवाले अपने घोड़ों
के द्वारा यहाँ आइये (केचित्, त्वा, मा, नियमन्) कोईभी आते
हुए तुमको बाधा नहीं देसकता (न, पाशिनः, विम्) जैसे पाश
धारी व्याधे पशुको पकड़ते हैं (तान्, धन्व, इव, अतीरिहि) उन

को महभूमिकी समान लौघकर आओ ॥ ५२ ॥

एवेदिन्द्रं घृषणं वज्रबाहुं वसिष्ठासो अभ्यर्च-
न्त्यकैः स नस्तुतो वीरवद्धातु गोमधूपम्पात
स्वस्तिभिः सदा न ॥ ५४ ॥

इसका वशिष्ठ ऋ०, त्रि० छं०, इन्द्र दे० है । मंत्रार्थ—(वसिष्ठा-
सा, एव, इत्, अर्कः, घृषणं, वज्रबाहुं, इन्द्रं, अभ्यर्चन्ति) परम
ब्रह्मविचारपरायण महर्षि इसप्रकार ही मंत्रोंके द्वारा मनोरथ पूर्ण
करनेवाले वज्रधारी इन्द्रकी अर्चना करते हैं (सः, स्तुतः, वीर-
वत्, गोमत्, नः, धातु) वह स्तुतिको प्राप्तहुआ पुत्रयुक्त गोधन
युक्त हममें स्थापन करे (यूथं, स्वस्तिभिः, नः, सदा, पात) हे
ऋत्विजों ! तुम अनेकों कल्याणोंके द्वारा निरन्तर हमारी
रक्षा करो ॥ ५४ ॥

सामिदो अग्निरश्विना तप्तो घृमो विराट्सुतः ।

दुहे घेनुः सरस्वती सोमंश्च शुक्रमिहेन्द्रियम् ॥ ५५ ॥

इसका विदर्भ ऋ०, अनु० छं०, अश्विसरस्वतीन्द्र दे० है ।
मंत्रार्थ—(इन आपिय मंत्रोंका पढ़—(अश्विना, अग्निः, सामिदः)
हे अश्विनीकुमारों अग्नि पदीसा हुआ (घर्मः, तप्तः) प्रवर्ग्य-
तप्त हुआ (विराट्, सुतः) विराजमान सोम अभिपुत्र किया
गया (घेनुः, सरस्वती, इह, शुक्रं, इन्द्रियं, सोमं, दुहे) वृत्त करने
वाली घेनुरूपा सरस्वती देवीने इस यज्ञमें शुद्ध इन्द्रियोंके निरोपत्त
बलदायक सोमको दुहा ॥ ५५ ॥

तनूपा भिपजा सुतोऽश्विनोभा सरस्वती । मध्वा

रजांश्चिन्दिषमिन्द्राय पथिभिर्वहान् ॥ ५६ ॥

इसका विदर्भ ऋ०, विराट् अनु० छं०, अश्विसरस्वतीन्द्र दे०
है । मंत्रार्थ—(तनूपा, भिपजा, उभा, अश्विना, सरस्वती, मध्वा
रजांश्चि, सुते, पथिभिः, इन्द्राय, इन्द्रियं, वहान्) शरीरके रक्षक
वैद्य दोनो अश्विनीकुमार और सरस्वती देवी मधु से लोकोंको
पूर्ण करती हैं सोमका अभिपव होनेपर उसको मार्गमें इन्द्रकी

इन्द्रियांती इन्द्रिके निमित्त वहन करत है ॥ ५६ ॥

इन्द्रायेन्दुं सरस्वती नराशंसैः नृग्नहुम् ।

अधातामश्विना मधु भेषजम्भुपजां सुते ॥ ५७ ॥

इसका विदभि ऋ० अनु० छ० अश्विसंस्वतीन्द्र दे० है ।
मंत्रार्थ—(सरस्वती, नराशंसैः, इन्द्राय, इन्दुं, नृग्नहुं, भुपजा
अश्विना, सुते, मधु, भेषजं, अधाताम्) सरस्वतीने यज्ञके साथ
इन्द्रके निमित्त सोमनामक महीपथाके कन्दको धारण किया
और वैद्य अश्विनीकुमारोंने अभिपुत होनेपर इस मधुर औष-
धिको धारण किया ॥ ५७ ॥

आजुह्वाना सरस्वतीन्द्रायेन्द्रियाणि वीर्यम् ।

इडाभिरश्विनाधिषथ सन्नुजथ सथग्धिन्दधुः ॥ ५८ ॥

इसका विदभि ऋ०, नि० अनु० छ०, अश्विसरस्वतीन्द्र दे०
है । मंत्रार्थ—(आजुह्वाना, सरस्वती, अश्विना, इन्द्राय, इन्द्रियाणि
वीर्यम्, सन्दधुः) इन्द्रको बुलाती हुई सरस्वती और अश्विनी
कुमारोंने इन्द्रके निमित्त चक्षु आदि इन्द्रियों और सामर्थ्यको
स्थापन किया (इडाभिः इपं, ऊर्म, रथि, सम्) गों आदि पशु-
ओंसहित अन्न, दही आदि रस और धनको स्थापन किया ५८

अश्विना नमुचेः सुतथ सोमथ शुक्रस्परिष्णुमां ।

सरस्वती तमाभरद्दृहिषेन्द्राय पानवे ॥ ५९ ॥

इसका विदभि ऋ०, अनु० छ० अश्वि० दे० है । मंत्रार्थ
(अश्विना, परिष्णुमां, सुतं, शुक्रं, सोमं नमुचेः, सरस्वती) अश्विनी
कुमारोंके द्वारा महीपथाके रसांक साथ अभिपुन, पवित्र सोम
को नमुचि अमुर वा पापसे सरस्वतीने हरण किया (तं, इन्द्राय,
पानवे, वरिष्णु, अमरद्) इसका इन्द्रकी रसाके निमित्त कुशाओं
पर धारण किया ॥ ५९ ॥

कृत्वा न व्यचेस्वतीश्विभ्यान्तदुरो दिशः ।

हन्ती नरोदसी जुभे दुहे कृमिान्तरसरस्वती ॥ ६० ॥

इसका विद० ऋ०, अनु० छ०, अश्वि० दे० है। मंत्रार्थ—अश्विभ्यां, सरस्वती, न, इन्द्रः, उभे, सोदसी, न, कविष्यः, व्यचस्वतीः, दुरः, न, दिशः कामान्, दुदे) अश्विनीकुमारोंके साथ सरस्वतीने और इन्द्रने दोनों धावा पृथिवी और विद्रयुक्त तथा थवकाशयुक्त यज्ञीय द्वार और सब दिशाओंसे कापगाओं को दुहा ॥ ६० ॥

उपासा नक्तमश्विना दिवेन्द्रं च सायमिन्द्रियैः ।

सज्जानाने सुपेशंसा समञ्जाने सरस्वत्या ॥ ६१ ॥

इसका विद० ऋ०, अनु० छ०, अश्वि० दे० है। मंत्रार्थ (सरस्वत्या, अश्विना, सज्जानाने, सुपेशंसा, उपासा, नक्तं, दिवा, सायं इन्द्रं इन्द्रियैः, समञ्जाने) सरस्वतीके साथ अश्विनीकुमार एकमग होकर सुन्दर रूपवाले उपःकाल, रात्रि, दिन और सायं काल के समय इन्द्रको सामर्थ्यसे संयुक्त करते हैं ॥ ६१ ॥

प्रातर्नो अश्विना दिवा प्राहि नक्तं च सरस्वति । देव्यां होतारा भिपजा पातमिन्द्रं च सचां सुते ॥ ६२ ॥

ऋष्यादि पूर्ववत् । मंत्रार्थ—(अश्विना, दिवा, नः, पातम्) हे अश्विनीकुमारों दिनमें हमारी रक्षा करो (सरस्वति, नक्तं, प्राहि) हे सरस्वती तुम रात्रिमें रक्षा करो (देव्या, होतारा, भिपजा, सुते, सचा, इन्द्रं, पातम्) हे देवसम्बन्धीहोताओं, वैद्य अश्विनीकुमारों ! सोमके अभिपुत्र होनेपर इकट्ठे होकर इन्द्रकी रक्षा करो ॥ ६२ ॥

तिस्रस्त्रेणा सरस्वत्याश्विना भारतीणां । तीव्र-

स्पृष्टुता सोममिन्द्राय सुपुवुर्मर्दम् ॥ ६३ ॥

इसका विद० ऋ० अनु० छ० अश्वि० दे० है। मंत्रार्थ (त्रेणा, सरस्वती, भारती, इडा, तिस्रः, अश्विना, परिस्पृष्टा, तीव्रं, मर्दं, इन्द्रं, सोमाय, सुपुवुः) तीव्रकारसे स्थित अर्थात् मध्यस्थानों में सरस्वती शुलोकमें भारती और पृथिवीपर इडा इन तीनों अश्विनीकुमारके द्वारा महीपथोंके रससेयुक्त अधिक दूषित करनेवाले सोमका अभिपवण किया गया ॥ ६३ ॥

अग्निना भेषजाम्भुं भेषजन्तस्वरस्वती । इन्द्रे
त्वष्टा यशः श्रियं रूपां रूपं मधुः सुते ॥ ६४ ॥

ऋष्यादि पूर्ववत् । मंत्रार्थ—(सुते, नः, इन्द्रे. शश्वना, भेषजं. सरस्वती, मधु, भेषजं, त्वष्टा, यशः, श्रियं, रूपंरूपं, अधुः) सोम का अभिषेक होनपर हमारे इन्द्रमें शश्वतीकुमारने मधुपयि, सरस्वतीने मधुक्षप औपय, त्वष्टा देवताने कीर्ति लक्ष्मी और अनेक प्रकारके रूप स्थापन किये ॥ ६४ ॥

क्षतधेन्द्रो घनस्पतिः शशमानः परिमुना ।

पीलालंमश्विभ्याम्मधुं दुहे धनुः सरस्वती ॥ ६५ ॥

ऋष्यादि पूर्ववत् । मंत्रार्थ—(घनस्पतिः, इन्द्रः, शशमानः, षट्पुत्रा, परिमुना, कीनालं, इन्द्रः, अश्विभ्यां, सरस्वती, धेनुः, म .. दुहे) पशुजदेवता इन्द्र स्तुतिको मास होनासुधा मत्स्यक ऋतुमें गदौपथोंके रसके साथ अन्नके रसको इन्द्रके निमित्त देना-सुधा तथा शश्वतीकुमारों सहित सरस्वतीने धेनुक्षप होकर इन्द्र के निमित्त मधुको दुहा ॥ ६५ ॥

गोधिर्न सोममश्विना माभरेण परिच्छुता । समं-

घान्तं सरस्वत्या स्वाहेन्द्रे सुगम्भुं ॥ ६६ ॥

ऋष्यादि पूर्ववत् । मंत्रार्थ—(शश्वना, सरस्वत्या, गोभीः, परिमुना, सुतं, मधु, सोमं, इन्द्रे, समघान्तं, स्वाहा) ऐश्वर्यनी कुमारों । तुम सास्वतीके साथ दूध घृण आदिके द्वारा मधुपथोंके रसमें शश्विपुत्र मधुर सोमको इन्द्रके निमित्त स्थापन करो, उसका श्रेष्ठ होम हो ॥ ६६ ॥

अग्निना वृषिरिन्द्रिगत्तुचेर्द्विषा सरस्वती ।

आशुक्रमांसुरादसुं मयभिन्द्राय जभ्रिरे ॥ ६७ ॥

इसका निद० ऋ०, पु०, धनु० छ०, अश्वि० देवता है । मंत्रार्थ—(आश्विना, सरस्वती, धिया, नपुने, आसुरान्, इन्द्राय, शुक्रं, दधिः, इन्द्रिगं, नधं वसु, आश्विरे) शश्वतीकुमार और सरस्वतीने बुद्धिपूर्वक नमुचि नामक द्रव्यसे इन्द्रके निमित्त शुद्ध दधि पककारक और पूजनीय धन आहरण किया ॥ ६७ ॥